

लाल बहादुर शास्त्री प्रशासन अकादमी
Lal Bahadur Shastri Academy of Administration

मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

101548

अवाप्ति संख्या

Accession No.....J.D-1489.....

वर्ग संख्या

Class No.....294.4.....

GL 294.4

JAT

पुस्तक संख्या

Book No.....Jat.....



101548
LBSNAA

Mānikachandra
Digambara Jaina Granthamālā

No. 40

To

My Grand-father

Who quietly passed away, a few days back,
at the ripe age of about one hundred & five.

—EDITOR

Māṇikachandra D. Jaina Granthamālā, No. 40.

JĀṬĀ-SIMHANANDI'S

VARĀNGACARITA

(A Sanskrit Purāṇic Kāvya of A. D. 7th Century)

Edited for the first time from two palm-leaf MSS. with Various Readings, a critical Introduction, Notes, etc.

BY

Prof. A. N. UPADHYE, M. A.

Rajaram College, Kolhapur.

PUBLISHED BY

The Secretary, Māṇikachandra D. Jaina Granthamālā,
Hirabag, Bombay 4.

1938

Price Rupees Three

काव्यानुचिन्तने यस्य जटाः प्रचलवृत्तयः ।
अर्थान्स्मानुवदन्तीव अग्राचार्यः स नोऽवतात् ॥

जिनसेन, आदिपुराण १-५०.

माणिकचन्द्र-दिग्म्बर-जैन-ग्रन्थमालायाः
च त्वा रिं शो ग्रन्थः

श्री-जटासिंहनन्दि-विरचितं

वराङ्गचरितम्

उपाध्यायोपाहृ - आदिनाथेन
संशोधनात्मकया प्रस्तावनया टिप्पण्यादिभिश्च
समलूक्तं संपादितं च

प्रकाशिका
माणिकचन्द्र-दिग्म्बर-जैन-ग्रन्थमाला-समितिः
हीराबाग, मुम्बापुरी ४
वीरनिर्वाण संवत् २४६५

स्त्रियकत्रयम्

प्रकाशक
पं. नाथूराम प्रेमी,
मंत्री, माणिकचन्द्र दिगंबर जैनग्रंथमाला, हीराबाग, बंबई ४

First Edition 1938

प्रथमा आवृत्तिः, वि. सं. १९९५.

मुद्रक

रघुनाथ दीपाजी देसर्ह, न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
बंबई ४, पृ. 56-88; १-३६४.
मंगेश नारायण कुलकर्णी, कर्नाटक प्रेस,
चीरा बाजार, बंबई ३, पृ. i-xvi, 1-56, 365-396.

CONTENTS

अकाशकका निवेदन	ix
PREFACE	xi-xiv
INTRODUCTION	1-56
1. Critical Apparatus	1
2. Text-constitution	5
3. Authorship of the Poem	8
4. Jaṭā-Simhanandyācārya	13
5. His Date and other Works	19
6. Varāṅgacarita : A Critical Study	24-53
i) Analysis of the Contents	24
ii) A Dharmakathā with some Kāvya features	27
iii) Dogmatical Details in Varāṅgacarita	29
iv) Polemic Discussions	32
v) Some Details viewed in contemporary Socio-political Back-ground	35
vi) Aśvaghoṣa and Jaṭila	39
vii) Varāṅgacarita and Later Jaina Authors	41
viii) Grammatical Peculiarities of Varāṅgacarita	42
ix) Metres in Varāṅgacarita	48
x) Style of Varāṅgacarita	51
7. Four Other Varāṅgacaritas :	53-56
i) Vardhamāna's Varāṅgacarita in Sanskrit	53
ii) Dharaṇī Pañḍita's Varāṅgacarita in Kannada	55
iii) Lālacanda's Varāṅgacarita in Hindī	55
iv) Kamalanayana's Varāṅgacarita in Hindi	56

अंग्रेजी प्रस्तावनाका हिंदी सार	57-79
विषयानुक्रम:	80-88
वराङ्गचरितम्—Text with Foot-notes	१-३१२
वराङ्गचरितपद्यानां वर्णानुक्रमसूची	३१३-३६२
NOTES	363-383
INDEX OF PROPER NAMES IN THE TEXT	384-388
ADDENDA ET CORRIGENDA	389-392

प्रकाशकका निवेदन

न्यायकुमुदचन्द्रके बाद मा० प्र० मालाका यह चालीसवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। न्यायकुमुदका अन्तिम भाग प्रेसमें जा रहा है जो संभवतः आगामी वर्षके अन्त तक प्रकाशित हो जायगा, और क्रमानुसार उसका नम्बर ३६ होगा।

दिग्म्बर जैन-सम्प्रदायके उपलब्ध संस्कृत कथा-साहित्यमें जहाँ तक मैं जानता हूँ रविषेणके पद्मचरितको छोड़कर और कोई ग्रन्थ इससे प्राचीन नहीं है। आचार्य जिनसेन (प्रथम) के हरिवंशपुराणके उल्लेखके आधारपर सबसे पहले, लगभग २० वर्ष पहले, मैंने वरांगचरितकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकर्षित किया था, परन्तु उस समय यह रविषेणकृत समझ लिया गया था। सबसे पहले प्रो. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, एम. ए. ने इस ग्रन्थके पता लगानेका प्रयत्न किया, और इसका एक सर्ग पूनेके भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिरके त्रैमासिकमें प्रकाशित करके बतलाया कि यह वही वरांगचरित है जिसका हरिवंशमें उल्लेख है परन्तु इसके कर्ता रविषेण नहीं किन्तु आचार्य सिंहनन्दिया जटाचार्य हैं। तब मैंने उपाध्यायजीसे प्रार्थना की कि यदि आप इस ग्रन्थकी एक दो प्रतियाँ और भी तलाश करके सम्पादित कर दें, तो मैं इसे मा० ग्रन्थमालामें प्रकाशित करनेका प्रबन्ध कर सकूँगा। उपाध्यायजीने इसे स्वीकार तो कर लिया परन्तु प्रतियाँ जब तक न मिलें तब तक कार्यका प्रारंभ कैसे हो ? कारंजाके भंडारोंकी दो प्रतियोंका हम लोगोंको पता लग गया था, और आशा भी थी कि वे किसी न किसी तरह प्राप्त की जा सकेंगी, परन्तु हमारे सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। ग्रन्थमालाके शुभचिन्तक प्रो० हीरालालजी जैन एम० ए०, प० देवकीनन्दनजी शास्त्री और सिंघई पन्नालालजी आदि भी कारंजाके पुस्तकाव्यक्षोंपर अपना प्रभाव डालकर इस कार्यको न कर सके। यह भी न हो सका कि कारंजामें ही प्रेस-कापीका मिलान कर लेने दिया जाय। लाचार उपाध्यायजी स्वयं अपने सतत प्रयत्नसे अन्यत्रकी जिन दो प्रतियोंको प्राप्त कर सके उन्हींके आधारसे उन्हें इस ग्रन्थको सम्पादित करना पड़ा।

ग्रन्थ कितने परिश्रम और सावधानीसे सम्पादित हुआ है, यह विद्वान् पाठक स्वयं ही इसका स्वाध्याय करके निर्णय कर लेंगे। मुझे तो इतना ही कहना है कि उपाध्यायजी आधुनिक ग्रन्थ-संशोधन-कलामें बहुत ही कुशल हैं, और उन्होंने जैनसमाजके विद्वानोंके सम्मुख इस बातका आदर्श उपस्थित किया है कि प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन किस प्रकार होना चाहिए।

उनकी इस योग्यताके ही कारण बॉम्बे यूनिवर्सिटीने इस ग्रन्थके प्रकाशन कार्यमें २५० ढाई सौ रुपयोंकी सहायता देकर ग्रन्थमालाके गौरवको बढ़ाया है। इसके लिए ग्रन्थमालाके प्रकाशक युनिवर्सिटीके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अन्तमें हम जैनसमाजके धनी-मानियों और साहित्यप्रेमी विद्वानोंका ध्यान ग्रन्थमालाके आर्थिक संकटकी ओर आकर्षित करते हैं जिसके कारण उसके प्रकाशक अतिशय चिन्तित हो रहे हैं, और उन्हें इस समय अपना कार्य एक तरहसे स्थगित-सा कर देना पड़ा है। महाकवि पुष्टदन्तके महापुराणका एक ही खंड आदिपुराण प्रकाशित हो सका है। उसके दो खंड अभी और बाकी हैं। इसके सिवाय कई अलम्भ और अथुतपूर्व ग्रन्थोंकी पूर्व-तयारी की जा चुकी है, फिर भी उन्हें प्रेसमें नहीं दिया जा सका है।

ग्रन्थमालाके पूर्व प्रकाशित ग्रन्थोंका स्टॉक बढ़ता जा रहा है। विक्री नहीं हो रही है। यदि कमसे कम बड़े बड़े मन्दिरोंके पुस्तक-भंडारोंमें ग्रन्थमालाका एक एक सेट ही खरीद कर रख दिया जाय, तो उनकी विक्रीसे ही यह आर्थिक संकट टल सकता है।

जैन-समाजको सरस्वतीमाताके जीर्णोद्घार-कार्यमें इतनी उपेक्षा तो नहीं करनी चाहिए।

हीराबाग, बम्बई
२७-१२-३८

}

निवेदक,
नाथूराम प्रेमी,
मंत्री

PREFACE

As late as 1933, *Varāṅgacarita*, which is referred to as an attractive composition by Jinasena in his *Harivamśa* (A.D. 783), was merely a name to us ; and by mistake it was attributed to Raviṣeṇa, the author of *Padmacarita*. After discovering an anonymous Ms. of *Varāṅgacarita* in Kolhapur, I contributed a paper to the *Annals* of the Bhandarkar Oriental Research Institute, vol. XIV, parts i-ii, in which the following points were clearly brought out : there was no *Varāṅgacarita* of Raviṣeṇa ; Jatīlamuni wrote one *Varāṅgacarita* which is preserved in the anonymous Ms. ; and this Jatīlamuni, Jatācārya or Jatāśimhānandi flourished earlier than A.D. 778.

This new find was warmly welcomed, and my researches about its authorship and date were much appreciated. Some of my friends repeatedly pressed me to bring forth a complete edition of it. To publish the text of such an old poem from a single Ms. was not advisable, so I had to wait for some more material to fulfil the desire of my friends.

I learnt that there are two MSS. of this poem in the Karanja Bhaṇḍāras from the *Catalogue of Sanskrit and Prākrit MSS. in the C. P. and Berar* (Nos. 7862-3). Pt. PREMI and myself tried our utmost to get their transcripts, but all our efforts failed. Even the variant readings of the first canto could not be available to us despite the kind efforts made on our behalf by eminent persons like Pt. DEVAKINANDAN and Prof. HIRALAL. The attitude of the custodians of these Bhaṇḍāras stands self-condemned. Such people will be remembered as pious iconoclasts

whose orthodoxy, as time passes on, will destroy many valuable MSS. to which even light and air are denied.

By about the middle of 1936 I got the happy news from Mr. D. L. NARASIMHACAHAR that an old palm-leaf Ms. was just received in the Government Oriental Library, Mysore. It was through the kind offices of Mr. N. ANANTHARANGACHAR that I could get a faithful transcript of it within a short period of time. The present edition of the text is based on these two MSS. which unfortunately belong to the same family. As the material was limited and defective, I had to proceed with utmost conservatism in presenting the text. My modest ambition was to rescue this old text from oblivion, and I hope that this *editio princeps* of *Varāngacarita* will be received by scholars for what it is worth.

The Introduction is devoted to the various important problems connected with the study of *Varāngacarita*. After a critical description of the Ms. material, I have explained the procedure of text-constitution adopted by me. The very nature of the material demanded many emendations. I have offered them in my humble way either in the square-brackets in the foot-notes or in the Notes at the end. Then the authorship of the poem is determined with the help of external evidence, and the date and the personality of Jatilamuni are fully discussed in the light of various references from Sanskrit, Prākrit, and Kannada works. In the critical study of the various aspects of *Varāngacarita* the contents are analysed and the Kāvya features of the poem are noted. Dogmatical and polemical sections are separately summarised, and the attention of the reader is drawn to the contemporary socio-political back-ground of the poem. There are many common points between Aśvaghoṣa's Kāvyas and

Varāṅgacarita. In spite of the defective material at our disposal, our text shows certain grammatical peculiarities which are akin to what we call Epic Sanskrit. Metres used in this work are tabulated, and lastly some remarks are made on the style of *Varāṅgacarita*. The concluding section is occupied by the study of four other *Varāṅgacaritas*, one in Sanskrit, one in Kannada and two in Hindi.

The Notes at the end are not in any way explanatory but merely textual. They simply record the difficulties which the editor had to face in constituting the text and some useful emendations that suggested themselves to him. All such emendations are bound to be tentative till they are confirmed by actual readings from new MSS.

I must record my sense of respect and gratitude to Svasti Śrī LAKSHMISENA BHATTARAKA, Kolhapur, for kindly placing Ms. *Ka* at my disposal. I am much obliged to my friends Mr. D. L. NARASIMHACHAR, M.A. and Mr. N. ANANTHARANGACHAR, M.A., B.T., Mysore, whose prompt and kind coöperation was of great value to me in getting the transcript of the Mysore Ms. Thanks are also due to Pt. JINADAS, Sholapur, Prof. K. G. KUNDANGAR, Kolhapur, and Mr. N. L. RAO, M.A., Asst. to the Govt. Epigraphist for India, Ootacamund, for some of their suggestions; to Mr. N. R. ACHARYA, Bombay, for checking the press-corrections from my proofs; to Pt. KAILASCHANDRAJI, Benares, for preparing the Hindi summary of my Introduction; and to Mr. K. P. JAINA, Aliganj, and Mr. PANNALAL JAINA, Delhi, for sending me the extracts etc. from Hindi *Varāṅgacaritas*. I am very thankful to my friend Mr. K. J. DIKSHIT, B. A., B.T., Sangli, who carefully read the text and offered some

valuable suggestions which I have incorporated in the Notes. It was very kind of the Director, Archæological Department, Nizam's Government, to have allowed us to include the photograph of the Kopbāl inscription in this volume.

Words are inadequate to express my sense of obligation to Pt. NATHURAM PREMI, Bombay, but for whose encouragement I would not have been able to publish this work. Some twenty-five years back, it was he who drew the attention of scholars to the existence of a *Varāngacarita*; and to-day, with almost a personal interest, he shouldered the responsibility of publishing this work, though the funds at the disposal of the Mālā were very meagre. Thanks are also due to Sheth THAKURDAS BHAGWANDAS JHAVERI who takes sincere interest in the progress of the Mālā.

The editor acknowledges his indebtedness to the University of Bombay for the substantial financial help it has granted towards the cost of the publication of this book.

In placing this work in the hands of Sanskritists it is a consolation for the editor and the publisher that a Sanskrit Purānic Kāvya of the last quarter of the 7th century A.D. is brought to light; and its author, whose personality and identity were almost forgotten, is rescued from oblivion.

karmaṇyevādhikāras te :

Rajaram College, Kolhapur : }
December 1938. }

A. N. UPADHYE

BY THE SAME AUTHOR

1. **Pāñcasuttamī** of an Unknown ancient writer: Prākrit Text edited with Introduction, Translation, Notes with Copious extracts from Haribhadra's Commentary, and a Glossary. Second Ed., revised and enlarged, Crown pp. 96, Kolhapur 1934.
 2. **Pravacanasāra** of Kundakunda, an authoritative work on Jaina ontology, epistemology etc.: Prākrit text, the Sanskrit commentaries of Amṛtacandra and Jayasena, Hindi exposition by Pāṇḍe Hemarāja : edited with an English Translation and a critical elaborate Introduction etc. New Edition, Published in the Rāyachandra Jaina Śāstramālā vol. 9, Royal 8vo pp. 16 + 132 + 376 + 64, Bombay 1935.
 3. **Paramatma-prakāśa** of Yogīndudeva. An Apabhramśa work on Jaina Mysticism : Apabhramśa text with various readings, Sanskrit Tīkā of Brahmadeva and Hindi exposition of Daulatarāma, also the critical Text of **Yogasāra** with Hindi paraphrase : edited with a critical Introduction in English. New Ed., Published in the Rāyachandra Jaina Śāstramālā vol. 10, Royal 8vo pp. 12 + 124 + 396, Bombay 1937.
-

INTRODUCTION

1. CRITICAL APPARATUS

This edition of *Varāṅgacarita* is based on two palm-leaf MSS. that were available ; and their critical description is given below :

Ka (क) : This palm-leaf Ms., measuring 13·5"×2"×2", belongs to Śrī Lakṣmīsenā Maṭha, Kolhapur (No. 155, also 195, *Varāṅgacaritra, Saṃskṛta*). It contains 144 leaves (= 288 pages) ; each page has eight lines and each line about 55 letters. It is written in Old-Kannada script, and the hand-writing is uniform and fairly beautiful. The Ms. is well preserved, and is in good order. Only one leaf, No. 30, is broken across. It has some lacunae here and there. The copyist is careful, but his copy appears to have inherited some mistakes from the original. Now and then intelligent corrections are made in a new hand-writing. As it is usual in Old-Kannada MSS., short and long *i*, *u* and *e* are not distinguished. Here *dh* and *th* are generally represented by *da* and *ta*; and very often *p* and *y* are interchanged. When *r* is the first member of a conjunct group, the other consonant is written as double : *viryya*, *dharma* etc. The three sibilants are often confused, and *l* is usually put for *t*.

The Ms. opens thus :

श्रीमदादिब्रह्मणे नमः । निर्विघ्नमस्तु ॥ अर्हत्विलोक.....;

and the concluding passage, at the close of thirty-first canto, runs thus :

स्वस्ति श्रीविजयाभ्युदयशालिवाहनशक्वर्षे १६५८ नळनामसंवत्सरे कार्तिक-
मासे कृष्णपक्षे चतुर्दशीतिथौ मन्दवारयुक्तायां श्रीरङ्गपत्तनप्रविराजमानश्रीमदादिनाथ

श्रीवीरनाथस्वामिपादाभ्योरुद्युम्नसंनिधौ श्रीमदभिनवचास्कीर्तिपण्डिताचार्यवर्यानुज्ञया
पोमण्णोपाध्यायस्य प्रियपुत्राय अष्टैश्चोपाध्यायाय पायिसेष्टिपुत्रेण पार्श्वाह्वयेण मया
लिखित्वा दत्तमिदं वराङ्गचरितमिति मङ्गलमहा श्री ६।

Thus this Ms. was written by Pārśva, the son of Pāyiseṭṭi, for Aṇṇayya Upādhyāya, the son of Pomanṇa Upādhyāya, with the permission of the contemporary Cārukīrti Pañḍitācārya, at Śrīraṅgapattana, on Mandavāra, the 14th of the black-half of the month of Kārtika, Śālivāhana Śaka 1658, the name of the year being Nala. Śrīraṅgapattana is the present Seringapatam near Mysore; Cārukīrti is the permanent title of the Bhāttāraka of Śravaṇa Bēlgol Maṭha, and a salutation to him at the beginning of the fourth canto in this Ms. is not without some significance. The date corresponds with Saturday, 20th November, A.D. 1736. So our Ms. is 202 years old and comes from Mysore territory. This was the first Ms. of *Varāngacarita* that I discovered in 1930, and subsequently wrote a detailed paper on it in the *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, XIV, 61-79.

Ma (म) : This is a faithful transcript of the palm-leaf Ms. of *Varāngacarita* belonging to the Jaina Maṭha at Śravaṇa Bēlgol. Through the good offices of Mr. N. ANANTARANGACHAR the palm-leaf Ms. has been lately procured for the Oriental Library, Mysore. The Ms. measures 23½ by 1¾ inches and the written portion 22 by 1½ inches. It contains 109 leaves written on both sides. There are six lines on each side and roughly about 90 letters in each line. Every chapter opens with Śrī and a salutation to Vitarāga or some Tīrthakara which possibly belongs to the copyist. There are lacunae here and there.

The concluding lines of the copyist run thus :

स्वस्ति श्रीशकवर्षे १३८० बहुधान्यसंवत्सरे मार्गशिरमासे शुक्लपक्षचतुर्दश्यां
रविवारयुक्तायां भग्नातकपुराभिधानमहापत्तने श्रीनेमितीर्थेश्वरमहाचैत्यालये मातृकामन-
तिक्रम्य यथा स्थितं तथैव लिखितम् । पुस्तकमिदं लेखकाशिरोमणिना ओडयप्पवित्रेण

लिखितमिदं पुस्तकं तत्सर्वं क्षम्यतां बुधैरिति लेखकस्य मम प्रार्थना ॥ शुभं भवतु ॥
मङ्गलं चास्तु ॥ भद्रं भूयजिनशासनाय ॥ श्रीमेमिनाथाय नमः ॥
श्रीवीरसेनसुनये नमः ॥ ॥

Thus this Ms. was written and finished by the priest Ōḍa-yappa who styles himself as *lekhaka-śiromāṇi*, an expert copyist, at Bhallātakapura, on Sunday the 14th day of the bright half of the month of Mārgaśīra in the year Bahudhānya, Śaka 1380. Bhallātakapura is the present Gersoppa¹ which is famous for Joag Falls and which, I am told, possesses Jaina cultural relics in the form of typical temples with beautiful images. The date corresponds with Sunday, 19th of November, A.D. 1458. This Ms. is 480 years old.

I have not handled this palm-leaf Ms., but my readings etc. are based on a faithful transcript of it kindly supplied to me by Pt. N. ANANTARANGACHAR of the Oriental Library, Mysore.

Some more details about Ma and Ka may be noted here. These MSS. show a tendency of retaining *visarga* before *k* and *p* where ordinarily it is changed to *s*. Both of them read *sanmāna* for *sammāna*. In canto xxvi, verse No. 65 is found only in Ka, and verse No. 76, the same as No. 81 below, only in Ma. In three places arrangement of lines into stanzas, possibly due to the loss of some line or lines, is much confused : i) Between vii. 18 and vii. 23 there should be in all sixteen lines, but both the MSS. have only fourteen lines distributed over three verses. Ka puts six lines in No. 21 and Ma also shows nearly the same arrangement though two lines are left without numbering after No. 21. It is impossible to construe the verses as they stand ; so I have shown blank space for lines 3 & 4 in No. 19 and then distributed the remaining lines. ii) In both the MSS. there are only eleven lines between xx. 2

and xx. 6 : Nos. 3 & 4 have four lines each, while No. 5 has only three. This arrangement is syntactically impossible and gives no sense. I have shown, however, the 4th line of No. 3 as blank which makes the position quite clear. iii) Some two lines being lost somewhere the arrangement of verses xxiv. 63-72 is much unsatisfactory. In verse No. 70 Ka has only two lines *svapurārjita . . . varṇayanti*, while Ma has only two in No. 71 *bahukoṭi . . . praśasti*. A close study of this portion tempted me to keep the first two lines of No. 64 blank and then assign the remaining lines to different verses.

There are many identical lacunae in both the MSS., for instance : i. 62, 70 ; vi. 54 ; xvi. 72 ; xvii. 76, 78 ; xviii. 130 ; xx. 27 ; xxiv. 22, 23, 40 ; xxv. 27, 49 ; xxix. 21 ; xxxi. 48 etc. In textual accuracy Ma is superior to Ka, but comparatively there are more lacunae in Ma (for instance xiv. 98 ; xvi. 72 ; xvii. 70, 71, 72, 74, 75, 76, 78, 80, 82, 84, 86 ; xviii. 1, 3, 5 ; xxii. 59, 62 ; xxiv. 40 etc.), but most of them I could fill by the readings given by Ka. Some lacunae in Ka are filled by a subsequent hand, at times even incorrectly. For instance in xx. 27 there is a gap of two letters, and Ka supplies in the margin a reading *javaiḥ* which is not quite satisfactory ; in xvii. 76 Ka has no gap as in Ma, but the reading of Ka is far from being satisfactory. From the transcript I see that Ma once gives a *v. l.* on ix. 10 ; possibly it is from the margin of the palm-leaf Ms. The number of cases of Ma filling the gaps of Ka is negligibly small, almost nil.

Compared with Ka, Ma is older by 278 years, it preserves better readings, and it contains less scribal errors though the number of lacunae in it is greater. Ma was written at Gersoppa and Ka at Seringapatam : thus both of them come from Karnāṭaka. They are closely associated with the Jaina Maṭha at Śravaṇa Belgoḷ in the Mysore territory : Ma belonged to that Maṭha before it was brought to Mysore, and Ka was copied with the permission of the contemporary Bhaṭṭāraka of that

Maṭha. Ka has one verse not found in Ma (xxvi. 65) ; in some places Ka supplies satisfactory letters and words where Ma has gaps (xvii. 70, 71 etc.) ; and Ka has many readings quite independent of Ma (see for instance the readings on vi. 43, xiii. 41, xvi. 18, xix. 11 etc.). These facts are enough to show that Ka is not a direct copy of Ma. Then some other points also will have to be taken into account : between the two MSS. there are many common lacunae as noted above ; there are some significant errors in both (see vi. 19 ; vii. 13 ; xii. 27 ; xiii. 40, 58 ; xiv. 26 ; xv. 105 ; xx. 71 ; xxii. 69 ; xxiv. 4 ; xxx. 47 etc.) ; at the opening of canto xxx there is a salutational verse in both possibly belonging to the copyist. These facts indicate that Ka is not absolutely independent of Ma. Under these circumstances I am inclined to believe that both Ka and Ma had a common predecessor in an old MS. some generations back. The greater number of lacunae in Ma might indicate that the immediate predecessor of Ma was a faulty MS. being eaten by worms etc. It is very difficult to say whether any intelligent copyist has filled the gaps in Ka or in its predecessor.

2. TEXT-CONSTITUTION

The editor had to work with the limited material supplied by these two palm-leaf MSS. which belong to the same family. They are distant members of the same group. This limited material too has its own defects. Genuine variants as such are very few. Most of the divergent readings are like the guesses and the slips of scribes. When the text is difficult or obscure the number of readings increases. We have more variant readings at the beginning of the work than at the close of it :

perhaps many novices studied some opening cantos of *Varāngacarita*. In philosophical sections, for instance canto xxiv, the text is obscure in many places and baffles one's wits. There are many gaps in the text ; variants, even though available, are not of much help ; and very often both the MSS. unite to commit a palpable error. The work is pretty old ; the MS. tradition is insufficient and defective ; and there is no commentary available on this work. The text is being edited for the first time, and as such I had no opportunities of availing myself of the suggestions of earlier workers. Lastly, no other work of this author has come to light, a close study of which would have helped the editor to understand the textual peculiarities in a better manner.

Under these circumstances I have proceeded with utmost caution and conservatism. By mutually collating Ka and Ma, many scribal, orthographical and other errors were eliminated. The spelling and other features of the text are presented in a standardised form. Common lacunae are retained. In some cases signs of short and long vowels are added by me in square brackets. When there was a gap only in one MS., it has been filled by readings supplied by the other. This eclectic method I have adopted, because both the MSS. belong to the same family. When there was a disagreement, I have adopted a convenient reading in the text and relegated the other to the foot-notes. Sometimes it will be seen that meaningless variants are noted with a view that they might be useful to conjecture the correct original. When the text is apparently corrupt, I have put question marks in a few cases. As far as possible I have not trespassed the material supplied by the MSS., and even in keeping myself within that limit I had to use my discretion now and then. When there is an agreement between both the MSS. even on plain errors, I have proceeded thus : the readings are left as they are, but in the foot-notes, within square brackets, I have suggested what might have

been the probable original of the corrupt readings. Now and then I had occasions to discuss these corrupt readings with many of my friends who were kind enough to make some suggestions here and there. Such suggestions together with those that occurred to me later and other points which I had to face in settling the text I have included in the Notes at the end. In handling the MSS. material such readings do suggest themselves to anyone from the recognised grammatical, metrical and syntactical needs, from the peculiarities of the script, and from the metathetical, haplographical and other errors to which the scribes are often liable. I may explain a few cases here by way of illustration : In iv. 47 Ka reads *sacalah kṣaṇataḥ*, and Ma reads *sa ca lakṣanataḥ*, but both of them do not mean anything. Taking the sense into consideration and remembering that *c* and *v* could be confounded both in Devanāgarī and Kannada I have suggested [*śaivalah*] as the possible correct reading. In vii. 13 *prakṛṣṭa-kāraṇḍavaham̄ vasanti* is only a metathetical corruption of [[°]*kāraṇḍava-ham̄savanti*]. In xii. 27 *draṣṭum̄ nāram̄ prāṇi* is certainly a scribal corruption of [*draṣṭum̄ na randhrāṇi*] as judged from Nos. 25-6 above. In xx. 71 *nṛpatayā* is only a contaminated error for [*prtanjayā*], which gives the necessary sense. In xxx. 47 *tato'thā puri vāprasamgāḥ*, which is found in both the MSS., is decidedly a corrupt reading. Taking into consideration that *p* and *y* are often confused in this Ms. and that *v* could be read for *th*, I have suggested [*tato vāyurivālpasamgāḥ*] which, I think, gives a suitable sense. My emendations in the square brackets and in the Notes are only tentative ; and I do not claim them to be final. These suggestions are made more or less to eliminate the errors of copyists and not to improve on the author. As they are put in the foot-notes and separately in the Notes, they do not hinder better suggestions from others. Some of my Śāstric friends suggested to make these corrections freely in the text by relegating the corrupt readings to the foot-notes.

and to regularise the grammatical angularities of the text according to *Siddhānta-kaumudī*. But, in view of the antiquity of the work and the insufficient and unsatisfactory character of the material, I have diligently refrained from taking any such steps, which, at this stage, would be a handicap to subsequent workers. I have, however, pointed out some grammatical irregularities in the Notes. Thus, in this edition, I have given a faithful record of the text-tradition from the two available MSS. and presented the text as satisfactorily as it was possible for me within the limitations of the material.

3. AUTHORSHIP OF THE POEM

Both the MSS. do not mention the name of the author anywhere. Neither in the colophons of various cantos nor in the concluding verses of any canto has the author mentioned his name or any personal details. Anything like a *praśasti* is not found in either of the MSS. I have not been able to lay my finger on any significant words in the concluding verses of any canto which might indirectly hint the author's name. The two words *viśālakīrti* and *rājasimha* in i. 89 do catch our eye, but there is no need of forcing any special significance out of them, because such words do not occur at the close of other cantos.

In the absence of any clue from the text, we shall have to search for some external evidence to settle the authorship of *Varāngacarita*.

i) Jinasena, in his *Harivaiśa-purāṇa*¹ (A.D. 783), refers to *Padmacarita* and *Varāngacarita* in these two verses :

1. Māṇikachandra Digambara Jaina Granthamālā Vols. 31-2, Bombay 1930.

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।
 मूर्तिः काव्यमसी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥
 वराङ्गनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक् ।
 कस्य नोत्पादयेद्यादमनुरागं स्वगोचरम् ॥ I. 34-35.

Thus in the first verse Raviṣeṇa is suggested as the author of *Padmacarita*.¹ The second verse is not syntactically connected with the first, and it can be rendered thus : 'In whom will not the style of *Varāṅgacarita*, which is pregnant with sense arouse, with all its factors, deep passion for itself, just in the wise of a lovely damsel who arouses, with all her limbs, deep passion for herself—a damsel whose speech has its purpose done through her excellent limbs ?' It is a self-sufficient verse describing only the merits of *Varāṅgacarita* without mentioning the name of its author.²

ii) Uddyotanasūri, in his *Kuvalayamālā*³ (A.D. 778), has a verse like this :

1. Ibidem Vols. 29-30; Bombay Samvat 1985.
2. Pt. PREMI took these verses together and suggested in his *Vidvadratnamālā* (Bombay 1912), p. 43, that Raviṣeṇa had written a *Varāṅgacarita* besides his *Padmacarita*. Later on in a short article in *Jaina Hataishi* Vol. 15, p. 104, and in his Introduction to the edition of *Padmacarita* he quoted the verse from *Kuvalayamālā* with its defective readings. As I have shown elsewhere (*Annals* of the Bhandarkar Oriental Research Institute Vol. XIV, parts i-ii, pp.61-79), the attribution of *Varāṅgacarita* to Raviṣeṇa has to be given up for the simple reason that of the two evidences put forth by him one is insufficient since it does not mention the name of the author at all and the second goes completely against him. It gives me great pleasure to note that Pt. PREMI, a sportsman-like scholar as he is, has already corrected himself and accepted the view stated above in his Hindi summary of my article which he published in *Jaina Jagat*, February 1933.
3. *Catalogue of MSS. in Jesalmere Bhandārs*, Gaekwad's Oriental Series, Vol XXI, p. 42.

जेहिं काण रमणिज्जे वरंग-पउमाण चरियवित्थरे ।
कह व ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणो ॥

It is clear from the words *jehim*, *te*, *kaiṇo* that he is referring to two poets, the authors of *Varāṅga-* and *Padma-carita*, and their names are to be detected in the phrase ‘*Jadiyarakaviseṇo*’. Pt. PREMI wavered on the reading of the first part : once he read *Jadiya* and a second time *Jaiya*.¹ DALAL quotes an extract from *Kuvalayamālā* in his notes on *Kāvyamīmāṃsā* of Rājaśekhara, and he also reads *Jadiya*.² Taking the names respectively, Uddyotanasūri attributes *Padmacarita* to Raviṣeṇa and *Varāṅgacarita* to Jadiya, which appears to be a wrong reading for Jadila, as we see from Dhavala’s remark given below.

iii) Then Dhavala, in his *Harivamśa* (circa A.D. 11th century) composed in the Apabhrāṁśa dialect, refers to *Varāṅgacarita* thus³ :

मुणिमहसेणु सुलोयणु जेण
पउमचरितु मुणिरविसेणेण ।
जिणसेणेण हरिवंसु पविनु
जडिलमुणिणा वरंगचरितु ॥

In quite plain terms Dhavala refers to *Sulocana-carita* of Mahāsena, *Padmacarita* of Raviṣeṇa, *Harivamśa* of Jinasena and *Varāṅgacaritra* of Jaṭilamuni. Though Jinasena is silent on the authorship of *Varāṅgacarita*, Uddyotana and Dhavala are unanimous in attributing one to Jaṭila. Now it remains for us to see whether Jaṭilamuni is the author of our *Varāṅga-carita* which is completely silent about its author.

1. *Jaina Hitaishi* XV. p. 104, and his Introduction to *Padma-carita* p. 3.
2. Gaekwad’s O. Series No. I, p. 124 of the Notes ; 3rd Ed. p. 205.
3. *Catalogue of Sk. & Pk. MSS. in C. P. and Barar*, p. 764.

iv) Cāmuṇḍarāya, the commander-in-chief and minister of Rācamalla (A.D. 974-84) has composed in Kannada prose one *Trīṣaṭiśalākāpuruṣa-carita*, popularly known as *Cāmuṇḍarāya-purāṇa* (A.D. 978)¹ in which we find a passage like this :

नाल्कनेय कथेयंबुदु द्रव्यमुं क्षेत्रमुं कालमुं भावमुं प्रकृतमुं तीर्थमुं फलमुमेदु
सप्तांगमकुं. अवरोद्ध द्रव्यवेंबुदु जीवाजीवास्तवसंवरनिर्जरवंधमोक्षमैव तत्त्वमनुलळ्डु.
क्षेत्रमेबुदु त्रैलोक्यं. कालमेबुदु अतीतानागतवर्तमानात्मक त्रिमेदमुं सुषमदुष्मादि
षड्भेदमनुलळ्डु. भावमेबुदु कर्मगळ क्षयदिनुपशमदिं क्षयोपशमदिनप्पात्मन पर्यायं.
प्रकृतमेबुदु जीवादितत्त्वंगलोकगावुदानुमोदु विवक्षितमप्य वस्तु. तीर्थमेबुदु जिनपति
चरितं. फलमेबुदु तत्त्वज्ञानं. ऐदनेय श्रोतृवेदो जटासिंहनंद्याचार्यर वृत्तं—

मृत्सारिणीमहिषहंसशुकस्वभाव।
मार्जारकङ्कमशकाजजलकसाम्याः ।
सच्छिद्रकुम्भपशुसर्पशिलोपमानास्ते
श्रावका भुवि चतुर्दशवा भवन्ति ॥

इतु प्रशस्ताप्रशस्तात्मकचतुर्दशविकल्पं.²

The prose passage, it will be seen, is a close paraphrase of *Varāṅgacarita* i. 6-7 ; and the quotation is the same as the 15th verse of the first canto. There is no doubt that Cāmuṇḍarāya is writing this portion with the verses of our *Varāṅgacarita* before him ; and it is no wonder, if Cāmuṇḍarāya was tempted to mention the name of the author of that verse. The phrase ‘*Jaṭasimhanandyācāryara vṛttam*’ is not found in some of the MSS. used for the Ed. of *Ādipurāṇa* of Cāmuṇḍarāya, and so the editors have relegated this phrase to the foot-notes. A palm-leaf Ms. of *Cāmuṇḍarāyapurāṇa* written in Śaka 1427

1. Published by Kārṇātaka Sāhitya Parishad, Bangalore 1928.

2. I have given this extract from an old palm-leaf Ms. belonging to Mr. TATYASAHEB PATIL of Nandani which is with me at present. The printed text has some different readings here and there.

(A.D. 1505) has this phrase along with the verse quoted, and I do not see any reason to doubt the genuineness of that phrase. Thus the author of the above verse, and consequently of our *Varāngacarita*, is *Jaṭāsimhanandyācārya* according to Cāmuṇḍarāya's authority. Further, I think, this *Jaṭāsimhanandyācārya* is the same as *Jaṭācārya* referred to in *Ādipurāṇa*¹ (c. A.D. 838) by Jinasena thus :

काव्यानुचिन्तने यस्य जटाः प्रचलवृत्तयः
अर्थान्स्मानुवदन्तीव जटाचार्यः स नोऽवतात् ॥ I. 50 .

In a marginal note of a Ms. of *Ādipurāṇa* Simhanandin is given as the proper name of *Jaṭācārya*.² Not only Jinasena refers to *Jatācārya* but draws a good deal of technical matter from *Varāngacarita* as shown below. One is tempted to surmise from the above pieces of evidence that the name of our author was Simhanandi, and he was popularly known as *Jaṭācārya* perhaps from his long matted hair which 'shivered when he was deeply engrossed in his poetic compositions.' Cāmuṇḍarāya calls him *Jaṭā-Simhanandi* possibly to distinguish him from other Simhanandis that flourished before his time. *Jaṭila* means one who has matted hair, and hence we can identify *Jaṭācārya* with *Jaṭila*, the latter being the author of *Varāngacarita* according to *Kuvalayamālā* and *Apabhraniśa Harivaniśa*. Thus in conclusion we can say that this *Varāngacarita* is composed by Simhanandi, alias *Jaṭā-Simhanandi*, who was popularly known as *Jaṭila* or *Jaṭācārya*.

1. The text is published with Marāṭhi translation (still incomplete) from Kolhapur, with Hindi rendering from Indore and with Kannada translation (partly) once from Bangalore and once from Mysore.

2. *Collected Works* of R. G. Bhandarkar, Vol. II, p. 272.

4. JAṬĀ-SIMHANANDYĀCĀRYA

Very little do we know about Jaṭā-Simhanandi, Jaṭācārya or Jaṭila. In different centuries there have flourished in Jaina hierarchy many saints and authors bearing the name Simhanandi. Taking a resumé of important epigraphic and literary references, we can enumerate at least half a dozen Simhanandis; and about all of them we have got very scanty information.

i) The most famous Simhanandi, whose name is often mentioned in later inscriptions and who is closely associated with the historical tradition of Karnāṭaka, is he who helped the two forlorn princes to found the Gaṅga dynasty sometime in the 2nd century A.D. or so.¹ ii) At Śravaṇa Bēlgol there is an epitaph of one Siṅganandi who is assigned to circa Śaka 622 (A.D. 700).² iii) One Simhanandi, possibly belonging to Kāñūrgaṇa, is mentioned in some of the inscriptions of the first quarter of the 12th century A.D.³ iv) Then one Simhanandi, possibly of the Nandigaṇa,⁴ is mentioned in some of the inscriptions of the last quarter of the 12th century A.D. It is not unlikely if this reference stands for the famous Simhanandi No. 1 noted above. v) Further one Simhanandi of Balātkāragaṇa is mentioned in an inscription of A.D. 1371 which records the death of his pupil⁵. vi) At the time of Śrutasāgara, who flourished about the beginning of the 16th century A.D., there was one Simhanandi, a Bhāṭṭāraka of Mālava territory, according to whose advice Śrutasāgara wrote his com-

1. B. LEWIS RICE : *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 31 ; M. S. R. AYYANGAR & B. S. RAO : *Studies in South Indian Jainism*, p. 109.

2. *Epigraphia Carnatica* II. No. 32.

3. E. C. VII Shimoga No. 57 ; Ibidem Nos. 4 & 64.

4. E. C. V Arsikere No. 1 etc.

5. E. C. VIII Sorab No. 199.

mentary on *Mahābhiseka*.¹ vii) Dhavala mentions one Simhanandi who wrote a work on twelve Anuprekṣās, but we do not know anything about him further.² The details about various Sirīhanandis are so scanty that it is often difficult to distinguish one from the other. However the facts noted above are enough to show that there were Sirīhanandis more than one. Even today the same name is borne by many Jaina monks, and in order to distinguish one from the other the names of their villages etc. are added to their names : for instance, Eḍēhaṇṇi Candrasāgara, Saragūra Candrasāgara and so forth. The name of Simhanandi who played some rôle in the foundation of Gaṅga dynasty was quite prominent in Kārṇāṭaka tradition, and it is perhaps to distinguish from him that Cāmuṇḍarāya calls our author Jaṭā-Simhanandi.

Though his name had lately fallen into oblivion, Jaṭā-Simhanandi is mentioned with reverence for centuries together in Jaina literary tradition preserved in Sanskrit, Prākrit and Kannada texts. According to Uddyotanasūri (A.D. 778) *Varāngacarita* is pleasing and its author Jaṭila worthy of respect. Jinasena I (A.D. 783) refers to *Varāngacarita* as perfect and fascinating. Jinasena II (c. A.D. 838) highly compliments the poetic flash of Jaṭācārya. Dhavala (c. 11th century A.D.) mentions Jaṭila and *Varāngacarita* in good company. These verses are already given above.

Turning to Kannada literature, Pampa in his *Ādipurāṇa* (Ed., Mysore 1900) which was completed in Śaka 863 (A.D. 941)³ respectfully mentions Jaṭācārya in this manner :

1. Māṇikachandra D. J. Granthamālā Vol. 17, p. 7 of the Intro.
2. A. N. UPADHYE : *Pravacanasāra* (Bombay 1935) Intro. p. 39 foot-note 1.
3. For the dates of Kannada authors I have mainly followed *Kavitarite I-III*.

आर्यनुत-गृप्तपिंछा-
 चार्य-जटाचार्य-विश्रुतश्रुतकीर्त्या-
 चार्य-पुरस्सरमपा-
 चार्य-परंपरेये कुङ्गे भव्योत्सवम् ॥ I. 12.

We have seen above how Cāmuṇḍarāya (A.D. 978) is indebted to *Varāṅgacarita* and gives a quotation from it plainly mentioning Jaṭā-Sirīhanandi as its author. Nayasena (A.D. 1112), in his *Dharmāṁṛta* (Ed., Mysore 1924-26), refers to Jaṭā-Sirīhanandyācārya as an ocean of right conduct and endowed with many merits in the following verse :

वर्यलोकोत्तमभाविसुबोडनश्रवत्युन्नतकोडकुंदा-
 चार्यचारित्रलाकररथिकगुणसंजजटासिंहनंद्या- ।
 चार्यश्रीकूचिभट्टारकरुदितयशमिक्कपेपिगे लोका-
 श्र्यनिष्कर्मरेम्मं पोरमडिसुगे संसारकांतारदिंद ॥ I. 13.

Pārvapāṇḍita, in his *Pārvanāthapurāṇa* (A.D. 1205), praises the courageous monk Jaṭācārya in the following verse¹ which is somewhat obscure :

विदिरपोदर् तोलेयेने तू-
 गिदोडाविदिजिनमुनिप-जटाचार्यर धै-
 यदं पैषु गेलदुदु पस-
 गदल्कुरेयेनेनिसि नेगेदुमिगे सोगयिसिदं ॥ I. 14.

Janna (A.D. 1209) in his *Anantanāthapurāṇa* (Ed., Mysore 1930) refers to Jaṭā-Sirīhanandyācārya as one who has spread the excellent religion both among the princes and peasants in the following verse :

1. This verse was kindly supplied to me by Pt. D. L. NARASIMHACHAR from a MS. of that work in the Oriental Library, Mysore.

आचारोचित संयमोपकरण-व्युत्पादकर् गृह्णिं-
 छाचार्यर् चतुर्खण्डमनुरूपर् दीप्रभर् कौडकुं-
 दाचार्यर् वृषभत्ववर्धितसुधर्मर् श्रीजटासिंहणं-
 द्याचार्यर् दयेगेयवरक्षेमगे शुद्धाचारसंपत्तिं ॥ I. 13.

In verses Nos. 14-6 Janna mentions the names of Bhūtabali, Puṣpadanta, Jinasena, Virasena, Samantabhadra, Guṇabhadra, Pūjyapāda and Akalaṅka ; and the 17th verse is a Tripadi which runs thus :

वंशर् जटासिंहणंद्याचार्यादीद-
 णंद्याचार्यादिमुनिपराकार्णी-
 पंद्यर्पृथिवियोळगोळं ॥ I. 17.

Janna suggests here that Jatā-Simhanandi belonged to Kāñūrgaṇa, but this cannot be taken seriously for the following reasons. Though the origin and history of this Gaṇa are not satisfactorily worked out, the earliest mention of K(r)āñūrgaṇa, so far as I know, is found in the Bandalike inscription of c. A.D. 1074.¹ Janna's statement is not a contemporary evidence, because he flourished some centuries later than Jatā-Simhanandi. We have seen above that one Simhanandi of Kāñūrgaṇa is mentioned in an inscription of the first quarter of the 12th century A.D. From this it is not in any way unlikely that Janna associated Jatā-Simhanandi with Kāñūrgaṇa. Guṇavarma II (c. A.D. 1230), in his *Puṣpadantapurāṇa*, (Ed., Mādras 1933), calls Jatā-Simhanandi a *muni-puṇigava*, i.e., a prominent monk ; and tells us that no one could equal him in his pursuit of right path. The verse in question runs thus :

नडेवल्लियोळ तश्च समं
 बडेदाहुं नडेदरिल्ल गडमेतेदेयुं ।
 नुडियुं नडेदुवो पदुल्लिके-
 येडेगे जटासिंहणंदि मुनिपुंगवना ॥ I. 29.

‘ जयासिंगनंदि आचार्ये पदव चाचयं मादिसिद्धे ।’



Kamalabhava (c. A.D. 1235) in his *Sāntīśvarapurāṇa* (Ed., Mysore 1912) compliments Jatā-Simhanandi as an outstanding preceptor :

कार्यविद्वद्व्या-
चार्य-जटासिंहनंदि नमोहामा-
चार्यवरगृप्रिण्ठा-
चार्यर चरणारविद्वंदस्तोत्रं ॥ I. 19.

Mahābalakavi (A.D. 1254) in his *Nemināthapurāṇa*¹ refers to the marvellous influence of the world-famous Jatā-Simhanandi in the following verse :

धैर्यपरगृप्रिण्ठा-
चार्यर जटासिंहनंदि जगतीख्याता-
चार्यर प्रभावमत्या-
श्रव्यमदं पोगङ्कवडब्जजंगमसाख्यं ॥ I. 14.

Besides these references mere Simhanandi is mentioned by Aggaṭa (A.D. 1189) in his *Candraprabhapurāṇa* (Ed. Mysore 1901), by Kumudendu (c. A.D. 1275) in his *Rāmāyaṇa* (Ed. Kolhapur 1936) and by Nāgarāja (A.D. 1331) in his *Puṇyāsrava*, but we have no evidence to identify this Simhanandi with Jatā-Simhanandi in the absence of the qualifying term Jatā.

Köppala (Nizam state) was once a famous cultural centre ; it was held in high respect by the Jainas of medieval India ; and to-day it is a place of great antiquarian interest especially due to numerous inscriptions including that of Aśoka². On the hill Pälki Gūḍu adjoining Köppala, just near the Aśokan inscription, we have a pair of foot-prints ; and just below that, an inscription of two lines in Old-Kannaḍa informs us that

1. This work is not published as yet. Mr. D. L. NARASIMHA-CHAR kindly sent this verse to me from a Ms. of that work in the Oriental Library, Mysore.

2. N. B. SHASTRI : 'Kopana-Koppala' in the *Karnāṭaka Sāhitya Parishat-patrike* Vol. XXII, iii, pp. 138-54.

Cāvayya prepared (i.e. got carved) those foot-prints of Jatā-siṅganandi-ācārya.¹ It is usual with Jainas to commemorate great persons by preparing foot-prints like this especially on the spot where the monks etc. breathed their last or where their last remains were consigned to flames. Such spots, often with some structure on them, are known as Nisidi.² Kōppaḷa or Kopāṇa was not only a great town but a holy place as well which was specially visited by Jaina monks for their Saṁnyāsa-maraṇa i.e., the Jaina monks spent their last days there and voluntarily submitted to death. The foot-prints indicate that Jatā-Siṁhanandi breathed his last at Kōppaḷa. I am inclined to identify our author with him for the following reasons. The name Jatā-Siṁhanandi, which distinguishes him from other Siṁhanandis, is there ; various references to him in Kannada literature point to the fact that he belonged possibly to Karṇāṭaka, which in the days of Nṛpatuṅga, extended from the Kāverī to the Godāvarī ; and lastly many prominent saints like Kumārasena were specially attracted to Kopāṇa in their last days, so it is likely that our author also came there for his Sallekhanāmaraṇa.

From the above references we can get some glimpses of Jatā-Siṁhanandi's personality as it impressed the later minds. Jatā-Siṁhanandi belonged possibly to Karṇāṭaka. He was endowed with the genius of a poet, and was 'a courageous monk of perfect religious conduct.' His was an 'outstanding personality of great reputation.' As expected of a Jaina monk, he wandered over different parts of the country and preached

1. C. R. KRISHNAMANA CHARLU : *The Kannada Inscriptions of Kopbāl*. Hyderabad Archaeological Series No. 12, Hyderabad 1935. The photograph of the Inscription is reproduced elsewhere in this volume with the kind permission of the Director of Archaeology, Nizam's Government (his letter No. 1399, Dated 22-4-1937).

2. See my note on this word in the *Annals of the B. O. R. I.* Vol. XIV p. 264.

religious doctrines amongst 'princes and peasants.' Almost uniformly he is styled as an Ācārya, i.e., the Preceptor who admits and initiates the novices in the ascetic order. His status of an Ācārya would indicate that he lived a fruitful religious life and passed away, possibly at a ripe age, by observing Salle-khanā at Kopaṇa which was considered to be a holy place, and by his remains he added further to its religious sanctity.

5. HIS DATE AND OTHER WORKS

In the light of the references noted above it is not in any way difficult to put a later limit to the age of Jaṭā-Simha-nandi. Dates of the authors who refer to him are pretty definite. Noting them chronologically, Mahābalakavi (A.D. 1254), Kamalabhava (*c.* A.D. 1235), Guṇavarma (*c.* A.D. 1230), Janna (A.D. 1209), Pārvapāṇḍita (A.D. 1205) and Nayasena (A.D. 1120) mention his name. In the 11th century Dhavala refers to Jaṭila as well as to his *Varāṅgacarita*. In the 10th century Cāmuṇḍarāya refers to him and draws a quotation from his work; and forty years earlier than that, *Ādipurāṇa* of Pampa refers to Jaṭācārya. In the 9th century Jinasena II praises the poetic flash of Jaṭācārya in his *Ādipurāṇa* which was begun about A.D. 838. In the 8th century Jinasena I refers to *Varāṅgacarita* in his *Harivaiśapurāṇa* that was completed in A.D. 783; and just five years earlier than that, in A.D. 778, Uddyotanasūri refers to Jaṭila and also to his *Varāṅgacarita*. From these facts it is quite certain that Jaṭā-Simha-nandi must have flourished earlier than A.D. 778. Thus at the beginning of the last quarter of the 8th century A.D. *Varāṅgacarita* was a famous work both in the South and the North and both among Śvetāmbara and Digambara writers. To account

for this wide circulation of this work and his fame, we shall have to allow some period between Jaṭila and Uddyotana in view of the travelling and transit conditions of early medieval India.

It is to be highly regretted that Jaṭila does not refer to any earlier author or work ; in fact we get no definite clue from this work which would put an earlier limit to his age. The entire range of Jaina dogmatics was stereotyped much earlier, and there has not been much advance in later days by way of evolution in the principles etc. Many of the earlier texts are lost beyond recovery. Under such circumstances one has to be extremely cautious in drawing chronological conclusions based on similar passages dealing with dogmatical details. However a few indications may be noted here :

i) The dogmatical sections, viewed as a whole, immediately remind us of *Tattvārthasūtra* of Umāsvāti. It is quite likely that a preacher like Jaṭila would freely draw upon a standard work like *T.-sūtra* and expose the contents in his work. The comparison, which I have drawn below, leaves the impression that *Varāngacarita* presupposes *Tattvārthasūtra*.

ii) *Varāngacarita* xxvi. 82-83 closely resemble and remind me of *Svayambhū-stotra*¹ of Samantabhadra Nos. 102-3.

iii) It may be noted that *Varāngacarita* xxvi. 99 reminds me of *Āvaśyaka-niryukti* I. 22.² The idea expressed in this verse is quite popular and current. So one should not insist on direct borrowing.

iv) From the following comparison it is quite plain that Jaṭila is closely following some important discussions so nicely

1. Sanātana Jaina Granthamālā Vol. I, Bombay 1905.

2. *Sanmatiprakaraṇam* (Gujarāta-Purātattva-Mandira, Ahmedabad Saṁvat 1987) p. 756. The idea contained in this verse is quite popular. Śrutasāgara in his Sanskrit commentary of *Ṣaṭ-Prābhṛta* (Māṇikachandra D. J. G., Bombay Saṁvat 1977) quotes two such verses on pp. 25-6.

set forth by Siddhasena in his *Sanmati-prakaraṇa* (Ahmedabad Samvat 1987). *Varāṅgacarita* xxvi. 52, 53, 54-55, 57-58, 60, 61-63, 64-65, 69, 70-71 and 72 may be respectively compared with *Sanmati*. i. 6, i. 9, i. 11-2, i. 17-8, i. 21, i. 22-5, i. 51-52, iii. 47, iii. 54-55, iii. 53. Siddhasena's *Sanmati-prakaraṇa* has wielded great influence on many later writers. Virasena and Jinasena freely quote from that work in *Dhavalā* and *Jayadhavalā* commentaries; and Jinasena has paid great compliments to Siddhasena's poetic talents at the beginning of his *Ādipurāṇa* (I. 39). It is not unlikely that Jaṭila also has drawn material from *Sanmati*. Parallels are so close and significant that there can be hardly any doubt that Jaṭila is following Siddhasena. The suggestion that Siddhasena might be indebted to Jaṭila has to be dismissed, for quite apparent reasons, without a second's thought.

v) The definition of Sāmāyika given in *Varāṅgacarita* xv. 122 is the one which is found in the Sanskrit *Sāmāyikapāṭha* which is quite popular in the Jaina community, but the author of which is not at all known. In some printed editions and in many MSS. it is found with *Daśabhakti*. Tradition attributes Pākrit Bhaktis to Kundakunda and Sanskrit ones to Pūjyapāda.¹ It is probable that Pūjyapāda may be the author of this verse, though it is not unlikely that a verse like this might be older still.²

The dates of the above authors are not finally settled. Samantabhadra can be assigned to c. 2nd century A.D. Relative chronology of Jaina authors gives us the impression that Umāsvāti preceded Samantabhadra. On the date of Siddhasena there is no agreement between different scholars: the

1. A. N. UPADHYE. *Pravacanasāra* Intro. p. 26.

2. *Varāṅgacarita* reads *samiyamah śubhabhāvanā* and *sāmāyikam vratam* for the usual *samyame śubhabhāvanā* and *sāmāyikavratam*.

latest period assigned to him is 7th century A.D.¹ though it is quite likely that he flourished a century or two earlier. As to the age of Pūjyapāda, he lived earlier than the last quarter of 5th century A.D. All these dates are such that they cannot put a definite earlier limit to the age of Jatila. It appears to me highly probable that Jatila's time cannot be put earlier than 7th century A.D. Taking both the limits into account I conclude, so far as the present material is concerned, that Jatāsimhanandi flourished at the close of the 7th century A.D.

On palæographic grounds the Kōppāla inscription,² which records the name of Jatāsimhanandī with whom I have already identified our author,³ its Editor opines, 'may be assigned to about 10th century A.D.' As it is put, it is a proposed conjecture without any attempt at proof. Dating by palæography is bound to be a matter of probability, and to make the results

1. *Pravacanasāra* Intro. p. 100 foot-note 4.

2. *The Kannada Inscriptions of Kopbāl* (Hyderabad Archaeological Series No. 12) by C. R. KRISHNAMA CHARLU is a well edited monograph with the necessary illustrations of Inscriptions etc. We earnestly request the Director of Archaeology, Nizam's Government, to bring to light other epigraphic records plenty of which, we are told, are scattered all over the Nizam's territory. In this monograph there are some minor errors which may be noted here in the interest of epigraphic studies. *sanyāsanā=nōntu mudipidar* in line 4 of the Inscription No. 2, on p. 7, appears to be translated as 'having vowed renunciation, completed (the *vrata*)' but it should be rendered as 'died or ended his life after accepting (the vow of) Sanyāsa (-marāṇa)'. Similar expressions are found in Śravan Bēlgōla Inscriptions (*E. C.* II, Nos. 8-9, 17-18, 20, 24-5 etc. of the Revised Ed. 1923). On p. 9 the Editor, it appears, takes Īnginimaraṇa as the name of a place, but it is not correct. Īnginimaraṇa or īngitamaraṇa is a variety of Sanyāsamaraṇa, and its characteristics are described in texts like *Bhagavati Ārādhana* of *Śivārya*. See also Sacred Books of the East, Vols. XXII & XLV, Jaina Sūtras Part i, p. 72, and part ii, p. 176.

3. See pp. 17-8 above.

definite one has to invoke the aid of other evidences. The inference from the characters of the record is not as definite—and this is all the more true in the case of Kannada characters—as the evidence which I have adduced above for the date of *Jaṭāśimhanandi*.¹ As a layman I think that the period of the inscription can be pushed back by a century or two ; *ca*, *cā*, *va*, *pa* etc. are quite similar to those in an inscription of A.D. 881 from the same locality ; *ja* shows some modernness, but other letters can go to a sufficiently early period ; I leave, however, this matter to expert epigraphists. If they find that the age of the Kōppala inscription cannot be taken to the 8th century A.D. on any account, then here is the alternative : either the author of *Varāṅgacarita* may not be identified with *Jaṭāśimghanandi* of the inscription, or the place was already famous as the spot of the Samādhi-maraṇa of *Jaṭāśimghanandi* and after some time a zealous house-holder commemorated the spot by carving the foot-prints and recorded that he carved them. The evidences about the age of *Varāṅgacarita* are so definite and the reasons to identify its author with *Jaṭāśimghanandi* of the inscription are so probable that I would be inclined to accept the second alternative. The wording of the inscription also is quite favourable, because it predominantly refers to the carving of the foot-prints. *Varāṅgacarita* is an amateur production, so *Jaṭila* might have composed it earlier in his life. The probability of the second alternative can be appreciated by supposing that *Jaṭila* died in ripe old age and the proposed date of the inscription can be pushed back by a century or two.

Besides *Varāṅgacarita* no other work of this author is discovered as yet. Enthusiastic handling of Sanskrit language,

1. *Jaṭāśimghanandi* of Kopbāl Inscription No. 6 should not be confused with *Śrī-Simhanandi* of No. 7 of the same place for the simple reason that the latter has not got the designation *Jaṭā*.

exhibition of learned discourses in and out of time and wide parade of dogmatical details perhaps indicate that *Varāṅgacarita* is an amateur production of the early career of Jaṭila when he had just finished his schooling and what he had studied in Jaina texts and other works was still fresh in his mind. It is not unlikely that Jaṭila, with his excellent grounding in Jaina dogmatics, might have composed some treatises discussing Jaina principles. This conjecture is occasioned by a quotation in *Amṛtāśili*¹ a didactic work attributed to one Yogīndra : the verse, which is plainly ascribed to Jaṭasimhanandi and which is not found in our *Varāṅgacarita*, runs thus :

जटासिंहनन्दाचार्यवृत्तम्-
तावक्तियाः प्रवर्तन्ते यावद् द्रैतस्य गोचरम् ।
अद्यये निष्कले प्राप्ते निष्क्रियस्य कुतः किया ॥

As long as this verse is not traced in any other work, we should proceed with the hypothesis that Yogīndra is quoting from some other work of Jaṭasimhanandi which has not come to light as yet.

6. VARĀNGACARITA : A CRITICAL STUDY

i) ANALYSIS OF THE CONTENTS

The work opens with a salutation to Arhat, his Dharma and his omniscient knowledge. Then follows a short discourse on the nature of Kathā-prabandha, the Teacher and the Pupil.

King Dharmasena of the Bhoja family was ruling in Utta-

1. Māṇikachandra D. J. Granthamālā Vol. 21, p. 98, verse No. 67.

mapura on the bank of Ramyātaṭa in the territory of Vinita. Guṇavatī, who was the prominent queen among his three hundred wives, gave birth to a son who was called Varāṅga (i). Dharmasena in consultation with his ministers married Varāṅga to ten princesses from great families (ii). Once Varadatta, the chief disciple of Ariṣṭa Nemi, came to Uttamapura ; and Dharmasena devotionally waited on him with all the members of the retinue. Varadatta delivered to the audience various religious sermons on the following topics : Dharma and Scripture (iii); Karma with its sub-divisions as the cause of Saṁsāra (iv) ; the World and its dimensions and the hellish existence (v) ; the sub-human birth (vi) ; the human world (vii-viii) ; the celestial grade of existence (ix) ; and Liberation (x). On an inquiry from Varāṅga, Varadatta explained Mithyātvā and Samyaktvā, and the prince accepted from him the Anuvratas (xi). Later on king Dharmasena appointed Varāṅga as the heir apparent to the throne which incident gave rise to jealousy in the minds of his step-mother Mṛgasenā and her son Suṣeṇa, who, in their plot, were promised assistance by the minister Subuddhi to procure the throne for Suṣeṇa after somehow getting rid of Varāṅga. Subuddhi appeared like a faithful minister, but he was always waiting for an opportunity to overthrow Varāṅga. Once he trained two horses, one in a proper way and the other in an inverse manner ; and arranged the exhibition of his training in such a way that Varāṅga mounted the inversely trained horse, was carried away into a dense forest, and was thrown off by that rash horse which fell in a well. Wandering like an ordinary man, Varāṅga faced manifold difficulties in the forest. He escaped from the jaws of a tiger with the aid of an elephant (xii). He could escape the grip of a crocodile with the divine help of a Yakṣī who taking the shape of a beautiful damsel tried to tempt him, but to her satisfaction he was firm in his vow of celibacy, i.e., fidelity to wedded life, which he had accept-

ed from the saint Varadatta. Then he was imprisoned by hunters, but soon he was released when he cured their Chief's son who was bitten by a serpent (xiii). Once by fighting successfully against Bhillas, he obliged Sāgarabuddhi, the leader of the caravan of merchants ; and with him he came to Lalitapura where he lived as Kaścidbhaṭa without disclosing his real name and identity. He stayed there like the son of Sāgarabuddhi and was soon installed as the Head of merchants (xiv). This unexpected loss of Varāṅga caused great sorrow to his father, mother and his wives, who, on hearing the religious discourses of a monk, began to spend their time piously (xv). Once again Kaścidbhaṭa made himself famous by giving a crushing defeat to the king of Mathuīā who, out of sheer greed and vanity, marched against the king of Lalitapura. (xvi-xvii). Varāṅga married the royal princess and got half of the kingdom. He was firm in his fidelity to married life despite the temptations of Manoramā whom he married later on (xix). Brother Suṣeṇa, who was looking after the kingdom of his father, proved very weak ; and his father had to invoke the aid of the king of Lalitapura. Varāṅga took this opportunity, gave a crushing defeat to Bakuleśvara who was marching against his father, and entered his paternal town to the joy of all (xx). He forgave all his offenders, and requested his father to allow him to conquer fresh territories and to establish a new kingdom in the construction of which he would have ample scope for his military exploits. He founded a new kingdom with the well-planned town of Ānartapura as its metropolis on the banks of river Sarasvatī. The old territory he divided amongst various people. He enjoyed varied pleasures in different seasons surrounded by his rich harem (xxi). In response to the question of his chief queen he described to her the duties of lay-followers ; and consequently a temple was built and the images of Jina were erected in a great religious pomp (xxii-xxiii). To silence the questions of his ministers, Varāṅga exposed the flaws

of heretical schools of philosophy and convinced them of the authority of Jina and his doctrines (xxiv-xxv). In order to enlighten the members of the audience, he delivered a lengthy discourse on Jaina dogmatics and mythology (xxvi-xxvii). A son Sugātra was born to him by his queen Anupamā. One day the sight of a falling star made him indifferent to the world and its temporary pleasures. He convinced Sāgarabud-dhi and his father that it was the time for him now to enter the ascetic order and perform penances for the attainment of liberation. They too were converted to his view and enlightened (xxviii). He gave a parting advice to prince Sugātra and entered the order of monks accompanied by his queen in the presence of Varadatta who gave them many an instruction. The prince Sugātra was put on the throne. The queens performed severe penances and reached higher worlds. Varāṅga conquered passions etc., gradually subdued the internal and external foes, and attained liberation after destroying all the Karman by meditation of a very high order (xxix-xxx).

ii) A DHARMA-KATHĀ WITH KĀVYĀ FEATURES

From the outline of the contents noted above it is plain that the threads of the story are not in any way intricate. It deals with the life of Varāṅga who belonged to the age of Neminātha and Kṛṣṇa. Jealousy of the step-mother, wanderings of the hero in the forest and the final restoration of the kingdom : these are some points in the story which remind the reader of Rāma's story.

In the colophons *Varāṅgacarita* is uniformly called a

dharma-kathā which, according to Haribhadra's definition,¹ is full of religious topics. Though the title *Mahākāvya* is never used by the author, we find here many of the conventional characteristics of a *Mahākāvya*.² The work is divided into Sargas or Cantos. It opens with a salutation to Ratnatraya consisting of Arhat, Dharma and Omniscience. The story belongs to Jaina tradition, Varāṅga, the hero, being a contemporary of Neminātha, the 22nd Tīrthakara. The author plainly tells us that the story illustrates the fruition of four-fold ends, viz., Dharma, Artha, Kāma and Mokṣa (i. 22, the Anuṣṭubh verse in the colophons and also xxix. 36). The hero possesses the necessary virtues. Among the descriptions required in a *Mahākāvya* we find here the descriptions of cities (i. 32-45, xxi. 32-49, xxiii. 48 ff.) seasonal pleasures (xxii. 9-20, xxiv. 4-9), sports and love festivities (ii. 89 ff., xix. 32-9, xxiv. 1-14), sentiment of love-in-separation (xix. 40-61), marriages (ii. 57-73, xix. 12-26), birth and rise of princes (xxviii. 1-13), state counsel (ii. 14-33, xvi. 49-74), embassy (xvi. 10 ff.), advance (xvii. 9-25), battle (xiv. 8 ff., xvii. 36-86, xviii. 1-110) and triumph (xviii. 110-30). Various classical metres are used in different cantos which are closed with stanzas composed in metres other than the one used throughout the canto. Very often the concluding verses of one canto suggest the theme of the next (iii. 63, iv. 114, viii. 69 ix. 62 etc.). Varāṅga is a hero possessed of great religious virtues. Like a true man of the world, he never fails to fulfil his duties as a prince, as a king etc. His virtues are tested in manifold adversities, physical and mental; and he overcomes them all like a noble man. His fight is twofold : external, against the enemies of this world ; and internal, against Karmic forces. And at last he is triumphant

1. *Samarāiccakahā* p. 2 (*Bibliotheca Indica* No. 169).

2. *Kāvyādārśa* i. 13-20.

in every respect. The number of cantos is thirty-one, though the convention needs that it should not exceed thirty. Though different sentiments find place in this composition, it is the atmosphere of renunciation that pervades the whole work.

iii) DOGMATICAL DETAILS IN VARĀNGACARITA

Aśvaghoṣa imports into his works many details about Buddhistic ethics and dogmatics; and in fact he makes no secret of the purpose which led to his adopting the Kāvya form. Liberation or Mokṣa is the highest aim, but this is not realised by many; so he wants to preach this truth in an attractive garb of a poem.¹ If it is so in the case of an artist like Aśvaghoṣa, we should not be surprised if a monk like Jaṭila makes his poem a regular platform for preaching the religious and didactic details. Many cantos have been solely devoted to such details, and this would be clear to the readers from the following analysis of the contents of such cantos:

Canto iv : Karman and its Primary and Secondary types 1-38 ; their maximum and minimum periods 39-41 ; the causes of bondage of different Karmas and their fruits 42-104 ; and the relation between Jīva and Karman etc. 105-14.

Canto v : Figuration and dimensions of the Universe with the three enveloping Winds 1-8 ; five states of existence 9 ; the hell and its regions with their dimensions and climatic conditions etc. 9-24 ; the sinners that go to hell 25-29 ; multifarious tortures in hells 30-101 ; the illustration of Kṣudra-

1. *Saundarananda*, XVIII. 64.

matsya 102-3 ; and the periods of life in different hells etc. 104-110.

Canto vi : Varieties of sub-human birth and the miseries therein 1-32 ; those that go to sub-human birth 33-37 ; figuration and the duration of life 38-44 ; and the families and Yonis therein 45-53.

Canto vii : Human birth in Bhogabhūmī 1-13 ; ten wish-fulfilling trees 14-23 ; those that go to Bhogabhūmī 24-27 ; Dāna, its varieties and fruits 28-54 ; and the physical characteristics and pleasures etc. in Bhogabhūmī 55-67.

Canto xiii : Human birth in Karmabhūmī 1-4 ; rarity of human birth dedicated to religious practices 5-27 ; description of the demeritorious and meritorious 28-59 ; and the nature of body and the need of religious life 60-69.

Canto ix : Heavenly beings and heavens 1-24 ; those that are destined to go to heaven 25-36 ; birth, physique, pleasures etc. of the gods 37-54 ; and their periods of life etc. 55-62.

Canto x : Dimensions and description of Liberation 1-10 ; those that are destined to go to liberation 11-28 ; special characteristics etc. of liberated souls 29-42 ; and the happiness of Siddhas which is developed after the destruction of Karmas 43-64.

Canto xxvi : Nature of the Substance with its six kinds 1-5 ; Jīva or Principle of life 6-13 ; Pudgala or matter 14-22 ; Dharma, Adharma, Ākāśa and Kāla 23-32 ; additional remarks on the substances 33-44 ; Pramāṇa and Naya 45-75 ; Anekāntavāda or Syādvāda 76-90 ; and the importance of Right Faith among the three Jewels 91-107.

Canto xxvii : Time, Numbers etc. 1-30 ; Sixty-three Kāraṇa

Mānuṣas 31-52 ; 16 Manus 32-6 ; 24 Tīrthakaras-37-39 ; 12 Cakravartins 40-41 ; 9 Vāsudevas and 9 Prativāsudevas 42-44 ; Contemporary Tīrthakaras of the Cakravartins 45-48 ; the height, period of life etc. of Tīrthakaras etc. 49-65 ; the previous celestial regions from which they came and were born as Tīrthakaras 66-70 ; and their fathers, mothers, donors, places of birth, family, colour, Gotra and the places of liberation 71-94.

These nine Cantos have no connection whatsoever with the main current of the story ; and the narration of the events is not going to suffer even if these cantos are omitted. There is no doubt that Jaṭila introduces these cantos merely to preach the details of Jaina dogmatics. These sections exhibit not only his religious zeal but also his extensive study of Jaina doctrines.

Varāṅgacarita is not a philosophical treatise but only a Purāṇic Kāvya, so all such discourses are intruders here. In some cases it is possible for us to detect the probable sources from which Jaṭila might have drawn his material. Many verses from *Varāṅgacarita* remind us of some of the Sūtras from *Tattvārthaśūtras* of Umāsvāti : *Va.āṅgacarita* iv. 2-9, 11, 15-23, 24-38, 39-41, 42, 43-44, 49-56, 57-58, 62-65 and 93-103 closely agree with *Tattvārthaśūtra* viii. 3-6, i. 15, i. 21-23, 29 viii. 7-13 (with *Sarvārthaśiddhi*), viii. 14-20, viii. 1, vi. 10, viii. 7, vi. 11-12, vi. 13-4, vi. 15-27 respectively. Similar parallels can be detected in other cantos as well. Some verses agree with the Gāthās of Kundakunda also. As shown above many verses from canto xxvi closely follow the gāthās from *Sāṃmatiprakāraṇa*.¹

Dogmatical details, usually ethical in character, are met with in different contexts of the story : Relation between Jīva-

1. See p. 21 above.

and Karman and the cause of misery and happiness iii. 38-63 ; Samyaktva and Mithyātva xi. 1-34 ; Suicide denounced xv. 63 ff.; Nature of Saṁsāra xv. 75-105 ; Dharma consisting of twelve vows and its fruit xv. 106-46 ; Duties of a house-holder and the importance of Jina-Pūjā and the construction of a temple xxii. 27-79 ; Twelvefold reflection and the nature of Saṁsāra xxviii. 31-56 ; Mahāvratas, their Bhāvanās, Samitis, Guptis and twelvefold reflection xxxi. 75-98. The introduction of such details testifies to the fact that Jaṭila is predominantly a religious teacher and preacher.

iv) POLEMIC DISCUSSIONS

In places more than one Jaṭila shows polemical tendencies : various doctrines of different schools are criticised, and in conclusion the doctrines of Jainism are upheld. The text, in such contexts, is much corrupt ; and to get at the correct interpretation one has to wait for better Ms. material. According to different theorists Puruṣa, Īśvara, Kāla, Karman, Daiva, Graha, Niyoga, Svabhāva, Niyata etc. are considered as the causes of the destruction, stability and origination of the world (xxiv. 17). Against these one-sided views Jaṭila drives his attack. Neither Daiva (? Niyoga) nor Deva can control the affairs of man. Oblations etc. are really eaten by the crow ; and how can a god, who is so much greedy about the sacrifice, fulfil the wishes of others (xxiv. 22-27) ? As there are so many irregularities and untimely occurrences in the affairs of the world, Kāla cannot be accepted as the controlling agency (*Ibid.* 28-30). It is a sheer self-deception to believe that Planets can do good or bad ; if they have such a power, how is it that they themselves suffer ? If they can do

good, how do we explain the facts that Rāma lost his wife, Rāvaṇa lost everything, Bali(n) was punished by Murāri, Kāmadeva was burnt by Piñakin, Maghavān was cursed by Gautama, Dharaṇīsuta (Graharājah) was bound down by Rāvaṇa, and that Sun and Moon are troubled by planets [apparently when their stars were good] (Ibid. 31-6). It is illogical to accept Īśvara as the ruler of the world (Ibid. 37). Svabhāva cannot govern everything, for the visible facts in this world do not warrant such a view (Ibid. 38-40). It is disastrous to accept Niyati as the cause (Ibid. 41). If Puruṣa were the cause, all pious acts would be fruitless (Ibid. 42-3). Śūnyavāda would reduce Vijñapti to negation, and then what wise man would remain there to uphold that view (Ibid. 44-5)? Further the views that everything is momentary or eternal do not stand to reason, because they are not self-consistent (Ibid. 46-7). The doctrine of Pratītyasiddhi too is not warranted (Ibid. 48-50). The view that all the souls are shaped by Parameṣṭhi is not tenable : whether he is all-pervading or occupies a finger, his position is not satisfactory (Ibid. 51-2). These views are not absolutely valid, but they are partial view-points. They become significant when they are evaluated according to and qualified by Anekānta (Ibid. 60-61). It is the Karman which is responsible for the ups and downs of Ātman in Saṁsāra (Ibid. 54 ff., 62 ff.).

In canto xxv Jaṭila wonders how a theist can defend the manifold Gotras, and attacks the distinction of Varṇa based on birth (1-11). Criticising the priests, he attacks the sacrificial Hirṇsā. Harm unto living beings is a great sin. That the victim sacrificed goes to heaven could have been accepted, only if the relatives of the priest were sacrificed instead. If Vedic sacrifice leads to heaven, one does not know who are to go to hell. The followers of Svayambhū (Vṛṣabha) have preached that three years old seeds should be offered as oblation.

A single false word led Vasu to the seventh hell, and it is such a man who is respected by Dvijas. Madhupingala went down to hell due to remunerative hankering (*nidāna*) ; therefore Vedas which have such associations do not deserve any respect at all. If king Krūra went to hell by offending a Vipra, how is it that these priests who are killing so many beasts in sacrifice, do not go to hell ? Happiness cannot result by inflicting pain on others (12-27). It is a degradation of Brāhmaṇhood that priests should go to the royal gates like beggars. Despite the alleged efficacy of their words and rituals, there are manifold mishaps and miseries in this world. Brāhmaṇhood does not depend on mere birth, but it depends on one's being endowed with knowledge, chastity and virtues. Through the strength of righteousness and penance Vyāsa, Vasiṣṭha, Kamaṭha, Kanṭha, Śakti, Udgama, Droṇa and Parāśara could attain Brāhmaṇhood (28-44). A touch of anything belonging to Śaṅkara is condemned, but Gaṅgā becomes pure by resting on his head. If the water of Gaṅgā has a purificatory effect, how is it that her son Bhīṣma suffered like that at the close of his life (45-50)? Great persons performed penance in certain places, and thereby those spots became holy : Kārtikeya performed his penance in Svāmigraha (?), Kumāri at the Southern point ; Bhāgirathi became holy due to Bhāgirathi and Kurukṣetra due to Kuru. Lakṣmī performed penance at Śrīparvata, Puṣkara at Śrīpuṣkara, Vṛṣabha at Kailāsa and Ariṣṭa Nemi at Ujjayanta (51-59). In conclusion, with a view to establish the Āptatva of Jina (86 ff) the author mentions certain objectionable acts and traits of gods like Rudra, Agni, Brahman, Viṣṇu, Indra, Kumāra and Buddha (76-85).

The attack on Kālavāda and other views (xxiv. 17 ff.), referred to above, reminds us of Śvetāśvataropaniṣad i. 2 and Sanmatiprakarana iii. 53. Aśvaghoṣa also refers to these heterodox opinions in his Saundarananda xvi. 17 and Buddha-

*carita*¹ ix. 46-7, 48-52 (Svabhāva), 53 (Íśvaravāda), also note xvi. 18-27 etc. Possibly the Anekāntavāda of Jainism is attacked by Aśvaghoṣa in *Buddhacarita* xvi. 24. Jatila, however, attacks Kṣaṇikavāda, Śūnyavāda and Pratītyasamutpāda of Buddhism, the last of which is explained and upheld by Aśvaghoṣa in *Buddhacarita* xvi. 28-43. The attack on non-Jaina deities breathes the same spirit as that expressed by Pātra-kesari in his Stotra.²

v) SOME DETAILS VIEWED IN CONTEMPORARY SOCIO-POLITICAL BACK-GROUND

As I understand the implication of his various statements, Jatilamuni holds before us a pretty prosperous picture of Jainism in the South. His attack on the heterodox schools of thought is quite vigorous (xxiv. 21-53). He denounces quite enthusiastically the various non-Jaina deities (xxv. 74-98), the sacerdotal religion of Vedas, priestly rituals (*Ibid.* 12-49, 60-70) and the Brāhmaṇic order of society (*Ibid.* 1-11). He taunts the priests how they are often turned away from the royal gates and their burning wrath has no effect whatsoever on the kings (*Ibid.* 30-33). He sketches the pictures of gorgeous Jaina temples in which images of precious stone are erected and

1. I have repeatedly used the model Eds. of *Saundarananda* and *Buddhacarita* Parts i & ii (Panjab University Publications) by Dr. E. H. JOHNSTON. His excellent introduction to *Buddhacarita*, part ii, which is a monument of deep and critical study, has been of much help to me in my study of *Varāngacarita*. All my references to the text of *Buddhacarita* are, however, to COWELL'S Ed. (Oxford 1893) unless otherwise stated.

2. Māṇikachandra D. J. G. Vol. 13, pp. 100-130.

Pūjās are conducted on a large scale with multifarious rituals (xvi 136 ff., xxii. 57 ff., xv. 139, xxiii. 17 ff.). The merit of building temples, erecting images and conducting Pūjās is highly glorified (xxii 46 ff.). We are told that scenes from Purāṇas are painted or carved on the walls of temples, and the picture-scrolls are also referred to (xxii. 61 ff., xxiii. 93). It is interesting to note that Jaṭila refers to royal gifts of villages and human services etc. to the temples (xxiii. 91).

The facts noted above are not without significance, if they are looked at in the light of what we know about Jainism in the South between A.D. 650 and 750 which dates roughly circumscribe the age of Jaṭilamuni who flourished in Karnāṭaka. This period corresponds with the rule of Chālukya dynasty of Bādāmi. By about A.D. 630 Pulikesi II, the conqueror of Harṣavardhana, was the most powerful king that had subjected many a neighbouring state.¹ He suffered defeat at the hands of the Pallava king Narasīṁhavarman of Kāñcī in A.D. 642 ; but his son Vikramāditya I inflicted a crushing defeat on the Pallavas and restored the fallen fortunes of his family in A.D. 655. The Pallava opposition was quieted very well by Vikramāditya II in A.D. 740. In this Chālukya period Jainism was very much patronised and it was gradually gaining influence. It was in A.D. 634 that Ravikirti, who had acquired the greatest favour of Pulikesi II, built the Meguṭi temple and recorded the erection of it in the famous Aiholē Inscription which has supplied definite later limit to the age of Kālidāsa and Bhāravi.² Some villages are granted to the temple at the close of the record. Grants to the Jaina community have been made by the later kings also.³

1. V. A. SMITH : *Early History of India* (3rd Ed). p. 452 ff ;
 L. RICE : *Mysore and Coorg* from Inscriptions, London 1909 ;
 C. HAYAVADAN RAO : *Mysore Gazetteer* Vol. II ; etc.

2. *Indian Antiquary* VIII for 1879, p. 237 ff.

3. *Studies in South Indian Jainism*, p. 111.

Kadambas of Banavāsi suffered a crushing defeat at the hands of the Chālukya king Pulikesi II ; and from A.D. 607 onwards there is a short blank period in the Kadamba history. Later on the territory of Banavāsi came under Ālūpa kings. Jainism enjoyed a good deal of patronage under Kadamba kings, especially Mrgeśavarman (A.D. 475-490) and others. "Moreover the state of Jaina temples, the ceremonies that were performed in them as mentioned in some inscriptions, and the liberal grants of the kings to meet the expenses of those ceremonies, show that Jainism was really a popular religion in the Kadamba empire and that there were many people who were worshippers of Jinendra".¹ Jainism was becoming a serious rival of Śaivism ; it 'grew unchecked during the supremacy of Kadambas' and 'received fresh stimulus in the time of Rāshtrakūṭas'.² We do not know the persuasion of Ālūpas, but as the Chālukyas were favourable to Jainism, the religion appears to have maintained its status which it had under the Kadambas even after their fall. At the close of the 7th century A.D. Gangas, who ruled at Gaṅgavāḍi, appear to have been subordinated by the Chālukyan king Vinayāditya. Gaṅga dynasty was founded under Jaina auspices, and 'Jainism was the state creed in the time of the Gaṅgas, of some of the Rāshtrakūṭas and Kalachūryas and of the Early Hoysalas'.³

Going Southwards, we have seen above how in this period Chālukyas and Pallavas were fighting. Pallava power was much weakened by the middle of the 8th century A.D. Under the Pallavas Kāñcī was a famous centre for the Jainas ; and the names of great authors like Samantabhadra (*c.* 2nd century A.D.) Akalaṅka (*c.* 7th century A.D.) and others

1. G. M. MORAES : *The Kadamba Kula*, p. 35.

2. *Ibidem* p. 252.

3. *Mysore and Coorg*, p. 203.

are associated with Kāñci. The site of Jinakāñcī (i.e., Tiruparuttikunrum) is far away from the present sites of Vishṇu and Śiva Kāñci ; and this possibly indicates that Jainism saw its better days on the soil of Conjeevaram long before Śaivas and Vaishṇavas came to power. It was in the days of Sundara Pāṇḍya that Jainism received a decided set-back which continued under the later Chōlas who were of Śaiva persuasion. Before this Chōla persecution, ‘Digambara Jainas and Jaina temples were numerous in both the Pallava realm (Dravida) and the Pāṇḍya kingdom (Malakūta)’, ‘when Hiuen Tsang, the Chinese Pilgrim, visited Southern India in A.D. 640.’¹

It is in this back-ground of contemporary South Indian history that we have to appreciate the statements of Jaṭila. Even to-day we come across many ancient Jaina temples, some of them converted and some of them in ruins. Jaṭila has rightly appealed to the popular zeal of temple-building. The idea of the images of precious stones is not a myth, but at Mūḍabidri, Humch etc., we actually see such images carved out of precious stones imported into India from across the seas. ‘Idol worship and temple building on a grand scale in South India have also to be attributed to Jaina influence’.² The royal patronage gave Jainas an opportunity for vigorous and propagandistic attack on the tenets of non-Jainas. Many ruling kings gave lands and villages to Jaina temples, and Jaṭila refers to the gift of 108 villages which may be an exaggeration of the contemporary practice. We have got grants recorded on stone and copper-plates, from Kadamba, Chālukya and other kings. As referred to by Jaṭila we find the tendency of carving pictures on the walls as seen in the temples at Mūḍabidri and Halebid, and we find wall-paintings in the temple of Tiruparuttikunram or Jinakāñcī : of

1. *Early History of India*, pp. 453-4.

2. *Studies in South Indian Jainism*, p. 77.

course some of them are of much later date. At any rate they indicate the practice. The carvings on the outward walls of the temples of Bejür and Halearbidi, or the wall-paintings in the Mīnākṣī temple of Madura or the wooden carvings (representing the scenes from *Rāmāyaṇa*) in the temple of Padmanābhapuram in Travancore show that the practice of representing the Purāṇic scenes in stone, colour or wood was not special to Jainas but was common to South Indian temple art.

vi) AŚVAGHOṢA AND JAṬILA

Among the luminaries of Classical Sanskrit like Aśvaghoṣa, Kālidāsa and Bhāravi, it is by Aśvaghoṣa that Jaṭila is much influenced. A comparison of *Varāṅgacarita* with *Saundara-nanda* and *Buddhacarita* shows many a common point. Aśvaghoṣa as a Buddhist and Jaṭila as a Jaina have much in common. Both of them introduce that ascetic outlook on life. Aśvaghoṣa has the philosophy and ethics of Buddhism in the back-ground, while Jaṭila has those of Jainism : the former freely uses various technical terms of Buddhism and the latter those of Jainism. Denunciation of body, advantages of human birth, hollowness of worldly pleasures, relation between Dharma, Artha etc. and other topics are discussed from nearly the same point of view by both the authors. Both of them have a tendency of giving illustrations, possibly with a satirical touch, from Brahmanical mythology (*Saundara*. vii. 25, *Varāṅga*. xxv. 78 ff.). We have seen above how the attack against certain heretical schools is common to both.¹ In

1. See pp. 34-5 above.

Saundara. xiv we get the routine of life prescribed for a Buddhist monk, similarly the two concluding cantos of *Varāṅga-ca*. give a good many details of Jaina asceticism. Buddhist Nirvāṇa is explained in *Sn.* xvi, while canto x of *Vc.* is devoted to the description of Jaina conception of Mokṣa. The descriptions of hellish¹ and sub-human tortures are almost alike (*Bc.* xiv. 10 ff., 22 ff. and *Vc.* cantos v & vi). There are many common ideas almost similarly expressed (*Sn.* iv. 9 and 11 & *Vc.* xix. 37 ; *Sn.* xvi. 51 & 66 and *Vc.* xxiv. 55-6 ; *Bc.* ii. 23 & *Vc.* xxviii. 9 ; *Bc.* v. 37 & ix 41 and *Vc.* xxix. 17-19 ; *Bc.* viii. 76 & *Vc.* xv. 47 ; *Bc.* ix, 45 & *Vc.* xxix 59 ff. etc.). Aśvaghoṣa uses the simile of the rising sun on the eastern mount twice (*Bc.* ii. 20, x. 15); Jaṭila introduces the Eastern mountain in his similes at least four times (*Vc.* ii. 69, iii, 35, xvii. 12 & xxiii. 45); and once the simile is worded alike by both (*Bc.* x. 15 & *Vc.* xvii. 12). Aśvaghoṣa has that famous scene where young ladies are witnessing from the lattices the procession in the street (*Bc.* iii. 19); Kālidāsa has a similar situation with more details better finished (*Raghuvamśa* vii. 11); and I think that Jaṭila, in sketching a similar scene (*Vc.* xviii. 118), perhaps shows acquaintance with Kālidāsa's verse. Though verse No. 118 is not a quite successful imitation of its predecessors, verse No. 119, of which I have not come across any counterpart in *Bc.*, is worthy of an artist. In Aśvaghoṣa's story Buddha goes out on the Kanthaka horse, while Varāṅga is carried away by an ill-trained horse. *Varāṅgacarita* has some grammatical peculiarities common with the works of Aśvaghoṣa as noted below. And lastly the title of our work reminds us of *Buddhacarita*.² All these

1. Such descriptions are found in Jaina texts even earlier than Aśvaghoṣa. Some of them may have been common to Jainism and Buddhism. It is the tendency of introducing such details, which characterises both Aśvaghoṣa and Jaṭila, that may be noted.

2. I am aware of the fact, however, that there is an earlier

points taken together give us the impression that Jatila had possibly studied the works of Aśvaghoṣa, whose compositions, in view of the flourishing condition of Buddhism in the South as described by Hiuen Tsang in A.D. 641, might have been available in Southern India, though the MSS. of *Buddhacarita* and *Saundarananda* known to us belong to Northern India. I have not been able to detect any striking similarities between the works of Kālidāsa and Bhāravī and *Varāṅgacarita*.

vii) VARĀṄGACARITA AND LATER JAINA AUTHORS

So far as our knowledge of Jaina literature goes, *Varāṅgacarita* is one of the earliest Jaina poems in Sanskrit written in a semi-epic and semi-kāvya style. *Padmacarita* of Raviṣeṇa was completed in A.D. 677; perhaps this is the only work which may claim priority, though this point is not yet definitely decided over *Varāṅgacarita* so far as Jaina epic poems in Sanskrit are concerned. There are many Jaina Purāṇas and Kāvyas in Sanskrit later than *Varāṅgacarita*; but I have not been able to detect Jatila's influence on later authors to any appreciable extent. It is a matter of surprise that Jatila is not mentioned by Vādirāja who pays respect to many early authors in his *Pārśvanāṭhacarita* composed in Śaka 947 (+ 78=A.D. 1025).¹ If the scarcity of MSS. is a good indication, we may suppose that *Varāṅgacarita* did not get much circulation actually, even though the fame of Jatila had spread beyond the bounds of Karnāṭaka. Jinasena, whose reference to Jatācārya we have already noted above, has drawn upon

Jaina epic *Paūmacariū* of Vimalasūri. Whether *Padmacarita* of Raviṣeṇa is earlier or later than *Varāṅgacarita* is still to be decided.

1. Māṇikachandra D. J. Granthamālā vol. 4.

Varāngacarita for a good deal of technical matter which he has produced in his words in *Ādipurāṇa* (c. A.D. 838).¹ For instance compare *Vc.* i. 6-7 with *Ādi.* i. 122-24; *Vc.* i. 10-11 with *Ādi.* i. 127-30; *Vc.* i. 15 with *Ādi.* i. 139; *Vc.* i. 16 & 14 with *Ādi.* i. 143-44. Cāmuṇḍarāya, we have seen above, has taken some material from *Varāngacarita*. Somadeva (A.D. 959) in his *Yaśastilakacampū* (Āsvāsa vii, p. 332)² quotes a verse with the phrase *bhavati cātra ślokah*, and it is the same as *Varāngacarita* v. 103.

viii) GRAMMATICAL PECULIARITIES OF VARĀNGACARITA

The Ms. material at our disposal is limited, the textual tradition of the poem is unsatisfactory, and now and then we come across plain errors of the copyists. Under these circumstances it is rather premature to note the grammatical peculiarities of *Varāngacarita*. Individual occurrences of striking usages cannot be taken into account, if they are not warranted by metre. Leaving full margin for scribal errors etc. I would note only a few salient points here, which, I hope, would be interesting to a student of Sanskrit grammar.

Varāngacarita is full of Jaina technical terms many of which with their different shades of significance are not noted in the Sanskrit Dictionaries. The meanings of such words, however, can be ascertained by referring to standard works on Jaina dogmatics and terminology.³ Some peculiar words

1. See the footnote No. 1, on p. 12 above.

2. Ed. Nirṇayasāgara Press, Bombay 1903.

3. *Tattvārthaśūtra* with various commentaries, also *Eine Jaina Dogmatik* by H. JACOBI in the Zeitschrift der Deutschen Morgenländischen Gesellschaft, 1906; *Dravyasamgraha*, *Pravacanasāra* etc.

which our author uses are : *goṇa* vi. 15 'an ox', a word of Prākrit origin, so also *phulla* ii. 73, *bhindā* xii. 85 and *tumba* xxxi. 32. The word *maithuna* xx. 75 & xxv. 6, which reminds us of Kannada *maiduna* and Marāṭhī *mehuṇā* is unknown to classical Sanskrit in this sense; and *barkara* xxvii. 17 'a goat' is also rare. *addhā* xiv. 95 'time' is quite usual in Jaina Prākrit texts. *tiraśca* for *tiryag* xxiv. 66 reminds us of Prākrit *tiriccha* or *tiraccha*. The author uses *sāmpadā* also for *sāmpad*; see xx. 65, 79 and especially xxv. 40. Words like *maḍamba*, *kheda* etc. iii. 4 often show a Prākritic spelling. *kṛidakṛtam* xxx. 57 is a strange Sanskritisation of *kīyagadām* = *kṛitakṛtam*. So most of the above words are either Prākritisms or back-formations. *sādana* for *sadana* xxi. 15, *mṛdvika* for *mṛdvikā* xxii. 72 and *āvahitā* for *avahitā* xxvii. 1 are irregularities perhaps due to metre.

There are some words which attract our attention with regard to their genders : *geha* M., i. 25, xxi. 38, xxii. 66, 73 ; *kroḍhotthāna* M., iv. 68, *jāla* M. vi. 52 ; *vṛttānta* N., xv. 1 ; *akṣata* N., xxii. 64. There are other cases like *bhūṣaṇa* M., xiii. 66 ; *cūrṇa* M., xxiii. 30 ; *cakra* M. xviii. 55 which either agree with the epic usage or are archaisms. *prāṇa* xxix. 3 is used in the singular. The superlative *tama* is suffixed to substantives : *vaṇiktama* ii. 13, *bandhutama* xix. 4 & xx. 37, *arthatama* xxix. 62 ; and once the phrase *taratama* is used like an adjective iv. 114.

Once we have *Balinah* xxiv. 33 Gen. Sg. from Bali ; either the author takes Balin (usually Bali) as the name or it is a back-formation from Prākrit. We get the form *svasārah* xx. 90 for *svasṛ̥h* Acc. pl. *Kratāntah* is used for Voc. Sg. xv. 47 ;

Among the reference books the following may be noted : *Jaina Gem Dictionary* (Arrah 1918), *Abhidhāna-Rājendra* (in Sanskrit) in seven Vols. (Ratlam), *Ardha-māgadhī Dictionary* in four Vols. (Indore), *Bṛhat Jaina Śabdārnava* in Hindi in two Vols. (Surat). etc.

Once *gatiṣu* for *gatiṣu* xxiv. 54 ; we get epic parallels for this, but here it is perhaps due to metre.

Many nouns and adjectives are used with the abstractive sense, even though the necessary abstractive suffix or change is absent. *adr̥syarūpa* for *adr̥syarūpatva* xiv. 20, *gādha* for *gādhatva* xx. 24, *utsuka* for *utsukatva* xx. 76, *nirāśraya* for *nirāśrayatva* xxi. 63, *ananyakīrti* for *-kīrtitva* xxii. 31, *nirmala* for *nirmālyā* xxv. 45, *malīmasa* for *malīmasatva* xxix. 98. On the other hand we have also *vicikitsatā* for *vicikitsā* xxxi 69, *śaraṇyatā* for *śaraṇā* xiii. 15, *saṁvāhanatā* for *saṁvāhanana* xiii. 87, *sukha-duḥkhātmaka* for *sukhaduḥkha* xxiv. 30. Then we have a form *ārogyatā* viii. 53, xxiii. 20, which is doubly abstract.

It passes one's understanding why sometimes the author prefers the strong grade of the feminine form of the possessive suffix *vat* as in *garvavantyāḥ*, *viśuddhavantyāḥ* i. 59, *śrutavantyāḥ* xv. 34, *cetanāvantyāḥ* xv. 37, *dhairyavantyāḥ* xxviii. 105. If these are not scribal errors, they appear to be contaminated by Prākrit usage. All these cases can be corrected without spoiling the metre.

Our text abounds in various verbal forms some of which deserve our special attention. The Padas, Parasmaipada or Ātmanepada, may be noted in the following forms. *bhartṣayanti* v. 94, also note xviii. 41, 44, 76 ; *ādaduh* xiv. 59 and *ādadāti* xxiv. 58 ; *mṛgayāmi* xv. 134 ; *prasavanti* xxiv. 29 ; [vi]kṣarete xxiv. 57. Then forms like *lapate* iv. 83, *jihesuh* xvii. 39, *kampat* xxix. 13 etc. agree more with the epic usage than with the classical one.

The author shows a decided inclination towards the use of Perfect, though the forms of the Imperfect and Aorist are also used. Perfect is used even for narrating contemporary events (ii. 11), and once it appears to be used even for the first person (xvi. 24). In canto iii. verses 19-25, the author has as if a regular exercise for the practice of forming desider-

atives for which he shows his fondness like Aśvaghoṣa. It is a regular habit with him to separate the verb of the perfect from its auxiliary by some intervening word, see for instance ii. 50 ; xi. 61-2, 85 ; xiii. 20 ; xiv. 16 ; xviii. 56 ; xix. 7, 19 ; xxii. 3, 26 ; xxiii. 3, 8, 17, 71 ; xxviii. 79 ; xxix. 25 ; xxx. 67. At xxiii 17 the verb has a preposition in addition. Aśvaghoṣa has some instances of this separation (*Buddharcarita* ii. 19, vi. 58 and vii. 9) ; and this practice is sanctioned by Kālidāsa (*Raghuvamśa* ix. 61 and xiii. 36). Pretty frequently āśa is independently used as in the Epics, for instance i. 46, xx. 54, xxi. 33, xxx. 27. There is one clear case of double preposition *upopaviṣṭa* ii. 14, xxiii. 73 ; and *adhyadhisṭhita* in xxi. 69 may be included in the same category. *Upopaviṣṭa* is used by Aśvaghoṣa and it is found in *Rāmāyaṇa* also as I have pointed out in the Notes.

The author, it appears, has used many irregular forms : *karavāmahe* for *karavāmahai* xxviii. 84; [*sasṛjuḥ*] for *sasṛjuḥ* ii. 35, *saṁnidadhuyuḥ* for *saṁnidadhuh* x. 63, *jaghnitha* for *jaghnitha* xiv. 51, *juhuḥ* for *juhuvuḥ* xxv. 15, *mamarduh* for *mamṛduḥ* xxx. 21 ; *cicītsavah* for *cicetiṣavah* iii. 21, *siśāṁsa-vah* for *śiśamiṣavah* iii. 23 ; *samaśnutāṁ* for *samaśnuvānā-nāṁ* or *samaśnuvatāṁ* iv. 114 & v. 95 ; *saṁvibhājītum* either for *saṁvibhājayitum* or *saṁvibhaktum* xxi. 58 ; *susādhayitvā* for *susādhyā* xxxi. 82 and also note *avigāṇya* for *avigaṇayya* xviii. 2, *rantvā* for *ratvā* xv. 128, xxii. 20 ; *parimanthyā* for *parimathyā* xxiv. 56 and *ācakṣitam* for the usual *ākhyātām* xix. 73 are rather rare usages. The author shows a tendency, quite normal according to the epic usages, of having a strong grade for the feminine base of the present participle : *bruvantyah* v. 61, *rudantyah* xv. 36, 39 & xix. 44. The form *rudantī* is used by Aśvaghoṣa (*Scandarananda* vi. 6, 35 and *Buddharcarita* ix. 26 JOHNSTON'S Ed.)

Now and then we find that the causal form is used to de-

note the primitive sense : *parīpsayin্যah* i. 59, *atiśāyayanti* i. 27 *vighātayanti* iv. 30, *todayanti* v. 52, *cūṣayanti* v. 85 *samślāghayantaḥ* viii. 34, *bhikṣayanti* viii. 28, *parīkṣayanti* x. 11, *pratīvarṣayantau* xiv. 12, *samupāsayantah* xxii. 42, also *nirañjitanām* xxxi. 41 ; and sometimes the primitive is used with causal sense : *hṛtvā* viii. 22, *vyābhāsamānāḥ* ix. 38 and *śamitum* xxix. 8.

We find that *ut-khan* is used in the sense of *ni-khan* v. 48 ; and *gai* or *ni-gai* is used in the sense of speaking, see for instance xvi. 57, xx. 42, 80, 83, and xii. 11. Quite ingeniously the author uses *niśāmya* and *niśamya* (ii. 37) with their different shades of meaning. The roots *nṛt* (xiv. 4) and *vac* (ii. 9 & xxii. 53) are transitively used with the cognate accusative ; while some gerunds are standing intransitively, for instance *anubhūya* i. 60, *adhiruhya* v. 83, *nighṛṣya* xiii. 1. *Āsva bhavān* is used for *āstām bhavān* at xx. 31.

In many places the conjunctive *ca* is not rightly placed, see for instance ii. 2, iii. 36, 47, x. 35, xiv. 57, xviii. 73, xxi. 9, xxiii. 47 etc. Sometimes *ca* or *hi* stands at the beginning of a pāda x. 35, xxvii. 56 and xxviii. 37. At times both *evam* and *ittham* (ii. 48, xx. 21) and both *yadi* and *cet* (xvi. 68, xix. 80, xx. 25, xxiv. 22, 28) are used. The archaic *amā* for *saha* is quite a favourite with the author (ii. 57, viii. 44, xxiii. 6, xxviii. 98, xxx. 34). He shows a tendency of using the pronominal forms of *tad* etc. at times without any definite purpose and at times like a definite article in English, see for instance i. 4, viii. 36, xi. 65, 72, 75, etc., etc. Often *sāhva* is used for *āhva* or *upāhva* viii. 1, xx. 27. Now and then *ka* stands like a *svārthe* suffix xi. 25, xxiii. 30.

The author is in the regular habit of using Sāpekṣa compounds which may be tolerated as the sense is not much obscured. We have many of them scattered all over the text, see for instance i. 39, 46, 53, 69 ; ii. 1 etc. Pāṇini's rule

ānañ rto dvandve is often violated, see for instance i. 59, xx. 5, xxi. 8, xxviii. 60, xxxi. 4 and also my notes thereon. Quite freely the author puts the possessive suffixes to Karma-dhāraya compounds, see for instance iii. 58, iv. 95, ix. 45, xiii. 25 etc. In some cases he does not use Samāhāra as required by classical convention: *hastyśva-yānāni* iii. 30, *padāti-hastyāśva-rathaiḥ* xvi. 31. We may also note forms *savai-jayantyah* for *savaijayantikāḥ* xviii. 18 and *-netroḥ* for *-netṛ-kayoḥ* etc. xviii. 83. About the sequence of words in a compound expression the author is liable to a good deal of laxity, and in this respect he can be compared with his colleagues in Prākrit literature. Some of the important deviations I have noted in the Notes ; see for instance viii. 18, 40 ; ix. 24 ; xi. 33; xii. 72 ; xiii. 1, 31 ; xvi. 31, xvii. 51 ; xxiii. 26, 56 ; xxiv 49 ; xxx. 3 ; xxxi. 73 etc.

The ordinary rules of Saṃdhi are uniformly observed. But between the Pādas *a* & *b* and *c* & *d* the author, it appears, does not accept that Saṃdhi is compulsory. We find many such cases which are recorded in the Notes. There are a few cases where hiatus is allowed even in the body of a Pāda viii. 39a, xiv. 78d. xvi. 81a. There are two illustrations of abnormal Saṃdhi : *sukṣetre+ajñāḥ=sukṣetrayajñāḥ* xxviii. 42 and *grāme+ekarātram=grāmaikarātram* xxx. 45.

In xvii. 32 *nṛpātmajā* Nom. sg. stands for *nṛpātmajayā* Inst. sg. The classical usage requires that the causals of the roots *ad* and *khād* should govern Inst. ; but here we find that the Acc. is used instead v. 49, 57. The root *hṛ* with *pra* governs Acc. see for instance xiv. 31, xvii. 44, 61, xviii. 70. In i. 8-9 the author has illustrated the use of *vinā* with Abl., Acc. and Inst. Instrumental is used for Acc. in xxiii. 101 where we usually want *vara-cūrṇa-vāsān* etc. As in the epic usage, *apeta* governs Inst. viii. 34, vi. 51, xvi. 50. If the reading is correct, it is a novel usage that Dative is used to convey

the sense of 'instead of' : *Kāścidbhāṭāya śriyameṣa bhuṅkte* 'he enjoys glory instead of K.' xviii. 126. Then Gen. is used for Inst. xxxi. 86, and for Abl. which is necessary for comparison xvi. 60. Lastly Loc. *tasmin* is used for Acc. xiii. 63.

The usage of *samāna-kartṛkalva* appears to be violated in the use of Gerund vi. 53 ; also note xv. 126 which needs some emendation as suggested in the Notes.

Among the numerals used by the author the following ordinals in the colophons of those cantos specially attract our attention : *ekādaśama*, *dvādaśama*, *trayodaśama*, *saptadaśama*, *ekonatrimśatitama*, *trimśatitama* and *ekatrimśatitama*. Also note *caturdaśāni* for *caturdaśa* xxx. 4. Some such forms like *ekādaśama*, *asṭādaśama* and *ṣaṣṭama* are found in one Ms. of *Saundarananda* collated by Dr. JOHNSTON for the edition of that work¹.

Some of the specialities of Jaṭila are the normal usages of the epics ; and now and then they are common to Aśvaghoṣa and Jaṭila. I do not claim that I have exhausted all the peculiarities. Some space is devoted to them, along with the emendations of certain corrupt passages, in the Notes at the end. A thorough and statistical study with a better text would reveal many more interesting points. Then alone it would be possible for us to discriminate between archaisms, special features representing a distinct grammatical tradition, writer's irregularities and scribal slips.

ix) METERS IN VARĀṄGACARITA

We may enumerate here the various metres used in *Varāṅgacarita*. In view of the bad text-tradition, there are many

1. See *Saundarananda* pp. 82, 142 & 42 in the Variants.

defective lines and metrical irregularities. Some of them can be emended as shown in the Notes.

Anuṣṭubh (469) : iv. 1-112, v. 1-108, xv. 1-144 and xxvi. 1-105.

One anuṣṭubh verse forms a part of the colophon and it is repeated at the close of all the cantos. The Anuṣṭubh of Jaṭila does not reach the polish attained in the classical stage. When events are being narrated, the verses are normally regular. But whenever dogmatical enumerations etc. are set forth, they read like prose cut into lines. There are some pādas containing nine syllables iv. 7c, 14c, 109a ; xv. 104b ; xxvi, 6a, 54b : excepting one all of them are enumerative in character ; some pādas are metrically defective iv. 6d, 22c, 29a etc. ; and in one place we find a flaw of *yatibhaṅga* between c & d iv. 31.

Upajāti (1879), a combination of the stanzas of lines of Indravajrā and Upendravajrā with complete Indravajrās and Upendravajrās here and there : ii. 1-93, iii. 1-61, vi. 1-53, vii. 1-65, viii. 1-67, ix. 1-60, x. 1-62, xi. 1-85, xii. 1-84, xiv. 1-96, xvi. 1-109, xvii. 1-84, xviii. 1-128, xix. 1-77, xxii. 1-77, xxiii. 1-103, xxv. 1-96, xxvii. 1-92, xxviii. 1-106, xxix. 1-95, xxx. 1-73 and xxxi. 1-113. Sometimes there is a hiatus in the body of a line viii. 39a, xiv. 78d, xvi. 81a. In an Upajāti verse there is a Varmāsthā foot xiv. 24d. The last vowel in the word *upaiti* in xvi. 30d followed by *vyaktim* becomes prosodially long against metre. At xxii. 50d *tu* becomes long against metre. At xxvii. 15a one syllable is in excess.

Drutavilambita (89) : xx. 1-89.

Puṣpitāgrā (24) : i. 69-70, iv. 113-4, vii. 66-7, xi. 86-7, xiv. 97-98, xvii. 85-6, xxiv. 76-77, xxv. 97-8, xxvii. 93-4, xxviii. 107-8 and xxix. 96-9. It may be noted that xvii. 85d is short by one syllable.

Praharṣinī (20) : ii. 94-5, v. 109-10, ix. 61-62, xii. 85-88, xv. 145-46, xviii. 129-30 (see the Notes), xxii. 78-9, xxx. 74-5, xxxi. 114-15 (see the Notes).

Bhujaṅgaprayāta (10) : vi. 54-5, x. 63-4, xiii. 88-9 and xxiii. 104-7.

Mālabhāriṇī (77)¹ viii. 68-69 (see the Notes), xxiv. 1-75. Canto xxiv is a chapter of philosophical contents which are often obscure, and the text too is not well preserved. There are many lines which are wanting in some syllables, while some have syllables more than necessary. All these irregularities are noted in the Notes and some emendations too are suggested.

Mālinī (12) : iii. 62-3, xvi. 110-111, xix. 78-81, xx. 90-91 and xxi. 79-80.

Vasantatilakā (70) : i. 1-68 and xxvi. 106-7.

Vamśastha (165) : xiii. 1-87, xxi. 1-78. In two places we have Indravamśā pādas in a Vamśastha verse, see xiii. 56c and xxi. 20a.

From the above analysis it is plain that the favourite metre of the author is Upajāti as in the case of Aśvaghoṣa. As remarked above he does not mind hiatus between *a* & *b* and *c* & *d* of a verse. Often the last syllable of a pāda, though grammatically short, is treated as long for metrical purposes. Sometimes hiatus is allowed in the body of a line. At xxiv. 28c a short vowel followed by *kṛ* is taken as a long vowel.

1. Though *Buddhacarita* v. 1-78 are in Mālabhāriṇī metre, Dr. JOHNSTON calls them Aupacchandasika. Is it that he treats Mālabhāriṇī as a stereotyped variety of Aupacchandasika?

x) STYLE OF VARĀNGACARITA

For two reasons it is difficult to evaluate the style of *Varāngacarita* with justice : first, the text-tradition is bad and one is faced with many corrupt passages, and secondly the contents are varied in character, major portion of the work being devoted to dogmatical details and polemic discussions. We miss here the delicate ideas, exquisite comparisons, subtle polish and smooth handling of Sanskrit language which characterise Kālidāsa. In moral earnestness and religious zeal Jatila can be favourably compared with Aśvaghoṣa. Dogmatical details have marred the poetic effect of the work. The first canto is dignified in its flow, but this tone is not maintained throughout. In narrating the events Jatila is quite vigorous, and in moral discourses specially at home In some places the author, like a good student, observes the special rules of grammar,¹ while we come across many lapses elsewhere. Thus as the text stands, it leaves the impression of an amateur production. Though his descriptions of the palanquin (ii. 53 ff.) and temple (xxii. 57 ff.) are rather extravagant, his battle scenes, quite epic in style, are worthy of any great epic poet. Jatila, like the South Indian architect, takes delight in working out details and details, and is pleased to repeat scenes after scenes. Now and then we come across rhyme (xi. 45, xix. 38, xxi. 80, xxii. 57-8 and also 59), alliteration (xv. 15), and the repetition of the same syllable to produce a sonorous sound (xxii. 7, 21). Here and there we find beautiful verses which testify to the artist and the poet in Jatila.² We may quote some verses

1. *āramati*, i. 34, *samavatīsthate* iv. 9, *bhiṣayante* v. 94, *sam-krīḍamānā* vi. 12 etc.

2. Describing the Ms. of *Varāngacarita* HIRALAL remarks : 'It is a Kāvya of high poetic merit' (*Catalogue of Sk. and Pk. MSS. in the C. P. & Berar*, p. 689). A friend of mine, a close student of

here.¹

xi. 66 :

चलत्पताकोज्ज्वलकेशमाला
प्राकारकाञ्चिः स्तुतिरूर्यनादा ।
प्रपूर्णकुम्भोरुपयोधरा सा
पुराङ्गना लवधपतिस्तुतोष ॥

xviii. 14 :

अन्योन्यदन्तांस्तु बलादूजन्द्रा
उत्पाद्य रोषाद्विसवत्क्षणे ।
स्वलोहिताद्रेंरभिजघ्नुरन्यान्
नीराजनायामिव तैरलातैः ॥

xviii. 65 :

मानोन्नतं नावनतं परेभ्यो
दोलायमानश्चमरावलीकम् ।
शिरः मनादं विनिपत्य भूमौ
प्रफुल्घपद्माङ्गुतिमादधार ॥

The last verse is worthy of any great poet. The author inherits many similes from others, but now and then he has his own similes :

xviii 119 :

वातायनेभ्यः खलु पुष्पवर्ष
वराङ्गनाबाहुलताः सलीलाः ।
प्रचक्षस्त्वर्णरजोविमिश्रं
वातावधूता इव कामवल्लयः ॥

Classical Sanskrit, to whom I had sent the first form of this text, writes to me : 'The style of the work is charming. It is so melodious that one is reminded of Aśvaghoṣa's verses.'

1. These verses are quoted here with certain emendations suggested in the Notes.

xxviii. 6 :

निदाघमासे व्यजनं यथैव
करात्करं सर्वजनस्य याति ।
तथैव गच्छन्प्रियतां कुमारो
वृद्धिं च बालेन्दुरिव प्रश्नातः ॥

When Jinasena complimented the poetic flash of Jaṭila, I think that he had such verses in view.

7. FOUR OTHER VARĀNGACARITAS

i) VARDHAMĀNA'S VARĀNGACARITA IN SANSKRIT

The story of prince Varāṅga has proved fascinating in later days. Vardhamāna composed in Sanskrit verse another *Vāraṅgacarita*¹. This poem is a summary of Jaṭila's work with which it has close phraseological agreements in places more than one ; the author only curtails the details of religious sermons and various descriptions, the skeleton of the story remaining the same all the while. The incidents and events of the story are narrated in the same order. At times proper names are differently spelt. Vardhamāna perhaps implies that he has summarised Jaṭila's work when he says.

गणेश्वरैर्या कथिता कथा वरा ।
वराङ्गराजस्य सविस्तरं पुरा ।
मयपि संक्षिप्य च सैव वर्णयते
सुकाव्यवन्धेन सुवृद्धिवर्धिनी ॥

1. Edited with Marāṭhī translation by Pt. JINADAS, Sholapur 1927,

Pt. JINADAS writes in his introduction to that edition that Vardhamāna's *Varāngacarita* is the same as the one referred to in *Harivamśa* of Jinasena. But this view is not correct and cannot be accepted, because it is proved beyond doubt that Jatila is the author of *Varāngacarita* referred to by Jinasena.

There is no definite evidence as to the date of Vardhamāna who gives meagre information about himself. He was a Bhaṭṭāraka belonging Mūlasarṅga, Balātkāragaṇa and Bhāratīgaccha, and he had a title *para-vādi-dantipañcānana*. I know of two Vardhamānas. The first was the Guru of Dharmabhūṣaṇa, the author of *Nyāyadīpikā*. If this Vardhamāna is the same as the Guru of Dharmabūṣaṇa, then this *Varāngacarita* is composed in the middle of the fourteenth century A.D. at the earliest, because the date of Dharmabhūṣaṇa is given as c. A.D. 1600 by VIDYABHUSHAN¹ and A.D. 1385 by PATHAK.² The second Vardhamāna is the author of Humch inscription, and his date is about A.D. 1530 according to RICE.³ It is important to note that this second Vardhamāna belonged to Balākāragaṇa. Under these circumstances this *Varāngacarita* cannot be taken earlier than 13th century A.D.

From the 13th century onwards the references to either Jatāsimhanandi or his *Varāngacarita* become scarce. If it is not an accident, the probable reason might have been that the *Varāngacarita* of Vardhamāna came to be popular. It is this work, and not Jatila's *Varāngacarita*, which is at the basis of Kannada and Hindī versions noted below.

1. *Indian Logic* : Mediaeval School, p. 54.

2. *Annals of the B. O. R. I.* Vol. XII, iv, p. 376.

3. E. C. VIII Nagar No. 46.

ii) DHARANIPĀNDITA'S VARĀNGACARITA IN KANNĀDA

There is one *Varāngacarita* in Kannāda written by Dharaṇī Pāṇḍita who flourished about A.D. 1650. He was a native of Viṣṇuvardhanapura. It is composed in a popular Kannāda metre known as Bhaminī-ṣaṭpadi. He says that his work is based on previous compositions. From the fact that he mentions one Vardhamānayati along with other previous authors, it appears that Vardhamāna's *Varāngacarita* was his authority. The Ms. of this work noticed by R. NARASIMHACHARYA is incomplete containing only eight chapters.¹

iii) LĀLACANDA'S VARĀNGACARITA IN HINDĪ

Through the courtesy of Pt. PANNALAL JAINA, Delhi, I received a paper Ms. belonging to Lālā Harasukharāyaji Jaina Pustakālaya, Mandira Pañcāyatī, Delhi. It is written on Aśvina Śuddha 3, Sunday, Samvat 1905. It contains a metrical Hindī version, in 13 cantos, of the Sanskrit *Varāngacarita* of Vardhamāna noted above. From the concluding verses we learn that the work of Vardhamāna, being in Sanskrit, could not be followed by all, and hence there was the need of rendering it into Bhāṣā, i.e., the earlier stage of Hindī. At Aṭera, in the territory of Bhadāvara (now in the Gwalior State) there lived a Bhaṭṭāraka Viśvabhūṣaṇa by name. His disciple was Brahmasāgara of the Agravāla family. He went to Girnar on pilgrimage, and on his way back halted at Hindāun where many pious house-holders resided. He had a disciple in Pāṇḍe Lālācanda who translated the Sanskrit work into Bhāṣā so that all

1. *Karnāṭaka Kavitarite* vol. II p. 417 ff.

might read it. This was not possible for him without somebody's aid for which there arrived an opportunity. Nathamala, son of Sobhācanda, of Bilālā Gotra, left Āgrā and came to stay at Hirāpur and rendered much assistance in the composition of this work. The author quite modestly states that he composed this work not to parade his learning, but for merit and for the benefit of other house-holders. The work was finished in Saṁvat 1827, 5th day of Māgha Śukla, Saturday, i.e. A.D. 1769, 11th February.

Besides *Varāngacarita*, it is reported¹ that Lālacandra composed many other works in Hindī such as *Ṣaṭkarmopadeśa-ratnamālā* (Saṁvat 1818), *Vimalanātha-purāṇa*, *Sikharavilāsa*, *Samykatva-kaumudī*, *Āgamaśataka* and some other books on rituals.

iv) KAMALANAYANA'S VARĀNGACARITA IN HINDĪ

From a Ms. containing 67 pages (7" × 11") with eleven lines on each page Pt. KAMATA PRASAD JAINA, Aliganj, has kindly sent to me some relevant extracts from the Hindī *Varāngacarita* of Kamalanayana of Mainapuri. As noted in the concluding colophon, it is a metrical rendering of the Sanskrit work of Vardhamāna.

Kamalanayana was a resident of Mainapuri. He belonged to Yaduvamśa and Buḍhela caste; his surname was Nagarābāra and his Gotra was Kāśyapa. His grandfather Nandurāma was a prominent Banker of that place, while his father Haracandadāsa was a physician. Kamalanayana had an elder brother Kṣitipati by name. He finished this *Varāngacarita* in Saṁvat 1872, i.e. A.D. 1814, Jyeṣṭha Śuddha Paurṇimā.

1. *Jaina Hittaishi* Vol. XIII p. 26.

अँग्रेजी प्रस्तावनाका सार

१ सम्पादनमें उपयुक्त सामग्री

ताङ्गपत्रकी जिन दो प्रतियोंके आधारपर बराङ्गचरितके इस संस्करणका सम्पादन किया गया है उनका परिचय निम्न प्रकार है—

क—यह प्रति कोल्हापुरके श्रीलक्ष्मीसेन-मठकी है। इसमें १४४ पत्र हैं, प्रत्येक पृष्ठमें ८ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्तिमें लगभग ५५ अक्षर। लिपि कनडी है, और अक्षर सुन्दर हैं। यह प्रति अच्छी हालतमें है, केवल एक पत्र टूटा हुआ है। इकतीसवें सर्गके अंतिम वाक्यसे पता चलता है कि यह प्रति शक सम्वत् १६५८ में लिखी गई थी। अतः यह आजसे २०२ वर्ष पहलेकी है। सन् १९३० में मैंने इस प्रतिको खोज निकाला था और उसके आधारपर एक विस्तृत निबन्ध लिखकर भण्डारकर प्रा० वि० मन्दिर पूनाकी पत्रिका जिल्द १४ में प्रकाशित किया था।

म—यह प्रति श्रवणबेलगोलके जैन मठकी है और इस समय मैसूर लायब्रेरीमें है। इसमें १०९ पत्र, प्रत्येक पत्रके दोनों ओर छ छ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्तिमें लगभग नव्वै अक्षर हैं। इसका लेखनकाल शक सं० १३८० है, अर्थात् यह प्रति ४८० वर्ष प्राचीन है। मुझे इसकी मूल प्रति तो नहीं मिल सकी, किन्तु ओरियन्टल लायब्रेरी मैसूरके पं० एन० अनन्तरङ्गाचारियरकी कृपासे इसकी एक प्रतिलिपि मिल गई थी। उसीपरसे पाठान्तर बगैरह लिये गये हैं।

‘क’ प्रतिसे तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि ‘म’ प्रति उससे २७८ वर्ष प्राचीन है, इसके पाठान्तर उससे अच्छे हैं। यद्यपि इसमें घब्बे और छूटे हुए पाठ बगैरहकी बहुतायत है, तथापि लेखककी असावधानीसे होनेवाली अशुद्धियाँ ‘क’ प्रतिसे कम हैं। ‘म’ प्रति गेरसप्पा नामक स्थानमें लिखी गई थी और ‘क’ प्रति सेरिङ्गपट्टनमें। अतः दोनों प्रतियोंका जन्म कर्नाटक प्रान्तमें ही हुआ है। इन दोनों प्रतियोंका श्रवणबेलगोलके जैन मठके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। ‘म’ प्रति उक्त जैन मठसे ही मैसूरकी लायब्रेरीमें लाई गई है और उक्त मठके

तत्कालीन भट्टारककी आज्ञासे 'क' प्रति लिखी गई है। 'क' प्रतिका एक पद्य 'म' (२६-६५) प्रतिमें नहीं मिलता। 'क' प्रतिमें कुछ स्थानोंमें उपयोगी अक्षर और पद पाये जाते हैं, जब कि 'म' प्रतिमें वे स्थान छूट हुए हैं। तथा 'क' प्रतिमें कई स्वतंत्र पाठ भी हैं। इन बातोंसे पता चलता है कि 'क' प्रति सीधे 'म' प्रतिसे नहीं की गई है। किन्तु इनके विपरीत भी कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। जैसे - दोनों प्रतियोंमें बहुतसे छूटे हुए पाठ समान हैं, दोनोंमें कुछ ऐसी अशुद्धियाँ हैं, जो कुछ मतलब नहीं रखती हैं, ३० वाँ सर्गके प्रारम्भमें दोनों प्रतियोंमें एक नमस्कारात्मक पद्य है, जो सम्भवतः लेखककी कृपाका फल है। इन बातोंसे प्रतीत होता है कि 'क' प्रति 'म' प्रतिसे विलक्षण स्वतंत्र नहीं है। उक्त सभी बातोंको दृष्टिमें रखते हुए मेरा मत यह विश्वास करनेकी ओर चुकता है कि कुछ पीड़ियाँ पहले दोनों प्रतियोंका आदर्श एक ही प्रति थी। 'म' प्रतिके आदर्शमें कीटक आदिसे बहुत त्रुटियाँ हो गई हार्गी ऐसा जान पड़ता है। यह कहना कठिन है कि 'क' प्रतिमें छूटे हुए पाठोंकी पूर्ति किसी बुद्धिमान् लेखकने की है अथवा उसकी आदर्श प्रतिमें ही ऐसा था।

२. मूलका संगठन

उक्त दो प्रतियोंके आधारपर ही सम्पादकको अपना कार्य करना पड़ा है, जब कि मूल त्रुटित और अशुद्ध है और उपयोगी पाठान्तरोंकी संख्या कम है। उदाहरणके लिये, इसके दार्शनिक विभागमें २४ वाँ सर्ग कई स्थानोंमें अतिगूढ़ है और पाठककी बुद्धिको चक्करमें डाल देता है। इसके सिवाय बहुतसे स्थानोंपर पाठ छूटे हुए हैं और पाठान्तर कामके होनेपर भी विशेष सहायता नहीं करते। ग्रन्थ अति प्राचीन है, प्राप्त प्रतियाँ सदोष हैं और इसकी कोई टीका भी उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ ही प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है। इसके रचयिताकी कोई दूसरी कृति भी उपलब्ध नहीं है, जिसके अध्ययनसे सम्पादक वराङ्गचरितकी विशेषताओंको अच्छी तरह समझनेमें सहायता प्राप्त कर सकता। इन सब परिस्थितियोंके बीचमें बड़ी सावधानताके साथ मुझे अपना कार्य करना पड़ा है। 'क' और 'म' प्रतिका परस्परमें मिलान करके बहुत-सी अशुद्धियोंको निकाल दिया है। अक्षर विन्यास तथा इतर विशेषताओंको एक सन्मान्य रूपमें रखता है। जो रिक्त स्थान तथा धब्बे वगैरह दोनों प्रतियोंमें साधारण हैं, उन्हें कायम रखता है। कहीं कहीं दीर्घ और

हस्त स्वरोंके चिह्नोंको मैंने ब्रैकेटमें रखा है । जो पाठ केवल एक ही प्रतिमें छूट गया था उसे दूसरी प्रतिसे ले लिया है, क्यों कि दोनों प्रतियोंकी प्राचीन परम्परा एक ही है । जहाँ दोनों प्रतियोंमें पाठभेद है, वहाँ उपयुक्त पाठको मैंने मूलमें दिया है और दूसरेको टिप्पणीमें । अशुद्ध पाठ रहनेपर हमको जो सुचनायें करनी चाहीं वे पाद टिप्पणीमें स्वेच्छा कर कंसमें दी गई हैं, और कई टिप्पणीमें दी गई हैं । शुद्ध पाठकी प्राचिके वास्ते यह हमारा तुच्छ प्रयत्न है । हमारी भूल हो तो, विद्वान् आगे सुधार सकते हैं । कहीं कहीं अर्थशून्य पाठान्तर भी इस लिये दें दिये हैं कि उनसे शुद्ध पाठका अनुमान करनेमें सहायता मिल सकेगी । जहाँतक सम्भव हो सका मैंने उपलब्ध सामग्रीका अतिक्रमण नहीं किया है और अपनेको सीमामें रखकर ही अपन विवेकका उपयोग किया है ।

३ वराङ्गचरितके रचयिता

दोनों प्रतियोंमें किसी भी स्थलपर उसके कर्ताका नाम नहीं लिखा है । तथा न तो विभिन्न सर्गोंकी सन्धियोंमें और न किसी सर्गके अन्तिम पद्ममें ही ग्रन्थकारने अपना नाम वर्गैरह दिया है । किसी सर्गके उपसंहारात्मक पद्ममें भी मुझे कोई ऐसा शब्द न मिल सका, जो रचयिताके नामपर परम्परया प्रकाश डाल सके । प्रथम सर्गके ८९ वें पद्ममें विशालकीर्ति और राजमिह नाम आये हैं, किन्तु इनसे बलात् किसी अभिप्रायको निकालनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि अन्य सर्गोंके अन्तमें इस प्रकारके शब्द नहीं आते । अतः ग्रन्थसे उसके कर्ताके बारेमें कोई सहायता न मिलनेपर हमें बाहरसे ही प्रमाणोंकी खोज करना होगी ।

(१) जिनसेनने अपने हरिवंशपुराण (ई० ७८३) के निम्नलिखित दो पद्मोंमें पद्मचरित और वराङ्गचरितका उल्लेख किया है—

कृतपद्मादयोद्याता प्रत्यहं परिवर्तिता ।

मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥३४॥

वराङ्गनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक् ।

कस्य नोत्पादयेद्वाऽमनुरागं स्वगोचरम् ॥ ३५ ॥ प्र० स० ।

इनमेंसे प्रथम श्लोकमें रविषेणके पद्मचरितका उल्लेख है । दूसरे श्लोकका

१ माणिकचन्द्र जैन-ग्रन्थमाला बम्बई पुष्ट ३१-३२ ।

२ „ „ „ पुष्ट २९-३० ।

प्रथम श्लोकके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, और उसका अनुवाद इस प्रकार हो सकता है—‘सुन्दरी नारीकी तरह वराङ्गचरितकी अर्थपूर्ण रचना अपने गुणोंसे किसके हृदयमें अपने प्रति गाढ़ अनुराग उत्पन्न नहीं करती ?’ यह एक स्वतंत्र श्लोक है और इसमें कर्ताका नाम दिये बिना केवल वराङ्गचरितका गुणगान किया है ।

(२) उद्योतनसूरिकी कुबलयमालामें (२० ७७८) एक गाथा निम्न प्रकार है—

जेहिं कए रमणिजे वरंग-पउमाण-चरियवित्थारे ।

कह व ण सलाहणिजे ते कइणो जडिय-रविषेणो ॥

इस गाथाके ‘जेहिं’ ‘ते’ और ‘कइणो’ पदोंसे स्पष्ट है कि ग्रन्थकारने दो कवियोंका उल्लेख किया है, जिनमेंसे एक पद्मचरितके कर्ता हैं और दूसरे वराङ्ग चरितके, और उनके नाम ‘जडिय-रविषेणो’ पदके द्वारा बतलाये हैं । इस पदके प्रथम भागके बारमें श्रीयुत प्रेमीजी कुछ अस्थिरचित्त थे, क्योंकि एक स्थानपर उन्होंने ‘जडियै’ पाठ दिया था और दूसरेपर ‘जइयै’ । राजशेखरकी काव्य-भीमांसापर टिप्पण करते हुए श्रीयुत दलालने कुबलयमालासे एक अवतरण दिया है और उन्होंने भी ‘जडिय’ पाठको ही स्थान दिया है । उद्योतनसूरिने पद्मचरितको रविषेणका बतलाया है और वराङ्गचरितको ‘जडिय’का । किन्तु, जैसा कि नीचे दिये गये ध्वल कविके उल्लेखसे स्पष्ट है, ‘जडिय’ पाठ ‘जडिल’के स्थानमें प्रयुक्त हुआ है और वह अशुद्ध है ।

१ श्रीयुत प्रेमीजीने इन दोनों श्लोकोंको युगमश्लोक समझकर अपनी विद्वद्वलमालामें लिखा है कि रविषेणने पद्मचरितके सिवाय वराङ्गचरित भी बनाया था । बादको पद्मचरितकी प्रस्तावनामें उन्होंने कुबलयमालाकी गाथाको अशुद्ध पाठके साथ उद्धृत किया । जैसा कि मैंने भा० प्रा० वि० की पत्रिका, जि० १४, पृ. ६१-७९ में लिखा है, वराङ्गचरित रविषेणका नहीं है । मुझे हर्ष है कि प्रेमीजीने अपने भ्रमको स्वीकार करके उक्त मतको मान लिया है ।

२ जयसलमेर-भण्डारका कैटलॉग (बड़ौदा-सिरीज) पृ० ४२ ।

३ जैनहितैषी भाग १५, पृ. १०४ और पद्मचरितकी प्रस्तावना पृ० ३ ।

४ गा. सिरीज बड़ौदा नं. १, टिप्पणका पृ० १२४ ।

(३) धवले कवि अपने अपभ्रंश भाषाके हरिवंशमें (ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके लगभग) वराङ्गचरितका उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

मुणिमहसेणु सुलोयणु जेण पउमचरितु मुणिरविसेणेण ।

जिणसेणेण हरिवंसु पवित्रु जडिलमुणिणां वरंगचरित् ॥

धवल कविने श्रिलकुल स्पष्ट रीतिसे महासेनके सुलोचनाचरितका, रविषेणके पद्मचरितका, जिनसेनके हरिवंशपुराणका और जटिलमुनिके वराङ्गचरितका उल्लेख किया है । व्यापि जिनसेन वराङ्गचरितके कर्ताके बारेमें नुप हैं, किन्तु उद्योतन और धवल उसे जटिलका बतलाते हैं । अब हमें यह देखना है कि क्या जटिलमुनि हमारे वराङ्गचरितके रचयिता हैं ?

(४) राजमल्लके (ई० १७४-८४) मंत्री और सेनापति चामुण्डरायने कन्नड गद्यमें 'त्रिप्रष्ठिशलाका-पुष्पचरित' की रचना की है जो चामुण्डरायपुराण (ई० १७८) के नामसे प्रसिद्ध है । इसका एक गद्यांश वराङ्गचरितके प्रथम-सर्गके छठे और सातवें श्लोकका व्याख्यानमात्र है, और उसके बाद 'जटासिंह-नन्द्याचार्यर वृत्तम्' करके जो श्लोक उद्भूत है, वह वराङ्गचरितके प्रथमसर्गका २५ वाँ पद्य है । अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि चामुण्डरायके सामने हमारा वराङ्गचरित था । शक सं० १४२७ (ई० १५०५) में लिखी गई चामुण्डराय-पुराणकी ताइपत्रकी एक प्रतिमें वराङ्गचरितके उद्भूत पद्यके साथ उक्त पद मौजूद है और उसकी मौलिकतामें सन्देह करनेका मैं कोई कारण नहीं देखता । अतः चामुण्डरायके उल्लेखके अनुसार उक्त उद्भूत पद्यके कर्ता जटासिंहनन्द्याचार्य हैं, और यतः वह पद्य वराङ्गचरितका है अतः उसके कर्ता भी वही हैं । मेरे विचारमें यह जटासिंहनन्द्याचार्य ही जयाचार्य हैं, जिनका उल्लेख आचार्य जिनसेनने अपने आदिपुराणमें (ल० ई० ८३८) इस प्रकार किया है—

काव्यानुचित्नने यस्य जटाः प्रचलवृत्तयः ।

अर्थास्त्मानुवदन्तीव जटाचार्यः स नोऽवतात् ॥ १-२० ॥

आदिपुराणकी एक प्रैतिके कोनेमें जटाचार्यका असली नाम सिंहनन्द लिखा

१ सी. पी. और वरारकी संस्कृत और प्राकृतकी प्रतियोंका कैटलॉग, पृ. ७६४ ।

२ कर्नाटक साहित्य-परिषद बंगलौरके द्वारा प्रकाशित ।

३ आर. जी. भण्डारकरके मंगृहीत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ. २७२ ।

है। जिनसेनने जटाचार्यका केवल उल्लेख ही नहीं किया किन्तु उनके वराङ्गचरितसे बहुत सी सामग्री भी ली है। इन सब प्रमाणोंके आधारपर कोई भी व्यक्ति यह अनुमान कर सकता है कि हमारे ग्रन्थकारका नाम सिंहनन्दि था और वे जटाचार्यके नामसे प्रसिद्ध थे। सम्भवतः इसका कारण यह था कि वे जटाएँ रखते थे, और जब वे अपनी काव्य-रचनामें तल्डीन हो जाते थे तो उनकी जटाएँ चंचल हो उठती थीं। सम्भवतः सिंहनन्दि नामके किसी अन्य व्यक्तिसे भेद करनेके लिये ही चामुण्डरायने जटासिंहनन्दि नामका प्रयोग किया है। जे जटाएँ रखता है उसे जटिल कहते हैं, अतः हम जटिल और जटाचार्यको एक व्यक्ति मान सकते हैं, और कुवलयमाला तथा अपभ्रंश भाषाके हरिवंशके अनु-सार जटिल वराङ्गचरितके रचयिता हैं। इस प्रकार निष्कर्षके तौरपर हम कह सकते हैं कि इस वराङ्गचरितको सिंहनन्दि उपनाम जटा-सिंहनन्दिने बनाया था, जो जटिल अथवा जटाचार्यके नामसे प्रसिद्ध थे।

४ जटासिंहनन्द्याचार्य

जटासिंहनन्दि, जटाचार्य अथवा जटिलके बारेमें हम बहुत कम जानते हैं। विभिन्न शताब्दियोंमें सिंहनन्दि नामके बहुतसे जैन साधु और ग्रन्थकार हो गये हैं। मुख्य मुख्य स्मारक लेखों और साहित्यिक उल्लेखोंके आधारपर हम कमसे कम आधे दर्जन सिंहनन्दियोंको गिना सकते हैं, किन्तु उन सभीके बारेमें हमें बहुत ही कम जानकारी हो सकी है। (१) सबसे प्रसिद्ध सिंहनन्दि वे हैं, जिनका नाम बादके शिलालेखोंमें प्रायः आता है, जो कर्णाटक प्रान्तकी ऐतिहासिक परम्परासे घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं, तथा जिन्होंने ईसाकी दूसरी शताब्दीमें गङ्गवंशकी नींव डालनेमें दो अनाथ राजकुमारोंकी सहायता की थी। (२) श्रवणबेल्गोलमें एक सिंहनन्दिका समाधि-लेख है, जो शक सं ६२२ (ई० ७००) के लगभग हुए हैं। (३) ईसाकी बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धके कुछ शिलालेखोंमें एक सिंहनन्दिका उल्लेख है जो सम्भवतः काणूरगणके थे। (४) ईसाकी बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धके कुछ शिलालेखोंमें एक सिंहनन्दिका उल्लेख है जो सम्भवतः नन्दिगणके थे। (५) १३७१ ई० के एक शिलालेखमें बलत्कारगणके एक सिंहनन्दिका उल्लेख है। (६) श्रुतसागर सूरि (ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके लगभग) के समयमें एक सिंहनन्दि हुए हैं, जिनके

उपदेशसे श्रुतसागरने महाभिषेककी टीका लिखी थी । (७) ध्वलने एक सिंहनन्दिका उल्लेख किया है, जिन्होंने द्वादश-अनुप्रेक्षापर कोई रचना की थी । इन सिंहनन्दियोंके बारमें जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है, उसके आधारपर उनकी समानता या असमानताका निर्णय कर सकता शक्य नहीं है । गङ्गावशकी नींव डालनेमें सहायता करनवाले सिंहनन्दि कर्नाटक प्रान्तमें खूब प्रसिद्ध हैं और सम्भवतः उन्हींसे भेद करनेके लिये चामुण्डरायने हमारे ग्रन्थकारका जटा-सिंह-नन्दिके नामसे उल्लेख किया है ऐसा मालूम पड़ता है ।

यद्यपि जटासिंहनन्दिका नाम बादमें विस्मृत हो गया, किन्तु संस्कृत, प्राकृत और कन्नड़ भाषाके जैनसाहित्यमें उनका स्मरण बड़े आदरके साथ किया गया है । उद्योतनसूरि, जिनसेन प्रथम, जिनसेन द्वितीय तथा ध्वलने जटिल अथवा जटाचार्य और उनके वराङ्गचरितका स्मरण किया है । कन्नड़ साहित्यमें, पम्पकविने अपने आदिपुराणमें (ई. ९४१), धर्मामृतमें नयसेनने (ई. १११२), पार्श्वपण्डितने अपने पार्श्वपुराणमें (ई. १२०५), जन्मने अपने अनन्तनाथपुराणमें (ई. १२०९), गुणवर्म द्वितीयने अपने पुष्पदन्त-पुराणमें (ई. १२३० के लगभग), कमलभवने (ई. १२३५ के लगभग) अपने शान्तीश्वरपुराणमें, महावलकविने अपने नेमिनाथपुराणमें (ई. १२५४) जटासिंहनन्दिका उल्लेख किया है । इसके सिवाय अग्रालने (ई. ११८९) चन्द्रप्रभपुराणमें, कुमुदेन्दुने (ई. १२७५ के लगभग) अपनी रामायणमें और नागराजने (ई. १३३१) अपने पुण्यास्त्रवर्म सिंहनन्दिका स्मरण किया है । किन्तु 'जटा' विशेषणके बिना इस सिंहनन्दिको हम जटासिंहनन्दि नहीं ठहरा सकते ।

किसी समय निजाम स्टेटका कोप्पल ग्राम, जिसे कोप्पण भी कहते हैं, संस्कृतिका एक प्रसिद्ध केंद्र था । मध्यकालीन भारतमें जैनोंमें इसकी अच्छी ख्याति थी और आज भी यह स्थान पुरातत्वप्रेमियोंका स्नेह-भाजन बना हुआ है । इसके निकट पलक्की गुण्डु नामकी पहाड़ीपर, अशोकके शिलालेखके समीपमें, दो पदचिह्न अঙ्कित हैं । उनके टीक नीचे पुरानी कन्हीमें दो लाईनका एक शिलालेख है जिसमें लिखा है कि चावयने जटासिंहनन्द्याचार्यके पदचिह्नोंको तैयार कराया । इसका छायाचित्र इस पुस्तकके आरंभमें दिया गया है । किसी महान् व्यक्तिकी स्मृतिमें, मुख्यतया उस स्थानपर जहाँ किसी साधु वगैरहने

समाधिमरण किया है, पद-चिह्न स्थापित करनेका रिवाज जैनोंमें बहुत प्रचलित है। अतः उक्त पद-चिह्न यह बतलाते हैं कि जटासिंहनन्दाचार्यने कोप्पलमें समाधिमरण किया था। ये जटासिंहनन्द हमारे ग्रन्थकार ही जान पड़ते हैं, क्यों कि एक तो जटासिंहनन्द नाम इतर सिंहनन्दयोंसे भेदका सूचक है। दूसरे, कन्नडसाहित्यमें जटासिंहनन्दके विविध उल्लेखोंसे यह प्रमाणित होता है कि वे कर्नाटकके अधिवासी थे। तीसरे, कुमारसेन सरीखे बहुतसे मुख्य मुख्य साधु अपने अन्तिम दिनोंमें कोप्पलमें आकर बसे थे। अतः यह सम्भव है कि हमारे ग्रन्थकार भी वहाँ सलेखनामरणके लिये आये हों।

५ उनका समय और अन्य रचनाएँ

ऊपर बतलाये गये उल्लेखोंके आधारपर जटासिंहनन्दिके समयकी अन्तिम अवधि निर्धारित कर सकना कठिन नहीं है। जिन ग्रन्थकारोंने उनका स्मरण किया है, उनका समय सुनिश्चित है। १३ वीं और १२ वीं शताब्दीके ग्रन्थकारोंके सिवाय, ११ वीं शताब्दीमें ध्वलने जटिल और उनके वराङ्गचरितका उल्लेख किया है। १० वीं शताब्दीमें चामुण्डरायने उनका उल्लेख किया है और उनके वराङ्गचरितसे एक पत्र उद्धृत किया है। उनसे ४० वर्ष पूर्वके पम्पके आदिपुराणमें जटाचार्यका उल्लेख है। ९ वीं शताब्दीमें जिनसेन द्वितीयने अपने आदिपुराणमें जटाचार्यके कवित्वकी प्रशंसा की है। ८ वीं शताब्दीमें जिनसेन प्रथमने अपने हरिवंशपुराणमें (ई० ७८३) वराङ्गचरितका उल्लेख किया है और हरिवंशसे ठीक पाँच वर्ष पूर्वकी कुवलयमालामें उच्चोतन-सूरिने जटिल और उनके वराङ्गचरितका उल्लेख किया है। इन उल्लेखोंसे यह बिल्कुल सुनिश्चित है कि जटासिंहनन्द ई० ७७८ से अवश्य पहले हुए हैं, क्यों कि इसकी आठवीं शताब्दीके अन्तिम चरणके प्रारम्भके समय वराङ्गचरित उत्तर और दक्षिण भारतमें तथा श्रेत्राभ्यर और दिग्मधर ग्रन्थकारोंमें प्रसिद्ध हो चुका था। मध्यकालीन भारतमें गमनागमनके साधनोंको दृष्टिमें रखते हुए, इस ग्रन्थकी ख्याति और विस्तृत प्रसारका लेखा-जोखा बैठानेके लिये हमें जटिल और उच्चोतनसूरिके मध्यमें लम्बे समयका अन्तराल रखना होगा।

यह बड़े दुःखकी बात है कि जटिलने अपने ग्रन्थमें किसी भी पूर्ववर्ती ग्रन्थकारका उल्लेख नहीं किया। अतः हमें वराङ्गचरितसे उनके समयकी आदि अवधिका कोई निश्चित सूत्र नहीं मिलता। सम्पूर्ण जैनसिद्धान्त बहुत प्राचीन

समयमें ही क्रमबद्ध हो चुके थे और बादमें उनमें कोई विशेष परिवर्तन वैग्रह नहीं हुआ। तथा, बहुतसे प्राचीन ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं। इन परिस्थितियोंके बीचमें, वराङ्गचरितमें वर्णित सिद्धान्तोंकी एकवाक्यताके आधारपर समय निर्णय करनेमें मुझे बहुत सावधान रहना होगा। तथापि नीचे प्रयत्न किया जाता है—

(१) वराङ्गचरितके सैद्धान्तिक वर्णनको देखकर उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका स्मरण हो आता है। यह सर्वथा सम्भव है कि जटिलके समान धर्मोपदेश तत्त्वार्थ-सूत्र सरीखे मान्य ग्रथका आलोड़न करके उसका सार अपने ग्रन्थमें निवद्ध करे।

(२) वराङ्गचरितके २६ वें सर्गके ८२-८३ श्लोक समन्तभद्रके स्वयम्भू-स्तोत्रके १०२-३ श्लोकोंकी याद दिलाते हैं।

(३) नीचेकी तुलनासे विल्कुल स्पष्ट है कि जटिलने सिद्धेनके सन्मति-प्रकरणोंमें वर्णित कुछ मुख्य मुख्य चर्चाओंका अनुकरण किया है। वरांगचरितके २६ वें सर्गके श्लोक ५२, ५३, ५४-५५, ५७-५८, ६०, ६१-६३, ६४-६५, ६९, ७०-७१ और ७२ की तुलना क्रमशः सन्मतिके प्रथम काण्डकी गाथा, ६, ९, ११-१२, १७-१८, २१, २२-२५, ५१-५२, तथा तीसरे काण्डकी गाथा ४७, ५४-५५ और ५३के साथ की जा सकती है।

(४) वरांगचरित (स० १५, श्लो० १२२) में वर्णित सामायिकी व्याख्या वही है जो संस्कृत सामायिक पाठमें पाई जाती है। सामायिकपाठके कर्ताका पता अभी तक नहीं चल सका है। कुछ मुद्रित प्रतियोंमें और बहुत-सी लिखित प्रतियोंमें यह दशभक्तिके साथ जुड़ा हुआ है। प्रचलित परम्पराके आधारपर प्राकृत दशभक्तिको कुन्दकुन्दरचित माना जाता है और संस्कृत दशभक्तिको पूज्यपादरचित। अतः सम्भव है कि सामायिक पाठ पूज्यपादका बनाया हुआ हो।

इन ग्रन्थकारोंका समय सुनिश्चित नहीं है। समन्तभद्रको ईसाकी दूसरी शताब्दीके लगभगका विद्वान् माना जाता है। जैनसंप्रदाय बतलाती है कि उमास्वाति समन्तभद्रके पूर्ववर्ती हैं। सिद्धेनके समयके बारेमें भी विद्वानोंमें मत-भेद है। उनके समयकी अन्तिम अवधि ईसाकी सततीं शताब्दी मानी गई है। पूज्यपाद पाँचवीं शताब्दीके अन्तिम चरणसे पहलेके विद्वान् हैं। इन सभी आचार्योंका समय ऐसी परिधितिमें है कि उनके आधारपर जटिलकविके समयकी आदि अवधि निश्चित नहीं की जा सकती, किन्तु यह कुछ सम्भव है कि

जटिलकवि ईसाकी सातवीं शताब्दीसे पहलेके विद्वान् नहीं हो सकते। उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि जटासिंहनन्दि आचार्य ईसाकी सातवीं शताब्दीके अन्तमें हुए हैं।

लिपि वगैरहके आधारपर उसके संपादकने कोप्पलवाले शिलालेखका समय ईसाकी दसवीं शताब्दीके लगभग बतलाया है। किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है, और लिपि वगैरहके आधारपर जो अनुमान किया जाता है वह उतना निश्चित नहीं होता, जितना कि वे प्रमाण, जो मैंने जटासिंहनन्दिका समय निर्णीत करनेके लिये ऊपर दिये हैं। मेरा अनुमान है कि उक्त शिलालेखका समय एक या दो शताब्दी पूर्व होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो शिलालेखके जटासिंहनन्दि और वराङ्गचरितके कर्ता जटासिंहनन्दि दोनों एक व्यक्ति नहीं हो सकते, या किर जनश्रुतिके आधारपर बादको किसी गृहस्थने जटासिंहनन्दिके चरण-चिह्नोंकी स्थापना करके उसपर शिलालेख अঙ्कित करा दिया है। वराङ्गचरितके समयके बारेमें जो प्रमाण ऊपर दिये हैं, वे इतने सुनिश्चित हैं, और वराङ्गचरितके कर्ता और शिलालेखके जटासिंहनन्दिका ऐक्य निर्धारित करनेमें जो युक्तियाँ दी हैं, वे इतनी संभाव्य हैं कि ऊपरकी दो बातोंमेंसे मुझे दूसरी बातकी ओर ही झुकाना पड़ता है। शिलालेखकी शब्द-रचना भी दूसरी बातके ही पक्षमें है, क्योंकि उसमें विशेषतः चरणचिह्न स्थापित करनेका ही उल्लेख है।

इस ग्रन्थकारका वराङ्गचरितके सिवाय कोई दूसरा ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध नहीं हो सका है। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने अन्य ग्रन्थ भी बनाये थे, क्योंकि योगनिद्रचित अमृताशीतिमें जटासिंहनन्दिके नामसे एक श्लोक उद्धृत है, जो वराङ्गचरितमें नहीं पाया जाता। श्लोक निम्न प्रकार है—

जटासिंहनन्दाचार्यवृत्तम्—

तावल्क्षियाः प्रवर्तन्ते यावद्द्रैतस्य गोचरम्।

अद्रये निष्कले प्रासे निष्क्रियस्य कुतः क्रिया ॥

६ वराङ्गचरितका त्रुलनात्मक अनुशीलन

१ वराङ्गचरितकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—विनीतदेशमें रम्या नदीके तटपर उत्तमपुर नामका एक नगर था। उसमें भोजवंशका राजा धर्मसेन

राज्य करता था। उसकी पटरानीका नाम गुणवती था। गुणवतीके एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम वराङ्ग रखा गया। राजा धर्मसेनने अपने मंत्रियोंसे परामर्श करके उत्तम कुलकी दस राजकुमारियोंके साथ वराङ्गका विवाह कर दिया। एक बार अग्निनेमिके प्रधान शिष्य वरदत्त उत्तमपुरमें पधारे। राजा धर्मसेन अपने मंत्रियों वगैरहके साथ उनके दर्शनार्थ गया। वरदत्तने उन्हें उपदेश दिया। वराङ्गके पृछनेमें वरदत्तने सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका स्वरूप समझाया और राजकुमारने उनसे अणुव्रत ग्रहण किये। कुछ समयके बाद राज्ञाने वराङ्गको युवराजपद प्रदान किया। इससे वराङ्गकी विमाता मृगसेना और उसका पुत्र सुषेण वराङ्गसे डाह करने लगे। सुबुद्धि नामके मंत्रीने उनसे बाद किया कि वह जिस किसी तग्ह वराङ्गको धता बता कर सुषेणको राज्य-सिंहासन दिलानेमें उनकी सहायता करेगा। प्रत्यक्षमें सुबुद्धि एक स्वामिभक्त मंत्रीकी तरह व्यवहार करता था, किन्तु परोक्षमें वह सर्वदा वराङ्गका पाँसा पलटा देनेके लिये अवसरकी प्रतीक्षामें रहता था। एक बार उसने दो घोड़ोंको मिखा पढ़ा कर तैयार किया। उनमेंसे एक घोड़ेकी शिक्षा टकिं रीतिसे हुई थी और दूसरेको पूरा शैतान बना दिया गया था। घोड़ोंके प्रदर्शनके समय मंत्रीने ऐसा प्रबन्ध किया कि वराङ्ग उस शैतान घोड़ेपर सवार हो गया और उस घोड़ेने कुमारको एक घेने जङ्गलमें ले जाकर पटक दिया। जङ्गलमें वराङ्गको बहुतसे कष्टोंका सामना करना पड़ा। एक बार एक हाथीकी सहायतासे उसने एक व्याघ्रके मुखसे अपनी जान बचाई। एक यक्षीने एक सुन्दर कुमारीका रूप धारण करके वराङ्गको लुभाना चाहा, किन्तु वह टससे मस नहीं हुआ। इसके बाद उसे शिकारियोंने कैद कर लिया, किन्तु शीघ्र ही उसका छुटकारा हो गया, क्यों कि उसने उनके मुखियाके पुत्रको, जिसे सँपने काट लिया था, अच्छा कर दिया। एक बार भीलोंसे लड़कर उसने व्यापारियोंके एक संघकी रक्षा की। इससे व्यापारियोंका मुखिया सागरबुद्धि उसका बहुत कृतज्ञ हुआ। वह उसके साथ ललितपुर चला आया और अपनेको छिपाकर कश्चिद्दूटके नामसे वहाँ रहने लगा। उधर वराङ्गके अचानक लापता हो जानेसे उसके माता पिता और स्त्रियाँ बहुत दुखी हुई और एक मुनिके उपदेशसे प्रबुद्ध होकर अपना समय धर्मध्यानमें बिताने लगीं।

एक बार मथुराके राजाने ललितपुरके राजापर चढ़ाई की, और कश्चिद्दूट

नामधारी वराङ्गने उसे मार भगाया। इससे प्रसन्न होकर ललितपुरके राजाने उससे अपनी कन्याओंका विवाह कर दिया और उसे आधा राज्य दे दिया। उधर उसका भाई अपने पिताके राज्यकी देख भाल करता था। किन्तु वह बहुत ही बल्हीन साधित हुआ। एक बार उसके राज्यपर राजा बकुलेश्वरने चढ़ाई की। उसके पिताने ललितपुरके राजासे सहायताकी याचना की। वराङ्गने इस अवसरसे लाभ उठाया और बकुलेश्वरको हराकर अपने पिताके नगरमें प्रवेश किया। उसन अपने सभी विरोधियोंको क्षमा कर दिया। उसने पितासे प्रार्थना की कि वह उसे नये दंशोंको जीतकर एक नया राज्य स्थापित करनेकी आज्ञा प्रदान करें, क्यों कि ऐसा करनेमें उसे अपनी वीरता दिखानेके लिये विस्तृत क्षत्र मिल सकेगा। उसने एक नये साम्राज्यकी स्थापना की और सरस्वती नदीके किनारेपर आनंदपुरको अपनी राजधानी बनाया। एक दिन अपनी पटरानीके प्रश्नके उत्तरमें उसने उसे गृहस्थधर्म समझाया। फलस्वरूप एक मन्दिरका निर्माण कराया गया और उसमें बड़ी धूमधामके साथ जिन-ब्रिम्बकी स्थापना हुई। रानी अनुपमासे उसके सुगात्र नामका एक पुत्र पैदा हुआ। एक दिन आकाशमें वराङ्गने एक दूटते हुए तरेको देखा और उसे संसारके भोगोंसे वैराग्य हो गया। अपने पुत्र सुगात्रका राज्य-भार सौंपकर अपनी रानीके साथ वरदत्त मुनिसे उसने जिनदीक्षा ले ली और आठों कर्मोंको नष्ट करके मुक्तिको प्राप्त किया।

२ धर्म-कथा और काव्य-ग्रन्थ—वराङ्गचरितकी सन्धियोंमें उसे धर्म-कथा बताया है। हरिमंद्रकी परिभाषाके अनुसार धार्मिक चर्चाओंसे परिपूर्ण ग्रन्थको धर्मकथा कहते हैं। यद्यपि ग्रन्थकामने अपनी रचनाको महाकाव्यकी उपाधि नहीं दी है, तथापि उसमें महाकाव्यकी बहुत-सी विशेषताएँ पाई जाती हैं। एक तो सर्गका विभजन है। दूसरे महाकाव्यमें जिन वस्तुओंका वर्णन आवश्यक है, उनमेंसे नगर, कँटु, केलि, विरह, विवाह, राजकुमारोंका जन्म और उत्थान, युद्ध, विजय आदिका वर्णन वराङ्गचरितमें वर्तमान है। तीसरे, विभिन्न सर्गोंमें विभिन्न छन्दोंका उपयोग किया गया है; और सर्गके अन्तिम पद्यकी रचना उसी छन्दमें नहीं की गई है, जिससे पूरा सर्ग रचा गया है। चौथे, उसका नायक वराङ्ग बड़ा दानशूर और धर्मात्मा है। एक सच्चे पुरुषकी तरह वह अपने कर्तव्यके

पालनमें कभी भी प्रमाद नहीं करता। उसके ऊपर अनेक शारीरिक और मानसिक विपत्तियाँ आती हैं, किन्तु एक बीर पुरुषकी तरह वह उनका सामना करता है। उनके युद्धोंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—एक बाह्य अर्थात् दुनियाके दुश्मनोंके विरुद्ध और दूसरा आन्तरिक अर्थात् अन्तरंग काम कोध आदि दुश्मनोंके विरुद्ध। दोनों ही युद्धोंमें वह विजयी रहता है।

३ वराङ्गचरितमें सैद्धान्तिक विवेचन—अश्वघोषने अपने ग्रन्थोंमें बौद्ध आचार-विचारोंका खूब वर्णन किया है। मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च ध्येय मोक्ष है, किन्तु बहुतोंने उसे भुला दिया है। अतः अश्वघोषने अपनी मोहक कविताके द्वारा उस ध्येयका उपदेश देनेका प्रयत्न किया है। इस प्रकार जब अश्वघोष सरीखा कलाविद् ऐसा कर सकता है, तब जटिल सरीखा साधु यदि अपनी काव्य-धाराको धार्मिक और सैद्धान्तिक विषयोंके उपदेश करनेका स्रोत बनाता है तो हमें अचार्ज नहीं करना चाहिये। वराङ्गचरितके बहुतसे सर्गोंमें इस प्रकारका वर्णन मिलता है। चौथेमें लेकर दसवें तक पाँच सर्ग तथा छब्बीसवाँ और सत्ताईसवाँ सर्ग कथाके मुख्य प्रसंगसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। यदि इन सर्गोंको ग्रन्थसे निकाल दिया जाय तो घटनाओंके वर्णनका कोई क्षति नहीं पहुँच सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जटिल कविने जैन-सिद्धान्तोंका निरूपण करनेके लिये ही उक्त सर्गोंका निर्माण किया है। इन सर्गोंसे कविके केवल धार्मिक उत्साहका ही पता नहीं चलता किन्तु जैनधर्मविषयक वितृत अध्ययनका भी पता चलता है। कथानकके विविध प्रसंगोंमें जैनधर्मके जिन आचारों और विचारोंका वर्णन मिलता है, उनमेंसे कुछ निम्न प्रकार हैं—जीव और कर्मका सम्बन्ध, सुख और दुःखका कारण, सम्यक्त्व और मिथ्यात्व, संसारका स्वरूप, गृहस्थका कर्तव्य, जिनपूजा और जिनमन्दिर निर्माणका महत्व, महाव्रत और उनकी भावनाएँ, समिति, गुप्ति, आदि आदि। इस प्रकारके वर्णन इस बातके साक्षी हैं कि जटिल कवि एक धार्मिक दृष्टक और उपदेश थे।

४ इतर मतोंकी आलोचना—जटिल कविने अनेक स्थलोंपर इतर मतोंकी आलोचना करके अन्तमें जैन सिद्धान्तका समर्थन किया है। विभिन्न मतोंके अनुसार पुरुष, ईश्वर, काल, कर्म, दैव, ग्रह, नियोग, स्वभाव, नियति वैग्रह संसारके प्रलय, स्थिति और उत्पत्तिके कारण माने जाते हैं। जटिल

कविने इन सभी एकाङ्गी दृष्टिकोणोंपर आक्रमण किया है। उनका कहना है कि दैव या देव मनुष्योंके कार्योंका नियामक नहीं हो सकता। देवताको प्रसन्न करनेके लिये जो बलि वगैरह दी जाती है, उसे कौवे खा जाते हैं। बलिका इच्छुक देवता दूसरोंकी मनोकामना कैसे पूर्ण कर सकता है? यतः संसारके कार्योंमें इतनी अधिक अव्यवस्था और आकस्मिकता है अतः कालको भी उसका नियामक नहीं माना जा सकता। यह विश्वास करना कि ग्रह अच्छा और बुरा करते हैं, केवल आत्म-बन्धना है। क्यों कि यदि उनमें यह शक्ति होती तो चाँद और सूरजको ग्रहोंके कारण कष्ट क्यों उठाना पड़ता? ईश्वरको सृष्टि कर्त्ता-धर्ता मानना तर्कविहृद है। स्वभाव भी प्रत्येक कार्यका नियामक नहीं हो सकता, क्यों कि संसारमें जो कुछ देखा जाता है उससे उसका समर्थन नहीं होता। इसी तरह नियति भी संसारका नियामक नहीं हो सकती। यदि पुरुषको संसारका कारण माना जायगा तो समस्त धार्मिक क्रिया निष्फल हो जायेंगे। इसी तरह शून्यवाद, विज्ञानिवाद और प्रतीत्यसिद्धिवाद भी ठीक नहीं हैं। उक्त सभी मत आशिक दृष्टिकोण हैं। उनमें अनेकान्तरकी योजना करनेपर वे सार्थक हो सकते हैं।

जटिल कविने जन्मना वर्ण-व्यवस्था माननेका खण्डन किया है। पुरोहितोंकी आलोचना करते हुए उन्होंने वैदिक हिंसाका घोर विरोध किया है, और लिखा है कि दूसरोंको दुःख देनेसे सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ब्राह्मणत्व केवल जन्मपर निर्भर नहीं है किन्तु विद्वत्ता सत्यता और साधुशीलतापर निर्भर है। धर्माचरण और तपस्याके बलपर ही व्यास, वसिष्ठ, कमठ, कण्ठ, शक्ति, उद्गम, द्रोण और पराशर ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सके। कविने रुद्र, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुमार और बुद्धके देवत्यकी भी समीक्षा की है। अश्वघोषने अपने बुद्ध-चरितमें सम्भवतः अनेकान्तवादका खण्डन किया है। जटिलने भी बौद्धोंके क्षणिकवाद शून्यवाद और प्रतीत्य-समुत्पादवादका खण्डन किया है।

५ तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितिका दिग्दर्शन
—वराङ्गचरितके विविध वर्णनोंके बारेमें, जहाँतक मैं समझ सका हूँ, जटिल मुनिने दक्षिण भारतके जैनधर्मका एक सुन्दर चित्र हमरे सामने रख दिया है। उन्होंने जैनेतर देवी-देवताओंकी, बंदोंके याश्चिक धर्मकी और पौरोहित्य विधि-विधानकी खूब खबर ली है। उन्होंने पुरोहितोंको ताना दिया है कि किस प्रकार

वे राजद्वारोंसे निकाल दिये जाते थे और उनका क्रोध राजाओंपर कुछ भी असर न करता था। उन्होंने जैन मन्दिरों, जैन मूर्तियों और जैन महोत्सवोंका सुन्दर चित्रण किया है। उनके लेखस यह भी पता चलता है कि मन्दिरोंकी दीवारोंपर पौराणिक उपाख्यान चित्रित किये जाते थे। उन्होंने राज्योंकी ओरसे मन्दिरोंको ग्राम बगैरह दिये जानेका भी उल्लेख किया है।

जटिल मुनि कर्णाटक देशके निवासी थे और मोटे तोरेपर उनके समयकी सीमा ई० ६५० से ७५० तक है। अतः ऊपर लिखी वातोंको यदि दक्षिण भारतमें जैनधर्मकी तत्कालीन परिस्थितिके प्रकाशमें देखा जाय तो य निरर्थक मालूम नहीं होंगी। उस समय बादामीके चलुक्य वंशका राज्य था। ई० ६३० के लगभग हार्षवर्धनका विजेता पुलकेशी द्वितीय सबसे अधिक शक्तिशाली राजा था। किन्तु ई० ६४२ में उसे काञ्चीके पहलव राजा नरसिंहवर्मके द्वारा परास्त होना पड़ा। परन्तु उसके पुत्र विक्रमादित्य प्रथमने पहलवोंको हराकर ई० ६५५ में अपने वंशकी गिरती हुई मर्यादाकी रक्षा की। ई० ७४० में विक्रमादित्य द्वितीयने पहलवोंके विरोधको अच्छी तरह शान्त कर दिया। इस चालुक्य-कालमें जैनधर्मका खूब प्रसार हुआ। उसी समय ई० ६३४ में रविकीर्तिने जिसने पुलकेशी द्वितीयसे बहुत अधिक साहाय्य प्राप्त किया था, मेगुटीका मन्दिर बनवाया और प्रसिद्ध ऐहोळे शिलालेखमें उसका उल्लेख किया।

चालुक्यनरेश पुलकेशी द्वितीयके हाथोंसे बनवासी कदम्बोंने गहरी हार खाई। ई० ६०७ से आगे कदम्बवंशके इतिहासका कुछ समय अन्धकारमय है। बादको बनवासी प्रदेश आलूप नरेशोंके हाथमें आया। कदम्ब नरेशोंके विशेषतया मृगेश वर्मा (ई० ४७५-४९०) के समयमें जैनधर्मने बड़े अच्छे दिन देखे। उस समय जैनमन्दिरोंको मिली हुई जर्मीदारी, तत्कालीन शिलालेखोंमें वर्णित महोत्सव और उन महोत्सवोंके व्ययके लिये राजाओंके द्वारा दी गई उदार सहायतासे प्रकट है कि कदम्ब-साम्राज्यमें जैनधर्म एक सर्वप्रिय धर्म था, और वहाँकी अधिकतर जनता जिनेन्द्रको पूजती थी। उस समय यह शैवधर्मका एक जबर्दस्त प्रतिरोधी हो रहा था। राष्ट्रकूटोंके समयमें इसे नया बल मिला।

१ देखो, जी. एम. मोरेसका 'कदम्बकुल' पृ. ३५।

२ " " " पृ. २५२।

आलूपोंके मतसे हम अनजान हैं । किन्तु चूँकि चालुक्य जैनधर्मके सहायक थे, इसलिए कदम्बोंका पतन हो जानेके बाद भी जैनधर्मका वही रूप रहा जो कदम्बोंके समयमें था । सातवीं शताब्दीके अन्तमें चालुक्यनरेश विनयादित्यने गंग-वंशको अपने अधीन कर लिया । गंग-वंशकी प्रतिष्ठा जैनोंके संरक्षणमें हुई थी और गंग-नरेश, कुछ राष्ट्रकूट, और कलचुरी-नरेश तथा प्राचीन होयसेल नरेशोंके समयमें जैनधर्म राजधर्म था ।

ऊपर हम देख चुके हैं कि उस समय चालुक्य और पल्लव किस प्रकार लड़ रहे थे । आठवीं शताब्दीके मध्यमें पल्लवोंकी शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी । पल्लवोंके समयमें काञ्ची जैनोंका एक प्रसिद्ध केन्द्र था । समन्तभद्र, अकलंक तथा अन्य जैनाचार्य काञ्चीके साथ सम्बद्ध थे । वर्तमान विण्णुकाञ्ची और शिवकाञ्ची विभागसे जिनकाञ्चीका स्थान बहुत दूर है । वह बतलाता है कि शैव और वैष्णवोंके आधिपत्यसे बहुत पहले काञ्चीवरम्‌की भूमिमें जैनधर्मने बहुत अच्छे दिन देखे थे । किन्तु सुन्दर पाण्ड्यका समय जैनधर्मकी अवनतिका समय था और वह अवनति शैवधर्मानुयायी चोल-वंशके समयमें भी जारी रही । चोलोंसे पहले, ६४० में जैव चीनी यात्री हश्वन्तसांग दक्षिणमें गया था तो उस समय पल्लव-राज्य और पाण्ड्य-राज्यमें बहुतसे दिग्म्बर जैन और जैनमन्दिर थे ।

दक्षिण भारतके इस इतिहासके घटनाक्रमको दृष्टिमें रखते हुए हमें जटिलकविके वर्णनोंपर विचार करना ही पड़ता है । आज भी हम बहुतसे प्राचीन जैनमन्दिर देखते हैं, जिनमेंसे कुछ परिवर्तित कर दिये गये हैं और कुछ खण्डहर हो गये हैं । जटिलकविने मन्दिर-निर्माणपर बहुत जोर दिया है । बहुमूल्य रत्नोंकी मूर्तियाँ बनवानेका उनका विचार कोरी कल्पना ही नहीं है । मूङ्बिद्री, हूमच वगैरहमें हम बहुमूल्य रत्नोंकी मूर्तियाँ देखते हैं । ये रत्न समुद्र-पारसे हिन्दुस्तानमें लाये गये थे । दक्षिण भारतमें मूर्ति-पूजा और मन्दिर-निर्माणका आधिक्य जैनधर्मके प्रभावका ही फल है । बहुतसे राजाओंने जैनमन्दिरोंको जमीन और ग्राम दानमें दिये हैं । जटिल कविने १०८ ग्रामोंके दानका जो उल्लेख किया

१ 'मैसोर अण्ड कुर्ग, पृ. २०३ ।

२ 'बली हिस्त्री आफ इण्डिया,' पृ. ४५३-४ ।

३ 'स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म,' पृ. ७७ ।

है, वह तत्कालीन परम्पराका एक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हो सकता है। कदंब, चालुक्य और इतर नरेशोंके द्वारा दिये गये दानोंका उल्लेख शिला-लेखों और ताम्रपत्रोंमें मिलता है। जटिलके लेखके अनुसार दीवारोंपर चित्र अङ्कित करनेकी पद्धति भी दक्षिणमें पाई जाती है, जैसा कि मूड़विद्री, हलेबीड़ और जिनकाङ्गी या तिरुपतिकुनरम्के मन्दिरोंमें देखा जाता है। यद्यपि उनमेंसे कुछ मन्दिर बहुत बादके हैं, किन्तु वे प्रचलित रिवाजको बतलाते हैं।

६ अश्वघोष और जटिल—जटिल कविपर अश्वघोषका विशेष प्रभाव है। सौन्दरनन्द और बुद्ध-चरितके साथ वराङ्गचरितकी तुलना करनेपर बहुत-सी समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। अश्वघोष बौद्ध आचार-विचारके पक्षपाती हैं और जटिल जैन आचार-विचारके। अश्वघोषने बौद्ध परिभाषिक शब्दोंका स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग किया है और जटिलने जैन परिभाषिक शब्दोंका। मनुष्य-जन्मके लाभ, सांसारिक सुखोंकी असारता, धर्म अर्थ वैग्रहका पारस्परिक सम्बन्ध आदि वार्ताओंके चित्रणमें दोनों ग्रन्थकारोंकी एक ही दृष्टि पाई जाती है। दोनों ही ग्रन्थकार ब्राह्मण-पुराणोंसे उदाहरण देते हैं। सौन्दरनन्दके १४ वें परिच्छेदमें बौद्ध साधुके नित्यकर्मका वर्णन है। वराङ्ग-चरितके भी अनित्य दो सर्गोंमें जैन-साधुके आचारोंका वर्णन है। सौन्दरनन्दके १६ वें परिच्छेदमें बौद्ध सम्मत निर्वाणका स्वरूप बतलाया गया है, वराङ्गचरितके भी दसवें सर्गमें मोक्षविषयक जैन मान्यताका वर्णन है। वरांगचरितमें कुछ व्याकरणसम्बन्धी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो अश्वघोषकी रचनामें भी वर्तमान हैं। कई जगह उपमा, विचार और शब्द-साम्य भी है। वरांगचरित नाम भी बुद्ध-चरितका स्मरण कराता है। इनके सिवाय कुछ अन्य भी समानताएँ हैं। इस सब समानताओंपर दृष्टि डालनेसे ऐसा प्रतीत है कि जटिल-कविने अश्वघोषके ग्रन्थोंको देखा था, क्यों कि शून्त्सांगके उल्लेखके अनुसार उस समय दक्षिणमें बौद्धधर्मकी अच्छी हालत थी। अतः दक्षिण भारतमें अश्वघोषकी रचनाएँ उपलब्ध रही होंगी। किन्तु सौन्दरनन्द और बुद्ध-चरितकी जो प्रतियाँ प्रकाशमें आई हैं, वे उत्तर भारतमें ही मिली हैं। कालिदास और भारविकी रचनाओंमें और वरांग-चरितमें कोई साम्य नहीं मिलता है।

७ वराङ्गचरित और उत्तरकालीन ग्रन्थकार—जहाँतक हम जैनसाहित्यसे परिचित हैं, वराङ्गचरित पुराण और काव्यके मिश्रणकी

शैलीमें रचे गये अति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमेंसे है। रविषेणने अपना पद्मचरित ई. ६७७ में समाप्त किया था। संस्कृतके जैन पौराणिक काव्योंमें सम्भवतः केवल यही एक ऐसा ग्रन्थ है जो वराङ्गचरितके पूर्वज होनेका दावा कर सकता है। किन्तु अभी यह बात निश्चित रीतिसे नहीं कही जा सकती। संस्कृतमें वराङ्गचरितसे पीछेके बहुतसे जैन पुराण और काव्य वर्तमान हैं। किन्तु मुझे उनपर जटिल-कविका कोई विशेष प्रभाव प्रतीत नहीं होता। वादिराजने अपने पार्श्वनाथ-चरितमें बहुतसे ग्रन्थकारोंका स्मरण किया है किन्तु अचरज है कि उन्होंने जटिलकविका स्मरण नहीं किया। यदि वराङ्ग-चरितकी प्रतियोंका कम परिणाममें पाया जाना किसी बातका सूचक है तो हम अनुमान कर सकते हैं कि यथापि जटिल कविकी ख्याति कर्नाटकसे बाहर भी फैली थी, तथापि वराङ्ग-चरितका अधिक प्रचार नहीं हो सका था। जिनसेनने वराङ्गचरितसे बहुत सी बातें लेकर उन्हें आदिपुराणमें अपने शब्दोंमें निबद्ध किया है। उदाहरणके लिये—वरा० १,६-७ और आदि० १,१२२-२४, वरा० १,१०-११ और आदि० १,१२७-३०, वरा० १,१५ और आदि० १,१३३, वरा० १,१६ और आदि० १,१४३-४४ की परस्पर तुलना करनी चाहिये। चामुण्डरायने, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, वराङ्गचरितसे कुछ सामग्री ली है। सोमदेवने (ई. ९५९) अपने यशस्तिलकचम्पू (आ० ७ पृ. ३३२) में ‘भवति चात्र श्लोकः’ लिखकर एक पद्य उद्घृत किया है, जो वराङ्गचरितके पाँचवें सर्गका १०३ वाँ श्लोक है।

८ वराङ्गचरितमें व्याकरणसम्बन्धी विशेषताएँ—कुछ विशेष शब्द, जिनका ग्रन्थकारने उपयोग किया है, निम्न प्रकार हैं—‘गोण’=बैल (६, १५)। इस शब्दका मूल प्राकृत है। ‘फुल्ल’ (२, ७३) ‘भिण्ड’ (१२, ८५) और ‘तुम्ब’ (३१, ३२) शब्द भी इसी प्रकारके हैं। ‘मैथुन’ (२१, ७५ और २५, ६) जो कन्नड़के ‘मैदुन’ और मराठीके ‘मेहुणा’ का स्मरण करता है, प्राचीन संस्कृतमें इस अर्थमें व्यवहृत नहीं हुआ है। बर्कर=बकरा (२७, १७) शब्द भी अप्रसिद्ध है। अद्धा=काल शब्द प्राकृत भाषाके जैन ग्रन्थोंमें काफी मिलता है। ‘तिरश्च’ शब्द प्राकृत भाषाके ‘तिरिच्छ, या ‘तिरच्छ’ शब्दका स्मरण करता है। ‘सम्पद’के स्थानमें ‘सम्पदा’ शब्दका प्रयोग किया है। ‘सदन’ के लिये ‘सादन’

‘मृदीका’ के लिये ‘मृदीक’ और ‘अवहिता’ के लिये ‘आवहिता’ का प्रयोग सम्भवतः छन्दकी बजहसे करना पड़ा है, ऐसा मालूम होता है।

कुछ शब्दोंका लिङ्ग ध्यान देने योग्य है—गेह, जाल, भूषण, चूर्ण और चक्र शब्दको पुलिंगमें रखा है, और अक्षत और बृत्तान्त शब्दको नपुंसक लिङ्गमें। संशा शब्दोंके साथ ‘तम’ प्रत्ययका प्रयोग किया है यथा—वणिकृतम्, बन्धुतम्, अर्थतम्। एक जगह (४, ११४) ‘तरतम्’ शब्दका प्रयोग विशेषणके तौरपर किया है। बहुतसे संज्ञावाचक और विशेषणवाचक शब्दोंका प्रयोग भाववाचकके रूपमें किया है, फिर भी उसके साथ भाववाचक प्रत्यय नहीं जोड़ा गया है।

कुछ धातुरूप ध्यान देने योग्य हैं—भर्त्यन्ति, आददुः, आददाति, मृग्यामि, प्रसवन्ति इत्यादि। एक दो स्थानोंपर डबल उपसर्गोंका भी उपयोग मिलता है यथा—उपोपविष्ट, अध्यधिष्ठित। अश्वघोषने भी ‘उपोपविष्ट’का प्रयोग किया है और यह रामायणमें भी मिलता है। ऐसा मालूम होता है कि जटिल कविने बहुतसे अनियमित रूपोंका भी व्यवहार किया है यथा—‘ससृजुः’के लिये ‘ससर्जुः’, ‘सच्चिदध्युः’के लिये ‘सच्चिदध्युः’, ‘जघनिथ’के लिये ‘जग्निथ’, ‘जुहुवुः’के लिये ‘जुहुः’, ‘ममदुः’के लिये ‘ममदुः’, ‘समश्रुवानानाम्’ या ‘समश्नुवताम्’के लिये ‘समश्नुताम्’, ‘संविभाजितुम्’ या ‘संविभक्तुम्’के लिये ‘संविभाजितुम्’, ‘सुसाध्य’के लिये ‘सुसाध्यत्वा’, ‘अविगणय’के लिये ‘अविगण्य’ ‘रत्वा’के लिये ‘रत्वा’ और ‘परिमध्य’के लिये ‘परिमंध्य’। कहीं कहीं मूल धात्वर्थमें गिजन्तका प्रयोग किया है। सजातीय कर्मकारकके साथ नृत् और वच् धातुका सकर्मक रूपसे प्रयोग किया है। किसी किसी श्लोकमें ‘एवम्’ और ‘इत्थम्’ तथा ‘चेत्’ और ‘यदि’ दोनोंका प्रयोग किया है। आह अथवा उपाहके बदलेमें ‘साह’ शब्दका व्यवहार किया है। ग्रन्थमें सापेक्ष समासोंका बाहुल्य है। पाणिनिके सूत्र ‘आनङ्गङ्गतो द्वद्वे (६-३-२५) की उपेक्षा की गई है। कहीं कहीं ग्रन्थकारने समाहरका प्रयोग नहीं किया है, जो प्राचीनोंके मतसे आवश्यक था। यथा—हस्त्यश्वयानानि, पदातिहस्त्यश्वरथैः। ‘सवैजयन्तीकाः’ के स्थानमें ‘सवैजयन्त्यः’ और ‘नेतृक्योः’के स्थानमें ‘नेत्रोः’का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है। सन्धिके साधारण नियमोंका ध्यान रखा गया है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ चरणके मध्यमें

ग्रन्थकार सन्धिको अनिवार्य नहीं समझते थे । अनियमित सन्धिके दो उदाहरण इस प्रकार हैं—सुक्षेत्रे+अज्ञः=सुक्षेत्रयज्ञः और ग्रामे+एकरात्रम्=ग्रामैकरात्रम् । कारकोंके प्रयोगमें भी वैचित्र्य है । उक्त प्रयोगोंकी कुछ विशेषताएँ महाभारत और रामायणके लिये साधारण वस्तु हैं और उनके सम्बन्धमें कहीं कहीं जटिल और अश्वघोषमें ऐकमत्य है ।

९ वराङ्गचरितके छन्द—वराङ्गचरितमें निम्न छन्दोंका उपयोग किया गया है—अनुष्टुभ्, उपजाति, द्रुतविलम्बित, पुणिताग्रा, प्रहर्षिणी, भुजङ्गप्रयात, मालभारिणी, मालिनी, वसन्ततिलका, और वंशस्थ । अश्वघोषकी तरह जटिल कविको भी उपजाति छन्द विशेष प्रिय था, जैसा कि ग्रन्थसे स्पष्ट है । वराङ्गचरितकी उपलब्ध प्रतियोंमें बहुतसे पाद दोषपूर्ण हैं । छन्दसम्बन्धी अनियमितता भी दृष्टिगोचर होती है । यथा—अनुष्टुभ् छन्दके कुछ चरणोंमें नौ मात्राएँ हैं । एक उपजाति छन्दमें एक चरण वंशस्थ वृत्तका है । मालभारिणी पद्मोंकी कुछ पक्षियोंमें मात्राएँ कम हैं, और कुछमें अधिक । इत्यादि

१० वराङ्गचरितकी शैली—दो कारणोंसे वराङ्गचरितकी शैलीके बारेमें न्यायपूर्वक कुछ कह सकना कठिन है । एक तो उपलब्ध प्रतियाँ ठीक नहीं हैं, उनमें बहुतसे वाक्य विगड़ गये हैं, दूसरे ग्रन्थके मुख्य भागको सैद्धान्तिक वर्णन और वाद-विवादने धेर रकवा है । वराङ्गचरितमें कालिदासकी तरह न तो सुन्दर कल्पनाएँ ही हैं, न परिपूर्ण उपमाएँ और न संस्कृतभाषाका सरस प्रवाह । सैद्धान्तिक वर्णनसे ग्रन्थके काव्योचित भावको हानि पहुँची है । प्रथमसर्गमें जिस काव्य-प्रवाहके दर्शन होते हैं, वह अन्त तक एक-सा नहीं बहा है । घटनाक्रमका चित्रण करनेमें तथा नैतिक उपदेश देनेमें जटिल कवि पटु हैं । यद्यपि उनका पालकी और मन्दिरका वर्णन बोजड या क्लिष्ट है, किन्तु युद्धके दृश्य एक महान् पौराणिक कविके अनुरूप हैं । दक्षिणके शिल्पशास्त्रियोंकी तरह जटिल कवि दृश्योंका चित्रण करनेमें खूब आनन्द लेते हैं । ग्रन्थमें जहाँ तहाँ सुन्दर पद्य दृष्टिगोचर होते हैं । कविने बहुत-सी उपमाएँ अपने पूर्वजोंसे ली हैं, किन्तु उनकी अपनी उपमाएँ भी प्रशंसाके योग्य हैं । यथा—

निदाघमासे व्यजनं यथैव करात्करं सर्वजनस्य याति ।

तथैव गच्छन् प्रियतां कुमारो वृद्धिं च बालेन्दुरिव प्रयातः ॥२८,६०॥

सम्भवतः इस प्रकारकी उपमाओंपर मुग्ध होकर ही जिनसेनने जटिलमुनिकी कवित्वशक्तिका समादर किया था ।

७ चार अन्य वराङ्गचरित

१ वर्धमान कविका संस्कृत वराङ्गचरित

उत्तरकालमें राजकुमार वराङ्गकी कथा बहुत सचिकर सिद्ध हुई और वर्धमान कविने संस्कृत पर्योंमें दूसरे वराङ्गचरितकी रचना की । यह चरित जटिलके वराङ्गचरितका संक्षिप्त रूप है । अनेक स्थलोंपर दोनोंकी शब्द रचनामें साम्य है । वर्धमान कविने केवल धार्मिक उपदेशों और विविध वर्णनोंकी काँट छाँट की है, किन्तु कथानककी रूप रेखा ज्योंकी त्यों रहने दी है । वर्धमान कविने लिखा है—

गणश्रैर्या कथिता कथा वरा वराङ्गाजस्य सविस्तरं पुरा ।

मयापि संक्षिप्त्य च सैव वर्ण्यते सुकाव्यबन्धेन सुबुद्धिर्विधिनी ॥

इससे संभवतः उनका यही आशय है कि उन्होंने जटिल कविके ग्रन्थको संक्षिप्त किया है । वर्धमान कविके वराङ्गचरितकी प्रस्तावनामें ५० जिनदासने लिखा है कि यह वराङ्गचरित वही है, जिसका उल्लेख जिनसेनके हरिवंश-पुराणमें है । किन्तु यह मान्य नहीं किया जा सकता, क्यों कि ऊपर यह निश्चित रीतिसे प्रमाणित किया गया है कि जिनसेनके द्वारा उल्लिखित वराङ्गचरितके कर्ता जटिल कवि हैं ।

वर्धमान कविका समय निर्णीत करनेके लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं है । क्योंकि उन्होंने अपने बारेमें बहुत ही कम लिखा है । वे मूलसंघ, बलात्कारगण और भारती गच्छके भद्राक थे और परवादिपञ्चानन उनकी उपाधि थी । मैं वर्धमान नामके दो व्यक्तियोंको जानता हूँ । उनमेंसे एक न्यायदीपिकाके कर्ता धर्मभूषणके गुरु थे । यदि यही वर्धमान प्रकृत वर्धमान हैं तो वराङ्गचरित अधिकसे अधिक इसकी चौदहवीं शताब्दीके मध्यमें रचा गया है क्यों कि धर्मभूषणका समय विद्याभूषणने ई. १६०० के लगभग और पाठेकने ई. १३८५

१ यह चरित मराठी अनुवादके साथ प्रकाशित हो चुका है ।

२ इन्डियन लॉजिक, मिडियावल स्कूल पृ. ५४ ।

३ भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूनाकी पत्रिका, जि. १२, ४, पृ. ३७६ ।

बतलाया है। दूसरे वर्धमान हूमच शिललेखके रचयिता हैं। उनका समय राहस-सौहबके अनुसार १५३० ई. के लगभग है। इनके सम्बन्धकी एक बात उल्लेखनीय है कि यह बलात्कारगणके अनुयायी थे। वर्तमान दशामें यह वराङ्गचरित ईसाकी तेरहवीं शताब्दीसे पहलेका नहीं हो सकता। १३ वीं शताब्दीके बाद जटासिंहनन्दि और उनके वराङ्गचरितका उल्लेख बहुत कम देखनेमें आता है। यदि यह एक आकस्मिक घटना नहीं है तो इसका संभाव्य कारण यही हो सकता है कि वर्धमान कविके वराङ्गचरितका अच्छा प्रचार हो गया था। आगे वराङ्गचरितके जिन कब्रियों और हिन्दी भाषान्तरोंका उल्लेख किया जाता है उनका आधार वर्धमान कविका ही वराङ्गचरित है।

२ कष्ठड्ड वराङ्गचरित

एक वराङ्गचरित कनडी भाषामें धरणि पण्डितने बनाया है। ये पण्डित ई० १६५० के लगभग हुए थे, और विष्णुवर्धनपुरके निवासी थे। यह चरित कनडी भाषाके भासिनी षट्पदी नामक प्रसिद्ध छन्दमें रचा गया है। रचयिताका कहना है कि पूर्व रचनाओंके आधारपर इसकी रचना की गई है। असलमें ग्रन्थकारने अन्य पूर्ववर्ती ग्रन्थकारोंके साथ साथ एक वर्धमान यतिका भी उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि वर्धमानका वराङ्गचरित उनकी रचनाका आधार है। इस ग्रन्थकी एक प्रति आर० नरसिंहाचार्यको मिली है। किन्तु वह अपूर्ण है, उसमें केवल आठ परिच्छेद हैं।

३ हिन्दी वराङ्गचरित

लाला पन्नालालजी देहलीकी सजनतासे इस ग्रन्थकी एक प्रति मुझे प्राप्त हुई थी। यह प्रति लाला हरसुखराय जैन पुस्तकालय, मन्दिर पञ्चायती, देहलीकी है। इसका लेखन-काल सम्बत् १९०५ है। हिन्दी छन्दोंमें इसकी रचना हुई है। अन्तिम पद्यमें लिखा है कि संस्कृतमें होनेके कारण सब लोग वर्धमान कविके वराङ्गचरितको नहीं समझ सकते, इस लिये इसका भाषानुवाद करनेकी आवश्यकता हुई। भदावर प्रान्तके (ग्वालियर स्टेट) अटेर नामक स्थानमें विश्वभूषण नामके भट्टारक रहते थे। उनके शिष्यका नाम ब्रह्मसागर था। एक बार यात्राके लिये वे गिरनार गये और लौटते समय, मार्गमें, हिंडौनमें ठहरे। वहाँ बहुतसे धार्मिक गृहस्थ रहते थे। उनके एक शिष्य पाण्डे लालचन्द थे।

उन्होंने सबके उपकारके लिये संस्कृतसे भाषासे अनुवाद किया। उनके इस कार्यमें शोभाचन्द्रके पुत्र नथमलने बहुत सहायता दी और माधशुक्ला पंचमी सम्बत् १८२७ को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

४ दूसरा हिन्दी वराङ्गचरित

कमलनयनके हिन्दी वराङ्गचरितके कुछ प्रासङ्गिक अंश बाबू कामताप्रसादजीके द्वारा प्राप्त हुए थे। अन्तिम सन्धिसे पता चलता है कि वर्धमान कविके संस्कृत
वराङ्गचरितका यह छन्दोबद्ध भाषानुवाद है। कमलनयन मैनपुरीके निवासी थे। वे यदुवंशी बुद्धेले थे। उन्होंने ज्योष्ट्र शुद्ध पूर्णिमा सम्बत् १८७२ में इस ग्रन्थको समाप्त किया था।

स्याद्वाद जैन विद्यालय
बनारस
कार्तिकी पूर्णिमा
वी. नि. सं. २४६५

हिन्दी अनुवादक—
कैलाशचन्द्र शास्त्री

१ वराङ्गचरितकी अंग्रेजी प्रस्तावनाका यह अविकल अनुवाद नहीं है। इसमें अंग्रेजी न जाननेवाले हिन्दी पाठकोंके लिये उसके मुख्य मुख्य आवश्यक अंशोंका सार दे दिया गया है। विशेष विस्तार और प्रामाणिक संकेत आदि जाननेके इच्छुक श्रीयुत उपाध्यायजीकी अंग्रेजी प्रस्तावनासे जान सकते हैं।

—अनुवादकर्ता

विषयानुक्रमः

सर्गः १

१-५ रत्नत्रयनमस्तिक्यारूपं मङ्गलाचरणम् । ६-८ कथाप्रबन्धस्य सप्ताङ्गानि ।
 ८-२२ उपदेशस्य वक्तव्योत्तरगुर्वादिसंबाधि च विवेचनम् । २३-३१ विनीत-
 विषयवर्णनम् । ३२-४५ रम्यातटस्य वर्णनम् । ४६-५४ श्रीधर्मसेनभूपस्य
 वर्णनम् । ५५-६२ अन्तःपुरवर्णनम् । ६३-६७ गुणवतीवर्णनम् । ६८-७०
 राज्ञः सुखोपभोगादिवर्णनम् ।

सर्गः २

१-७ वराङ्गस्य जन्म गुणवर्णनं च । ८-१३ तद्विवाहप्रस्तावे श्रेष्ठीवचनम् ।
 १४-३३ तद्विषये मन्त्रिमुख्यानां विचाराः । ३४-५० दूतप्रेषणं राजां संमतिश्च ।
 ५१-५६ कल्याणमहोत्सवे शिविकावर्णनम् । ५७-६३ राजां राजकुमारीणां
 चागमनम् । ६४-६९ श्रीमण्डपवर्णनम् । ७०-७३ विवाहस्नपनादिवर्णनम् ।
 ७४-८५ जनानां विविधविचाराः । ८६-८८ पाणिग्रहणं विसर्जनं च । ८९-९५
 वराङ्गस्य सुखोपभोगादिवर्णनम् ।

सर्गः ३

१-८ वरदत्तमुनेर्वर्णनं, उत्तमपुरे विहारश्च । ९-११ उद्यानपालस्य राजो
 विज्ञापनम् । १२-३२ सान्तःपुरस्य राजो नगरजनानां च निर्गमः । ३३-३७
 मुनिभ्यो बन्दनादि । ३८-४२ राजो जीवाजीवसंबन्धिनी पृच्छा । ४३-६३
 सुखदुःखकारणमधिकृत्य वरदत्तमुनेरूपदेशः ।

सर्गः ४

१-८ कर्मणो मूलोत्तरप्रकृतयः । ९-२३ ज्ञानावरणम् । २४-२५
 दर्शनावरणम् । २५-२६ वेदनीयम् । २७-३२ मोहनीयम् । ३३-३४
 आयुष्म् । ३५ नाम । ३६ गोत्रम् । ३७-३८ अन्तरायः । ३९-४१ कर्मणां
 परा जघन्या च स्थिती । ४२-१०४ बन्धहेतवः, बन्धकारणानि कर्मफलं च ।
 १०५-१४ जीवकर्मणोः संबन्धादिवर्णनम् ।

सर्गः ५

१-४ लोकस्वरूपम् । ५-८ वातवल्याः । ९-१६ नारकी गतिः, नरकाणां नामानि प्रभेदाश्च । १७-२५ तत्र शीतोष्णादिसुखदुःखविचारः । २६-२९ नरकगामिनां निर्देशः । ३०-१०१ नरकेषु जीवानां कर्माणुसारेण दण्डविधानवर्णनम् । १०२-१०३ क्षुद्रमस्यस्योदाहरणम् । १०४-११० आयुःप्रमाणं सुखाभावश्च ।

सर्गः ६

१-३२ तिर्यगतेभेदास्तत्र दुःखवर्णनं च । ३३-३७ तिर्यगतिगामिनां निर्देशः । ३८-४४ शरीराकृतिः, आयुःप्रमाणं च । ४४-५५ कुलयोनि-संख्यादिवर्णनम् ।

सर्गः ७

१-१३ मानुषजातिविचारे भोगभूवर्णनम् । १४-२३ दशविधकल्पवृक्षाः । २४-२७ भोगभूगामिनां निर्देशः । २८-३४ दानविचारे तद्देवकलादिवर्णनम् । ५५-६७ भोगभूमौ शरीरलक्षणसुखोपभोगादिवर्णनम् ।

सर्गः ८

१-४ कर्मभूमावनार्था आर्याश्च । ५-२७ धर्मनिवृत्य मनुष्यजन्मनो दुर्लभत्वम् । २८-३९ अपुष्यभाजां वर्णनम् । ४०-५९ पुण्योपेतानां वर्णनम् । ६०-६९ धर्मचरणस्यावश्यकता शरीरस्वरूपश्च ।

सर्गः ९

१-११ देवलोका देवलोकवासिनश्च । २२-२४ विमानवर्णनम् । २५-३६ देवलोकगामिनां निर्देशः । ३७-५४ देवानां जन्मवपुवेषविलासदिवर्णनम् । ५५-६२ आयुःप्रमाणादिवर्णनम् ।

सर्गः १०

१-४ मोक्षस्य बाहुल्यादिवर्णनम् । ६-१० मोक्षवर्णनम् । ११-२८ मोक्षगामिनां सोदाहरणं वर्णनम् । २९-४२ सिद्धानामूर्धवगमनादिविशिष्टगुणवर्णनम् । ४३-६४ सिद्धानां क्षायिकसुखस्य वर्णनम् ।

सर्गः ११

१-३ सम्यक्त्वमिथ्यात्वादिविषये वराङ्गस्य प्रश्नः । ४-१२ मिथ्यात्वस्य सप्त भेदाः । १३-१६ मिथ्यात्वाशेन परंपरया मोक्षः । १७-३४ सम्यग्दर्शनं तद्वेदवर्णनं च । ३५-४० वराङ्गेण कृतमनुवत्प्रहणम् । ४१-५२ वराङ्गस्य पुगगमनं त्रातानुचरणम् । ५३-६५ मन्त्रिविजापनानुसारेण वराङ्गस्य युवराज-पट्टाभिषेकः । ६६-७२ नगरवासिनामानन्दः । ७३-८७ अन्येषां राजपुत्रा-गामसूयावचनानि मन्त्रिभिस्त्रिविवारणं च ।

सर्गः १२

१-३ यौवराज्याभिषेके नेन्द्रपतीनां संतोषः । ४-६ सुषेणमातुर्मृगसेनायात्मुचित्तसंक्षेपः । ७-१० विविक्तदेशे सुषेणस्य धिःकारः । ११-२३ यौवराज्ये सुषेणमास्थापयितुं सुबुद्धिमन्त्रिणे विज्ञापनं तत्सम्मतिश्च । २४-२८ सुबुद्धिना वराङ्गस्य छिद्रान्वेषणम् । २९-४४ मायाप्रयोगेन हयोत्तमयोर्विनयनं कुमारहरणं चैकेनाक्षेन । ४५-५७ कुमारस्य चिन्ता, अश्वस्य कृपे पतनं, प्राकृतमनुष्ठवच्च वराङ्गस्यारण्ये भ्रमणम् । ५८-७० गजेन्द्रसाहाय्येन वराङ्गस्य व्याघ्रादात्मविमोचनम् । ७१-८८ क्षुधाभिभूतस्य सरः प्रति गमनं पूर्वसुखादिस्मरणं च ।

सर्गः १३

१-३ स्नानकाले तस्य नक्रेण कृतं ग्रसनम् । ४-१८ प्राकृतकर्मचिन्ता, महाव्रतग्रहणं जिनस्तुतिश्च । १९-२३ जिनप्रसादाद् यक्ष्या कृतं तस्य विमोचनम् । २४-३५ वराङ्गनारूपया यक्ष्या वराङ्गवत्परीक्षा । ३६-३१ स्वदारसंतोषवते तस्य हृदयं, यक्ष्याश्च साभिनन्दनं प्रतिगमनम् । ४२-५७ अरण्ये वराङ्गस्य पुलिन्दानां बाधा बन्धनदुःखं च । ५८-६८ पुलिन्दकमारस्य विषदोषनिवारणेन तद्विमोचनम् । ६९-८९ वराङ्गस्य सार्थकबाधा सार्थपतिना कृतं स्वागतं च ।

सर्गः १४

१-३ सवराङ्गस्य सार्थसमूहस्य पुलिन्दबाधा । ८-२५ पुलिन्दकाना वणिजां च घोरयुद्धं, तत्र वणिक्सेनापराभवः । २६-४५ वराङ्गेन पराक्रमपूर्वकं कृतः पुलिन्दसेनाविनाशः । ४६-५३ वराङ्गस्य मूर्च्छा सार्थपतेश्च विलापः । ५४-६० प्रतिलब्धसंशस्य वराङ्गस्य सर्वैः कृतं सन्मानपूर्वकं चाभिनन्दनम् । ६१-६३ कश्चि-

द्रुटनाभ्नो वराङ्गस्य सर्वत्र यशोविस्तारः । ६४-७२ सार्थपतिसागरवृद्धिना सह नगरं प्रति गमनं तत्र सन्मानश्च । ७३-८० स्वगृह इव तत्र वासः सुखेन कालव्ययश्च । ८१-८९ वणिककुमारैः कश्चिद्द्रुटस्य वणिकप्रभुत्वे स्थापनम् । ८६-९८ पुरवासिनां तमधिकृत्य विचारास्तस्य लिलितपुरे सुखेन कालगमनम् ।

सर्गः १५

१-२२ अश्वेनापहृते कुमारे राजो दुःखम्, उत्तमपुरे सर्वत्र निराशा च । २३-४७ मातुः प्रियाङ्गनानां च शोकविलापादिवर्णनम् । ४८-५२ प्रियाङ्गनानां पावकप्रवेशनाय शशुरान्तिके विज्ञसिः । ६३-६९ सर्वज्ञवचननिवेदनेन तासां निरोधनं धर्मचरणाय विज्ञसिश्च । ७०-७४ मुनिपतेरुपदेशः । ७५-१०५ संसारस्वरूपवर्णनम् । १०६-१३१ द्रादशव्रतात्मकस्य धर्मस्य तत्फलस्य विवेचनम् । १३२-१४६ व्रतग्रहणानन्तरं तासां जिनपूजादौ कालव्ययः ।

सर्गः १६

१-२९ मधुराधिपललितपुराधिपयोर्गजनिभित्तो विग्रहः । ३०-४५ नरपति-समेतस्येन्द्रसेनस्य लिलितपुरं प्रति प्रयाणम् । ४६-७४ परचक्रभीत्या प्रजानां ललितपुरप्रवेशनं राजो मन्त्रिभिः सह मन्त्रविधिः । ७५-७८ राज्ञः सभासमक्षं युद्धाय शासनं नगरे च घोषणा । ७९-९० अस्मिन् प्रस्तावे कश्चिद्द्रुटस्य विचाराः । ९१-९९ कश्चिद्द्रुटस्य सागरवृद्धिं प्रति युद्धगमनविषये विज्ञसिः, तस्योपदेशश्च । १००-१११ सर्वानुमत्या कश्चिद्द्रुटस्य समराय गमनम् ।

सर्गः १७

१-८ कश्चिद्द्रुटे राजो विश्वासस्तस्मै दत्तं चाभिवचनम् । ९-२५ युद्धशासनं प्रयाणवर्णनं च । २६-३५ कश्चिद्द्रुटमुदिश्य पुरवासिनां मनोगतानि । ३६-८६ सैन्यशोभा युद्धवर्णनं च ।

सर्गः १८

१-२४ इन्द्रसेनदेवसेनयोर्युद्धम्, विजयस्य शौर्यं सेनाभङ्गश्च । २५-३८ कश्चिद्द्रुटेयेन्द्रसेनयोः संवादो वाक्लहश्च । ३९-६३ तयोर्युद्धं तस्य वर्णनं च । ६४-१०९ इन्द्रसेनदेवसेनयोः परस्परं युद्धम्, कश्चिद्द्रुटस्यागमनं, इन्द्रसेनबलविनाशश्च । ११०-१३० सर्वत्र जयजयकारः, कश्चिद्द्रुटस्य सानन्दं नगरप्रवेशश्च ।

सर्गः १९

१-७ कन्याप्रदानं प्रति राजा कृतः कश्चिद्द्रूटस्य वंशविमर्शः कश्चिद्द्रूटस्य विनयपूर्णवचांसि च । ८-११ स्वचचनपालनाय राजे मन्त्रिणां विज्ञसिः, कश्चिद्द्रूटसुनन्दाविवाहस्य निश्चयश्च । १२-२६ ललितपुर्यो विवाहसंभारादिवर्णनम् । २७-३१ तयोर्दर्शने पुरवासिनां मनोरमातनि । ३२-३९ सुनन्दाकश्चिद्द्रूटयोर्विलासः । ४०-४४ कश्चिद्द्रूटदर्शनेन मनोरमायाः कामवाधा । ४५-६१ कश्चिद्द्रूटस्यान्तिके दूतीगमनं तस्य च स्वदारसंतोषवते स्थैर्यम् । ६२-७१ परस्परसंलापानन्तरं कश्चिद्द्रूटस्य विवाहायानुमतिः । ७२-८१ दूत्या कृतं मनोरमायाः सांत्वनम् ।

सर्गः २०

१-६ वाजिनापहृते कुमारे सुषेणस्य यौवनराज्याभिषेकः । ७-११ परचक्रागमे सुषेणपराभवः । १२-२७ वृद्धपितुः शोकः, साहाय्यार्थं ललितपुराधिपतेर्विज्ञसिश्च । २८-३८ राजा कश्चिद्द्रूटस्य कृतं निवेदनं, पितुः साहाय्यार्थं गन्तुं विज्ञसिश्च । ३९-४५ कन्याशतेन मनोरमया च विवाहः । ४६-५४ सागरवृद्धिना सेनया च सह वराङ्गस्य स्वविषयं प्रति गमनम् । ५५-७४ वराङ्गस्य प्रत्यागमे राज्ञः परमानन्दः । ७५-७८ बकुलेश्वरपरिभवानन्तरं पुरप्रवेशाय वराङ्गस्य निश्चयः । ७९-८० बकुलेश्वरस्य पलायनम् । ८१-९१ वराङ्गस्य पुरप्रवेशः स्वजनसमागमश्च ।

सर्गः २१

१-४ पूर्वार्जितकर्मशक्तिः । ५-१७ देवसेनस्य प्रतिनिवर्तनं वराङ्गस्य च न्यायमार्गेण राज्यपालनं क्षमाभावश्च । १८-२५ नवराज्यनिवेशनाय पितुः समीपे इच्छाप्रदर्शनं तत्संमतिश्च । २६-३१ सरस्वतीनदीतीरे आनर्तपुरस्थापनम् । ३२-४९ आनर्तपुरादिवर्णनम् । ५०-५४ सागरवृद्धेरपि नृशमिषेकः । ५५-७५ राज्यविभजने, बकुलेश्वरपुत्रीग्रहणेन तस्यानुग्रहः । ७६-८१ वराङ्गस्य सुखेन राज्यपालनम् ।

सर्गः २२

१-२० धर्मेण भूमि पालयतो वराङ्गस्य षड्क्रहतुषु सुखोपभोगवर्णनम् । २१-२६ आत्मकर्तव्यमुद्दिश्य राजे देव्या कृतः प्रश्नः । २७-५४ गृहिधर्मवर्णनं तत्रापि जिनपूजामहत्वं च । ५५-७९ जिनालयकरणं तद्वर्णनं च ।

सर्गः २३

१-४७ विधिपूर्वकं जिनेन्द्रबिम्बस्थापनपूजादिवर्णनम् । ४८-७३ तत्काले
नगरशोभा राजो जिनालयं प्रति गमन, जिनपूजाप्रतिमास्थापनादिवर्णनं च ।
७४-८३ मुनिमुखेन पूजाफलवर्णनम् । ८४-८७ मुनेः स्तुत्यान्वितमाशीर्वचनम् ।
८८-९३ राजो दानादिधर्माचरणम् । ९४-१०७ अष्टाहिकादिपूजावर्णनम् ।

सर्गः २४

१-१४ राजो विषयोपभोगादिवर्णनम् । १५-२० पुरुषादिवादमधिकृत्य
राजो मन्त्रिवर्गस्य पृच्छा । २१-५३ दैवनियोगदेवकालग्रहस्वभावेश्वरनियति-
पुरुषशून्यवादादिनिराकरणम् । ५४-६१ कर्मवादस्य स्थापनमनेकान्तयुक्त्या
विवेचनं च । ६२-७७ शुभाशुभकर्मफलवर्णनम् ।

सर्गः २५

१-११ ईश्वरकर्तृत्ववर्णादिवा विचाराः । १२-२७ वेदोपदिष्ट्यशहिंसायाः
सोदाहरणं निराकरणम् । २८-४९ द्विजातिश्रेष्ठत्वस्य वैदिककर्मणां विविधलोक-
वादानां च वैयर्थ्यम् । ५०-५९ त्रिविधीतीर्थानां वर्णनम् । ६०-७० द्विजाति-
दानपितृबलीत्यादीनां वैयर्थ्यम् । ७१-७३ हेतुवादविचाराः । ७४-९८ आस-
मीमांसायां परदेवतानां दोषाविक्षरणेन जिनानामहीतामासत्वसिद्धिः ।

सर्गः २६

१-३ द्रव्यगुणपर्यायनिर्देशः । ४-१३ षड्द्रव्यप्रस्तावे जीवविचारः । १४-
२२ षड्विधपुद्गलविचारः । २३-३२ धर्माधर्मकालाकाशविचारः । ३३-४४
परिणामत्वादिद्रव्यलक्षणविवेचनम् । ४५-७५ प्रमाणनयविवेचनम् । ७६-९०
अनेकान्तात्मकस्याद्वादस्य विवेचनम् । ९१-१०७ रत्नत्रयस्य विवेचने दर्शनस्य
श्रेष्ठत्वम् ।

सर्गः २७

१-३० प्रथमानुयोगप्रस्तावे कालसंख्याभेदादिविवेचनम् । ३१-३२ त्रिषष्ठि-
कारणमानुषाः । ३२-३६ षोडश मनवः । ३७-३९ चतुर्विंशति तीर्थकराः ।
४०-४१ द्वादश चक्रवर्तिनः । ४२-४४ नव वासुदेवा नव प्रतिप्रतिवासुंदराभ्य ।
४५-४८ चक्रवर्तिना तीर्थनिर्देशः । ४५-६३ तीर्थकरणामुत्सेधायुरान्तर-

कालविवरणम् । ६४-६५ तीर्थव्युच्छेदनिर्देशः । ६६-७० तीर्थकरणां पूर्वजन्मविमाननामानि । ७१-७३ पितृनामानि । ७४-७७ जिनमातरः । ७७-८० दानपतयः । ८१-९४ जन्मस्थानवंशवर्णगोत्रमीलक्ष्यानादिनिर्देशः ।

सर्गः २८

१-५ अनुपमादेव्याः सुगात्रस्य जन्म । ६-१३ सुगात्रस्य वर्णने राजपुत्रैश्च कलादिक्षणम् । १४-२३ वराङ्गस्य वैमवादिवर्णनम् । २४-३० उल्कापतननदर्शनेन वैराग्योत्पत्तिः । ३१-५६ द्वादशानुप्रेक्षाभावनम्, मृत्योप्रुवचं संसारानित्यता च । ५७-६४ सुगात्रकरणाय सागरवृद्धये विज्ञप्तिः, तपश्चरणे च निश्चयः । ६५-६९ परिपाकतिक्तमिदभिति सागरवृद्धिवचनीन । ७०-७८ वराङ्गस्य पुनरूपदेशः, सागरवृद्धिरपि तपश्चरणाय सिद्धः । ७९-८८ वराङ्गस्य वैराग्यश्रवणेऽन्तःपुरस्य विलपनानि वचनानि च । ८९-९० वराङ्गवचनश्रवणेन देवीनां प्रव्रजनम् ।

सर्गः २९

१-९ वराङ्गं वैराग्यान्वितर्थितुं उपदेशः । १०-३० तपश्चर्यायां अयमेव काल इति वराङ्गस्य प्रत्युत्तेरण पितुः प्रबोधनम् । ३१-४२ सुगात्राय वराङ्गस्थोपदेशवचनानि । ४३-४८ सुगात्रस्य राज्याभिषेकवर्णनम् । ४९-५५ जिनपूजानन्तरं शिविकायां वराङ्गस्य परिनिष्करणम् । ५६-७२ पौरजनानां निन्दास्तुतयः । ७३-९९ वराङ्गस्य सहपरिवारस्य वददत्तमुनेः सञ्जिधौ प्रव्रजनं तपश्चरणं च ।

सर्गः ३०

१-९ जीवादिविवेचनात्मको मुनेरूपदेशः । १०-२५ वराङ्गस्य कषायादिविजयवर्णनम् । २६-७५ तस्य विहारवस्तिव्रतध्यानयात्रोपवासमिक्षालब्ध्यादिवर्णनम् ।

सर्गः ३१

१-१५ वराङ्गपलीनां तपोवर्णनम् । १६-१९ वराङ्गस्य महावतग्रहणस्वाध्यायादितपश्चरणं च । २०-४३ तस्य रत्नत्रयाराधनकषायविजयनिद्र्यसंयमादि-

वर्णनम् । ४४-५५ तस्य विहारवसतियोगप्रतिमादिवर्णनम् । ५६-६७ आलो-
चनावन्दनादिपूर्वकं प्रायोपयानग्रहणं चतुर्विधाराधनासेवनं च । ६८-७४ सम्य-
क्त्वशुद्धिर्विविधतपश्चरणानि च । ७५-८० पञ्चमहाव्रतानि तेषां पञ्चविशति-
भीवनाश्च । ८१-८५ व्रतसीमितिगुट्यादिपालनम् । ८६-९८ द्वादशानुप्रेक्षाः ।
९९-१०८ ध्यानप्रस्तावे वराङ्गस्य आत्मतच्चन्विन्तनं शुक्लध्यानं च । १०९-
११३ वराङ्गस्य निर्वाणप्राप्तिरस्येषां सुरलोकादिगमनम् । ११४-११५ उपसंहारः ।



श्रीवीतरागाय नमः

वराङ्गचरितम्

[प्रथमः सर्गः]

अहंखिलोकमहितो हितकृत्प्रजानां
धर्मोऽर्हतो भगवत्खिजगच्छरण्यः ।
ज्ञानं च यस्य सच्चराचरभावदर्शि
रत्नत्रयं तदहमप्रतिमं नमामि ॥ १
येनेह मोहतरुमूलमभेद्यमन्यै-
रुत्पाटितं निरवशेषमनादिबद्धम् ।
यस्यद्वयखिभुवनातिशयाखिधोक्ताः
सोऽर्हञ्जयत्यमितमोक्षसुखोपदेशी ॥ २
प्राप्येत येन वृसुरासुरभोगभारो
नानातपोगुणसमुन्नतलब्धयश्च ।
पश्चादतीन्द्रियसुखं शिवमप्रमेयं
धर्मो जयत्यवितथः स जिनप्रणीतः ॥ ३
ज्ञानेन येन जिनवक्त्रविनिर्गतेन
त्रैलोक्यभूतगुणपर्ययसत्पदार्थाः ।
ज्ञाताः पुनर्युगपदेव हि सप्रपञ्चं
जैनं जयत्यनुपमं तदनन्तरं तत् ॥ ४
अहंमुखागतमिदं गणदेवदृष्टं
सद्गर्ममार्गचरितं परया विशुद्धया ।
संशृण्वतः कथयतः स्मरतश्च नित्य-
मेकान्ततो भवति पुण्यसमग्रलम्भः ॥ ५

१ क श्रीमदादिब्रह्मणे नमः । निविंश्मस्तु ।, म श्रीवासुपूज्याय नमः

द्रव्यं फलं प्रकृतमेव हि सप्रभेदं
क्षेत्रं च तीर्थमथ कालविभागभावौ ।

अङ्गानि सप्त कथयन्ति कथाप्रबन्धे
तैः संयुता भवति युक्तिमती कथा सा ॥ ६

द्रव्याणि षड् भगवताभिहितानि तानि
क्षेत्रं तथा त्रिभुवनं विविधश्च कालः ।
तीर्थं जिनेन्द्रचरितं प्रकृतं हि वस्तु
ज्ञानक्षयोपशमजौ फलभावकल्पौ^३ ॥ ७

धातुः स काञ्चनमयः क्रियया विहीनः
कालान्तरादपि न याति सुवर्णभावम् ।
एवं जगत्यमितभव्यजनश्चिरेण
नालं भवाद् त्रजितुमत्र विनोपदेशात् ॥ ८

दीपं विना नयनवानपि संदिव्यक्षु-
द्रव्यं यथा घटपटादि न पश्यतीह ।
जिज्ञासुरुत्तमतिर्गुणवांस्तथैव
वक्त्रा विना हितपथं निखिलं न वेत्ति ॥ ९

सर्वज्ञभाषितमहान्दधौतबुद्धिः
स्पष्टेन्द्रियः स्थिरमतिर्मितवाङ्मनोऽङ्गः ।
मृष्टाक्षरो जितसभः प्रगृहीतवाक्यो
वक्तुं कथां प्रभवति प्रतिभादियुक्तः ॥ १०

१ म °विभागभागा. २ [त्रिविधश्च]. ३ भ °शमजा...कत्पा. ४ म
महार्णव.

सत्कारमैत्र्यवनभैषजसंश्रयादी-

न्वक्ता ऽनपेक्ष्य जगतीत्युपकारहेतुम् ।
निष्केवलं हितपैथं प्रवदन्वदान्यः

श्रोतात्मनोरुपचिनोति फलं विशालम् ॥ ११
जन्मार्णवं कथमयं तरतीति योऽत्र

संभावयत्यतुलधीर्मनसा दयालुः ।
संसारघोरभयदुःखमनादिबद्धं

तस्य क्षयं व्रजति साध्विति वर्णयन्ति ॥ १२
श्रेयोऽर्थिना हि जिनशासनवत्सलेन

कर्तव्य एव नियमेन हितोपदेशः ।
मोक्षार्थिना श्रवणधारणसत्क्रियार्था

योज्यास्तु ते मतिमता सततं यथावत् ॥ १३
शुश्रूषताश्रवणसंग्रहधारणानि

विज्ञानम् हनमपोहनमर्थतत्त्वम् ।
धर्मश्रवार्थिषु सुखाभिमुखेन नित्य-

मष्टौ गुणान्वलु विशिष्टतमा वदन्ति ॥ १४
मृत्सारिणीमहिषहंसशुकस्यभावा

मार्जारकङ्कमशकाजजलूकसाम्याः ।
सच्छिद्रकुम्भपशुसर्पशिलोपमाना-

स्ते श्रावका भुवि चतुर्दशधा भवन्ति ॥ १५
श्रोता न चैहिकफलं प्रतिलिप्समानो

निःश्रेयसाय मतिमांश्च मतिं विधाय ।

१ [जगदत्युपकारहेतुम्]. २ क हितपदं. ३ म सुखादिमुखेन.

यः संशृणोति जिनधर्मकथामुदारां
 पापं प्रणाशमुपयाति नरस्य तस्य ॥ १६
 प्राङ्गस्य हेतुनयमूक्ष्मतरान्पदार्थान्
 मूर्खस्य बुद्धिविनयं चं तपःफलानि ।
 दुःखार्दितस्य जनवन्धुवियोगहेतुं
 निर्वेदकारणमशौचमशाश्वतस्य ॥ १७
 लुब्धस्य शीलमधनस्य फलं व्रतानां
 दानं क्षमा च धनिनो विषयोन्मुखस्य ।
 सदर्शनं व्यसनिनो जिनपूजनं च
 श्रोतुर्वशेन कथयेत्कथको विधिंः ॥ १८
 संसारसागरतरङ्गनिमग्नीवान्
 सज्ज्ञाननावमधिरोप्य सुखेन नीत्वा ।
 सद्धर्मपत्तनमनन्तसुखाकरं यत्
 तत्प्रापयन्ति गुरुवो विदितार्थतत्त्वाः ॥ १९
 जन्माटवीषु कुटिलासु विनष्टमार्गान्
 येऽत्यन्तनिर्वृतिपथं प्रतिबोधयन्ति ।
 तेभ्योऽधिकः प्रियतमो वसुधातलेऽस्मिन्
 कोऽन्योऽस्ति बन्धुरपरः परिगण्यमानः ॥ २०
 राज्यार्धराज्यपृथुचक्रधरोरुभोगान्
 भौमेन्द्रकल्पपतिनामहमिन्द्रसौख्यम् ।
 क्लेशक्षयोऽन्नवमनन्तसुखं च मोक्षं
 संप्राप्नुवन्ति मनुजा गुरुसंश्रयेण ॥ २१

१ म विनयश्च. २ म कथकोविदज्ञः.

तेभ्यो नमः प्रयतकायमनोवचोभिः
 कृत्वा जगत्त्रयविभूतिशिवंकरेभ्यः ।
 धर्मार्थकामसहितां जगति प्रवृत्तां
 वक्ष्ये कथां शृणुत मोक्षफलावसानाम् ॥ २२
 आसीद्वो निजगुणैर्द्वयमादधानः
 पुंसां समुन्नतधियां स निवासभूमिः ।
 भोगश्रियः कुरुभुवः प्रतिबिम्बभूतो
 नाम्ना विनीतविषयः ककुदं पृथिव्याम् ॥ २३
 लोकस्य सारमखिलं निपुणो विचिन्त्य
 सत्संनिवासभुवनैकमनोरथेन ।
 यं निर्ममे स्वयमुदाहृतरत्नसारं
 धर्मार्थकामनियमाच्च निधि विधाता ॥ २४
 यस्मिन्दिशश्च रहितालि॑ विपिञ्चरामा
 यन्नातैँ इक्षुवनपीलितदुःप्रचाराः (?) ।
 रक्तोत्पलामलदैरुपहारितास्ते
 कालागरुपततधूपवहाश्च गेहाः ॥ २५
 यस्मिन्वनानि फलपुष्पनताग्रशाखा-
 विभ्राजितानिलविकम्पिमहीरुहाणि ।
 स्वादम्बुकोमलतृणानि दिवा निशीथे
 घोषाः प्रतिध्वनितमन्द्रगुणा गुणाढ्याः ॥ २६
 सन्तो नरा युवतयश्च विदग्धवेषा
 रागोत्तरासु सकलासु कलास्वबाह्याः ।

१ म भोगश्रिया. २ [निपुणं]. ३ [हरिताल॑]. ४ [फन्थान].

अन्योन्यरञ्जनपराः सततोत्सवाश्र
 सौख्येन किञ्चरगणानतिशाययन्ति ॥ २७
 देशान्विहाय हि पुराध्युषितान्कलज्ञाः
 शिल्पावदातमतयश्च नटा विद्यश्च ।
 रङ्गोपजीवनपराः पुरुषाः ख्यियश्च
 यस्मिन्पुनर्बहुविशेषगुणा वसन्ति ॥ २८
 रत्नोपलाग्रपरिच्छुम्बितमेघमालो
 नानादरीमुखविनिःस्तुतनिर्ज्ञरौघः ।
 सौम्याचलः फणिमणिक्षपितान्धकार-
 स्तस्मिन्बभूव हिमवानिव तुङ्गकूटः ॥ २९
 यस्मिन्सदा गरुडकिञ्चरपन्नगानां
 गन्धर्वसिद्धतुषितामरचारणानाम् ।
 आक्रीडनानि विविधानि मनोहराणि
 सोद्यानकाननगुहागहनेष्वभूवन् ॥ ३०
 तस्मात्पतञ्जलिविषाणाविपाटितोरु-
 पापाणगद्वरविजृम्भितपन्नगेन्द्रान् ।
 कादम्बसारसगणैरूपसेव्यमाना
 रम्या नदी प्रभवति प्रथिता धरायाम् ॥ ३१
 वाताहतदुमपतत्कुमुपहारे
 मत्तभ्रमद्वमरगीतरवाभिधाने ।
 तस्यास्तु दक्षिणतटे समभूमिभागे
 रम्यातटं पुरमभूद्विवि विश्रुतं तत् ॥ ३२

१ [कलाशः]. २ [तस्मान्मतंगजः]. ३ [पन्नगेन्द्रात्].

रम्यानदीतटसमीपसमुद्रवत्वाद्

रम्यातटं जगति रम्यं हि नाम रुढम् ।
तस्यैव नाम कृतवृद्धिगुणान्समीक्ष्य

अन्वर्थमुत्तमपुरं पद्मभिर्दीतीयम् ॥ ३३
अभ्यन्तरस्य नगरस्य बहिःप्रदेशः

कान्तो यतो भवति कान्तपुरं तदेव ।
पद्मालया सततमारमतीति यस्मा-

लक्ष्मीपुरं बुधजनैः कथितं पुरं तत् ॥ ३४
उद्यानपर्वतवनान्तरितप्रदेशै-

र्वापीतडागवरपुष्करिणीहृदैश्च ।
दिग्देवदेवगृहरम्यसभाप्रपांभि-

र्वाहं पुरः परपुरश्रियमादधार ॥ ३५
आवेष्टच्च तत्पुरवरं परिखाऽवतस्थे

द्रीपं यथा जलनिधिर्लब्धणाम्बुर्गर्भः ।
माहीमयोऽभ्युदितशैलसमानशालः

प्रोद्धिद्य भूतलमिवाभ्यधिकं राज ॥ ३६
प्रासादकूटवलभीतटगोपुरैः स्वै-

रत्युच्छ्रतध्वजविचित्रचलत्पताकैः ।
आरामकल्पतरुगुल्मलताप्रतानै

रुद्धातपं पुरमभूद्धिरिभित्तिभिश्च ॥ ३७
संगीतगीतकरतालमुखप्रलापै-

र्वीणामृदङ्गमुरजध्वनिमुद्धिरद्धिः ।

हर्म्यैरनेकपरिवर्धितभूमिदेशे
विन्यस्तचित्रबलिभिः सततं रराज ॥ ३८

भूशैलतोयविविधाकरजातपर्यं
मुक्ताप्रवालतपनीयमनेकभेदम् ।
यद्यच्च दुर्लभतमं परराजधान्यां
तस्मिन्पुरे प्रतिवसत्सुलभं च वस्तु ॥ ३९

न्यायार्जितद्रविणतैककुटुम्बपूर्ण
सर्वतुर्सौख्यसहितं परमदिँयुक्तम् ।
उद्भाटितापणमुखेषु निरन्तरेषु
नक्तं दिवं क्रयपरिक्रयसक्तमर्त्यम् ॥ ४०

नैकप्रकारमहिमोत्सवचैत्यपूजा-
दानक्रियास्नपनपुण्यविवाहसंगः ।
अन्योन्यगोहगमनागमनो जनौघ-
स्तस्मिन्पुरे प्रतिदिनं ववृधे यथावत् ॥ ४१

शब्दार्थहेतुगणितादिविशेषयुक्ता
ज्ञानप्रभावितिमिरीकृतधीमनस्काः ।
सद्धर्मशास्त्रकुशलाः सुलभा मनुष्या
यत्रारञ्जुराधिकं सततप्रमोदाः ॥ ४२

वृद्धाः समेषु तरुणाश्च गुरुपदेशे
वेश्याङ्गनाँः सुललिताः समदा युवानः ।

१ क °पुण्यं. २ क °प्रभावितमिरी°, म °प्रभावितमिरी°. ३ [वेश्याङ्गनासु
ललिताः].

त्यागेष्वथार्जितधनाः प्रमदाः प्रियेषु
 वस्त्वन्तरे रतिमुपेयुरथानुरूपम् ॥ ४३
 पाषण्डशिल्पिवहुवर्णजनातिकीर्ण
 रत्नापगाजलनिधिः सुरलोककल्पम् ।
 प्रज्ञातिमुग्धधनिनिर्धनसज्जनेष्टं
 चोरारिमारिपरचक्रकथा न तत्र ॥ ४४
 नीरोगशोकनिरूपद्रवनिर्भयत्वा-
 दस्मिञ्जनः सुरमुखं मनसाऽवमेने ।
 किं वा पुरस्य बहुवर्णनया नराणा-
 मिष्टेन्द्रियार्थपरिभोगमुखावहस्य ॥ ४५
 तस्येश्वरः प्रथितभोजकुलप्रसूतो
 धर्मार्थकामनिषुणो विनिगृहमन्त्रः ।
 न्यायेन लोकपरिपालनसक्तबुद्धिः
 श्रीधर्मसेन इति भूपतिरास नाम्ना ॥ ४६
 यः कामिनीजनमनोहरचारुमूर्ति-
 नौकावहप्रथितलब्धाविशुद्धकीर्तिः ।
 शक्तित्रयप्रतिविशेषहतप्रजार्तिः
 शास्त्रोपदिष्टवचसाऽप्रतिमानवृत्तिः ॥ ४७
 श्रीमान्प्रभिन्नकटवारणतुल्यगामी
 रक्ताम्बुजच्छविहरामल्पाणिपादः ।
 आख्यायिकागणितकाव्यरसाद्यभिज्ञो
 नित्यं पराभिगमनीयगुणावतंसः ॥ ४८

१ म जलनिधेः सुरलोकजल्पम्. २ म नीराग...निर्भयत्वान्यस्मिन्.

वृद्धोपसेवनरतिर्दृढसौहृदश्च
 त्यक्तप्रमादमदमत्सरमोहभावः ।
 सत्संग्रहः स्थिरसखः प्रियवागलोभः
 प्रागलभ्यदाक्ष्यसहितो हितवन्धुवर्गः ॥ ४९
 रूपेण काममथ नीतिबलेन शुक्रं
 कान्त्या शशाङ्कमरेन्द्रमुदारकीर्त्या ।
 दीप्त्या दिवाकरमगाधतया समुद्रं
 दण्डेन दण्डधरमप्यतिशिश्य एव ॥ ५०
 यस्याज्ञया स्वपथमुत्क्रमितुं न शेकु-
 र्वर्णाश्रमा जनपदे सकले पुरे वा ।
 पाषण्डिनः स्वसमयोपविनीतमार्गाः
 सोऽतीव बालबुधवृद्धतमान्वभार ॥ ५१
 यस्याहितं प्रकुरुते मनसापि कश्चित्
 किंचित्कचित्पुरुषपर्मर्थमनर्थकं वा ।
 क्षुत्क्षीणभुग्नयनोदरवक्त्रदण्डः
 स्थातुं हि तस्य विषये न शशाक मर्त्यः ॥ ५२
 युद्धेषु भिन्नकटवारणगण्डलेखा-
 संप्रसुतैः शमितधूलिषु दानतोयैः ।
 वाक्येषु बृहितमदान्प्रतियोद्धुकामान्
 यः सद्य एव हि रिपौन्विमदीचकार ॥ ५३
 चेतांसि बद्धदृढवैरवतां नराणा-
 मभ्यन्तरप्रकृतिकस्य जनस्य वापि ।

स्वाभाविकैर्विनयजैश्चरितैरुदारै-

योऽरञ्जयद् भृशमथ स्वगुणैरेन्द्रः ॥ ५४
ताराधिपः कुमुदपण्डविकासदक्षैः

शीतैः करैर्नभसि संविबभौ यथैव ।

नित्यं प्रियाकुमुदपण्डवचोमयूखै-
र्महां तथैव वसुधाधिपपूर्णचन्द्रः ॥ ५५

आफुल्लचारुविमलाम्बुरुहाननस्य
आजानुलम्बपरिपीनभुजद्रूयस्य ।

श्रीवक्षसः खलु मृगेन्द्रपराक्रमस्य
स्वान्तःपुरं पुरपतेक्षिशतीवभूव ॥ ५६

युक्ताधिरोहपरिणाहसमन्विताङ्गच्यो
हंसीस्वनाः सुगमनग्रहणस्वभावाः ।

लज्जावपूर्विनयविभ्रमचारुवेषा-
स्तुल्यावलोकननिरन्तरसौहृदाश्च ॥ ५७

फुल्लारविन्दवदना वरचारुनेत्राः
फुल्लारविन्दकुसुमोरुशुचित्वगन्धाः ।

फुल्लारविन्दवरकानितगुणावदाताः
सर्वाः क्षियः प्रथमयौवनगर्ववन्त्यः ॥ ५८

सर्वाः स्वमातृपितृगोत्रविशुद्धवन्त्यः ।
सर्वाः कलागुणविधानविशेषदक्षाः

सर्वा यथेष्टमुपभोगपरीप्सयिन्यः ॥ ५९

चातुर्यहावगतिविभ्रमसत्क्रियाभी
 रूपेण ता द्युतिमतातिमनोहरेण ।
 सत्यन्तरे समनुकूलतयानुभूय
 राज्ञो मनस्यधिगता वनितास्तदासन् ॥ ६०
 हासेन वा मधुमदेन सगर्वितेन
 रागेण वाथ कल्पीकृतचेतसा वा ।
 अन्योन्यमर्मपरिहासकथाभिरामा
 राज्ञः स्त्रियस्त्वति कथा न बभूव लोके ॥ ६१
 धर्मप्रियस्य रतिनीतिविशारदस्य
 सामान्यदृष्ट्यभिनिवि[ष्ट ०००] तायात् ?
 नात्युद्धताः सम्मुखाः पतिवत्सलाश्र
 शीलानुरक्तहृदया वनिता विनीताः ॥ ६२
 तासु क्षितीन्द्रहृदयप्रियकारिणीषु
 माधुर्यकान्तिललितप्रतिभान्वितासु ।
 रेजे भृशं गुणवती क्षितिपाङ्गनासु
 तारागणेषु विमलेष्विव चन्द्रलेखा ॥ ६३
 शुद्धान्वया रुचिरभूषणभूषिताङ्गी
 कामेकभारवतिकर्कशजातरागा (?) ।
 स्त्रिघा हिता शुचिमती मितवाकसुदक्षा
 भूमीश्वरस्य हृदयं स्वगुणैर्बबन्ध ॥ ६४
 या धर्मसेननयनामृतरूपशोभा
 तस्मै वचःश्रवणपथ्यहितानुवाक्या ।

१ [कामेकभारपति०]. २ [सम्मुखाः].

तद्वात्रचित्तरतिकारणवेषचेष्टा
तेनाभवत्सुरतनाटकनायिका सा ॥ ६५

तस्यास्तदाङ्गममलेन्दुनिभाननायाः
पीनोन्नतस्तनतटार्पितचन्दनायाः ।
आश्लिष्य कामशरताडनविह्लायाः
प्रीतिं परामुपजगाम पतिर्घरायाः ॥ ६६

सा चापि तस्य वदनं नयनातिकान्त-
माकृष्य सीधुरसिना वदनाम्बुजेन ।
भूयश्चुम्ब मदनातुरमन्दचेष्टा-
पूर्वं प्रियव्रणितपाटलविभ्रमोष्टी ॥ ६७
ताम्ब्यां यथेष्टमभिसंहितमन्मथाम्ब्यां
तुल्यानुरागरतिवर्धनसत्क्रियाम् ।
अन्योन्यचित्तपरिपोषणतत्पराम्ब्यां
प्राप्तं नृजन्मचिरजीवितयोः फलं तत् ॥ ६८

अनुपरतमृदङ्गमन्दना ।^६
मणिकिरणैरवभासितान्धकारे ।
षड्क्रतुसुखगृहे विशालकीर्ति-
र्वरवनिताभिररंस्त राजसिहः ॥ ६९
इति नगरनरेन्द्र [—] भार्याः
प्रथमतरं कथिताः कथाप्रबन्धात् ।

श्रुतिपथसुखदं निगद्यमानं
 तत उपरि प्रकृतं निशामयध्वम् ॥ ७०
 इति धर्मकथोहेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 जनपदनगरनुपतिनुपपत्नीवर्णनो नाम
 प्रथमः सर्गः

[द्वितीयः सर्गः]

धर्मेण संप्राप्तमनोरथस्य श्रीधर्मसेनस्य नरेश्वरस्य ।
 प्रियाङ्गनायां स वराङ्गनामा जडे कुमारो गुणपूर्वदेव्याम् ॥ १
 यस्मिन्प्रसूतेऽभिननन्द राष्ट्रं पितुश्च मातुर्वृष्टे प्रहर्षः ।
 भयं रिपूणामभवत्तदैव दुद्राव शोकः स्वजनस्य तस्य ॥ २
 अन्योन्यहस्तैः प्रतिनीयमानो वालेन्दुवद् वृद्धिमुपाजगाम ।
 कलाप्रलापं वदनारविन्दं संप्रेक्ष्य भूपो न ततर्प लोकः ॥ ३
 अनेकसल्लक्षणलक्षिताङ्गः प्रतापकान्तिवृतीर्ययुक्तः ।
 विद्वत्सहायो मतिमान् दयालुः प्रजाहितार्थाय कृतप्रयासः ॥ ४
 देवेषु पूजां गुरुषु प्रणामं पराक्रमं शत्रुषु सत्सु मैत्रीम् ।
 पात्रेषु दानं च दयां प्रजासु विद्यासु रागं सततं चकार ॥ ५
 शब्दार्थगन्धर्वकलालिपिङ्गो हस्त्यश्वशास्त्राभ्यसनप्रसक्तः ।
 व्यपेतमायामदमानलोभस्तत्याज सप्त व्यसनानि धीमान् ॥ ६
 कदाचिदभ्यस्य गजाश्वशास्त्रमृद्धया महत्या नगरीं प्रविश्य ।
 प्रणम्य भक्त्या पितरौ यथावत्तस्थौ पुरस्ताद्विनयानताङ्गः ॥ ७

समीक्ष्य तौ पुत्रगुणानुदारान् रूपं वपुस्तम्बवयौवनं च ।
 कांचिद्द्वेदस्य समानरूपा वपुष्मतीति स्मरतः स्म सद्यः ॥ ८
 तस्मिन्स्वकाँले स्वयमेव कथित्त्वेष्टी पुरस्यास्य कुमारभक्त्या ।
 अतर्किंतोपस्थितजातरागः समाहितात्मेत्थमुवाच वाचम् ॥ ९
 कुलेन शीलेन पराक्रमेण ज्ञानेन धर्मेण नयेन चापि ।
 समृद्धपुर्याः पतिरुत्तमश्रीर्भवत्समानो धृतिषेणराजौ ॥ १०
 अतुल्यनामा (?) किल तस्य भार्या विशालवंशा वरधर्ममूर्तिः ।
 तयोः सुता कीर्तिगुणोपपन्ना बभूव नाम्नानुपमा विनीता ॥ ११
 विभूषणानामतिभूषणेन विरूपतामानवयौवनेन ।
 किमत्र तद्र्वणनयातिमात्रं सा देवकन्या स्वयमागतैव ॥ १२
 श्रुत्वा वचस्तस्य वणिकतमस्य सोऽत्यर्थमर्थानुगतं मनोऽन्नम् ।
 तं पूजयित्वा विधिवत्ततस्तां स्वां मन्त्रशालां पुनराविवेश ॥ १३
 ते मन्त्रिमुख्या विदितार्थतत्त्वा अनन्तचित्रांजितदेवसाहाः ।
 आहूतमात्रा वसुधेष्वरेण यथाविधस्थानमुपोपविष्टाः ॥ १४
 सत्कृत्य तान्स्मेरमुखः स राजा प्रोवाच वाचं मधुरार्थगर्भाम् ।
 आपूर्यते यौवनमात्मसूनोः कृष्णेतरे पक्ष इवेन्दुबिम्बम् ॥ १५
 व्यायामविद्यासु कृतप्रयोगो नीतौ कृती सर्वकलाविधिज्ञः ।
 वृद्धोपसेवाभिरतिर्हितात्मा सुबुद्धिमान् पौरुषवान्कुमारः ॥ १६
 संभाव्यरूपः स्वगुणैर्महीनः पुष्टैः फलानामिव जन्मवेत्ता ।
 रूपश्रियानङ्गः इव द्वितीयस्तदस्य चिन्त्यं खलु दारकर्म ॥ १७

१ म कांचिद्द्वेदस्यसमान० २ [तस्मिंश्च काले]. ३ [धृतिषेणराजः].
 ४ [विरूपताया नव०]. ५ म अनन्तचित्रांजित०, [°धीवराहाः]. ६ म
 गीतौ. ७ म कृतिः.

श्रुत्वा वचस्तस्य नराधिपस्य ते मन्त्रिणो राजसुतानुरक्ताः ।
 प्रीत्या नरेन्द्रं प्रशशंसुरुचैः समझसं साधु वचस्तवेति ॥ १८
 तेषां पुरस्तात्स्यमनोगतार्थं राज्ञे तदा व्याहृतवाननन्तः ।
 अन्या न तुल्याभिजनानुरूपां तां देवसेन्यां प्रविहाय कन्याम् ॥ १९
 वैवाहिकी नः कुलसंततिः सा स्थिरा च मैत्री ननु मातुलत्वात् ।
 तस्मादहं योग्यतया तयाशु सुनन्दयेच्छामि विवाहकर्म ॥ २०
 श्रुत्वा ततोऽनन्तवचोऽजितस्तु जगाद् वाक्यं पुनरन्यदेव ।
 यत्प्रोक्तमेतेन वचस्तदस्मान्न प्रीणयत्येवमयुक्तिमत्त्वात् ॥ २१
 जनस्य सर्वस्य हि भर्तृबन्धुः स्वाभाविकं मित्रमकृत्रिमत्त्वात् ।
 यत्कृत्रिमं स्यात्फलवच्च मित्रमुदारमेतत्करणीयमस्य ॥ २२
 वचोऽजितेनाभिहितं निशम्य स चित्रसेनो गिरमित्युवाच ।
 को देवसेनादितरः पृथिव्यां नरेश्वरः पक्षबलर्द्धिमान्स्यात् ॥ २३
 असंहितं प्राकुलमुत्तमं च संधितस्यमानं बलिना परेण ।
 नोपैति विश्रम्भमूपैति शङ्कां प्रयोजने विक्रियते च भूयः ॥ २४
 न सा सुनन्दा परिणीयते चेत्स्यानिमत्रभेदः स हि दोषमूलः ।
 यस्यापचारेण च यान्ति मित्राण्यमित्रैर्ताँ वै न तु कार्यवित्सः ॥ २५
 तां चित्रसेनाभिहितां विचित्रां वाणीं निशम्योत्तमधीश्वरुर्थः ।
 प्रत्यब्रवीन्नीतिमतानुसारी वचोऽर्थसंपत्तिगुरुत्वबुद्ध्या ॥ २६
 अभूतपूर्वोत्तमसौहृदस्य बलीयसस्तुल्यबलेन योगे ।
 दोषा यतस्तेन खलूपदिष्टास्ते दूरनष्टा नयमार्गवृत्त्या ॥ २७
 दारेषु मातर्यथ भृत्यवर्गे सुते पितर्यन्यतमे जने वा ।
 विश्रम्भयोगो न तु तादृशः स्याद्यादगृहे मित्र उदारबुद्धौ ॥ २८

१ क प्रशशोकुरुचैः । २ [देवसेनां] । ३ क अमन्त्रतां ।

मित्रं बलीयः स्वनुरागि पुंसामलभ्यमन्यत्र हि दैवयोगात् ।
तल्लभ्यते चेद्वलिना समग्रा वसुन्धरा हस्तगतैव तस्य ॥ २९
विरक्तभृत्यान्यतिदीर्घसूत्राण्यत्पानि मित्राण्यतिदूरगानि ।
संबन्धमात्राभिनिविष्टबुद्धेः कियच्चिरं^१ तस्य नृपस्य राज्यम् ॥ ३०

अष्टाविमे भूपतयः प्रधाना धर्मार्थषद्भागभुजः पृथिव्याम् ।
यैर्भ्राजते संनिहितैर्धरित्री द्यौरष्टभिस्तैरिव दिग्गजेन्द्रैः ॥ ३१

महीमहेन्द्रोऽथ महेन्द्रदत्तो द्विषंतपश्चापि यथार्थनामा ।
सनत्कुमारो मकरध्वजोऽपि समुद्रगुप्तो विनयंधरश्च ॥ ३२

वज्रायुधश्चक्रभृता समानः पराक्रमैश्वर्यवपुर्गुणेन ।
मित्रंसहश्रापि हि देवसेनात्किं वाधिकास्ते न भवेयुरीशाः ॥ ३३

वचांसि तेषां स निशम्य राजा स्वतर्किंताक्रान्तविजृमितानि ।
प्रशस्य तान् राज्यधुरंधरांश्च वैदेहकोक्तं पुनराचचक्षे ॥ ३४

ते चापि राजां समुदीरितार्थां गिरं निशम्यानुमतिं प्रकृत्ये ।
विवाहतन्त्राविकृतान्सलेखान्प्रत्येकशो दूतवरान्ससर्ज (?) ॥ ३५

तेषामर्थैको गुणवांस्तु दृतः पतिं समासाद्य समृद्धपुर्याः ।
प्रदर्श्य लेखं प्रियवाक्यगर्भं व्यजिज्ञपदाचिकमर्थयुक्तम् ॥ ३६

निशम्य लेखं च वचो निशम्य मुदाब्रवीत्तच्च तथेति राजा ।
विज्ञाय वागिङ्गितदानमानैः स्वकार्यसिद्धौ मतिमादधे सः ॥ ३७

ततो नृपेणाप्रतिपौरुषेण वचोहरः सामयुतैर्वचोभिः ।
विसर्जितः साधु कृतात्मकृत्यो येनागतस्तेन पथा निवृत्तः ॥ ३८

१ म कियच्चरं. २ म धर्मार्थं. ३ म विनयंधरश्च. ४ म प्रकृत्वा.

दूताः परं तेऽपि च संनिवृत्ताः पतिः स्वमारोपितकार्यभाराः ।
 राज्ञे समूचुः स्वमतप्रसिद्धिं प्रमोदपूर्वा गमनप्रतीक्षणाम् ॥ ३९
 प्रत्यागतानां स वचोहराणां निशम्य वाणीं च समीक्ष्य लेखम् ।
 स्वान्मनित्रणो मन्त्रविनिश्चयज्ञानशशास राजा धृतिषेणपार्वम् ॥४०
 तैः संवज्जिद्विर्वहुवन्धुमित्रैः सहैव याता नरदेवसेना ।
 बभौ चतुर्भिर्नृपमन्त्रिमुख्यैः सुरेन्द्रसेनेव च लोकपालैः ॥ ४१
 व्यतीत्य देशान्बहुरत्नकोशं पुरं समासाद्य गुणप्रकाशम् ।
 विलोकमाना विविशुर्विभूत्या विलोक्यमानास्त्वथ पौरवर्गैः ॥ ४२
 संप्राप्य राजालयमुत्तमद्वौ सामन्तसेनानिचितान्तरालम् ।
 तद्वारपालैरूपनीयमानाः सिंहासनस्थं दद्शुनरेन्द्रम् ॥ ४३
 अभ्यागतानामृतमान्विलोक्य वाग्दानमानैरभिपूज्य सम्यक् ।
 नराधिपः प्रश्नकुतूहलेन प्रच्छ तान्प्राग्विदितार्थतत्त्वः ॥ ४४
 श्रीधर्मसेनेन यथोपदिष्टाः पृष्ठाः पुनस्ते धृतिषेणनाम्ना ।
 सामप्रयोगैरूपनीतमर्थं स्वकार्यसिद्धचर्थममुं समूचुः ॥ ४५
 नृपोत्तमः शान्तरिपुर्जितात्मा वयोऽधिकस्तुल्यतमः कुलेन ।
 श्रीधर्मसेनो धृतराजवृत्तः स सादरः कौशलमाचक्षे ॥ ४६
 तस्यात्यजः कान्ततमः प्रजानामुदारवृत्तः शुचिमान्यज्ञः ।
 जामातृतां प्राप्तुमनाः कुमारो महीपते ते चरणौ ननाम ॥ ४७
 तेषां वचो वाक्यविदां निशम्य समर्थ्य सम्यङ्ग्नृपतिस्तदानीम् ।
 संचिन्त्य कन्यावयससमासिं तेभ्योऽनुमत्यैर्वमवोचदित्थम् ॥४८

१ [पत्या समारोपित] . २ म स्वमतप्रसिद्धं . ३ [गमनप्रतीक्षाम्] . ४ क नृपेन्द्रम् . ५ [संमध्य] . ६ क अनुमित्येवम् .

कन्यापि तेनैव समानकल्पा कलागुणैश्चापि वयोवपुभ्याम् ।
 स चापि तस्या यदि युक्तरूपः किमन्यदिष्येत तयोर्नृलोके ॥ ४९
 इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सहर्षो दित्सुः सुतामुत्पलपत्रनेत्राम् ।
 पुरोहितामात्यसमान्विदग्धानाहाययाहार्यविदो^१ बभूव ॥ ५०
 समेत्य तैर्मन्त्रितपन्त्रिभिश्च कन्याप्रदानं प्रति निश्चितार्थः ।
 यथाधिकाराधिकृतान्स भृत्यान् शशास कल्याणमहोत्सवाय ॥ ५१
 कृत्वा स कल्याणविधिं विधिङ्गो दरिद्रीनेषु धनं विसर्ज्य ।
 स्वया विभृत्या परया नरेन्द्रः कन्यां पुरस्कृत्य मुदा प्रतस्थे ॥ ५२
 जलप्रभाभिः कृतभूमिभागां प्राचीनदेशोपहितप्रवालाम् ।
 सर्वार्जनोपात्तकपोतपालीं वैद्यूर्यसव्यानवर्तीं परार्थ्याम् ॥ ५३
 हेमोत्तमस्तम्भवृतां विशालां महेन्द्रनीलप्रतिबद्धकुम्भाम् ।
 तां पद्मरागोपगृहीतकण्ठां विशुद्धरूपोन्नतचारुकूटाम् ॥ ५४
 द्रिजातिवक्त्रोद्भालितप्रलङ्घां मुक्ताकलापच्छुरितान्तरालाम् ।
 मन्दानिलाकम्पिचलत्पताकामात्प्रभाहेपितमूर्यभासम् ॥ ५५
 नानाप्रकारोज्ज्वलरत्नदण्डां विलासिनीधारितचामराहाम्^२ ।
 आरुह्य कन्यां शिविकां पृथुश्रीः पुरीं विवेशोत्तमनामधेयाम् ॥ ५६
 श्रीधर्मसेनप्रहितैश्च दूतैर्निवेदिताः प्रागवनीन्द्रचन्द्राः ।
 आकृष्यमाणास्तु वराङ्गपुण्यैः प्रतस्थिरे स्वाभिरमा सुताभिः ॥ ५७
 सुवर्णक्षोपहितान् गजेन्द्रान् रथांश्च नानाकृतिचित्रवर्णान्^३ ।
 सचामरापीलधरांस्तुरङ्गानन्त्रपाः समारुह्य पथि प्रजग्मुः ॥ ५८

१ [आहाय्य (आहूय वा) बहर्थविदो]. २ [°गलितप्रलम्ब°].
 ३ [°चामराढ्याम्°]. ४ [आरोद्य]. ५ म नागाकृति०

वपुष्यती विन्ध्यपुरेश्वरस्य महेन्द्रदत्तस्य सुता बभूव ।
 द्विषंतपः सिंहपुराधिपस्तु यशोवती तस्य सुतेन्दुवक्त्रा ॥ ५९
 सनत्कुमारस्य मनोङ्गरूपा वसुंधरापीष्टपुराधिपस्य ।
 अनङ्गसेना मकरव्यजस्य राङ्गः सुता श्रीमलयेश्वरस्य ॥ ६०
 प्रियव्रता चक्रपुराधिपस्य समुद्रदत्तस्य समग्ररूपा ।
 वज्रायुधो नाम गिरित्रजेशस्तस्य प्रियायामभवत्सुकेशी ॥ ६१
 मित्रंसहंकोशलराजकन्यापतिः स्मृता तस्य हि विश्वसेना ।
 अङ्गाधिपस्य प्रियकारिणीति बभूव पुत्री विनयंधरस्य ॥ ६२
 नरेन्द्रकन्या धृतिषेणपुत्र्या सहैव रूपादिगुणैः समानाः ।
 दिग्भ्यस्तथाष्टाभ्य उदारवृत्ता आजग्मुरष्टाविव दिक्कुमार्यः ॥ ६३
 वृपाङ्गया राजगृहस्य मध्ये नरेन्द्रसूनोरभिषेचनाय ।
 श्रीमण्डपं कामकरण्डकाख्यं सत् कारितं नेत्रमनोऽभिरामम् ॥ ६४
 महेन्द्रनीलैर्मणिभिर्विनद्धं महीतलं हेममयी च भित्तिः ।
 कपोतपाली रजतैरुपेता सौवर्णमन्तःफलकं प्रकलृतम् ॥ ६५
 स्तम्भास्तु सर्वे तपनीयगर्भा वहिर्बृहद्रत्नमणिप्रकल्प्यौः ।
 द्वारं सुबद्धं खलु सर्वरत्नैर्जाम्बूनदाविष्कृतमिन्द्रकूटम् ॥ ६६
 कचित्कचिलम्बितहेममालं प्रवालरत्नद्युतिमिश्रजालम् ।
 मुक्ताकलापाश्चितदामलीलं रराज पर्यन्तविचित्रसालम् ॥ ६७
 प्रवालमुक्तामणिभिर्विचित्रैर्विन्यस्तनानाविधभक्तिचित्रा ।
 भ्रमद्विरेफाहतकेसरेण पुष्पोपहारेण रराज भूमिः ॥ ६८

१ क मित्रसहा, [मित्रंसहः]. २ म विनयंवरस्य. ३ म विनन्दं.
 ४ [प्रकलृतौः].

स्वाभाविकश्चाप्रतिकान्तरूपो माङ्गल्यकर्मण्यभिसंस्कृताङ्गः ।
 सिंहासनस्योपरि संनिषण्णो वभौ शशीवोदयपर्वतस्थः ॥ ६९
 अष्टाभिराभिर्भुवि सुन्दरीभिर्मनोहराङ्गया सुतया सदृश्या ।
 श्रेष्ठयग्रुच्या धनदत्तया च समं कुमारो दशभिर्वराङ्गः ॥ ७०
 हैमैर्घटैर्गन्धविमिश्रतोयैर्ग्रीवाभिसद्विष्टदामलीलैः ।
 पद्मोत्पलाच्छादितवक्षशोभैर्वसुन्धरेन्द्राः स्त्रपयांबभूवुः ॥ ७१^३
 अन्ये च तेषां त्रुपमन्त्रिमुख्या अनन्तचित्राजितदेवसाहाः ।
 कुम्भैर्ज्वर्लद्रत्नमयैरनेकैः शुद्धाम्बुपूर्णैश्च समभ्याषिञ्चन् ॥ ७२
 पौरप्रधाना नरदेवभक्त्या ते पार्थिवैः फुल्लफलाक्षमिश्रैः ।
 घटैश्च नानाविधवर्णतोयैः पदाभिषेकं सुतनोः प्रचक्रुः ॥ ७३
 समेत्य सम्यग्बहुबन्धुवर्गा रागोद्धता मङ्गलजातहर्षाः ।
 यन्त्रैरनेकैर्वरवर्णपूर्णैरन्योन्यगात्राण्यभिचिक्कुदुस्ते ॥ ७४
 केचिच्छशंसुर्वरं वराङ्गं महीपतीनां तनयाश्च केचित् ।
 अन्योन्ययोग्या इति केचिद्बुराश्र्यमन्ये परमं प्रजग्मुः ॥ ७५
 वराङ्गनामानमनङ्गलीलं क्षितीन्द्रपुत्र्यश्च मनोङ्गरूपाः ।
 समीक्ष्य बन्धूनपि हर्षपूर्णान्पौरान्समेतान् कथयांबभूवुः ॥ ७६
 इमे वयं चापि हि जीवलोके समाननेत्रोदरपाणिपादाः ।
 ऐश्वर्यकान्तिद्युतिवीर्यरूपैः कथं विशिष्टा इति केचिद्बुः ॥ ७७
 किं न श्रुतं वाक्यमिदं भवद्विर्जगत्यसाधारणहेतुभूतम् ।
 स्वर्कर्मनिष्पत्तिफलप्रपञ्चं दुःखं सुखं वेति च लोकसिद्धम् ॥ ७८

१ म शरीरोदयः २ [समं कुमारं दशभिर्वराङ्गम्]. ३ [युग्मम्].
 ४ [°धीवराहाः]. ५ [अभिन्विक्षिदुस्ते].

धर्मात्सुखं पापफलाच्च दुःखं सुखं स्वपञ्चन्द्रियकापलभिः ।
 दुःखं पुनस्तद्रिपरीतमुक्तमितीह सर्वैरपि किं न वेद्यम् ॥ ७९
 पूर्वं त्वकृत्वा सुकृतं नरा ये परश्रियं प्राप्तुमर्तन्ति मूढाः ।
 तेषां श्रमं केवलमेव लोके हास्यं महत्तच्च विपाकतिक्तम् ॥ ८०
 तथापि कर्माणि बहूनि तानि शुभप्रदानान्यथुभप्रदानि ।
 ऐकान्तिकं यन्निरुपद्रवं च सुखं लभन्ते कथमत्र जीवाः ॥ ८१
 दानं तपः संयमदर्शनानि शौचं दमो भूतदया च मैत्री ।
 क्षान्तिश्च सत्यं समता ह्यसंग इत्येवमाद्यं सुखहेतुभूतम् ॥ ८२
 जन्मान्तरे तपतपःप्रभावात्सत्पात्रदानाज्जिनपूजनाच्च ।
 प्राणानुकम्पोद्भवभावनाया जन्मन्यथास्मिन्सुखिनो भवन्ति ॥ ८३
 किमत्र चित्रैर्बहुभिः प्रलापैः सुखार्थिभिः पापरतिविहेया ।
 पापं पुनर्जीवविहिंसनेन तन्मूलतो दुःखमवाप्नुवन्ति ॥ ८४
 श्रुत्वा वचो धर्मपथानपेतं निरुत्तरं सर्वजगावगम्यम् ।
 तं श्रद्धधुर्धर्मफलं मनुष्याः प्रत्यक्षसद्वर्णनजातरागाः ॥ ८५ ॥
 प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्तयोगे ग्रहेषु सर्वेषु समन्वितेषु ।
 स्वोच्चस्थितेः^१ चन्द्रमसीष्टपक्षे चकार पाणिग्रहणं वधूनाम् ॥ ८६
 श्रीधर्मसेनः सकलत्रपुत्रः सन्मानदानैरभिसंपूज्य ।
 लोकोपचारग्रहणानुवृत्त्या विसर्जयामास वसुंधरेन्द्रान् ॥ ८७
 संप्राप्यकल्याणमहाविभूत्या विराजमाना दुहितृनिरीक्ष्य ।
 जामातरं चायितराजलक्ष्म्यौ वसुंधरेन्द्राः प्रययुः स्वदेशान् ॥ ८८

१ म अशन्ति. २ म धर्मपथा न भीतं. ३ क सोच्चस्थिते, [सूच्चस्थिते].
 ४ [संप्राप्त]. ५ [चागत] .

निवर्तमानान्स्यपुरान्कुमारः प्रीत्या महेन्द्रप्रतिमान्विधिः ।
 प्रयाप्य दूरं विदितत्रिवर्गः स्वच्छन्दवृत्त्यानुबभूव भोगान् ॥ ८९
 प्रियाङ्गनाभिर्वरवाणिनीभिः प्रफुल्लनीलोत्पललोचनाभिः ।
 चन्द्राननाभिः सह राजपुत्रो रेमे चिरं पीनपयोधराभिः ॥ ९०
 तासां वधुनां रमणप्रियाणां क्रीडानुषङ्गक्रमकोविदानाम् ।
 आलापसल्लापविलासभावैः कालो व्यतीतो धरणीन्द्रमूनोः ॥ ९१
 ताश्चापि भास्वद्रमणीयवेषाः स्वाम्येकभावप्रतिबद्धरागाः ।
 मनोज्ञरूपद्युतिकान्तिमत्यैः सर्वास्तु सर्वेन्द्रियरत्यधिष्ठाः ॥ ९२
 सत्यार्जवक्षान्तिदयोपपन्नाः पैशून्यमायानृतलोभहीनाः ।
 व्यपेतमात्सर्यमदाभ्यसूया महीन्द्रपुत्रस्य मनोऽपि जहुः ॥ ९३

देवेन्द्रो गगनचरीभिरप्सरोभिः
 शैलेन्द्रे स्फुटमणिभासुरे यथैव ।
 कान्ताभिर्भवनवरे परार्थ्यसारे
 भूमीन्द्रप्रियतनयस्तथाभिरेमे ॥ ९४
 इत्येवं नृपतनयस्य पुण्यमूर्तेः
 कल्याणं कथितमिदं समासतस्तु ।
 कः शक्तः सुकृतफलं समासहस्रैः
 संस्तोतुं मतिरहितः पुमानशेषम् ॥ ९५
 इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 विवाहवर्णनो नाम द्वितीयः सर्मः ।

[तृतीयः सर्गः]

अरिष्टनेमिर्वरधर्मभूमिः^१ प्रणष्टकर्माष्टकभूरिवन्धः ।
 विशिष्टनामाष्टसहस्रकीतिर्द्विविंशतीर्थाधिपतिर्बभूव ॥ १
 तस्याग्रशिष्यो वरदत्तनामा सद्विष्टविज्ञानतपःप्रभावात् ।
 कर्माणि चत्वारि पुरातनानि विभिद्य कैवल्यमतुल्यमापत् ॥ २
 उदारवृत्तैरुरुसत्तपस्कैर्नानदिंभिः साधुगौरनेकैः ।
 महात्माभिस्तौर्विजहार देशान् धर्माम्बुवर्षं जगते च वर्षन् ॥ ३
 पुराकरग्राममडम्बखेडान्विहृत्य भव्याम्बुजबालभानुः ।
 धर्मप्रभावं व्यपदेष्टुकामः पुरं क्रमेणोत्तममाजगाम ॥ ४
 तस्मिन्पुरे सर्वजनाभिगम्यं उद्यानमत्यन्तसुखप्रदेशम् ।
 मनोहरं नाम मनोऽभिरामं कृतानुनादं मधुकुद्धिरेफैः ॥ ५
 तस्यैकदेशे रमणीयरूपे शिलातले जन्तुविवर्जिते च ।
 दयापरैर्दान्तमदेन्द्रियाध्वैः सहोपविष्टो मुनिभिर्मुनीन्द्रः ॥ ६
 एकैकशः केचन पिण्डिताश्च केचित्स्थिताः केचन संनिषण्णाः ।
 स्वाध्यायमन्दध्वनिरक्तकण्ठा वाचंयमाः केचन साधुवर्याः ॥ ७
 तेषां यतीनां हि तपोधनानां जाज्वल्यमानोत्तमशीलभासाम् ।
 मध्ये बभासे वरदत्तनामा ज्योतिर्गणानामिव पूर्णचन्द्रः ॥ ८
 उद्यानपालः प्रविलोक्य साधुस्तपोभिरुद्घासितपुण्यमूर्तीन् ।
 प्रहृष्टचेतास्त्वरयाभिगम्य विज्ञापयामास वसुंधरेन्द्रम् ॥ ९
 पुरे वने वापि गृहे सभायां तिष्ठन्स्वयं जाग्रदपि व्रजंश्च ।
 दिवा निशायामथ सन्ध्ययोश्च यान्भावतश्चिन्तयति क्षितीन्द्रः ॥ १०

१ क वरदत्तभूमिः

तान् साधुवर्गान्स्वगुणोपपन्नान्प्रशान्तरूपान्विदितत्रिलोकान् ।
 मनोहरोद्यानशिलातलेषु सुखोपविष्टानहमभ्यपश्यम् ॥ ११
 उद्यानपालस्य वचो निशम्य प्रोत्थाय सिंहासनतः पृथुश्रीः ।
 पदानि सप्त प्रतिगम्य राजा ननाम मूर्धा विनतारिक्षः ॥ १२
 आनन्दिनी नाम महाभ्रनादा माङ्गल्यकर्मण्यभिसंप्रताड्या ।
 जनस्य सर्वस्य विबोधनार्थं प्रताडिता भूपतिशासनेन ॥ १३
 अमात्यसेनापतिमन्त्रिणश्च पुरोहितश्रेणिगणप्रधानाः ।
 तस्याः पुनर्येघनिनादकल्पं रवं निशम्याशु समाययुस्ते ॥ १४
 प्रहृष्टरोमः परितुष्टभावो दत्त्वा दरिद्रार्थिजनाय दानम् ।
 सान्तःपुरः सर्वसमृद्धियुक्तो जगाम साधूनभिवन्दितुं सः ॥ १५
 वहुप्रकारान्पुरवासिनोऽर्थान् विचिन्तयन्तः स्वमनोऽनुनीतान् ।
 अनेकवेषाकृतिदेशभाषा निरीयुरुर्वीपतिना सहैव ॥ १६
 वृपाङ्गया केचिदभिप्रजग्मुर्गन्तुं प्रवृत्तानपरे समीयुः ।
 निश्चक्रतुः केचिदुदारशोभाः स्वां स्वां च संदर्शयितुं विभूतिम् ॥ १७
 निर्जग्मुरेके नरदेवभक्त्या समीयुरेके मुनिदेवभक्त्या ।
 उत्तस्थुरेके गुरुलोकभक्त्या उपेयुरेके वरधर्मभक्त्या ॥ १८
 प्रदित्सवः केचन पात्रदानं निनंसवः केचन संयतेन्द्रान् ।
 शुश्रूषवः केचन धर्मसारं सुराङ्गनाभिस्तु रिंसवोऽन्ये ॥ १९
 रुह्सत्सवः केचन मोहसेनां जिधांसवः केचन मोहराजम् ।
 युयुत्सवोऽन्ये च कषायमल्लैर्बिभङ्गवः केचन कामदर्पम् ॥ २०
 मुमुक्षवः केचन कर्मपाशांस्तिर्षिवोऽज्ञानमहासमुद्रम् ।
 तुष्टूषवः साधुगुणानुदारांश्चित्सवैः संशयजातमर्थम् ॥ २१

पुपूषवः पापरजांसि केचिच्चिचीषवः पुण्यजलानि केचित् ।
 चिकीषवोऽघोरतपांसि केचित्तिष्ठासवः मूत्रपथे च केचित् ॥ २२
 चिकित्सवः केचन दुःखजालं विभित्सवः केचन दुःखबीजम् ।
 सिशंसवः केचन दुःखवहिं जिज्ञासवो द्रव्यगुणस्यभावान् ॥ २३
 आधित्सवः केचन पुण्यकीर्ति विप्सवः केचन पुण्यबीजम् ।
 सिष्टाषवः केचन पुण्यतीर्थे लोकोत्तरं सौख्यमभीप्सवश्च ॥ २४
 गृहस्थधर्मं प्रतिपित्सवश्च गृहस्थधर्मं प्रजिहासवश्च ।
 तित्यक्षवो लोककुर्धमार्गं मुनीन्द्रधर्मं प्रजिघृक्षवश्च ॥ २५
 व्रतातिपातप्रतिबोधनाय गृहीतपूर्वव्रतवर्धनाय ।
 महाव्रतानुग्रहकारणाय केचिद्युः प्राग्विदितार्थतत्त्वाः ॥ २६
 अन्ये पुनः प्राक्तनुकर्मवन्धाः संसारनिःसारविकारदोषान् ।
 अवेत्य निर्वेदपरायणास्ते दीक्षाभिलाषाः प्रययुर्गृहेभ्यः ॥ २७
 मदप्रभिन्नार्द्रकटद्विपानामन्तर्निनादैः रथनेमिघोषैः ।
 तुरङ्गमानामपि हेषितैश्च पदातिवृन्दप्रतिबद्धवाक्यैः ॥ २८
 नानाविधैस्तैः पटहैर्बृहस्त्रिः शङ्खस्वर्णबन्दमुखप्रलापैः ।
 प्रावृद्धपयोदध्वनिमादधाना नरेन्द्रसेना विबभौ प्रयान्ती ॥ २९
 आरुह्य रत्नोज्ज्वलमौलयस्ते हस्त्यश्वयानानि पृथग्विधानि ।
 वरा वराङ्गप्रमुखाः कुमारा वसुंधरेशस्य ययुः पुरस्तात् ॥ ३०
 मत्तद्विपस्यायतपीनवाहुः स्कन्धाधिरूढः ससितातपत्रः ।
 अष्टार्धसञ्चामरवीज्यमानो व्रजन् वभौ शक्र इव द्वितीयः ॥ ३१

१ क चिचीषवः. २ म चिचीषवो. ३ [शमिषावः]. ४ [सिस्नासवः].
 ५ क मन्त्रनिनादैः, [मन्त्रैनिनादैः].

यथैव पूर्वं भरतेऽवरस्तु हिरण्यनाभाय नमस्क्रियायै ।
 ब्रजन् वभासे वरदत्तपार्ष्वं श्रीधर्मसेनो वसुधाधिपश्च ॥ ३२
 अदूरतः साधुगणान्विलोक्य मत्तद्विपेन्द्रादवतीर्य सद्यः ।
 अपोहा बालव्यजनातपत्रं मुदाश्रितो वन्दितुमायतश्रीः ॥ ३३
 ज्योतिर्गणैरिन्दुरिवाचलेन्दुं प्रदक्षिणीकृत्य वसुंधरेन्द्रः ।
 सपुत्रदारः सहमित्रवन्धुर्ननाम पादावृषिसत्तमस्य ॥ ३४
 ज्वलत्करीटः प्रविलम्बिहारो विचित्ररत्नाङ्गदधृष्टबाहुः ।
 रराज राजा मुनिपुङ्गवस्य पादौ पतन् भानुरिवोदयस्य ॥ ३५
 आपृच्छय भूपः कुशलं यतीनामविश्रतां ज्ञानतपोवतेषु ।
 स्वनामगोत्रं चरणं निवेद्य स्तोत्रैश्च मन्त्रैविविधैः प्रणुत्य ॥ ३६
 शेषांश्च सर्वान्मुनिपुङ्गवांस्तांस्त्रिभिर्विशुद्धः क्रमशोऽभिवन्द्य ।
 एत्यादरात्केवलिपादमूलं सुखं निष्ठेमपृच्छदर्थम् ॥ ३७
 सर्वप्रजाभ्यो ह्यभयप्रदाता सर्वप्रजानां शरणं गतिश्च ।
 सर्वप्रजानां हितदेशकस्त्वं धर्मामृतं मे दिश वीतमोह ॥ ३८
 त्वं केवलज्ञानविशुद्धनेत्रः सर्वार्थवित्सर्वगुणोपपन्नः ।
 सर्वन्दवन्द्यः प्रविधूतपाप्मा आचक्षव जीवादिपदार्थभेदान् ॥ ३९
 जीवाश्च केचिन्नरकेषु तीव्रं केनाप्नुवन्त्यप्रतिमं हि दुःखम् ।
 तिर्यक्षु नानाविधवेदनां वा मनुष्यलोकस्य च कारणं किम् ॥ ४०
 सुराधिवासस्य चतुर्विधस्य सौख्यं कथं वाष्टगुणादियुक्तम् ।
 क्लेशक्षयोऽङ्गूतमनन्तकालनिर्वाणसौख्यं कथयस्व केन ॥ ४१
 कर्माणि वा कानि सुखप्रदानि दुःखप्रदानान्यथ कानि नाथ ।
 सुखासुखोन्मिश्रफलानि कानि कर्मान्तक व्लाहि च संशयो मे ॥ ४२

एवं स पृष्ठो भगवान्यतीन्द्रः श्रीधर्मसेनेन नराधिपेन ।
हितोपदेशं व्यपदेष्टुकामः प्रारब्धवान्वक्तुमनुग्रहाय ॥ ४३
येऽर्थास्त्वया प्रश्नविदा नरेन्द्र चतुर्गतीनां सुखदुःखमूलाः ।
पृष्ठा यथावद्विनयोपचारैरेकाग्रबुध्या शृणु ते ब्रवीमि ॥ ४४
संभाव्य सम्यञ्जतिभाजनेन सद्गर्ममार्गश्रुतितोयधाराम् ।
श्रद्धान्विताः साधु पिबन्ति ये तु ते यान्ति जन्मार्णवदूरपारम् ॥ ४५
धर्मश्रुतेः पापमुपैर्लि नाशं धर्मश्रुतेः पुण्यमुपैति वृद्धिम् ।
स्वर्गापवर्गप्रवरोरुसौख्यं धर्मश्रुतेरेव न चान्यतस्तु ॥ ४६
तस्माद्दि धर्मश्रवणानुरागा भवन्तु सर्वे शुभमाप्नुकामाः ।
जित्वा जरारातिरुजश्च मृत्युं भवन्ति वन्द्या भुवनत्रयस्य ॥ ४७
धर्मानुबन्धा दुरितानुबन्धा मिश्रानुबन्धाश्च यथाक्रमेण ।
त्रिधा विमिश्राः श्रुतयश्च लोके तासां फलं त्रैधमुदाहरन्ति ॥ ४८
धर्मानुबन्धात्सुखमेव नित्यं पापानुबन्धादथ दुःखमेव ।
मिश्रानुबन्धात्सुखदुःखयोगः संक्षेपतस्ते त्रिविधं मयोक्तम् ॥ ४९
क्षीराणि वर्णेन समानि लोके रसेन नानागुणवन्ति तानि ।
ऐकानि निग्रन्ति निपीतमात्रमन्यान्यथारोग्यवपुःकराणि ॥ ५०
एवं हि धर्माश्च बहुप्रकारा नाम्ना समाना गुणतो विशिष्टाः ।
दुःखार्णवे केचन मज्जयन्ति सुखार्णवे केचन निक्षिपन्ति ॥ ५१
केचित्पुनस्ते नरकं नयन्ति नयन्ति तिर्यग्गतिमेव केचित् ।
मनुष्यलोकं गमयन्ति केचित्स्वर्गापवर्गौ च नयन्ति केचित् ॥ ५२
एकान्ततो निम्बरसश्च तिक्त इक्षोर्विंकारो मधुरस्वभावः ।
यश्चाधिको येन विमिश्रितः स्यादाधिक्यतः सन्स्वरसं ददाति ॥ ५३

तत्रैव पापाधिकतोऽतिदुःखं पुण्याधिकात्सौख्यमुदाहरन्ति ।
 सुखासुखे ते च समे समत्वान्निम्बेभुहेतुप्रतिदर्शनेन ॥ ५४
 अज्ञानमूढां दुरनुष्ठिता ये धर्माशयात्केशगणानभजन्ते ।
 विपन्नमार्गाः परितप्य पश्चात्ते तीव्रदुःखं नरकं व्रजन्ति ॥ ५५
 नाज्ञानतोऽन्यद्वयमस्ति किंचिन्नाज्ञानतोऽन्यच्च तमोऽस्ति किंचित्
 नाज्ञानतोऽन्यो रिपुरस्ति कश्चिन्नाज्ञानतोऽन्योऽस्ति हि दुःखहेतुः
 निरङ्कुशो मत्त इव द्विपेन्द्रो यथा प्रविश्य प्रक्षिण्डुसेनाम् ।
 नेत्रा सहैवाशु विनाशमेति जीवस्तथा ज्ञानविहीनचेताः ॥ ५७
 यथैव तीक्ष्णाङ्कशब्दान् गजेन्द्रो मृदात्यरीणां पृतनाः प्रसह ।
 तथैव मोहारिमहोग्रसेनां ज्ञानाङ्कुशो निर्जयति क्षणेन ॥ ५८
 यथा दवाग्रेरपसर्तुकामो धावस्तु तत्रैव पतत्यचक्षुः ।
 अज्ञाननीलीवृतलोचनस्तु तथैव दुःखानलमभ्युपैति ॥ ५९
 यथा दवाग्रेरपसृत्य पङ्कुः स्वदेशमाश्रोति शनैरुपायैः ।
 सज्ञानचक्षुश्च तपांसि कृत्वा तथा बुधो निर्वृतिमभ्युपैति ॥ ६०
 इत्येवमादीनि निर्दर्शनानि जगत्प्रवृत्तान्यवलोक्य बुध्या ।
 अल्पश्रमादेव विशुद्धदृष्टिः स मोक्षसौख्यं लभते च विद्वान् ॥६१

कुमतिदुरुपदेशादर्थसञ्चावकृत्ये

जगति न हि विदन्ति क्षीणपुण्या नरा ये ।
 अविदितपरमार्थास्ते पुनर्जन्मवासे

चिरतरमपि कालं दुःखभाजो भवन्ति ॥ ६२
 अत इह मतिमन्तो धर्ममश्यं जनानां
 त्रिभुवनसुखसारप्रापकं संभजध्वम् ।

त्यजते वितथशून्यं श्यामलं लोकधर्मं
 शृणुत तदुपरिष्ठात्कर्मणां च प्रभेदम् ॥ ६३
 इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 धर्मप्रश्नो नाम तृतीयः सर्गः ।

[चतुर्थः सर्गः]^१

संसारे प्राणिनः सर्वे सुखदुःखानुवातिनः ।
 इष्यते कारणं कर्म तयोश्च सुखदुःखयोः ॥ १
 तदेकं कर्म सामान्याद्देदादृष्टमुच्यते ।
 चतुर्था भिद्यते बन्धान्निमित्ताच्च चतुर्विधम् ॥ २
 ज्ञानावरणमाद्यं हि द्वितीयं दर्शनावृतम् ।
 तृतीयं वेदनीयाख्यं चतुर्थो मोह उच्यते ॥ ३
 आयुश्च पञ्चमं प्रोक्तं नाम षष्ठमुदाहृतम् ।
 सप्तमं गोत्रमित्युक्तमन्तरायोऽष्टमः स्मृतः ॥ ४
 मूलप्रकृतयस्त्वेता नामतः परिकीर्तिताः ।
 आद्ये कर्मणि पञ्चैव द्वितीये नवधा स्मृतम् ॥ ५
 तृतीये द्विप्रकारं तु चतुर्थेऽष्टौ च विंशतिः ।
 चतुर्थकारमायुष्कं द्विचत्वारिंशत्रामनि ॥ ६

१ क त्यजथ, म त्यजतथ (?). २ क श्रीमदभिनवचार्यकीर्तिपण्डिताचार्य-
 मुनये नमः.

गोत्रे तु द्विविधं प्रोक्तमन्तरायस्तु पञ्चधा ।
 उत्तरप्रकृतयः सर्वाः संख्याता हि समासतः ॥ ७
 आद्ये द्वे मोहनीयं च दुःखदान्यन्तरायिकम् ।
 वेद्यायुर्नामगोत्राणि सुखदुःखानि नित्यशः ॥ ८
 मतिश्रुतावधिज्ञानं मनःपर्ययकेवलम् ।
 अभिभूय स्ववीर्येण तमः समवतिष्ठते ॥ ९
 चतुर्विधं मतिज्ञानं तदेवाष्टौ च विंशतिः ।
 द्वात्रिंशत्पुनरन्येन स्मृतिमावृत्य तिष्ठति ॥ १०
 अवग्रहेहावायानां धारणानां च संततिः ।
 शुश्रूषामार्गणोपेक्षाधारणानि^१ रुणद्वि सा ॥ ११
 पर्यायाक्षररसंघातः पदं संघात एव च ।
 प्रतिपत्तिश्च योगश्चानियोगद्वारमेवं च ॥ १२
 प्राभृतं प्राभृतं चैव प्राभृतं वस्तुपूर्वकम् ।
 श्रुतज्ञानावृतिस्तत्र समासेन च विंशतिः ॥ १३
 ग्रन्थार्थौ च न जानाति ज्ञात्वा चोपदिशनपुनः ।
 अशक्तः प्रतिपादयितुं श्रुतज्ञानावृतेः फलम् ॥ १४
 द्विभेदमवधिज्ञानं गुणतो जन्मतश्च यत् ।
 तज्ज्ञानं व्रियते येन सावधिज्ञानसंबृतिः ॥ १५
 तद्विनाशोऽवधिज्ञानं^२ प्राणिषूत्पद्यते पुनः ।
 देवानां नारकाणां च भवप्रत्ययकं स्मृतम् ॥ १६

^१ म °मार्गणोपेक्षा°. ^२ म योगश्च नियोग°, [योगश्चानुयोग°]. ३
 [तद्विनाशोऽवधिज्ञानं].

तिरश्रां मानुषाणां च गुणप्रत्यय इष्यते ।
 अवधिः परमो नृणां नेतरेषां प्रकल्प्यते ॥ १७
 क्षयोपशम एवास्मिन्नवधिज्ञानकारणम् ।
 संक्लेशपरिणामेन तद्वयं च विनश्यति ॥ १८
 ऋजुमतिश्च विज्ञेया विपुला तदनन्तरा ।
 तयोरावरणवत्स्यान्मनःपर्ययसंवृतिः ॥ १९
 यद्योजनपृथक्त्वे च प्राणिनां चेतसि स्थितम् ।
 न शक्तो येन विज्ञातुमृजुमत्यावृतेर्बलात् ॥ २०
 अर्धतृतीयद्वीपस्य प्राणिनां हृदि वर्तिं तत् ।
 नास्ति शक्तिः परिज्ञातुं विपुलावृतिवीर्यतः ॥ २१
 उत्कृष्टादप्यसंख्येयान् द्वित्रान्नाथ जघन्यतः ।
 मनःपर्ययावरणाङ्गवान् ज्ञातुं न शक्तवान् ॥ २२
 सर्वद्रव्यस्वभावानां विज्ञात्रीं सर्वदा पुनः ।
 संवृणोत्यात्मविज्ञप्तिं केवलज्ञानसंवृतिः ॥ २३
 निद्रानिद्रा च निद्रा च प्रचलाप्रचला चला ।
 स्त्यानगृद्धिश्च चक्षुश्च अनेत्रावधिदर्शनम् ॥ २४
 केवलेन समाख्यातो दर्शनावृतिकर्मणः ।
 सातासाते पुनर्द्वे च वेदनीयस्य ते स्मृते ॥ २५
 असातवेदनीयेन नरके तीव्रवेदना ।
 तिर्यग्गानुषयोर्मिश्रौ सुखं सातात्सुरालये ॥ २६
 द्विविधं मोहनीयं स्याहृष्टेश्च चरितस्य च ।
 दर्शनं त्रिविधं प्रोक्तं सम्यज्जिथ्यात्वमिश्रकम् ॥ २७

१ [हृद्विवर्ति]. २ क तिर्यग्गानुषयोनिमिश्रं.

नोकषायः कषायश्च चारित्रावरणं द्विधा ।
 नोकषायो नवविधः कषायः षोडशात्मकः ॥ २८
 हास्यरत्यरतिशोका जुगुप्सा भयमेव च ।
 खीपुंपुंसवेदाश्च नोकषाया नव स्मृताः ॥ २९
 क्रोधो मानश्च माया च लोभोऽनन्तानुबन्धिनः ।
 विधातयन्ति सम्यक्त्वं चारित्रं च विशेषतः ॥ ३०
 क्रोधो मानश्च माया लोभः प्रत्याख्याननामकाः ।
 गृहीतव्रतशीलस्य द्यासंयमघातिनः ॥ ३१
 क्रोधो मानश्च माया च लोभः संज्वलनात्मकाः ।
 ते यथाख्यातचारित्रं नाशयन्ति न संशयः ॥ ३२
 चतुष्प्रकारमायुष्कं नारकं दैवमेव च ।
 तिर्यग्योनिं च मानुष्यं स्थितिसत्कौरणं स्मृतम् ॥ ३३
 आयुष्कं नारकं दुःखं तिर्यग्योनिं च मानुषम् ।
 सुखदुःखविमिश्रं तं दैवमैकान्तिकं सुखम् ॥ ३४
 द्विविधं नाम तत्प्राहुः शुभाशुभसमन्वितम् ।
 द्विचत्वारिंशदन्येन नवतिस्त्र्युत्तराण्यथ ॥ ३५
 उच्चनीचद्वयं गोत्रमुच्चनीचं च मानुषम् ।
 तिर्यङ्ग्नारकयोर्नीचमुच्चमेवामरं स्मृतम् ॥ ३६
 दानलोभौ च भोगश्चोपभोगो वीर्यमेव च ।
 पञ्च प्रकृतयस्तस्य अन्तरायस्य कर्मणः ॥ ३७
 उत्तरप्रकृतयः प्रोक्ता अष्टानामपि कर्मणाम् ।
 शतमष्टोत्तरं चैव चत्वारिंशत्प्रमाणतः ॥ ३८

१ क माया च लोभः २ क स्थितेस्तत्कारणं ।

आदितस्तु त्रयाणां च अन्तरायस्य कर्मणः ।
 कोटीकोद्यस्तथा विशन्मोहनीयस्य समतिः ॥ ३९
 चत्वारिंशच्चरित्रस्य गोत्रनाम्नस्तु विशतिः ।
 आयुष्कस्य त्रयखिंशत्सागराश्च परा स्थितिः ॥ ४०
 द्विषण्मुहूर्ता वेदस्य तथाष्टौ नामगोत्रयोः ।
 अन्तर्मुहूर्तिंकी शेषे जघन्या स्थितिरिष्यते ॥ ४१
 तेषामथ दुरन्तानामष्टानां घोरकर्मणाम् ।
 मिथ्यात्वासंयमौ योगाः कषाया बन्धहेतवः ॥ ४२
 ज्ञानविद्वेषिणो ये च प्रतिपक्षप्रशंसिनः ।
 असादेन रता भूयो ज्ञानविद्वकराश्च ये ॥ ४३
 निहवं ये च कुर्वन्ति अवज्ञाप्यविस्मयाः ।
 ज्ञानावृतिकरं कर्म बधन्ति नियमेन ते ॥ ४४
 उत्सूत्रं ये च कुर्वन्ति अकालेऽधीयते च ये ।
 विनयादिक्रियाहीनास्ते श्रुत्यावृतिबन्धकाः ॥ ४५
 यथा नभसि संपूर्णं शशाङ्कं प्रावृद्धम्बुदः ।
 संवृणोति क्षणेनैव जीवं ज्ञानावृतिस्तथा ॥ ४६
 हस्तविक्षोभविक्षिप्तः सचलः^३ क्षणतः पुनः ।
 प्रावृणोत्युदकं यद्वत्दद्व ज्ञानावृतं स्मृतम् ॥ ४७
 द्रव्याण्यशक्तः पुरुषो द्रष्टुं तिमिरलोचनः ।
 अशक्तस्त्वावृतज्ञानः सत्स्वभावान्परीक्षितुम् ॥ ४८
 नव प्रकृतयः प्रोक्ता दृष्ट्यावरणकर्मणः ।
 ज्ञानावृतिनिमित्तानि तान्येवोक्तानि तस्य च ॥ ४९

१ [गोत्रनाम्नोस्तु]. २ [आसादेन]. ३ म स च लक्षणतः, [शैवलः].

वृक्षाग्रे वाथ रथ्यायां तथा जागरणेऽपि वा ।
 निद्रानिद्राप्रभावेन न दृष्ट्युद्धाटनं भवेत् ॥ ५०
 स्यन्दते^१ मुखतो लालौ तनुं चालयते मुहुः ।
 शिरो नमयतेऽत्यर्थं प्रचलाप्रचलाक्रमः ॥ ५१
 स्वपित्युत्थापितो भ्रयः स्वपत्कर्म करोति च ।
 अबद्धं लभते^२ किंचित्स्त्यानगृद्धिक्रमो मतः ॥ ५२
 यान्तं संस्थापयत्याशु स्थितमासयते शनैः ।
 आसीनं शाययत्येव निद्रायाः शक्तिरीदशी ॥ ५३
 किंचिदुन्मिषितो^३ जीवः स्वपित्येव मुहुर्मुहुः ।
 ईषदीषद्विजानाति प्रचलालक्षणं हि तत् ॥ ५४
 चक्षुर्दर्शनावरणं दृष्टिवीर्यं हिनस्ति तत् ।
 शेषेन्द्रियाणां वीर्याणि हन्त्यचक्षुः स्ववीर्यतः ॥ ५५
 अवधिः परमाहश्च स्वनामावरणावृतौ^४ ।
 केवलप्रेक्षणावृत्त्यावृतं केवलदर्शनम् ॥ ५६
 दुःखशोकवधाक्रन्दवन्धनाहाररोधनम् ।
 असातवेदनीयस्य कर्मणः कारणं ध्रुवम् ॥ ५७
 दानधर्मदयाक्षान्तिशौचव्रततपोन्विताः ।
 शीलसंयमगुप्ताश्च सातं बन्धन्ति जन्तवः ॥ ५८
 यहुःखं त्रिषु लोकेषु शारीरं वाथ मानसम् ।
 समस्तं तदसातस्य कर्मणः पाक उच्यते ॥ ५९

१ क स्यन्दते. २ म लोला. ३ [लप्ते]. ४ म किंचिदुभितो, क
 किंचिदु (न्वि) भितो. ५ क स्वनामावरणं वृतौ.

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु शारीरं वाथ मानसम् ।
 तत्सर्वं सातवेदस्य कर्मणः पाक उच्यते ॥ ६०
 केवलिश्चुतधर्माणां गुरुणामहतां सदा ।
 चातुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णाबद्धवादिनः ॥ ६१
 मार्गसंदूपणं कृत्वा अमार्गं देशयन्ति ये ।
 दृष्टिमोहं प्रबन्धन्ति जीवाः संसारभागिनः ॥ ६२
 दृष्टिमोहवृता जीवाः सद्भावं न च जानते ।
 अलब्धकर्मसद्भावा लभन्ते नैव निर्वृतिम् ॥ ६३
 तीव्रक्रोधाहिसंदृष्टा मानस्तम्भतचेतसः ।
 मायाविष्टान्तकलुषा लोभरागान्धदृष्टयः ॥ ६४
 चारित्रमोहं बन्धन्ति जीवा दुरितबुद्धयः ।
 तेन कर्मविपाकेन क्लिश्यन्ते भवत्मसु ॥ ६५
 आद्यः क्रोधोदयस्तीत्रः शिलाभेदसमो मतः ।
 नोपैत्युपशमं तेन जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ६६
 क्रोधोदयां द्रितीयस्तु मध्यक्षेत्रदरीसमः ।
 उपैत्युपशमं कालान्धुतितोयाद्र्द्वचेतसः ॥ ६७
 क्रोधोत्थानस्त्रीयस्तु सिकतालेखसांनिभः ।
 ज्ञानानिलेन संस्पृष्टो गतावेकीकरोत्यसौ^३ ॥ ६८
 क्रोधोदयश्चतुर्थो यो जललेखांसमो मतः ।
 स पुनः कारणाज्ञातः क्षिप्रमेवोपशाम्यति ॥ ६९

१ म श्रुतिः २ क संसारभोगिनः ३ क गतावेकीकरोत्यसौ, [गर्तामेकी^०].
 ४ म जले लेखां

आद्यो मानोदयस्तीव्रः शैलस्तम्भनिभो मतः ।
 नोपैति मार्दवं यस्माज्जीवः कालान्तरादपि ॥ ७०
 मानोदयो द्वितीयस्तु समोऽस्थनेत्यभिधीयते ।
 उपैति मार्दवं तस्माज्ज्ञानाग्रिपरितापितः ॥ ७१
 मानोत्थानस्तृतीयस्तु आद्रकाष्टसमो मतः ।
 ज्ञानस्तेहसमाभ्यक्तस्ततो याति हि मार्दवम् ॥ ७२
 मानोदयश्चतुर्थो यो वालवल्लीनिभो मवः ।
 श्रुतिहस्तसमास्पृष्टो मृदुत्वं याति तत्क्षणात् ॥ ७३
 आद्यो मायोदयस्तीव्रो ब्रेशुभूलसमो मतः ।
 वक्रशीलो भवेत्तेन नोपयात्यार्जवं सदा ॥ ७४
 मायोदयो द्वितीयस्तु मेषशृङ्गसमो मतः ।
 हृद्यन्यच्च समादाय तेनान्यत्पकरोति सः ॥ ७५
 मायोत्थानस्तृतीयस्तु गोमूत्रिंकसमो मतः ।
 अर्धमर्धमृजुत्वं च अर्धं मायाकृतं भवेत् ॥ ७६
 मायोदयश्चतुर्थो यश्चमरीरोमसंनिभः ।
 प्रत्येति प्रकृतिस्तेन ज्ञानयन्त्रप्रपीडितः ॥ ७७
 आद्यो लोभोदयस्तीव्रः क्रिमिरागसमौ मतः ।
 श्रुतानलप्रदग्धोऽपि लोभो न परिहीयते ॥ ७८
 लोभोदयो द्वितीयस्तु नीलीवर्णसमो मतः ।
 ज्ञानपानीयसंधौतस्तेनात्मौ कल्मषायते ॥ ७९
 लोभोत्थानस्तृतीयस्तु आद्रेष्टसमो मतः ।
 श्रुततोयविनिर्धौतस्तेन वैमल्यमृच्छति ॥ ८०

१ [^१मूत्रित]. २ क्र कृमि०. ३ क तेनात्मा॑कल्मषायते.

वराङ्गचारते

लोभोदयश्चतुर्थो यो हरिद्रारागसंनिभः ।
 श्रुतिमूर्याशुसंतप्तः क्षणाद्रागः प्रणश्यति ॥ ८१
 चारित्रमोहनीयेन चारित्रं न च लभ्यते ।
 अचारित्रः पुनर्योरि नरके पच्यते चिरम् ॥ ८२
 हर्षे रोषे त्ववज्ञायामेकाकी वान्यसंश्रितः ।
 निष्कारणं च लपते हास्यकर्मोदयावृतः ॥ ८३
 पापक्रियाभियुक्तेषु अफलेष्वहितेषु च ।
 रतिकर्मोदयान्वित्यं रमते दुर्जनेषु सः ॥ ८४
 ज्ञानं व्रतं तपः शीलं दैन्यान्यसुखकारणम् (?)^१ ।
 लब्ध्वा न रमते तत्र अरतेः कर्मणः फलात् ॥ ८५
 एकं भयं समाप्त्य भयस्थानेषु समसु ।
 वेपिताङ्गः स्खलद्वाक्यो भयकर्मोदयाङ्गवेत् ॥ ८६
 निर्विण्णो दीर्घनिश्वासः सर्वत्रगतमानसः ।
 शीणैबुद्धीन्द्रियबलः शोककर्मोदयाङ्गवेत् ॥ ८७
 इन्द्रियाणां च पञ्चानां योऽर्थाङ्गबद्ध्वा मनोरमान् ।
 जुगुप्सते विपुण्यात्मा जुगुप्साकर्मपीडितः ॥ ८८
 स्त्री चर्वे पुंस्त्वसंदर्शात्पुमांसमभिलष्यति ।
 लाक्षेवानलसंस्पर्शात्क्षणेनैव विलीयते ॥ ८९
 पुंवेदः स्त्र्यभिसंदर्शात्क्षियं समभिलष्यति ।
 यथामेर्धृतकुम्भस्तु क्षणेनैव विलीयते ॥ ९०

१ क शीलधैन्योन्य°, [शीलाद्यन्योन्यसुख°], [शीलं धन्योऽन्यसुख-कारणम्]. २ म भयः. ३ म क्षण°. ४ [स्त्रीवेदः].

इष्टकापाकसंदर्श विफलं मदनाश्रितम् (?) ।
 दौरूप्यं गर्हितं याति स नपुंसकवेदतः ॥ ९१
 नवभिर्नोकषायैस्तु स्वकर्मफलवर्तिभिः ।
 आत्मा चरत्यनाचारं स तेन क्लेशमृच्छति ॥ ९२
 व्रतशीलगुणैः शून्या बहारम्भपरिग्रहाः ।
 बध्नित नरकायुस्ते मिथ्यामोहितदृष्टयः ॥ ९३
 मायातिवञ्चनप्रायाः कूटमानतुलारताः ।
 बधन्त्यायुस्तिरश्चां ते रसभेदशकारिणैः ॥ ९४
 शीलसंयमहीना ये मार्दवार्जवदानिनः ।
 बध्नित मानुषायुस्ते प्रकृत्याल्पकषायिणः ॥ ९५
 सरागसंयमोक्तामसंयमासंयमव्रताः ।
 सदृष्टिज्ञानचारित्रौं बधन्त्यायुर्दिवौकसाम् ॥ ९६
 मनोवाक्यायकुटिला विसंवादपरायणाः ।
 बधन्त्यशुभनामानि दुर्वर्णादीनि देहिनः ॥ ९७
 क्रुजबो वाइमनःकायैरविसंवादतत्पराः ।
 सौरूप्यादिविपाकानि बध्नित शुभनामतः ॥ ९८
 ये जात्यादिमदोन्मत्ताः परनिन्दापरायणाः ।
 नीचगोत्रं निबध्नित जीवाः परमदारुणम् ॥ ९९
 ज्ञानधर्मार्हतां भक्ताः परनिन्दाविवर्जिताः ।
 उच्चैर्गोत्रं निबध्नित जीवाः परमदुर्लभम् ॥ १००

१ [रसभेदस्य कारिणः], [रसभेदप्रकारिणः]. २ [सरागसंयमाकाम°].
 ३ [°चारित्राद्].

दानविघ्नकरा ये ते निःस्वा जन्मसु जन्मसु ।
 लाभविघ्नकराश्चापि निराशा धनलब्धिषु ॥ १०१
 भोगविघ्नकरा जीवा भोगहीना भवन्ति ते ।
 नालं भोक्तुं सति द्रव्ये उपभोगविधातिनः ॥ १०२
 वीर्यविघ्नकरा नित्यं वीर्यहीना भवाध्वसु ।
 धर्मविघ्नकरा ये ते सर्वविघ्नकरा मताः ॥ १०३
 अष्टानां कर्मणां राजन्फलमेतदुदाहृतम् ।
 एतैर्विमुच्यते जीवः संसारे कर्मभिश्चिरम् ॥ १०४
 वधात्यष्टविधं कर्म एकप्राणिविहिंसनात् ।
 नानायोनिषु तेनात्मा दुःखान्यामोत्यनन्तशः ॥ १०५
 एकेन मुच्यते जीवः कर्मणान्येन बध्यते ।
 घटीयन्त्रस्य घटवद्वाहोऽस्मिन्मन्थरज्जुवत् ॥ १०६
 वीजादिव परं वीजं वर्धयत्कर्म कर्मणा ।
 जीवो भ्रमति संसारे क्लेशाननुभवंश्चिरम् ॥ १०७
 अथाष्टौ तानि कर्माणि अनादीनि महीपते ।
 विनिपातसहस्राणि प्राणिनां प्रापयन्ति च ॥ १०८
 एतान्येव नरके घोरे तिर्यङ्गानुषयोः सदा ।
 देव दुर्गतिदुःखावधौ मज्जयन्ति पुनःपुनः ॥ १०९
 तान्येव प्रियसंयोगं विप्रयोगं प्रियाज्जनात् ।
 जातिं मृत्युं जरां चैव कुर्वन्ति प्राणिनां सदा ॥ ११०
 दुःखवीजानि तान्येव तान्येवोग्राश्च शत्रवः ।
 शोककर्तृणि तान्येव तान्येव सुखहेतवः ॥ १११

तान्येव कर्मभाण्डानि समादायात्र जन्तवः ।
 सुखदुःखानि विक्रेतुं प्रयान्ति गतिपत्तनम् ॥ ११२
 इति बहुविधकर्मदोषजालं समुदयसंग्रहकारणं सबन्धम् ।
 जननमरणरोगशोकमूलं यतिपतिना कथितं यथार्थतत्त्वम् ॥ ११३
 पुनरपि यतिराङ्गः प्रयातां दुरितवशेन समश्नुतां फलानि ।
 कथयितुमुरुधीशकार बुद्धिं तरतमदुःखयुतानि तानि राजे ॥

इति धर्मकथोद्देशो चतुर्वर्गसमान्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 पापफलप्रकथनो नाम
 चतुर्थः सर्गः ।

[पञ्चमः सर्गः]

अनन्तसर्वमाकाशं^१ मध्ये तस्य प्रतिष्ठितः ।
 सुप्रतिष्ठितसंस्थानो लोकोऽयं वर्णितो जिनैः ॥ १
 वैत्रासनाकृतिरधो मध्यमो ज्ञालुरीनिभः ।
 ऊर्ध्वो मृदङ्गसंस्थानो लोकानामियमाकृतिः ॥ २
 तिर्यग्लोकप्रमाणेन रज्जुरेका प्रमीयते ।
 तथा चतुर्दश प्रोक्ताख्यलोकायामरज्जवः ॥ ३
 अचलेन्द्रादधः सप्त ऊर्ध्वं सप्त विभाजिताः ।
 ऊर्ध्वाधोलोकयोराहुर्मध्यमष्टप्रदेशिकम् ॥ ४

^१ [अनन्तं सर्वमाकाशं].

घनोदधिर्घनवातस्तनुवातश्च ते त्रयः ।
 वायवो घनसंघाता लोकमावेष्ट्य धिष्ठिताः ॥ ५
 मूले घोडश संख्याता मध्ये द्वादश संमिताः ।
 दशोनयोजनास्त्वेते तयोर्बाहुल्यतः स्थिताः ॥ ६
 घनोदधेस्तु सप्तैव घनवातस्य पञ्च वै ।
 तनुवातस्य चत्वारि योजनान्याहुरादितः ॥ ७
 पञ्च चत्वारि च त्रीणि योजनान्यथ मध्यमे ।
 योजनार्धं च गव्यूतिं गव्यूत्यर्धं च मस्तके ॥ ८
 नारकी वाथ तैरश्री मर्ती दैवी च निर्वृतिः ।
 गतयः पञ्च निर्दिष्टा मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ९
 तासां गतीनां पञ्चानां नारकी प्रथमा गतिः ।
 हिंसाद्यभिरता जीवास्तां विशन्त्यशुभप्रदाम् ॥ १०
 अयोगतिश्च सामान्यात्सैव सप्तप्रभेदतः ।
 सप्तानां सप्त नामानि वर्णितान्यृषिसत्तमैः ॥ ११
 घर्मा वंशा शिलारूपा च अञ्जनारिष्टका तथा ।
 मघवी माघवी चेति यथारूपातमुदाहृताः ॥ १२
 अन्तयुक्तप्रभाशब्दा रत्नशर्करवालुकाः ।
 पङ्को धूमस्तमैव सप्तमश्च तमस्तमः ॥ १३
 प्रस्तारैः कुतपश्चाशादिन्द्रका(?) नरकालये ।
 त्रयोदशैव घर्मायां द्वौ द्वावूनतरावधः ॥ १४
 त्रिंशत्पञ्चकवर्गश्च पञ्चादश दशत्रयः ।
 पञ्चोनं शतसहस्रं पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ १५

१ क गव्यूतोर्ध्वे. २ [सामान्या].

चतुःशतसहस्राणि अशीत्यभ्यधिकानि च ।
 नरकाणां तु सप्तानां प्रभेदा वर्णिता जिनैः ॥ १६
 तेषामत्यल्पनरका जम्बूद्वीपसमा मताः ।
 सर्वेभ्योऽभ्यधिका ये तु ते त्वसंख्येययोजनाः ॥ १७
 नरकाः पुरसंस्थाना इन्द्रकारुण्या नराधिप ।
 श्रेणीबद्धास्तथाष्टासु दिक्षवथात्र प्रकीर्णकाः^१ ॥ १८
 अधोऽधो नरका रुन्धाँ अधोऽधस्तीव्रवेदनाः ।
 अधोऽधोऽभ्यधिकायुष्का अधोऽधस्तु घनं तमः ॥ १९
 षष्ठसप्तमयोः शीतं शीतोष्णं पञ्चमे स्मृतम् ।
 चतुर्थेऽत्युष्णमुद्दिष्टं तेषामेव महीगुणाः ॥ २०
 नारकाणां च दुःखस्य तेषां शीतोष्णयोः पुनः ।
 वर्णगन्धकृतीनां च उपमान्या न विद्यते ॥ २१
 मेरुप्रमाणोऽयःपिण्ड उष्णे क्षिप्तो^३ यद्वच्छया ।
 विलीयते क्षणेनैव एवं तस्योष्णता मता ॥ २२
 तावत्प्रमाणोऽयःपिण्डः शीते क्षिप्तो यद्वच्छया ।
 सहसैव हिमीभावमुपयाति न संशयः ॥ २३
 जम्बूद्वीपं निमेषेण यो गन्तुं शक्तिमान्सुरः ।
 षड्डिर्मासैर्वजेदन्तं महतो नरकस्य सः ॥ २४
 या गतिर्दुःखभूयिष्टा वर्णिता मुनिपुङ्क्षैः ।
 तां गतिं ये प्रपद्यन्ते तान् वक्ष्यामि विशेषतः ॥ २५
 हिंसायां निरता नित्यं मृषावचनतत्पराः ।
 परद्रव्यस्य हर्तारः परदारभिलङ्घिनः ॥ २६

१ म प्रकीर्णताः, [प्रकीर्तिताः]. २ [रौद्राः]. ३ क उष्णक्षिप्तो.

मिथ्यातिमिरसंछन्ना वहारम्भपरिग्रहाः ।
 कृष्णलेश्यापरिणताः श्वाभ्रीमधिवसन्ति ते ॥ २७
 पञ्चानामिन्द्रियाणां हि पञ्चार्था रतिहेतवः ।
 तेषां प्रासिनिमित्ताय कर्म चिन्वन्ति दारुणम् ॥ २८
 अयःपिण्डो जले क्षिप्तो नादं प्राप्य न तिष्ठति ।
 कर्मभारसमाक्रान्ता जीवाश्च नरकालये ॥ २९
 पिष्टपाकमुखेष्टिके(?) उप्रिकास्त्वपरे पुनः ।
 उत्पद्यन्ते ह्यधोवक्राः पापिष्टा वेदनातुराः ॥ ३०
 उत्पद्य हि दुराचारा अत्युष्णात्परिपीडिताः ।
 पतन्त्युत्पत्त्य तत्रैव तप्तभ्राष्ट्रं तिला इव ॥ ३१
 नारका भीमरूपास्ते दुर्बलाः पूतिगन्धिनः ।
 अव्यक्तहुण्डसंस्थानाः पण्डकाश्चण्डभाषिणः ॥ ३२
 उत्पन्नान्सहसा दृष्ट्वा विभङ्गज्ञानदृष्टयः ।
 स्मरन्तः पूर्ववैराणि आधावन्ति समन्ततः ॥ ३३
 त्रासयन्तोऽथ गर्जन्त आक्रोशन्तोऽस्त्रपाणयः ।
 जन्मान्तरे कृतान् दोषान् ख्यापयन्तः श्रयन्ति तान् ॥ ३४
 पूर्वापराधानात्मीयान् ज्ञात्वा तु दुरनुष्टितान् ।
 भयत्रस्तविषण्णाङ्गा आरभन्ते पलायितुम् ॥ ३५
 दृष्ट्वा पलायमानांस्तात्रोऽद्वकामास्त्वरान्विताः ।
 भीषयन्तः प्रचण्डाश्च अनुधावन्ति धावतः ॥ ३६
 संप्राप्य भयवित्रस्ताननाथान् शरणागतान् ।
 मुसलैमुद्दरैः शूलैस्ताडयन्तोऽथ मर्मसु ॥ ३७

१ क कृष्णलेश्याः परिणताः । २ [नाधः]. ३ क पण्डकाः ।

विलपन्तो रुषन्तश्च ताङ्गमाना दुरात्मभिः ।
 पतन्ति भिन्नमूर्धानो धरण्यां वेदनादिताः ॥ ३८ ।
 सिंहव्याघ्रमृगदीपाँ(?) गृध्रोल्काश्च वायसाः ।
 अयस्तुण्डैर्नवैर्दन्तैः पतितान्भक्षयन्ति तान् ॥ ३९
 केचिल्लोहेषु निक्षिप्य तुदन्तो लोहयष्टिभिः ।
 मांसमृष्टरसासक्तान्मांसवत्खादयन्ति तान् ॥ ४०
 जिह्वान्त्राणिं च नेत्राणि केचिदुत्कृत्यं निर्दयाः ।
 ग्रथित्वाथ शिरासूत्रैः शोषयन्ति शिलातले ॥ ४१
 छित्त्वा ये परगात्राणि प्रादुर्वृष्टिकाँ(?) मुहुः ।
 तेषां वक्राण्यधःकृत्वा धूपयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ४२
 हस्तपादमथ च्छित्वा कर्णनासापुटानि च ।
 रुधिराद्र्दाणि संगृह्य कूराḥ कुर्वन्ति दिग्बलिम् ॥ ४३
 केचिच्छूलेषु निक्षिप्य भ्रामयन्त्यभिधावतः ।
 निक्षिप्योलूखले कांश्चिच्चूर्णयन्त्यधमा भृशम् ॥ ४४
 पिषन्ति गन्धवत्कांश्चिन्मृदन्ति निर्दयाः ।
 ऋकचैर्दारयन्त्यन्यानक्षीण्युत्पाटयन्ति च ॥ ४५
 पिबन्ति रुधिराण्यन्ये शङ्खैर्विद्धा शिरः पुनः ।
 ग्रसन्ति मुखतः कांश्चित्पादतस्त्वपरे परान् ॥ ४६
 छिन्दन्त्यसिभिरङ्गानि भुरिकाभिर्दुणन्ति च ।
 ठङ्कैः शिरःकपालानि वासिभिर्वदनानि च ॥ ४७

१ [रुदन्तश्च]. २ [द्रिषाः]. ३ म जिह्वां ध्राणे. ४ क उद्भृत्य. ५ क प्राधर्वृष्टिका (?). ६ क शङ्खैर्विद्धं.

तुणैरावेष्टय सवर्ज्जं ज्वालयन्त्यग्निना भृशम् ।
 शङ्कर्मूर्धस्थोत्खन्य तुदन्त्यक्षीणि चोलमुकैः ॥ ४८
 मशिका मशकाश्वैव वृश्चिकाश्व पिपीलिकाः ।
 खादयन्ति ब्रणान्यन्ये स्त्रवदुधिरपूतिनः ॥ ४९
 ये हत्वा प्राणिनः पूर्वं मांसभक्षणतत्पराः ।
 तान्मुहुर्यातनाभिश्च दण्डयन्ति परस्परम् ॥ ५०
 लोभादागात्ममादाद्वा राजवाक् लभ्यते मदात् ।
 प्रभुत्वाच्च कुसामर्थ्यादसदुक्त्वान्यहिंसकान् (?) ॥ ५१
 इदानीं तत्र सामर्थ्यान् पश्याम इति नारकाः ।
 उत्कोटबन्धनं कृत्वा तोदयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ५२
 दन्तानुत्पाद्य यन्त्रेण विच्छेद्य दशनच्छदान् ।
 प्रवेशयन्ति वक्रेषु श्वसज्जीमभुजज्ञमान् ॥ ५३
 जिह्वाश्वोत्पाटयन्त्यन्ये भवसंबन्धिवैरिणः ।
 मूषातस्तरं ताङ्रं पाययन्त्यनृतप्रियान् ॥ ५४
 शूलैस्तीक्ष्णतरैर्घोरैः क्रोधविभ्रान्तदृष्टयः ।
 चरणेषु प्रविध्यन्ति रुदन्तान्करुणस्वनैः ॥ ५५
 रुदन्त्याक्रन्दतामन्ये अयस्मूचिभिरङ्गुलीः ।
 अपरानतिवैरेण खण्डशः कल्पयन्ति च ॥ ५६
 ऊरु परशुभिश्छित्वा खादयन्ति परे परान् ।
 वध्वान्ये पाणिपादं च क्षिपन्ति चितकामिषु ॥ ५७

१ क सामर्थ्यात्, [सामर्थ्य]. २ [रुदतः करुणस्वनैः]. ३ [रुदन्ति
 ४ [चितकामिषु].

एवं बहुविधैर्दण्डैः खण्डयन्त्यकृतात्मनः ।
 वैभज्जानविज्ञानस्तेयानन्दपरायणान् ॥ ५८
 आद्रचन्दनकल्कानि विषाक्तानि ससंभ्रमात् ।
 लिम्पन्त्यन्तर्विंदाहीनि परस्त्रीसुरतप्रियान् ॥ ५९
 माल्याभरणवस्त्राणि तप्ताम्रमयानि च ।
 धारयन्ति परस्त्रीणां रतिसंगमकर्कशाः ॥ ६०
 सोपचारैरुपासृत्य सुरताहवकोविदान् ।
 हावभावविलासिन्यो ब्रुवन्त्यः स्वागतक्रियाः ॥ ६१
 पूर्वजन्मकृतस्तेहात्संबन्धाच विशेषतः ।
 भावयन्ति स्त्रियः पुंस आश्लिष्यन्ति प्रिया इव ॥ ६२
 ताभिराश्लिष्यमाणाच्च दग्धसर्वाङ्ग्यष्टयः ।
 घृतवत्प्रविलीयन्ते ज्याङ्गनाङ्गप्रसङ्गिनः ॥ ६३
 तस्मिन् देशे तथा विद्धि आवयो रतिविभ्रमः ।
 इति ब्रुवन्तः पापिष्ठा बाधन्ते बाधितान्पुरा ॥ ६४
 स्त्रीणां पुरुषरूपाणि स्त्रीरूपाणि नृणां पुनः ।
 सुतसौरायसैस्तात्रैर्विंकुर्वन्ति परस्परम् ॥ ६५
 कुकुटान्मेषमार्जारान्कुलांलावकाञ्चुनः ।
 उपभोगे त्वकर्मण्याननर्थान्धोषयन्ति ये ॥ ६६
 सर्वेषां भोगिनां यास्तु सर्वा द्रविणसंपदः ।
 ता मैव न चान्येभ्यो भवन्त्वत्यतिश्रद्धयैः ॥ ६७
 आसामनर्थमूलान्ये कुर्वन्ति स्पृहया नराः ।
 दुःखस्यान्तं न पश्यन्ति चिरं श्वाभ्यां वसन्ति ते ॥ ६८

१ क °विज्ञानाऽः)स्तेयानन्द°. २ [अतिश्रद्धया].

कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते केचिदत्युष्णभस्मसु ।
 भृज्यन्ते तिलबत्केचिच्छूर्यन्ते तुषवत्परे ॥ ६९
 ऋकचैस्तुल्यनिर्भिन्ना खण्ड्यन्ते मर्मसन्धिषु ।
 निस्तुद्यन्ते पुनः शूलैस्ताङ्ग्यन्ते मुसलैः परे ॥ ७०
 पीड्यन्ते तिलयन्त्रेषु इक्षुयन्त्रे तथापरे ।
 चक्रयन्त्रैरथोद्धाम्य पातयन्ति रसातले ॥ ७१
 शतधा खण्डखण्डानि भूत्वान्ते^१ क्लेशभागिनः ।
 पतन्ति चण्डवेगेन पातालेष्वथ मूर्च्छिताः ॥ ७२
 पुनः पर्याप्तसर्वाङ्गाः सहसैव समुत्थिताः ।
 विद्रवन्तो भयत्रस्ताः समारोहन्ति पर्वतान् ॥ ७३
 ते शैलाच्छीर्यमाणाङ्गाश्वूर्णयन्त्यभिधावतः (?) ।
 खादन्ति व्याघ्रसिंहक्षरा गुहाभ्यस्तु विनिर्गताः ॥ ७४
 ततोऽवतीर्य पश्यन्तो भुज्ञानान्विवतो जनान् ।
 याचमानाः शनैर्यान्ति क्षुत्तृष्णापरिमदिताः ॥ ७५
 तेऽभ्युत्थाय सुसंभ्रान्ताः पाद्याद्यर्थाद्यथाविधि ।
 उपचारान्वहून्कृत्वा प्रयच्छन्त्युष्णपीठिकाः ॥ ७६
 सुतप्रकृष्णलोहस्य गुलिकाः खण्डशः कृताः ।
 यन्त्रैर्विंदार्य वक्रेषु क्षिपन्ति त्रस्तचेतसाम् ॥ ७७
 शुष्कताल्वोष्टजिह्वास्यान्विष्कृपास्तृष्यादिंतान् ।
 प्रतप्रताम्रमापात्य क्रन्दतः पाययन्ति तान् ॥ ७८
 केचिदुष्णप्रतीकारं कुर्वन्त इव निर्दयाः ।
 गलग्रहेण संगृह्य मज्जयन्त्युष्णवारिषु ॥ ७९

१ म कृतजैस्तुल्य^०, [°शूल°]. २ म भूत्वा ते.

अनेकोपद्रवाकीर्णा विषक्षारजलाविलाम् ।
 नदीं वैतरणीं घोरां तारयन्ति समन्ततः ॥ ८०
 तां नदीं क्लेशतस्तीर्त्वा वनं पश्यन्ति पुष्पितम् ।
 तद्वनान्तेषु यातेषु वायुरेकः प्रकुप्यति ॥ ८१
 प्रपतन्त्यसिपत्राणि अयःपिण्डफलानि च ।
 विषमिश्राणि पुष्पाणि सद्यः प्राणहराणि च ॥ ८२
 विशीर्णचिन्नभिन्नाङ्गा अधिरुद्धोग्रवेदनाः ।
 पतन्ति कण्टकाकीर्णे विषदग्धे^१ महीतले ॥ ८३ ॥
 विषैर्निर्दद्यमानाङ्गा रसन्तः करुणस्वनैः ।
 भिन्दन्ति क्रिमयोऽङ्गानि दशन्ति च पिपीलिकाः ॥ ८४
 कृष्णाः श्वानो विलुम्पन्ति कर्षन्त्यसितवायसाः^२ ।
 दशन्ति कृष्णसर्पाश्च चूषयन्त्यथ मक्षिकाः ॥ ८५
 पुनरन्तर्धूर्तेन सर्वपर्याप्तविग्रहाः ।
 असातवेदनीयस्य पाकतः संभवन्ति ते ॥ ८६
 नेत्रैः पश्यन्त्यनिष्टानि श्रोत्रैः शृण्वन्ति दुःस्वरान् ।
 ग्राणैर्जिघन्ति दुर्गन्धान् स्पृशन्त्यझैश्च कर्कशान् ॥ ८७
 आस्वादन्ते^३ निरास्वादान् जिह्वाभिर्गतसत्क्रियाः ।
 इन्द्रियार्थैरकल्याणैर्व्याकुलीकृतचेतसः ॥ ८८
 नोदासीना न मित्राणि न प्रिया न च बान्धवाः ।
 सर्वत्र नरकावासे सर्व एवापकारिणः ॥ ८९

१ [विषदिग्धे]. २ म रशन्तः करुणास्वरैः. ३ म हर्षन्त्यसितवायसाः.
 ४ क आस्वादन्ति, [आस्वदन्ते].

विनिपातसहस्राणि प्रापयन्तः कृतागसः ।
 बाधन्ते क्रोधसंब्धा आचतुर्थ्यादितोऽसुराः ॥ ९०
 आसुरं भावमाश्रित्य रागविष्टब्धचेतसः ।
 एकत्र स्थापयित्वा तान्योधयन्ति परस्परम् ॥ ९१
 कांश्चिच्छालमलिमारोप्य जन्मसंबन्धवैरिणः ।
 अधश्चोर्ध्वं च कर्षन्तः पातयन्ति भृशं मुहुः ॥ ९२
 उदारा रूखक्षांसि तेषां भिन्दन्ति कण्टकाः ।
 अधस्ताज्जवालयन्त्यग्निं ग्रसन्त्युपरि राक्षसाः ॥ ९३
 कङ्कः काकैश्च तुद्यन्ते मशकाश्च दशन्ति तान् ।
 भीषयन्ते पिशाचाश्च भत्सेयन्त्यसुराः पुनः ॥ ९४
 एवं पापविपाकेन दुःखान्येषां समश्नुताम् ।
 नारकाणां पुनस्तत्र शीतोष्णमतिदुस्सहम् ॥ ९५
 नरकादुष्णवाहुल्यान्नारकश्चेद्विनिर्गतः ।
 प्रावेक्ष्य(?) ग्रीष्ममङ्ग्यान्हे वन्हिं सुखमलप्स्यतः ॥ ९६
 तथैव शीतवाहुल्यात्प्रावेक्ष्य चेद्विनिर्गतः ।
 तुपारराशिहेमन्ते वरं सुखमलप्स्यतः ॥ ९७
 लभेत जलधीनसर्वान्पिवेदत्युष्णतृष्णया ।
 उदरं यदि गृण्हीयान्नोपशाम्यति तत्तृषा ॥ ९८
 यानि लोकेषु सर्वेषु फलपर्णतृणानि च ।
 भक्ष्यन्ते चेत्था चापि क्षुदग्निर्नोपशाम्यति ॥ ९९
 एवं बहुप्रकारैस्तु दुःखान्याप्नुवतां भृशम् ।
 सुखनामापि भूपाल नारकाणां न विद्यते ॥ १००

पालयित्वा महीं कुत्स्तामुपभुद्यात्मनः श्रियम् ।
 चक्रवर्तीं प्रयातीति नरकं कोऽत्र विस्मयः ॥ १०१
 मनसैव विचिन्त्यात्र विविधा भोगसंपदः ।
 मनश्चक्रधरं श्वाश्रीं प्रयातीत्येष विस्मयः ॥ १०२
 क्षुद्रमत्स्यः किलैकस्तु स्वयंभूरमणोदधौ॒ ।
 महामत्स्यस्य कर्णस्थः स्मृतिदोषादधोगतः ॥ १०३
 सप्तम्यां तु त्रयखिंशत् पष्ठ्यां द्वाविंशतिः स्मृताः ।
 पञ्चम्यां दशसैव चतुर्थ्यां दश वर्णिताः ॥ १०४
 तृतीयायां तु सैव द्वितीयायां त्रयः स्मृताः ।
 प्रथमायां भवत्येकः सागरः संख्यायुषः ॥ १०५
 दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां जघन्यतः ।
 उपर्युपरि योत्कृष्टा सैवाधोऽधो जघन्यकः ॥ १०६
 चिरकालं तु दुःखानि नारका नरकालये ।
 अपवर्त्ययुषो यस्मात्प्राप्नुवन्ति ततो भृशम् ॥ १०७
 सुखं निमेषतन्मात्रं नास्ति तत्र कदाचन ।
 दुःखमेवानुसंबन्धं नारकाणां दिवानिशम् ॥ १०८

इत्येवं नरकगतिः समाप्तस्ते
 संप्रोक्ता बहुविधयातनामिदानीम् ।
 तैरश्रीं गतिमत उत्तरं प्रवक्ष्ये
 निर्व्यग्रः शृणु नरदेव सत्त्वबुद्धया ॥ १०९
 श्वाश्रीणां तिमिरगुहासु तासु दुःखं
 पापिष्ठाश्विरमनुभूय कर्मशेषात् ।

१ म चक्रधरः. २ [स्वयंभूरमणोदधौ]. ३ [°संबद्ध].

तैरथीं पुनरथं संभजन्त्यभद्रा-
स्तत्रापि प्रतिभवदुःखमेव शश्वत् ॥ ११०

इति धर्मकथोद्देशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
नरकगतिभागो नाम पञ्चमः सर्गः ।

[षष्ठः सर्गः]

अथैवमुर्वीपतये मुनीन्द्रः प्रारब्धवान्वक्तुमतस्तिरशाम् ।
गतेर्विभागं बहुदुःखघोरमीषलघुत्वं नरकादसद्वात् ॥ १
तिर्यक्त्वसामान्यत एकमेव स्थानप्रभेदाच्च चतुर्दशाहुः ।
कायात्पदेवेन्द्रियतश्च पञ्च गुणाश्च पञ्चैव वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २
एकेन्द्रियाः स्थूलतमाश्च सूक्ष्माः पर्याप्त्यपर्याप्तियुतास्त्रयस्तु ॥ ३
द्वितीन्द्रियास्ते चतुरिन्द्रियाश्च पर्याप्त्यपर्याप्तियुतास्त्रयस्तु ॥ ४
पर्याप्त्यपर्याप्तकसंज्यसंज्ञाः पञ्चेन्द्रियास्ते च चतुष्प्रकाराः ।
भूम्यम्बुवाग्वग्निवनत्रसानां कायाश्च षड्गीविनिकायमाहुः ॥ ५
भूम्यम्बुवाग्वग्निमयास्तु जीवा भवन्ति लोके गणनाव्यतीताः ।
वनस्पतीनामसवस्त्वनन्ताः स्पर्शात्सुखं दुःखमयो विदन्ति ॥ ६
शङ्खाकुक्षिक्रिमिशुक्किकाद्यास्ते द्वीन्द्रियाः स्पर्शरसौ विदन्ति ।
पिपीलिकामत्कुणवृश्चिकाद्यास्ते त्रीन्द्रियाः स्पर्शरसौ च गन्धम् ॥ ७
पतञ्जलपादधुमकिकाद्याः स्पर्शं रसं गन्धमयापि रूपम् ।
मृगोरगाण्डोद्भवतोयजाद्याः शब्देन पञ्चेन्द्रियजातयस्ते ॥ ८

१ क °प्रभेदाश्च. २ [गुणाच्च].

एकेन्द्रियत्वं प्रतिपद्य जीवा नानाविधाश्छेदनभेदनानि ।
 विमर्दनोत्तापनहिंसनानि सवेदनादीन्यवशाः सहन्ते ॥ ८
 प्रपिष्यमाणाश्च विदार्यमाणा विशीर्यमाणा विविधप्रकारैः ।
 प्रपीड्यमाना बहुशोऽपि जीवा द्वितीन्द्रियाद्या वधमाप्नुवन्ति ॥ ९
 ज्वलन्महादीपशिखां प्रविश्य प्रदह्नते नेत्रवशात्पतञ्जः ।
 घाणेन्द्रियेष्टान्विषपुष्पगन्धानाद्राय नाशं भ्रमराः प्रयान्ति ॥ १०
 क्रव्यादगीतध्वनिनावकृष्टा मृगा वराकाः खलु वागुरासु ।
 निपात्य घोरैरूपहन्यमानास्त्यजन्ति सद्यः प्रियजीवितानि ॥ ११
 प्रसन्नतोयेषु सरस्सु मत्स्याः संक्रीडमाना रसनप्रसन्काः ।
 ग्रस्तामिषासस्पस्तशरीरचित्राससवेदनास्ते सहसा त्रियन्ते ॥ १२
 वन्याः करीन्द्राः सुखमाप्तुकामाः करेणुगात्राभिरतिप्रसन्काः ।
 तोदप्रकारैरभिहन्यमाना विचेतसोऽरण्यसुखं स्मरन्ति ॥ १३
 एते त्वथैकेन्द्रियसंगदोषादलब्धकामाः प्रलयं प्रयान्ति ।
 सर्वेन्द्रियाणां वशमभ्युपेता नश्यन्ति जीवा इति कः प्रवादः ॥ १४
 खरोष्ट्रहस्त्यश्वतराश्च गोणा भूमीश्वराणामिह वाहनार्थम् ।
 अत्यर्थभारातिनिरोधरिविनाः क्षुत्तृश्रमाः क्लेशवधं^१ भजन्ते ॥ १५
 विचित्रसंकलिप्ततीव्रवन्धैर्दण्डाङ्गौश्चस्तोत्रकशाप्रहारैः ।
 प्रपीडनोत्ताडनवाहवन्धैर्दुःखान्यनेकानि समश्वुवन्ति ॥ १६
 केचित्पुनः पाशनिबद्धकण्ठाः केचिन्महापञ्चरुद्धकायाः ।
 पदेषु केचिद्वृदरज्जुबद्धा विनष्टसौख्या गमयन्ति कालम् ॥ १७
 कपिञ्जला लावकर्वत्काश्च मयूरपारावतटिहिभाद्याः ।
 नभश्वराः पादविलग्नपाशा नश्यन्ति पापैरभिहन्यमानाः ॥ १८

१ [°श्रमङ्गेशवधान्].

वका वलाका जलकुक्कुटाश्र क्रीञ्चाः सकोरण्डवचक्रवाकाः ।
 जलाश्रयोपाश्रयजीविनस्ते भैशं सहस्तेषु वधं प्रयान्ति ॥ १९
 क्षुधाभिभूतास्तु तिमिङ्गिलाद्या ग्रसन्त्यथान्योन्यमनल्पकायाः ।
 खगा खगांश्चापि मृगा मृगांश्च परस्परं घन्त्यबलान्बलस्थाः ॥ २०
 अहो वराका हरिणाः शशाश्र वृका वराहा रुवः कुरङ्गाः ।
 न्यह्रीलिकाद्याः (?) परिपुष्टकाया त्वञ्चांसहेतोर्विलयं प्रयान्ति ॥ २१
 केचित्पुनः शुष्कगलोष्टजिह्वास्तृष्णाग्निनान्तः प्रविदद्यमानाः ।
 संशुष्कपर्णोपनिपातभीता विश्वस्तचित्ता न तुणं चरन्ति ॥ २२
 निपातदेशेष्वभिलीनकायैव्याधैः समुत्त्रासितचेतसोऽन्ये ।
 छायां विदेहस्यै विशङ्गमानाः सुखेन पातुं न पयो लभन्ते ॥ २३
 क्रव्यादवर्गैरनुवाच्यमानाः केचित्प्रधावन्त्यनवेक्ष्य शावान् ।
 वित्रस्तनेत्राः प्रतिनष्टचेष्टाः केचिद्द्यार्तांश्च मुखे पतन्ति ॥ २४
 बृहत्पृष्ठकैः प्रविदारिताङ्गाः प्रविश्य केचिद्दिरिगद्वराणि ।
 सवेदनानिष्ठप्रतिकाररूपाः प्राणान्विषण्णा जहति क्षणेन ॥ २५
 व्याघ्रान्विनिघ्रन्त्यथ चर्महेतोर्वलापदेशाच्चमरीं वराकाम् ।
 मांसापदेशाच्छशसूकरादीन् विषाणमुक्तासु करीन्द्रवर्गान् ॥ २६
 अकारणक्रोधकषायिताक्षाः स्वभावनिर्वृत्तनिवद्धैराः ।
 नखैर्विषाणैर्दशनैः सुतीक्ष्णैरन्योन्यमर्पस्वभिताडयन्ति ॥ २७
 केचित्पुनर्मानकषायदोषात्संभूय नागाश्वरोष्टयोनौ ।
 आरुह्यमाणाः परिपीड्यमाना भारातिखिन्ना विवशीक्रियन्ते ॥ २८
 मानात्पुनः केचन सूकरत्वं मानातिमानात्कुकुलं प्रयान्ति ।
 परावमानप्रसवं च दुःखं तिर्यग्गतौ नैकविधं श्रयन्ते ॥ २९

१ म°कोरण्डक°, [कारण्डव°]. २ [नृशंस°]. ३ [बलिष्ठाः]. ४ क
 न्यहेलिकाद्याः. ५ [स्वदेहस्य]. ६ [अनुव्रज्यमानाः].

मायादिभिर्ये परिवश्य जीवान् संपोषयामासुरथ स्वदेहान् ।
 तेषां शरीराणि गतौ तिरश्चां मांसाशिनां तान्यशनीभवन्ति ॥३०
 केचित्पुनर्लोभकषायदोषाद्वच्यं परेषां मुमुषुर्विमूढाः ।
 तिर्यक्षुयोनौ प्रतिवद्धकायान् तान्व्याधवर्गाः परिभक्षयन्ति ॥ ३१
 तिर्यग्गतेर्दुःखमनन्तपारं वक्तुं न शक्यं चिरकालतोऽपि ।
 तामेव घोरामिह ये प्रयान्ति संक्षेपतस्तान्पथम् प्रवक्ष्ये ॥ ३२
 ये वश्वकाः कूटतुलातिमानैः परोपतापं जनयन्ति नित्यम् ।
 वाचान्यदुक्त्वा क्रियान्यदेव कुर्वन्ति कृत्यं विफलं परेषाम् ॥३३
 हस्तार्पितं ये परकीयमर्थमादाय कस्माद्वपलोपयन्ति ।
 ऐश्वर्यदर्पद्वलबीर्यतो वा परानवज्ञाय मृषा ब्रुवन्ति ॥ ३४
 तत्रं दधि क्षीरधृतं गुडं वा रसैस्तथान्यैः प्रतिमिश्रयन्ति ।
 ते हीनसत्त्वाः कृपणा विपुण्याः पतन्ति तिर्यग्वडवामुखेषु ॥ ३५
 प्रवालमुक्तामणिकाश्वनानि विकृत्य तद्रूपसमानि ये तु ।
 नृन्वश्वकास्ते रतिमाप्नुवन्ति तिर्यग्गतिं वै विवशा वसन्ति ॥ ३६
 कूटाक्षवृत्ते कुटिलस्वभावाः स्तेनप्रयोगैश्च दुरीहिता ये ।
 परोपघातं जनयन्ति ये तु ते यान्ति जीवास्तु गतिं तिरश्चाम् ॥३७
 सुसंयता वाग्भिरधिक्षिपन्तां ह्यसंयतेभ्यो ददते सुखाय (?) ।
 तिर्यद्वमुखास्ते च मनुष्यकल्पा द्वीपान्तरेषु प्रभवन्त्यभद्राः ॥ ३८
 केचित्पुनर्वानरतुल्यवक्त्राः केचिद्वजेन्द्रप्रतिमाननाश्च ।
 अश्वानना मेण्डमुखाश्च केचिदजोष्टवक्त्रा महिषीमुखाश्च ॥ ३९
 द्वाविंशतिर्वर्षसहस्रमायुर्वर्दान्ति तज्ज्ञा वसुधाश्रितानाम् ।
 जैलाश्रितां(?) सप्तसहस्रमात्रं दिनत्रयं विद्ध्यनलाश्रितानाम् ॥४०

१ म व्याधि० २ [नृवश्वकास्ते]. ३ क जलास्तिता०

वाय्वाश्रितानां त्रिसहस्रमुक्तं बनस्पतीनां दश वर्णयन्ति ।
 द्विकेन्द्रियाणां द्विषडेव वर्षा^१ आयुःप्रमाणं परमं प्रकर्षात् ॥ ४१
 त्रिकेन्द्रियाणां दिनमेकहीनं पञ्चाशत्युक्तं परिमाणमायुः ।
 षष्ठ्यासमायुश्चतुरिन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रियाणां पृथगेव वक्ष्ये ॥ ४२
 चतुष्पदानामथ कर्मभूमौ जलाश्रितानां च हि पूर्वकोटिः ।
 त्रिशून्यसप्ताहुरथाण्डजानां त्र्यष्टौ सहस्राणि सरीसृपाणाम् ॥ ४३
 अन्तर्षुहूर्तं कथितं तिरश्चां जघन्यमायुर्मुनिपुङ्ग्न्येन ।
 कुलप्रसंख्यामथ योनिसंख्यां समासतस्ते कथयामि राजन् ॥ ४४
 आदित्यसंख्या खलु शून्ययुक्तात्कोद्यः कुलानामथ वेदितव्याः^(?)
 द्वाविंशतिस्तत्र महीमयानां प्रभञ्जनाप्त्वात्मकयोश्च सप्त ॥ ४५
 तिस्पस्तु वेद्यास्त्वनलाश्रितानामष्टोत्तरा विंशतिरङ्ग्यधिपानाम् ।
 द्विकेन्द्रियाणां विहिताश्च सप्त अष्टौ पुनर्खीन्द्रियदेहिनां च ॥ ४६
 नव प्रदिष्टाश्चतुरिन्द्रियाणां सरीसृपाणां च नव प्रणीताः ।
 अर्धत्रयोक्ता दश तोयजानां विहङ्गमानां खलु षड्विकम्भीः ॥ ४७
 चतुष्पदानां दश संप्रदिष्टाः पञ्चोत्तरा विंशतिराद्यगत्याम् ।
 षड्विंशतिदेवनिकायजानां चतुर्दशोक्तास्त्वयै मानुषाणाम् ॥ ४८
 चतुर्गतीनां च निगोदजीवा अवस्थिता ये च निगोदतायाम् ।
 भूवायुतोयाश्रिमतां च सप्त योनीसहस्राणि शताहतानि ॥ ४९
 बनस्पतीनां दश वर्णयन्ति द्वे द्वे पुनस्ते विकलेन्द्रियाणाम् ।
 चत्वारि तिर्यक्सुरनारकाणां मनुष्यवर्गस्य चतुर्दशाहुः ॥ ५०
 अनेकयोनिष्वतिदीर्घकालं परिभ्रमन्तः परिहीनसौख्याः ।
 अहो वराका दुरितानुबन्धा दुःखस्य नान्तं बत यान्ति जीवाः ५१

१ क वर्षान्. २ म °सप्तद्विकमण्ड°. ३ म भुजङ्गमे षड्गुणिताश्च सप्त
 ४ [षड्विकमाः]. ५ म पद्मि (षड्भिः ?) द्विकम्भास्त्वय.

क्रमेण यान्तः कुलकोटिजालान् जातिं जेरा मृत्युमनेकरोगान् ।
समश्नुवानाः कुटिलस्वभावास्तिर्यग्गतौ नैव सुखं लभन्ते ॥ ५२
शारीरदुःखं त्वपरैरवाप्य तन्मानसं कैश्चिदवाप्यते च ।
तथोभयं प्राप्यत एव कैश्चिहुःखं परं जन्तुभिरप्रमेयम् ॥ ५३

अथैवं तिरश्चा महादुःखकालं
कुलं जीवितं चेन्द्रियाणां [~---] ।

गतिं कायभेदं फलं कारणं च
बभाषे यतीशो यथावन्नृपाय ॥ ५४

पुनर्मानुषीं तां गतिं संप्रवक्तुं
मुनीन्द्रे प्रवृत्ते सुनिर्वेदमुक्ता ।
सभा चापि कर्णे निधायात्मचित्तं
तुतोषातिमात्रं नरेन्द्रेण सार्थम् ॥ ५५

इति धर्मकथेदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥

तिर्यग्गातिविभागो नाम
षष्ठः सर्गः ।

[सप्तमः सर्गः]

गतिं तृतीयां शृणु संप्रवक्ष्ये समासतो मानुषजातिरेका ।
तामेव भूयो द्विविधां वदन्ति भोगप्रतिष्ठामथ कर्मसंस्थाम् ॥ १
पञ्चोत्तरास्ते कुरवः प्रदिष्टा यथैव राजन्बथ देवसंज्ञाः ।
हैरण्यका हैमवताश्च रम्या हयाद्ववर्षा अपि पञ्च पञ्च ॥ २

१ म जरामृत्यु० २ [हि संख्याः].

क्षेत्रस्वभावप्रतिबद्धसौख्या संख्यानत्विंशदधो भवन्ति ।
 तासां पुनर्भोगभुवां विशेषान्पृथक्पृथग्लक्षणतोऽभिधास्ये ॥ ३
 जाज्वल्यमानोत्तमरत्नचित्रा सुवर्णधातुप्रविकीर्णशोभाः ।
 वैद्यर्यमुक्तावरवज्रसारैरलङ्घता स्त्रीरिव भूर्विभाति ॥ ४
 महेन्द्रनीलै रुचकप्रभैश्च कर्कतनैर्भास्वरमूर्यकान्तैः ।
 रुजाहरैः शीतलचन्द्रकान्तैस्तता मही भात्यतिसर्वकालम् ॥ ५
 कचिच्च वनधूकमनश्शिलाभा कचिच्च जात्यञ्जनहैमवर्णा ।
 कचिच्च सारङ्गविहङ्गतुल्या कचिच्छशाङ्काङ्कुरसप्रभा च ॥ ६
 तृणानि यस्यां चतुरङ्गलानि मृदूनि सौगन्धिकगन्धवन्ति ।
 दशार्धवर्णान्यतिकोपलानि नित्यप्रवृत्तानि मनोहराणि ॥ ७
 मन्दप्रवाताभिहतानि तानि परस्परस्पर्शजनिस्वनानि ।
 मृष्टानुनादश्वरणक्षमानि गन्धर्वगीतान्यतिशेरते च ॥ ८
 तुरुष्ककालागरुचन्दनानां लवङ्गकङ्गोलककुङ्कुमानाम् ।
 एलातमालोत्पलचम्पकानां गन्धान्स्वगन्धैश्च विशेषयन्ति ॥ ९
 शीतोष्णवातोरुतुषारवर्षा मेघर्तुकालाशनिविद्युदुल्काः ।
 क्षुद्रोगशोकव्यसनेतयश्च न सन्ति यस्यामुपभोगभूमौ ॥ १०
 वृपाश्च भृत्याः कृपणा दरिद्राः स्तेनान्यदाराभिहतौ वृशंसाः ।
 पद्मन्धमूकाः कुणिकुञ्जखञ्जाः पट्कर्मधर्माभिरता न यस्याम् ॥ ११
 तुणं जलं गुलमलताङ्गिपाश्च विहङ्गमा वा विषकीटसर्पाः ।
 परस्पराबाधकरा मृगा वा न सन्ति दुःखोऽद्वहेतवस्ते ॥ १२
 पर्यन्तवैद्यर्यशिलाद्युतीनि प्रफुल्पद्मोत्पलसंकटानि ।
 प्रकृष्टकारण्डवहं वसन्तैः प्रसन्नतोयानि सरांसि भान्ति ॥ १३

१ क संख्यावत् २ [°शोभा]. ३ म महेन्द्र० ४ [स्तेनान्यदाराभिरता].
 ५ [°कारण्डवहस्वान्ति].

मद्याङ्गतूर्याङ्गविभूषणाङ्गा ज्योतिर्ष्टहा भाजनभोजनाङ्गाः ।
 प्रदीपवस्त्राङ्गवरप्रसंगा दशप्रकारास्तरवस्तु तत्र ॥ १४
 अरिष्टमैरेयसुरामधूनि कादम्बरीभयवरप्रसन्नाः ।
 मदावहानासवनातियोग्यान्मद्याङ्गवृक्षाः सततं फलन्ति ॥ १५
 मृदङ्गवीणावरशङ्कतालान्मुकुन्दसंगां व्रजदुन्दुभिश्च ।
 सुखानुनादानुरुमर्दलांश्च तूर्याङ्गवृक्षा विसृजन्ति तत्र ॥ १६
 किरीटहाराङ्गदकुण्डलानि श्रीवोरुचाहूदरबन्धनानि ।
 स्त्रीपुंसयोग्यानि विभूषणानि विभूषणाङ्गा विसृजन्ति शश्वत् ॥ १७
 नष्टान्धकारा वसुधाप्रदेशा यैर्योतिता भानुशशिप्रकाशैः ।
 ते ज्योतिषाङ्गां विपुलप्रकाशा विभान्ति नित्यं नयनाभिरामाः ॥ १८
 श्रीमण्डपान्मण्डितहर्म्यमालान् डोलागृहान्प्रेक्षणकाङ्गनाङ्गाः ।
 [.....] ॥ १९] (?)
 शारवोपशाखास्वतिभासुरासु प्रवालपत्राङ्गुरपल्लवानि ।
 प्रदीपतुल्यानि सृजन्ति नित्यं ते दीपिताङ्गाः सुखदर्शनीयाः ॥ २०
 दुकूलकौशेयकवालजानि सञ्चीनपट्टांशुककम्बलानि ।
 वस्त्राणि नानाकृतिवर्णवन्ति वस्त्राङ्गवृक्षा ददते सदैव ॥ २१
 सुगन्धिसञ्चम्पकमालतीनां पुन्नागजात्युत्पलकेतकीनाम् ।
 पञ्चप्रकारा रचिताग्र्यमाला माल्याङ्गवृक्षा विसृजन्त्यजस्तम् ॥ २२
 ते कल्पवृक्षाश्च दशप्रकारा व्यालिङ्गिताः कामलतावतानैः ।
 स्वभावशुद्धाः प्रतिभान्ति शश्वत्प्रियाङ्गनाङ्गैः रमणा यथैव ॥ २३
 खुवां तृणानां सरसां तरुणां विशुक्तिरुक्ता खलु भोगभूषु ।
 ये तत्र गन्तुं प्रभवन्ति सन्तः समासतस्तानिह कीर्तयिष्ये ॥ २४

१ [प्रसन्नान्]. २ [संज्ञा व्रजदुन्दुभीश]. ३ [दीपिकाङ्गाः].

भद्राः प्रकृत्या विनयान्विता ये मायापदक्रोधवधेषु मन्दाः ।
 सत्यार्जवक्षान्त्यतिदानशूरास्ते संभवन्त्युत्तमभोगभूमौ ॥ २५
 दानेन भोगाः सुलभा नरणां दानेन तिष्ठन्ति यशांसि लोके ।
 दानेन वश्या रिपवो भवन्ति तस्मात्सुदानं सततं प्रदेयम् ॥ २६
 दानं च दाता प्रतिसंग्रहीता देयं शुपायं च फलप्रपञ्चम् ।
 एतानि दानेऽधिकृतानि राजंस्ते यान्ति जीवाः खलु भोगभूमिस्
 दानं पुनस्तद्विधिप्रकारमपात्रप्रविभागमाहुः ।
 मिथ्याद्वशोऽपात्रमसंयताश्च पात्रं तु सदृष्टिसुसंयता ये ॥ २८
 अपात्रदानेन कुमानुषेषु शुपात्रदानेन च भोगभूमौ ।
 फलं लभन्ते खलु दानशीलास्तस्मादपात्रं परिवर्जनीयम् ॥ २९
 श्रद्धान्वितो भक्तियुतः समर्थो विज्ञानवाँडोभविवर्जितश्च ।
 क्षान्त्यान्वितः सत्त्वगुणोपपन्नस्तादग्निधो दानपतिः प्रशस्तः ॥ ३०
 सुदृष्ट्यस्तप्तमहातपस्कौ ध्यानोपवासत्रतभूषिताङ्गाः ।
 ज्ञानाम्बुधिः संशमितोरुतृष्णाः प्रतिग्रहीतार उदाहियन्ते ॥ ३१
 शास्त्राणि निःश्रेयसकारणानि आहारदानाभयभेषजानि ।
 चत्वारि तान्यप्रतिमानि लोके देयानि विद्वद्विरुद्धाहृतानि ॥ ३२
 शास्त्रेण सर्वज्ञेषुपैति दाता आहारदानादुपभोगवान्स्यात् ।
 दयाप्रदानात्र भयं परेभ्यो व्यपेतरोगस्त्वथ भैषजेन ॥ ३३
 कन्यासुभूहेमगवादिकानि केचित्प्रशंसन्त्यनुदारवृत्ताः ।
 स्वदोषतस्तानि विवर्जितानि व्यपेतदोषैर्त्रिष्ठिभिर्विशेषात् ॥ ३४
 कन्याप्रदानादिह रागवृद्धिर्देषश्च रागाद्वति क्रमेण ।
 ताभ्या तु मोहः परिवृद्धिमेति मोहप्रवृत्तौ नियतो विनाशः ॥ ३५

१ म शुपायस्य फलप्रदं च, २ क क्षान्त्याद्यतः, ३ म सुदृष्ट्यस्सौः.
 ४ क °व्रतभूरिसाराः, ५ [सर्ववृश्य] .

दुःखाय शख्नाग्रिविषं परेषां भयावहं हेमषुदाहरन्ति ।
 संताडनोद्धन्धनदाहनैश्च दुःखान्यवाप्नोति गवादिदेयम् ॥ ३६
 भूमिः पुर्नगर्भवती च नारी कृष्णादिभिर्याति वधं महान्तम् ।
 तदाश्रयाः प्राणिगणाश्च यस्माद्भूदानमस्मान् विशिष्टमाहुः ॥ ३७
 देशे च काले गुणवत्प्रदत्तं फलावहं तद्भवतीति विद्धि ।
 लोकप्रसिद्धं व्यवहारमात्रांदृष्टान्तमेकं शृणु कथ्यमानम् ॥ ३८
 कूपात्प्रसन्नैकरसं जलं यद्विसृज्यमानं सरणीमुखेन ।
 तदेव नानारसतां प्रयाति द्रव्याण्युपाश्रित्य पृथग्विधानि ॥ ३९
 पयो भवेदेत्तुनिपीतमम्भः शुण्ड्या कदुत्वं मधुरं कदल्या ।
 तथेष्वुणा तैर्गुडशर्करादैः कषायसारः क्रमुकाभयाभ्याम् ॥ ४०
 सर्पेण पीतं विषमादधाति तिक्तत्वमायाति च निम्बपीतम् ।
 आम्लो रसस्तिन्त्रिणिकाकपित्यैः काम्लो भवेदामलकेन पीतम्
 देयं तथैकं ह्यनवद्यरूपं दाता च भक्त्या द्विगुणोपपनः ।
 प्रतिग्रहीतुर्गुणतः फलानि फलन्त्यनेकानि सुखासुखानि ॥ ४२
 भुक्तान्वयीर्येण हि केचिदत्र स्त्रीद्यूतहिंसामदिराभिरक्ताः ।
 परापवादाभिरता नृशंसाश्रित्वन्ति पापान्यसुखप्रदानि ॥ ४३
 केचित्पुनर्ज्ञनविशुद्धचित्ता दृढव्रताः शान्तकषायदोषाः ।
 जितेन्द्रिया न्यायपथानुपेताः पुण्यानि कर्माणि समर्जयन्ति ॥ ४४
 कुर्वन्ति ये ये न च पुण्यपापमवश्यमाहारबलेन दातुः ।
 तांस्तांश्च राजन्स्वविपाककौले ध्रुवं पुनस्तद्वयमभ्युपैति ॥ ४५
 असंयतेभ्यो वसतिप्रदानादाहारदानात्सहवासतस्तु ।
 यथैव दण्ड्याः सह तैर्गृहेशा आदात्रभिर्दानपरास्तथैव ॥ ४६

सुसंयतेभ्यो वसतिप्रदानादाहारदानात्सहवासतस्तु ।
 यथैव पूज्याः सह तैर्गृहेशा आदातुभिर्दीनपरास्तथैव ॥ ४७
 अपात्रदानाच्च कुमानुषाणामनिष्टगात्रेन्द्रियसौख्यभोगाः ।
 कुञ्जानसच्चयुतिधीर्यशांसि भवन्त्ययत्नात्स्वयमेव तानि ॥ ४८
 सुपात्रदानात्सुरमानुषाणां विशिष्टगात्रेन्द्रियसौख्यभोगाः ।
 सज्जानसच्चयुतिधीर्यशांसि भवन्त्ययत्नात्स्वयमेव तानि ॥ ४९
 व्यपेतपात्सर्थमदाभ्यमूर्याः सत्यव्रताः क्षान्तिदयोपपन्नाः ।
 संतुष्टशीलाः शुचयो विनीता निर्ग्रन्थशूरा इह पात्रभूताः ॥ ५०
 ज्ञानं तु येषां हि तपोधनानां त्रिकालभावार्थसमग्रदर्शि ।
 त्रिलोकर्थमक्षणपणप्रतिज्ञोऽयान् दण्डयुमीशो न च कामवद्धिः ॥ ५१
 येषां तु चारित्रमखण्डनीयं मोहान्धकारश्च विनाशितो यैः ।
 परीषहेभ्यो न चलन्ति ये च ते पात्रभूता यतयो जिताशाः ॥ ५२
 सहृष्टिसज्जानचारित्रवद्भ्यो भकत्या प्रयच्छन्ति सुदृष्टयो ये ।
 भुक्त्वा सुखं ते सुरमानुषाणां क्रमेण निर्वाणमवाप्नुवन्ति ॥ ५३
 मिथ्यादशः सद्वतदर्शनेभ्यः असंयताः केवलभोगकाङ्क्षाः ।
 दत्त्वेह दानं परया विशुद्ध्या ते भांगभूमौ खलु संभवन्ति ॥ ५४
 निर्गत्य गर्भादिवसांस्तु सम वसन्त्यथाङ्गुष्ठमुपालिहन्तः ।
 द्विसप्तिस्तैस्तु दिनैरथान्यैर्भवन्ति ते षोडशवर्षलीलाः ॥ ५५
 स्त्रीपुंसयुग्मप्रसवात्मकास्ते सर्वे विशुद्धेन्द्रियबुद्धिसच्चाः ।
 सर्वे च सल्लक्षणलक्षिताङ्गाः सर्वे कलाज्ञानगुणोपपन्नाः ॥ ५६
 द्वीपः समुद्रो भवनं विमानं सरः पुरं गोपुरमिन्द्रकेतुः ।
 शङ्खः पताका मुसलं च भानुः पद्मं शशिस्वास्तिकदामकूर्माः ५७

आदर्शसिंहेभगजेन्द्रमत्स्याश्छत्रासिशश्यासनवर्धमानम् ।

श्रीवत्सचक्रानलवज्रकुम्भा हस्ताग्रपादेषु भवन्ति तेषाम् ॥ ५८

नराश सर्वे सुरतुल्यरूपा नार्यः सुरत्त्वीप्रतिमानभासः ।

विचित्रवस्त्रोज्जवलभूषणाङ्गाः सयौवनाः सस्मितमृष्टवाक्याः ॥ ५९

अन्योन्यगीतश्रवणानुरक्ता अन्योन्यवेषैरवितृपकामाः ।

चिरं रमन्ते वनिता नरासु परस्परप्रीतिमुखाः सदैव ॥ ६०

परस्पराक्रीडनसक्तचित्ताः परस्परालङ्कृतकान्तरूपाः ।

परस्परालोकनतत्पराक्षा उदकुरौ दैवकुरौ च जाताः ॥ ६१

राजंस्त्रिपल्योपमजीविनस्ते हर्याद्वका रम्यकवासिनश्च ।

तान्द्रिद्विपल्यद्वयजीविनश्च सुवेषयुक्तासमुखवार्धिमग्राः ॥ ६२

हैरण्यका हैमवता नरा ये तेषां तु पल्योपममेकमाहुः ।

सर्वे च भोगाननुभूय पश्चाद्विं प्रयान्ति क्षुतजृम्भमात्रात् ॥ ६३

नात्मप्रशंसा न परापवादा मात्सर्यमायामदलोभहीनाः ।

स्वभावतस्ते सुविशुद्धलेश्या यस्मादतस्ते दिवमेव यान्ति ॥ ६४

चक्रायुधस्याप्रतिशासनस्य दशाङ्गभोगप्रभवाच्च सौख्यात् ।

यज्ञोगभूमिप्रभवं त्वनन्तं तत्सौख्यमित्येवमुदाहरन्ति ॥ ६५

इति कथितमुदारदानपुण्यं

प्रभवसुखं निरुपद्रवं विशालम् ।

दशविधतरुभिर्विसृज्यमानं

ललिततरं नृपते समासतस्ते ॥ ६६

अशुभशुभफलस्य साक्षिभूता-

मवनिमथो गदितुं सुनौ प्रवृत्ते ।

१ [नरेषु परस्परप्रीतिमुखाः]. २ [उदकुरौ].

अतिहपितनूरुहो नरेन्द्रः
 श्रवणनिबद्धमना भृशं वभूव ॥ ६७
 इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 देवकुरुत्तरकुरुवर्णनो नाम
 सप्तमः सर्गः ।

[अष्टमः सर्गः]

षट्कर्मधर्माभिरताः सुदेशा द्वात्रिंशदेवात्र विदेहसंज्ञाः ।
 ऐरावतो भारतवर्षसाहस्रस्ताभ्यां चतुर्ख्विंशदुदाहरन्ति ॥ १
 ते पञ्चभिः संगुणिता नरेश शतोत्तरा सप्ततिरेव वा स्युः ।
 आर्यास्त्वनार्या द्विविधा मनुष्यास्त्रोद्भवन्तीत्यृषयो वदन्ति ॥ २
 ये सिंहला वर्वरकाः किराता गान्धारकाश्मीरपुलिन्दकाश्च ।
 काम्बोजवाहीकरवसौद्रकान्द्यास्तेऽनार्यवर्गे निपतन्ति सर्वे ॥ ३
 इक्ष्वाकुर्युग्रकुरुप्रधानाः सेनापतिश्चेति पुरोहितान्नाः ।
 धर्मप्रियास्ते नृपते त एव आर्यास्त्वनार्या विपरीतवृत्ताः ॥ ४
 अनेकजात्यन्तरसंकटत्वादज्ञानतः कर्मगुरुत्वदोषात् ।
 संसर्गतो दुःश्रुतिदुर्जनानां न लभ्यते मानुषजातिराशु ॥ ५
 सामान्यभूते च मनुष्यलोके काम्बोजकाश्मीरकर्वराणाम् ।
 म्लेच्छाद्वादितिदुर्लभं तं सुमानुषत्वं विबुधा निराहुः ॥ ६
 तत्रापि भोजयं हि कुलं न लभ्यं पुलिन्दचाण्डालकुलाकुलत्वात् ।
 तथैव रूपं मतिरिन्द्रियाणि आरोग्यमर्थित्वमुदारधर्मम् ॥ ७

लब्ध्वापि^१ सद्गमती च कुच्छात्सुदुर्धरं घोरतपोविधानम् ।
 कषायघोरा विषयारथश्च कुर्वन्ति विघ्नं वहुभिः प्रकारैः ॥ ८
 स्वमश्च भृत्यो युगचक्रकूर्मा द्रूतं च दास्यं परमाणवश्च ।
 रत्नं तथाक्षश्च निर्दर्शनानि^२ दशोपदिष्टानि मनुष्यलोके ॥ ९
 यथैव मेरुः प्रवरो गिरणां जलाश्रयानामुदधिविर्विशिष्टः ।
 गोशीर्षवृक्षस्तरुषु प्रधानस्तथा भवानां मनुजत्वमाहुः ॥ १०
 ग्रहेषु चन्द्रो मृगराङ्मृगेषु नरेषु राजा गरुडोऽण्डजेषु ।
 रत्नेषु वज्रं जलजेषु पद्मं यथा तथा सर्वभवेषु नृत्वम् ॥ ११
 मनुष्यजातिर्वतशीलहीना तिर्यङ्गनराणामशुभं ददाति ।
 दुःखान्यमेयानि च नारकाणामनन्तशः प्रापयतीति विद्धि ॥ १२
 मनुष्यजातिर्वतशीलयुक्ता तिर्यङ्गनराणामशुभं निहन्ति ।
 दुःखान्यमेयानि च नारकाणामुन्मूल्य सिद्धिं नयति क्रमेण ॥ १३
 सैवेह दानेन समायुता चेद्विशिष्टभोगान् कुरुषूपभोज्य ।
 देवत्वमापादयति क्रमेण अतो विशिष्टा वृपतेऽद्वितीया ॥ १४
 सद्दृष्टिसञ्ज्ञानतपोन्विता चेच्चक्रेश्वरत्वं च सुरेश्वरत्वम् ।
 प्रकृष्टसौख्यामहमिन्द्रतां च संपादयत्येव न संशयोऽस्ति ॥ १५
 सैकावधी नांरकविंशतिस्तु एकास्य जन्तोरबुधैर्मतोऽर्थः ।
 मनुष्यलोकं ह्यपरीर्निराहुः केचित्समर्थं न जगत्त्रये च (१) ॥ १६
 तादृश्चहासारवतीमवाप्य मनुष्यजातिं त्रिजगत्प्रजानाम् ।
 अल्पार्थमन्याः स्वमतिं निवेद्यं भवन्ति भृत्या हि पुनः परेषाम् ॥ १७
 त्रिलोकमूल्यं नरदेववृत्तमवाप्य ये कोद्रवतण्डुलार्थम् ।
 विक्रीय च स्वाननभिज्ञतत्वा मूर्खाः परप्रेष्यकरा भवन्ति ॥ १८

१ क बुद्धापि. २ क धान्यं. ३ म तथा चक्षुनिर्दर्शनानि. ४ म कारकाणां. ५
 क °धीज्ञारक°. ६ म ह्यपरीर्निराहुः. ७ [प्रधानाम्]. ८ [निषेव्य] ९ क
 °स्नान°., म °स्थान°.

मनुष्यभूमौ व्रतशीलदानमुखा कषायादितुणान्यपोद्धा ।
 स्वर्गादिसंप्रापकसौख्यबीजं चिन्वन्ति केचिन्नरजातिलब्धाः ॥१९
 धर्मान्विताः सर्वमुखालयाः स्युः पापान्विता दुःखसहस्रभाजः ।
 धर्मालसाः सर्वजनस्य भृत्या धर्मोद्यताः सर्वजनस्य नाथाः ॥२०
 स्वामिन्प्रभो नाथ तवास्मि भृत्य आज्ञाप्यतां किं करवाणि तेऽद्य ।
 इति ब्रुवाणा बहवः पुमांसो व्रजन्ति भृत्यत्वमपेतपुण्याः ॥२१
 केचित्परेषां धनजीवितानि लेखप्रयोगैरथ वश्चयित्वा ।
 गत्यापपाकाद्विषं परैस्तु (?) हृत्वा स्वयं ते निधनं व्रजन्ति ॥२२
 प्रचण्डवातोद्दतुङ्गचञ्चत्तरङ्गभङ्गस्फुरदुग्रमत्स्यम् ।
 अगाधमम्भोनिधिमर्थलोभात्प्रविश्य केचिन्मरणं प्रयान्ति ॥२३
 अधीत्य विद्याश्च महाप्रभावाः संश्रुत्य तत्त्वार्थगुणानवेत्य ।
 स्वेष्टावता न्यायकृता फलेन भिक्षां भ्रमन्तोऽपि न तां लभन्ते ॥२४
 आजीवशास्त्राणि बहून्यधीत्य ज्ञात्वा क्रियायोगविभागतां च ।
 दुराशया जीर्णमठेष्वपुण्या व्यपेतसौख्या गमयन्ति कालम् ॥२५
 शिल्पैरनल्यैः परिकर्मशुद्धैरपुण्यवन्तो बहुदुःखभाजः ।
 परान्वराकाः परितोषयन्तो धनाशयात्क्लेशगणान्भजन्ते ॥२६
 संसर्गतो ये च निसर्गतो वा लोभाङ्गयाद्वा दुरिताश्वितानि ।
 कर्माण्यकुर्वस्त्वपरा मनुष्या जीवन्ति ते प्रेष्यकराः क्रियार्ताः ॥२७
 पुण्यान्यकृत्वा स्फुटिताग्रपादाः क्षुत्पीडिताः कार्पटिनः कुशाङ्गाः ।
 भूमौ शयानाः खरकर्कशायां दीना श्वभीक्षैण खलु भिक्षयन्ति ॥२८
 धर्मे मतिं यन्न करोति धीमान्विदाङ्गनो यद्दसुना विहीनः ।
 रूपान्वितो दुर्भगतामुपैति तत्कर्मणां पापवतां विपाकः ॥ २९

१ म °जाति लब्ध्वा, [°जातिलुब्धाः]. २ [गत्या विपाकात्]. ३ म दीनान्यभीक्षणं.

भुद्वाधिदारिश्वधोग्रबन्धैराक्रोशभीर्भर्त्सनताडनाधैः ।
 दुःखैर्विवाधामुपयान्ति सत्त्वा यत्तत्फलं पापकृतं निराहुः ॥३०
 अनागसामप्यपराधभावं नृणां समारोप्य समाश्रितानाम् ।
 यत्स्वामिभिर्दण्डवधाः क्रियन्ते तदुष्कृतानां फलमामनन्ति ॥३१
 विवान्धवास्त्यक्तक्लत्रपुत्रा विलेपनस्त्वपरिवर्जिताश्च ।
 मलीमसाः क्षामकपोलनेत्रा दुःखेन जीवन्ति जना विपुण्याः ॥३२
 दरिद्रितां नीचकुले प्रसूतिं मौख्यं विरूपत्वमभद्रतां च ।
 अकल्पतां वापि समाप्नुवन्ति प्रायः पुमांसः सुकृतेरभावात् ॥३३
 निराशयास्ते विभैर्विहीनाः संश्लाघयन्तः परगेहभोगान् ।
 पुण्यैरपेताः स्वकराग्रपात्रा देशाद्विदेशं परिसंचरन्ति ॥३४
 नक्तंदिवं क्लेशसमाश्रितानि कर्माण्यनिष्टानि समाचरन्तः ।
 दुःखादिताः स्तस्तविषण्णचित्ताः स्वेष्टान्यलब्ध्या मरणं प्रयान्ति ॥३५
 वाधिर्यमान्ध्यं कुणिकुञ्जभावं क्लीबत्वमूकत्वजडग्रहांश्च ।
 आजन्मनस्ते तदवाप्नुवन्ति प्रायो जना दुष्कृतिनो वराकाः ॥ ३६
 दुर्गन्धनासामुखकक्षदेशा नपुंसकाः अमश्रुविहीनवक्त्राः ।
 सत्त्वास्तु यत्पुंस्त्वगुणैर्विहीना भवन्ति मन्दा वत दुष्कृतेन ॥ ३७
 प्रियाणि कुर्वन्प्रवदन् हितानि ददंस्तथार्थीनपि संश्रयांश्च ।
 यद्वेष्यतां सर्वजनस्य याति तदाहुरार्या दुरितप्रभावम् ॥ ३८
 नेच्छाफलास्त्रिन् च इष्टसंपत्प्रियैर्वियोगोऽप्रियसंप्रयोगः ।
 सर्वाधिकाराश्च फलैर्विहीना अपुण्यभाजां हि नृणां भवन्ति ॥३९
 वर्णोत्तरे पुण्यगुणाभिरम्ये लक्ष्मीमति व्याप्तयशोदिगन्ते ।
यदुद्देवंशे लभते प्रसूतिं सन्तस्तदाहुः सुकृतानुभावम् ॥ ४०

भग्नाथवत्सप्रियपुत्रकेति प्रलाल्यमानो नियतं पितृभ्याम् ।
 यद्वालभावाद्युवतामुपैति निर्वाच्यरूपः सुकृतं तदूचुः ॥ ४१
 युना वरिष्ठस्तु समस्समेषु मान्यः प्रियस्तत्पितृबान्धवानाम् ।
 भौगैर्विचित्रैरूपगृहवेषश्चक्रीडचते पुण्यविभूतिदृष्टः ॥ ४२
 श्लक्षणानि वासांसि महाधनानि विचित्ररागाणि च संवसानि(?) ।
 गन्धान्सुगन्धीकुसुमसजश्च संसेवमानो रमते स पुण्यः ॥ ४३
 शश्यासु मृद्वीषु सुखं शयानो भोगानुरक्ताभिरमा प्रियाभिः ।
 विमानपृष्ठेषु रत्नैर्विचित्रं पुण्यानुभावाद्विलसन्त्यभीक्षणम् ॥ ४४
 वीणामृदङ्गप्रतिबोधितानि वंशानुनादक्रमरञ्जितानि ।
 गेयानि श्रुण्वन्नातिवल्लभानि रात्रंदिवं क्रीडति पुण्यकारी ॥ ४५
 सभ्रूविभङ्गाभिनयोपपन्नं वादित्रयालापलयानुकारि ।
 वृत्यं प्रपश्यन्नयनातिकान्तं सुकृतप्रियाभिर्मुदमभ्युपैति ॥ ४६
 अपक्षजम्बूफलरागकान्तं कान्तोपनीतं मणिभाजनस्थम् ।
 मध्वासवं सत्सुरतोत्सवाद्यं पिबन्सपुण्यो रमते सुखेन ॥ ४७
 भोगान्विताः शास्त्रसनाथवाचो गोष्ठीषु सत्काव्यकलाविदग्धाः ।
 मान्याश्च पूज्याश्च नरा नराणां पुण्यैरुपेताः सततं भवन्ति ॥ ४८
 मत्तद्विपस्कन्धगताः सुवेषाः सितातपत्रोच्छ्रूतकान्तिकान्ताः ।
 पत्तिद्विपाश्वैरनुगम्यमानाः प्रयान्ति केचिन्नृवराः सभाग्याः ॥ ४९
 नाथोऽयमस्माकमसौ क्षितीशो भुनक्त्ययं ग्रामसहस्रमेकम् ।
 संश्लाघ्यमाना इति भृत्यमुख्यैर्वजन्ति धीराः सुकृतैस्तु केचित् ॥ ५०
 कलत्रपुत्रप्रियवन्धुमित्रैः सार्धं सुखानीष्टतमानि हृष्टाः ।
 रात्रौ दिवा चानुभवन्ति केचिदर्घमप्रसादाँः सुखिनः पुमांसः ॥ ५१

१ म पुत्रिकेति. २ म प्रलाल्यमानो. ३ क °विभूतिदृष्टः. ४ क वादित्रयोलाप°,
 [वादित्रमालाप°]. ५ क सुपुण्यो. ६ क अधिगम्य°. ७ [°प्रसादात्].

शश्यान्नपानाशनवित्तदानैः सन्मानयन्तोऽर्थिजनान्महृष्टाः ।
जीवन्ति केचित्सुखमक्षयार्था धर्मानुभावेन मनुष्यवर्याः ॥५२
सौभाग्ययुक्ता खलु रूपसंदूपत्वमारोग्यगुणेरूपेतम् ।
आरोग्यताभोगपरीतमुख्या भवन्ति पुंसां बहुपुण्यभाजाम् ॥५३
त्वग्धाणजिह्वाश्रुतिलोचनानामर्थेन्द्रियाणां प्रियमाचरन्तः ।
प्रत्येकमर्थैर्विविधप्रकारै रूपादिभिर्धर्मपरा रमन्ते ॥ ५४
एको हि पुण्याजितदीप्तकीर्तिरूद्धीक्ष्यते पुंभिरुदारशौर्यैः ।
एकश्च धर्मप्रतिबद्धवीर्यः शत्रूननेकान्समरे विजेता ॥ ५५
मनुष्यजातौ भगवत्प्रणीतो धर्माभिलाषो मनसश्च शान्तिः ।
निर्वाणभक्तिश्च दया च दानं प्रकृष्टपुण्यस्य भवन्ति पुंसः ॥ ५६
नानाविधक्षत्रियवंशजाता वसुंधरेन्द्रा क्रषभादिवर्याः ।
आर्हन्त्यमाँयुर्वरधर्मभक्त्या पूज्याश्च वन्द्याश्च जगत्त्रयस्य ॥५७
केचित्पुनः शान्तकपायदोषा बुधा जिताशाः सुखिनस्त्वहैव ।
परत्र च प्रापितकामभोगा भवन्ति नाथा भुवनत्रयस्य ॥ ५८
धर्मेण देवासुरमानुषाणां स्थानानि नानद्विविशेषवान्ति ।
संप्राप्य सार्वद्यमनन्तरेण ततो ध्रुवं निर्वृतिमेव यान्ति ॥ ५९
मनुष्यजातिस्तु मुदुर्लभापि न वर्णते संसृतिकारणत्वात् ।
शीलोपवासव्रतभावहीनों संसारयत्येव चिरं हि जीवान् ॥ ६०
इदं हि मानुष्यमतीव कष्टं जरारुजाक्लेशशताकुलत्वात् ।
तस्माद्दृशं कष्टतमं त्वशौचमनित्यता कष्टतमा ततः स्यात् ॥ ६१
शुक्रातेवोद्भूतप्रयोग्यपूर्णं स्वबन्धवद्वारमनिष्टगन्धम् ।
जन्त्वाकरं व्याधिसहस्रकीर्णं तर्दा शरीरं शुचिविप्रहीणम् ॥६२

१ क °दीसि°. २ म उदीक्षते. ३ [आर्हन्त्यमापु°]. ४ क °हीनान् ५ [कष्टतरं], ६ [तथा].

ताद्विधं कश्मलभुद्धहस्तु बीभत्सचर्मास्थिशिराप्रणदम् ।
 पित्तानिलश्लेष्मजराधिवासं को नाम विद्रान्वहतीह गर्वम् ॥६३
 विज्ञानरूपद्युतिकान्तिसत्त्वं सौभाग्यबुद्धीन्द्रियबन्धुवित्तम् ।
 आयुर्वपुर्मित्रसमागमाश्च क्षणे क्षणेऽन्यत्वमुपैति सर्वाम् ॥ ६४
 सन्ध्याभ्ररागस्तनयित्तुविद्युत्फेनोर्मिफुलदुमबुद्धुदाभम् ।
 तृणाग्रलग्नोदकविन्दुतुल्यं मायोपमं मानुषजन्म शश्वत् ॥ ६५
 गर्भेऽथ जातावथ बाल्यकाले तथा युवत्वे स्थविरत्वयोगे ।
 अशौचताप्यधुवता रुजात्वं सर्वत्र सर्वस्य हि कर्मभूमौ ॥ ६६
 आयुर्नराणामथ पूर्वकोटिः प्रकीर्तितोत्कर्षविशेषभावात् ।
 अन्तर्मुद्दूरं हि जघन्यतस्तु तत्कर्मभूमौ कथितं प्रमाणम् ॥ ६७

इति धर्मफलं सुखादिलिङ्गं
 यतिना वर्णितमर्थवद्विशालम् ।
 दुरितस्य फलं समक्षभूतं
 तदपि प्रोक्तमनेकखेदभिन्नम् ॥ ६८
 सुखदुःखविमिश्रितं तु नृत्वं
 कथयित्वार्थगवेषिणे नृपाय ।
 सुरलोककथां कथाविधिज्ञो
 गदितुं स्पष्टाक्षरां प्रवृत्तः ॥ ६९
 इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमान्विते ।
 सुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 कर्मभूमिविभागो नाम
 अष्टमः सर्गः ।

[नवमः सर्गः]

ततः प्रवक्ष्ये नृप देवलोकाश्चतुर्विधानसत्कृतिनां निवासान् ।
 वैमानिकानां भवनाधिपानां ज्योतिर्गणव्यन्तरसंज्ञकानाम् ॥१
 दश प्रकारा भवनाधिपानां ते व्यन्तरास्त्वष्टविधा भवन्ति ।
 ज्योतिर्गणाश्चापि दशार्धभेदा द्विषट्प्रकाराः खलु कल्पवासाः ॥२
 ये कल्पवासा गणनाव्यतीतास्तेभ्यो प्रसंख्यां भवनाधिवासाः ।
 तेभ्योऽधिका व्यन्तरदेवसंज्ञा ज्योतिर्गणास्त्वभ्यधिकाश्च तेभ्यः ३
 सुपर्णनागो दधिदिकुमारा दीपांगिविद्युत्स्तनितानिलाश्च ।
 दशोपदिष्टास्त्वसुरैः सहैते द्वौ द्वावथेन्द्रास्तु भवन्ति तेषाम् ॥ ४
 भूताः पिशाचा गरुडाश्च यक्षा गन्धर्वकाः किन्नरराक्षसाश्च ।
 संख्यानतः किंपुरुषैः सहाष्टौ तिर्यग्जगत्येव निवास एषाम् ॥ ५
 सूर्याश्च चन्द्रास्त्वथ तारकाश्च ग्रहाश्च नक्षत्रगणास्त्वथैव ।
 ज्योतिर्गणाः पञ्चविधाः प्रदिष्टाः प्रभाप्रभास्थानगतिस्वभावाः ॥६
 सौधर्मकल्यः प्रथमोपदिष्ट ऐशानकल्पश्च पुनर्द्वितीयः ।
 सनत्कुमारो द्युतिमांस्तृतीयो माहेन्द्रकल्पश्च चतुर्थं उक्तः ॥ ७
 ब्राह्मणं पुनः पञ्चममाहुरार्थस्ते लान्तवं षष्ठमुदाहरन्ति ।
 स सप्तमः शुक्र इति प्रसूढः कल्पः सहस्रार इतोऽष्टमस्तु ॥ ८
 यमानतं तन्नवमं^३ वदन्ति स प्राणतो यो दशमस्तु वर्ण्यः ।
 एकादशं त्वारणमामनन्ति तमारणं द्वादशमच्युतान्तम् ॥ ९
 कल्पोपरिष्टादहमिन्द्रलोका ग्रैवेयकास्ते नवधा विभक्ताः ।
 त्रयस्त्वधस्तात्त्रय एव मध्या ऊर्ध्वं त्रयश्चोत्तरवृद्धसौख्याः ॥१०

१ [तेभ्योऽतिसंख्या]. २ [दीपांगि०]. ३ क यमामनन्तं नवमं. ४ म पुस्तक एवाधिकं पाठान्तरम् ‘नवोपरिष्टादहमिन्द्रकल्पास्तेभ्यो महाकान्तिसमन्वितेभ्यः’

ग्रैवेयकेभ्यस्तु महाश्रुतिभ्यः पञ्चोपरिष्टाद्विजयं जयन्तम् ।
 तं वैजयन्तं ह्यपराजितं च सर्वार्थसिद्धिं च विमानमाहुः ॥ ११
 मध्ये भवन्तीन्द्रकसंज्ञकानि श्रेणीगतान्यप्रतिभासुराणि ।
 प्रकीर्णकानि प्रततानि राजन् विमानमुख्यानि विभान्त्यजस्मम् ।
 दूर्वाङ्गुरभ्यामलविग्रहाणि शुकच्छदाभान्यपराणि तानि ।
 शिरीषपुष्पप्रतिमप्रभाणि सन्तीन्द्रगोपप्रतिमश्रुतीनि ॥ १३
 मयूरपारापतकण्ठशङ्खप्रवालजात्यज्ञनदुघवर्णैः ।
 व्याभिन्नपद्मैरितालभेदैः समानवर्णान्यपराणि भान्ति ॥ १४
 आदित्यतेजोऽधिकदीप्तिमन्ति कान्त्या पुनश्चन्द्रमसोऽधिकानि ।
 दशार्थवर्णानि मनोहराणि मणिप्रभापल्लवितध्वजानि ॥ १५
 ज्वलद्वृहद्रत्नमयैर्विचित्रैर्वैद्वर्यनद्वैस्तपनीयकुम्भैः ।
 वज्रोपधानैः स्फटिकोपलस्थैस्तम्भैर्मृगाङ्गैः सततं वृतानि ॥ १६
 पृथग्विर्धैर्यैर्गजवाजिरूपैभूतैः ऋक्षुन्नैर्मकरैर्लताभिः ।
 भित्याश्रितैस्तैर्मनसाप्द्यचिन्त्यैः प्रकल्पितान्येवं च सर्वकालम् ॥ १७
 प्रवालमुक्तामणिहेमजालैर्घण्टारवोन्मिश्रितकिङ्कणीकैः ।
 विचित्ररत्नस्तवकावलीभिः पर्यन्तलम्बैरतिशोभितानि ॥ १८
 माहेन्द्ररत्नोज्ज्वलमालिकानि^१ विशुद्धरूप्यच्छदपाण्डुराणि ।
 विशिष्टजाम्बूनदभित्तिकानि महार्घ्यरत्नार्चितभूतलानि ॥ १९
 स्वभावशुभ्राणि महाश्रुतीनि समीक्ष्य नृणां नयनामृतानि ।
 अकृत्रिमाण्यप्रतिमानि नित्यं विमानमुख्यानि विभान्ति तत्र ॥ २०
 द्वारैश्च जाम्बूनदबद्धमूलैः स्फुरत्प्रभैव्रज्ञमयैः कवाटैः ।
 सोपानदेशैस्तपनीयवद्वैर्भिन्नान्धाकाराणि महाशृहाणि ॥ २१

१ म प्रकल्प्य तान्येव. २ म °चूलितानि.

सूर्यग्रभैः सूर्यगभस्तुल्यैश्चन्द्रांशुजालाधिकचन्द्रकान्तैः ।
 शुक्रप्रभैः शुक्रसमानभाभिर्ज्वलत्प्रभैः प्रज्वलदग्निकल्पैः ॥ २२
 सुगन्धिनानावरधूपवासैः पूष्पप्रकारैर्बहुवर्णकैश्च ।
 पृथग्विधैर्न्यस्तबलिप्रकारैरतुल्यकान्तीन्यनिशं विभान्ति ॥ २३
 सोद्यानवापी हृदीर्घिकाश्च पर्यन्तकान्तस्थितकल्पवृक्षाः ।
 सौवर्णशैला रमणीयरूपास्तेषां गृहाणां तु बहिःप्रदेशाः ॥ २४
 सुरेन्द्रलोकस्य विभूतिमेतां को नां वदेद्रूषसहस्रतोऽपि ।
 ये तत्र गच्छन्ति पृथक्पृथक्तान् नराधिपत्वं शृणु संप्रवक्ष्ये २५
 दयापरा ये गुरुदेवभक्ताः सत्यव्रताः स्तेयनिवृत्तशीलाः ।
 स्वदारतुष्टाः परदारभीताः संतोषरक्ताख्निदिवं प्रयान्ति ॥ २६
 पाषण्डिनो ये जलवायुभक्षा व्रतोपवासैरकृशाः कृशाङ्गाः ।
 बालाः स्वयं बालतपोभिरुग्मैः पञ्चाग्निमध्ये च तपश्चरन्ति ॥ २७
 येऽकामतो ब्रह्म चरन्ति लोके बद्धाश्च रुद्धाः खलु चारकस्थाः ।
 परादिताः क्लेशगणान्सहन्ते ते सर्वे एवामरतां लभन्ते ॥ २८
 जलप्रवेशादनलप्रवेशान्मरुत्प्रपाताद्विषभक्षणाद्रा ।
 शख्वेण रज्जवात्मवधाभिकामा अल्पर्दिकास्ते दिविजा भवन्ति २९
 अणुव्रतानां च गुणव्रतानां शिक्षाव्रतानां परिपालका ये ।
 संभूय सर्वदिग्भितीन्द्रलोके महर्दिकास्ते त्रिदशा भवन्ति ॥ ३०
 सम्यक्त्वमेकं मनुजस्य यस्य हृदि स्थितं मेरुवदप्रकम्पम् ।
 शङ्कादिदोषापहृतं नरेन्द्र न तस्य तिर्यङ्गनरके भयं स्यात् ॥ ३१
 नाचारवन्तो विकृता विशीला गुणैर्व्यपेता व्रतदानहीनाः ।
 असंयताः केवलभोगकाङ्क्षाः सहृष्टिशुद्धाख्निदिवं प्रयान्ति ॥ ३२

१ क को न्वा (वा ?). २ म रुद्राः . ३ क नरुत्प्रतापाद् , [तरुप्रपाताद्].

ये मार्दवाः क्षान्तिदयोपनीः शमात्मकाः शुद्धशुभप्रयोगाः ।
 ऋजुस्वभावा रतिरागहीनास्ते स्वर्गलोकं मुनयो व्रजन्ति ॥ ३३
 परीषहाणां क्षणमप्यकम्प्या द्विषट्प्रकारे तपसि स्थिताश्च ।
 ये चाप्रमत्ताः समितौ सदा ते त्रिगुमिगुमाह्निदिवं प्रयान्ति ॥ ३४
 जितेन्द्रिया जीवदयाप्रवृत्ता वर्षावकाशातपवासयोगाः ।
 जितोपसर्गास्तु विचूर्णिताशाः कल्पेश्वरास्ते पतयो भवन्ति ॥ ३५
 येषां च सज्ज्ञानमुदारवृत्तं सदर्शनं चापि तपो विशुद्धम् ।
 ग्रैवेयकादावहमिन्द्रलोके ते संभवन्तीति नरेन्द्र विद्धि ॥ ३६
 यथैव मेघा शनिशक्रचापविद्युत्तडित्केतुहिमाम्बुवर्षाः ।
 नभस्तलेऽस्मिन्सहसा भवन्ति तथा सुराणामपि जन्म वेद्यम् ॥ ३७
 उत्पद्यमानाः शयनीयपृष्ठे अन्तर्मुहूर्तात्परिनिष्ठिताङ्गाः ।
 व्याभासमानाश्च दिशो दशापि तपःफलं तेऽनुभवन्ति हृष्टाः ॥ ३८
 प्रजायमानान्सहसा समीक्ष्य सुपङ्गलाविष्कृतपुण्यघोषाः ।
 प्रस्फोटिताः क्षेणितमुष्टिनादाँः (१) कुर्वन्ति देवा मुदिता नमन्तः ॥ ३९
 नृत्यान्ति तत्राप्सरसो वराङ्गयो वीणाः सलीलं परिवादयन्ति ।
 गायन्ति गीतानि मनोहराणि चित्राणि पुण्याण्यभितः किरन्ति ॥ ४०
 ते दिव्यमाल्याम्बरचारभूषा मनोऽभिनिर्वर्तितसर्वसौख्याः ।
 ऐश्वर्ययोगदिंविशेषयुक्ताः प्रियासहाया विहरन्ति नित्यम् ॥ ४१
 दयातपोदानदमार्जवस्य सद्व्यव्यवृतपालनस्य ।
 जिनेन्द्रपूजाभिरतेर्विषाकोऽप्ययं स इत्येव विबोधयन्ति ॥ ४२
 स्वभावतो बालदिवाकराभाः स्वभावतः पूर्णशशाङ्कसौम्याः ।
 स्वभावतश्चारुविभूषणाङ्गाः स्वभावतो दिव्यसुगन्धिगन्धाः ॥ ४३

१ [मार्दवक्षान्ति०]. २ म °पुण्यपापाः . ३ [प्रस्फोटितक्षेणितमुष्टिनादान्].

आ जन्मनोऽवस्थितकान्तरूपा आ जन्मनोऽम्लानसुगन्धिमालाः ।
 आ जन्मनस्ते स्थिरयौवनाश्च आ जन्मनः प्राप्तमनोऽभिरामाः ॥४४
 नित्यप्रवृत्तातिशयद्विद्युक्ता नित्यप्रवृत्तामलचारुहासाः ।
 नित्यप्रवृत्ताधिकदीप्तिमन्तो नित्यप्रवृत्तारुसुखालयास्ते ॥ ४५
 समुद्गसत्कुञ्चितनीलकेशाः जरारुजाकेशशर्तैविहीनाः ।
 अनस्थिकायास्त्वरजोऽम्बराश्च सर्वे सुराः स्वेदरजोविहीनाः ॥४६
 अपेतनिद्राक्षिणिमेषशोका महीतलस्पर्शविमुक्तचाराः ।
 नभश्चरा यानविमानयाना अनूनभोगा दिविजा रमन्ते ॥ ४७
 उत्पाटयेयुः स्वभुजेन मेरुं महीं कराग्रेण समुद्धरेयुः ।
 आदित्यचन्द्रावपि पातयेयुर्महोदधिं चापि विशोषयेयुः ॥ ४८
 व्याप्याशु तिष्ठेयुरथो जगन्ति अदृश्यरूपाः क्षणवद्धवेयुः ।
 ईयुर्निमेषाद्वसुधातलान्तं ते कामरूपाश्च भवेयुरीशाः ॥ ४९
 इन्द्राश्च सामानिकलोकपालास्तथा त्रयस्त्रिंशदनीकिनश्च
 प्रकीर्णकाः किल्बिषिकात्मरक्षा अथाभियोग्याः परिषत्त्रयं च ५०
 सौधर्मकल्पप्रभृतिष्वमीषु दशप्रकारा रूप देववर्गाः ।
 ज्योतिर्गणा व्यन्तरदेववर्गा न च त्रयस्त्रिंशकलोकपालाः ॥ ५१
 सुराङ्गना वैक्रियचारुवेषाः सुविभ्रमाः सर्वकलाप्रगलभाः ।
 विशिष्टनानर्दिंगुणोपपन्ना गुणैरनेकै रमयन्ति देवान् ॥ ५२
 स्वनाथकायानुविकाररूपाः स्वनाथभावप्रियचारुवाक्याः ।
 स्वनाथदृष्टिक्षमचारुवेषाः स्वनाथसच्छासनसक्तचित्ताः ॥ ५३
 शुसुन्दरीणाममितशृतीनां मनोहरश्रोणिपयोधराणाम् ।
 तासां वपुर्वेषविलासभावान् कथं पुमान्वर्णयितुं हि शक्तः ॥ ५४
 एकः समुद्रो भवनाधिपानां पल्योपमं व्यन्तरकेषु विद्धि ।
 ज्योतिर्गणेष्वभ्यधिकं तदेव सौधर्मकल्पे^१ द्विसमुद्रमाहुः ॥ ५५

^१ म °कल्पादद्वि°.

सपैव माहेन्द्रमहाविपाने ब्रह्मेन्द्रकल्पे दश वर्णयन्ति ।
 ते लान्तवे चापि चतुर्दशैव समुद्रसंख्या यतिराङ्गवोचत् ॥ ५६
 शुक्रे पुनः षोडश ते समुद्राः कल्पे उष्ट्रमेऽष्ट्रादश सागरास्ते ।
 ततः परं विंशतिरानते च द्वाविंशतिस्त्वारणसंज्ञकल्पे ॥ ५७
 एकैकवृद्धिर्नवसु क्रमेण ग्रैवेयकेषु क्षितिपोपदिष्टा ।
 सर्वार्थसिद्धेः खलु लोकमूर्धि त्रिंशस्त्र्यश्चैव समुद्रसंख्याः ॥ ५८
 त्रिशून्यपूर्वास्तु दशैव वर्षा जघन्यतस्ते भवनेषु तेषु ।
 तथैव ते व्यन्तरदेववर्गे परावरज्ञाः परिमाणमाहुः ॥ ५९
 ज्योतिष्मति ज्योतिषदेवलोके पल्योपमस्याष्टमभागमाहुः ।
 एकं च पल्यं प्रथमे च कल्पे उत्कृष्टमेवोपरि तज्जघन्यम् ॥ ६०

इत्येवं सुरनिलयांश्चतुष्प्रभेदा-
 नादित्यस्फुरितमयूखजालभासः ।
 सद्धर्मप्रभवसुखाश्रयान्विचित्रा-
 न्संक्षेपाद्यातिपतिरेवमाचक्षे ॥ ६१
 देवानां सुकृतफलान्यथाभिधाय
 सिद्धानां त्रिभुवनमस्तकस्थितानाम् ।
 तत्सौरब्यं परमपदे च शाश्वतं य-
 त्वारेभे क्षितिपतयेऽभिधातुमीशः ॥ ६२
 इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 देवलोकवर्णनो नाम
 नवमः सर्गः ।

[दशमः सर्गः]

ऐकान्तिकात्यन्तिकनित्ययुक्तं^१ कर्मक्षयोऽन्तमनन्तसौख्यम् ।
 शृणु त्वमेकाग्रमना नरेन्द्र समासतो मोक्षमुदाहरिष्ये ॥ १
 सर्वार्थसिद्धेस्तु विशालकीर्तेगत्वोपरि द्वादश योजनानि ।
 प्राग्भारभूर्मिर्नरलोकमात्रा श्वेतातपत्राकृतिरुद्धभाति^२ ॥ २
 बाहुल्यमष्टौ किल योजनानि मध्यप्रदेशे नरदेव विद्धि ।
 अङ्गुल्यसंख्येयविभागतोऽन्ते प्रहीयते सा खलु सर्वदिग्भ्यः ॥ ३
 संख्यानतस्तत्त्विगुणाधिकश्च तस्याः परिक्षेपविभाग उक्तः ।
 यत्रासतेऽनिन्द्रियसौख्ययुक्ताः सिद्धा विशुद्धा इति शब्दमानाः ४
 पूतं च पुण्यं सुगतिप्रधानं कल्याणकं मङ्गलमुत्तमं च ।
 लोकोत्तमं तत्परमं पवित्रं परं शुभं शाश्वतमव्ययं च ॥ ५
 अनामयं क्लेशजराविहीनमदैन्यमव्याकुलमप्रमेयम् ।
 अनिन्द्रियमक्षोभ्यमपारमग्न्यं सुखास्पदं तुष्टिक्षुष्टिकं च ॥ ६
 अचञ्चलं रागविरागवर्जयमभेद्यमद्रोहमवाधसंगम् ।
 अपात्यमक्षीणमतुल्यमुद्धमनभ्यसूयं श्रवणीयमेव ॥ ७
 अशक्रमित्रं^३ ह्यविनाश्यशङ्कं निर्हेतुकं निर्वृतिं निष्कपायम् ।
 अवस्थितं योगवियोगहीनमलेभ्यमक्षुचृष्टमप्रचिन्त्यम् ॥ ८
 अभेद्यमच्छेद्यमनाहदाहमदुःखमद्वेष्यमुदारसौख्यम् ।
 अनन्त्यमग्राहमजात्यमृत्युं सुनिर्मलं तद्वयपुनर्भवं च ॥ ९
 अभव्यसन्वैर्मनसाप्यगम्यं गम्यं पुनर्भव्यजनैः सुखेन ।
 महामुनीनामभिकाङ्क्षणीयं शिवालयं मोक्षमुदाहरन्ति ॥ १०

१ [°नित्यमुक्तं°]. २ [°विभाति]. ३ [अशक्रमित्रं]. ४ क [°मनंहदाह°].

काङ्क्षन्ति शक्तप्रमुखा नरेन्द्रा नराः प्रशंसन्ति च शुद्धिमन्तः ।
 पाषण्डिनो यं हि परीक्षयन्ति ये तत्र गच्छन्त्यथ तान्प्रवक्ष्ये ॥ ११
 क्षमाविभूषाः पृथुशीलवस्त्रा गुणावतंसा दममाल्यलीलाः ।
 निर्गन्थशरा धृतिबद्धकक्षास्ते मोक्षमक्षीणमभिवजन्ति ॥ १२
 आ जीवितान्तादृढबद्धसत्त्वा गृहीतयोगव्रतभूरिसाराः ।
 ये शीलभारं निरवद्यरूपं सुदुर्धरं विभ्रति भक्तिभाजः ॥ १३
 पिधाय पापास्त्रवमिन्द्रियाणां सुसंयता गुप्तिमहाकपाटैः ।
 तपोऽग्निना संचितकर्मकक्षं दहन्त्यशेषं हि शमार्चिषा ये ॥ १४
 अतन्द्रिताः संपरिगृह्य योगं जिनेन्द्रवक्तव्याभिविनिस्मृतार्थम् ।
 ये द्वादशाङ्गं हि तदङ्गपूर्वमधीयते ये गणदेवदृष्टम् ॥ १५
 आर्तं च रौद्रं प्रविहाय धीरा धर्म्यं तथा शुक्रमपि प्रशक्तम् ।
 शुभान्वितं ध्यानमनन्तभेदं ध्यायन्ति ये ध्यानरता विनीताः ॥ १६
 लोष्टेष्टुकाकाश्चनवज्रसारे मानापमाने स्वजने जने वा ।
 लाभे त्वलाभे सुखदुःखयोर्वा समानभावाः शिवमाण्नुवन्ति ॥ १७
 अभ्यन्तरं बाह्यमपि प्रशस्तं द्विषट्प्रकारं हि तपोविधानम् ।
 चरन्ति ये कर्मविनाशनाय ते सर्वं एवाक्षयमोक्षभाजः ॥ १८
 क्रोधादयोऽभ्यन्तरशल्यदोषा बाह्याश्च योषिद्धनवाहनाद्याः ।
 त्यक्ताश्चै यैर्निर्जितमोहसेना तेषां ध्रुवं मोक्षमुदाहरन्ति ॥ १९
 यथोदयादुत्थितवालसूर्यो दिने चै तस्मिन्परिवर्तते सः ।
 तथैव संपूर्णतपोविधाना अखण्डवृत्ताः परमाश्रयन्ति ॥ २०
 कषायशाखं स्थिरमोहमूलमझानपुष्पं बहुदुःखपाकम् ।
 प्रज्ञाबलाः कर्मतरुं प्रभज्य मुनिद्विपास्तत्र सुखं वसन्ति ॥ २१

१ [°निस्सृतार्थम्]. २ क रिक्ताश्च. ३ क दिनेन.

मोहक्षयाऽज्ञानवृतिक्षयाच्च दृष्ट्यावृतेः संक्षयतः क्रमेण ।
 तथान्तरायक्षयतश्च सर्वान् कैवल्यमुत्पाद्य विदन्ति भावान् ॥२२
 गोत्रायुषी नाम च वेदनीयं चत्वारि तान्यप्रतिवीर्यवन्ति ।
 कर्माणि संचूर्ण्य विधूतदोषा लोकोत्तरेऽनन्तसुखं लभन्ते ॥ २३
 तुम्बीफलं मृत्प्रविलेपमुक्तं यथोदकस्योपरि तिष्ठतीह ।
 कृती तथा कर्मविलेपमुक्तिस्त्रिलोकमूर्धानमुपैति सद्यः ॥ २४
 यथैव वीजं हुतभुक्प्रतमं न कल्पते तत्पुनरद्वाराय ।
 तपोऽग्निभस्मीकृतकर्मवीजं तथैव नालं पुनरुद्धवाय ॥ २५
 तालद्वुमश्च प्रतिलूनमूर्धा नासंभवादद्वारमादधाति ।
 स्त्रेहक्षयादर्चिरूपैति शान्तिं तथैव कर्मक्षयतस्तु सौख्यम् ॥ २६
 यथैव लोके नलवर्तीतैलं प्रभातकाले युगपत्ययाति ।
 तथैव कर्माणि समानि येषां ते निर्वृतिं तत्क्षणतो व्रजन्ति ॥ २७
 केचित्समुद्धातमुपैतुकामां आत्मप्रदेशात्समयैश्चतुर्भिः ।
 लोकत्रयं व्याप्य समीपकृत्य कर्माणि निर्वान्ति विनष्टवन्धाः ॥
 एकाधिकास्त्वष्टशतान्तसंख्याः सिध्यन्ति सिद्धाः समयेन राजन् ।
 जघन्यकालः समयस्त्वथैकैः षडेव मासा यदि सोऽधिकः स्यात् ॥
 आरोहकाः षट् समये जिनेन्द्राः प्रत्येकबुद्धान्दशधा वदन्ति ।
 बोध्यान्पुनस्त्वष्टशतप्रसंख्यान् स्वर्गच्युतास्तेऽष्टशता भवन्ति ॥ ३०
 द्वावेव सोत्कर्षशरीरसंस्थौ हस्यान्पुनस्तांश्चतुरो वदन्ति ।
 मध्या तथाष्टौ समये प्रासिद्धाः समानदेहाः सुगतिं प्रयान्ति ॥ ३१
 यथैव ताइयद्वयिपवीजमोक्ष एरण्डवीजप्रविसर्जनं वा ।
 वदेः शिखा चोर्ध्वमतीनि^१ तानि तथैव चात्मोर्ध्वगतिस्वभावः ॥ ३२

१ म °समुद्भूत°. २ [समं प्रकृत्य]. ३ क समयस्तथैकः. ४ [°ध्वगतीनि].

असंगतीत्पूर्वनियोगतश्च बन्धप्रणाशाद्भनस्वभावात् ।
 विनष्टकर्माष्टकलब्धसौख्या लोकान्तमाश्रित्य वसन्ति सिद्धाः ॥३३
 शब्दादयो ये सुखदुःखमूला नश्यन्ति यस्मान्वृपते शरीरात् ।
 तदाकृतिस्तत्परिमाणमात्राच्छायावदाभाति च सर्वकालम् ॥३४
 यथा मधूच्छिष्टकृतं तु छिद्रं चाश्रित्यं मूषापतितं सुवर्णम् ।
 समं तदङ्गावयवानुपैति तथैव पूर्वाकृतिरेव तत्र ॥ ३५
 आदित्यचन्द्रग्रहतारकाश्च विमाननक्षत्रगणप्रमाणाः ।
 यथैव तिष्ठन्ति न भस्तलेऽस्मिस्तिष्ठन्त्यनाश्रित्य तथैव सिद्धाः ॥३६
 विभाति सूर्यस्तु यथा ब्रह्मुक्तो यथैव खड्गश्च विमुक्तकोशः ।
 यथा शिलागर्भविमुक्तहेम कृती तथा कर्मरजोविहीनः ॥ ३७
 दीपाश्च दीपाश्च यथैव गेहे नान्योन्यबाधां जनयन्ति भान्तः ।
 परस्परावाधनविप्रमुक्तास्तथैव सिद्धा निवसन्ति तस्मिन् ॥ ३८
 अनेकदीपावलिभासमूहः संतिष्ठते न्योन्यमबाधमानः ।
 एवंगुणो रूपिषु विद्यते चेदरूपिणां तत्र किमस्ति वाच्यम् ॥ ३९
 ज्योत्स्नातपौ तौ शशिनो रवेश्च मणेश्च दीपिर्गुणिनां गुणा हि ।
 सहृष्टिसज्ज्ञानगुणैर्विशिष्टैः कर्मक्षयादात्मनि संभवेतामैः ॥ ४०
 व्यवस्थितानेव शशाङ्कसूर्यौ स्वान्स्वान्प्रदेशानवभासयेते ।
 लोकं ह्यलोकं युगपत्समस्तं ते ज्ञानभासा प्रतिभासयन्ति ॥ ४१
 सम्यक्त्वसज्ज्ञानचरित्रवीर्या निर्बाधता चाप्यवगाहनं च ।
 अगौरवालाघवसूक्ष्मता च सिद्धेष्वथाष्टौ हि गुणा विशिष्टाः ॥४२
 मध्वक्तीक्ष्णास्यवलेहनेन समानमुक्तं सुखमिन्द्रियाणाम् ।
 दशाङ्गभोगप्रभवं सुखं यद्विषाक्तमृष्टाशनभुक्तिरुल्यम् ॥ ४३

१ क असंगताः. २ क तु चिन्वं नाश्रित्य. ३ [संभवेयुः].

सुरेश्वराणामसकुदश्युतीनां मनोज्ञनानातनुविकियाणाम् ।
 यदिन्द्रियार्थप्रभवं हि सौख्यं दग्धब्रणे चन्दनलेपतुल्यम् ॥ ४४
 विच्छिन्नकर्माष्टकवन्धनानां त्रिलोकचूडामणिधिष्ठितानाम् ।
 न चास्ति राजन्तुपमा सुखस्य तथापि किंचिच्छृणु संप्रवक्ष्ये ४५
 तिर्यग्भ्य उत्कृष्टसुखा नराश्च तेभ्यो नरेभ्यः सुखिनो नरेन्द्राः ।
 तेभ्योऽधिका भोगभुवो मनुष्याः सिद्धास्ततोऽनन्तसुखा भवन्ति ॥
 ज्योतिर्गणा व्यन्तरदेवताभ्यस्तेभ्योऽधिकास्ते भवनाधिवासाः ।
 सौधर्मजाताः सुखिनस्तु तेभ्यस्तेभ्यश्च तत्सौख्यतमास्तथोर्ध्वम् ॥
 ग्रेवेयकाद्याः सुखिनस्तु तेभ्यस्तेभ्यो विशिष्टा विजयेश्वराद्याः ।
 तेभ्यस्तु सिद्धार्थनिवासिदेवास्तेभ्योऽतुलात्यन्तसुखास्तु सिद्धाः
 किमम्बरै रागविवर्जितानां किं भोजनैः संशमितक्षुधानाम् ।
 जलेन वा किं त्वपिपासितानां किमौष्ठैः कार्यमरोगिणां च ॥ ४९
 किं वाहनाद्यैरगतिक्रियाणां किमासनाद्यैरपरिश्रमाणाम् ।
 किमीक्षणैर्वा सकलार्थाभाज्ञां प्रश्नादिभिः किं सदसद्विदां च ॥ ५०
 स्नानादिभिः किं मलवर्जितानां तेजोमयानामथ तेजसा किम् ।
 किं युक्तिभिर्निष्ठितकर्मकाणां रागादिभिः किं विगतस्पृहाणाम् ॥ ५१
 किं वा गृहाद्यैः परिकर्ममुक्तैर्व्यपेतशीतातपवाधनानाम् ।
 शब्दादिभिः किं नरदेव वाह्नैरलेपकानां जगदुत्तमानाम् ॥ ५२
 यथैव चन्द्रोदधिभास्कराणां न चास्ति काचिद्युपमा नृलोके^१ ।
 तथैव तेषां परिनिष्ठितानां न विद्यतेऽन्या ह्युपमा नृलोके^२ ॥ ५३
 वर्णैश्च वर्णस्य रसै रसस्य स्वरैः स्वरस्याप्युपमात्र यद्वत् ।
 अतीन्द्रियाणामपि निर्वृतानामौपम्यसिद्धेन हि संभवोऽस्ति ॥ ५४

१ म सकलोर्मिलोकात् २ म त्रिलोके

ये निर्वृतानामुपमा वदन्ति हीनोपमास्ते नृपतेऽनभिज्ञाः ।
तुल्योपमानं भुवि नास्ति किंचित् एव तेषामुपमा भवेयुः ॥५५

आदित्यतोऽन्यो भुवि नास्ति भास्वान्

समुद्रतोऽन्यो न जलाश्रयश्च ।

न चोच्छ्रितोऽन्योऽस्ति गिरिर्गिरिन्द्रा-

न मोक्षतोऽन्योऽस्ति सुखप्रतिष्ठा ॥ ५६

तुलां विना तुल्यमशक्यमिष्टं मातुं न शक्यं खलु मानहीनम् ।

सहेतुकैर्हेतुपथव्यतीतं न शक्यते बोधयितुं वचोभिः ॥ ५७

संसारघोरार्णवपारगणां द्रव्यादितन्वार्थसुदर्शनानाम् ।

महीजसां क्षायिकसत्सुखं यन्न तत्समस्तं गदितुं हि शक्यम् ॥५८

तिर्यग्नराणां नरकामराणां महीपते क्षीणपुनर्भवानाम् ।

पृष्ठा त्वया संसदि ते मयोक्ता यथानुपूर्व्या गतयश्च पञ्च ॥ ५९

तासां चतस्रो गतयो गतीनां संसारसंज्ञाः कथिताः सुधाभिः ।

जरारुजामृत्युविवर्जिता ये निःश्रेयसायैव यतस्य राजन् ॥ ६०

धर्माभितपां वसुधां यथैव सुरेश्वरः प्रावृषि तोयसेकैः ।

प्राणादयत्साधुपतिः सभां तां क्लेशार्दितां धर्मजलैस्तथैव ॥ ६१

यतौ ब्रुवाणे जिनधर्मसारं राज्ञः प्रसन्नं वदनं सरागम् ।

दिवाकरांशुप्रतिबोधितस्य पद्मस्य कान्ति सकलां दधार ॥ ६२

निशम्याथु धर्मं बुधा मुक्तकामा

यतीन्द्रस्य पार्श्वे तपस्स्था वभूतुः ।

गृहीत्वार्थसंकल्पमल्ये^१ विजुः

परे गेहधर्मे मति संनिदध्युः ॥ ६३

१ [मोक्षतोऽन्यास्ति]. २ [°संकल्पमन्ये].

अथोत्थाय साधिवन्द्रमिन्द्रः पृथुव्यः
 परीत्य प्रणम्य प्रणुत्यात्मशक्त्या ।
 द्विपेन्द्राधिरूढो नृपश्छत्रमध्ये
 महत्या विभूत्या पुरं संप्रविष्टः ॥ ६४
 इति धर्मकथोद्देशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 मोक्षाधिकारो नाम
 दशमः सर्गः ।

[एकादशः सर्गः]

गते नरेन्द्रे हितसंकथाभिः स्वयं वराङ्गो मुनिमभ्युपेत्य ।
 कृताञ्जिलिर्निर्जितकामशत्रुं सांदिग्धबुद्धिः पुनरभ्यपृच्छत् ॥ १
 जीवस्य मिथ्यात्वमनादिबद्धं संसारिणस्तच्च कतिप्रकारम् ।
 कथं तु सम्यक्त्वमुपैति जीवः संचक्ष्व मिथ्यात्वपथादपायम् ॥ २
 एवं स पृष्ठो भगवान्यतीशो गुणाकरः शान्तमनाः प्रवक्तुम् ।
 मिथ्यात्वसम्यक्त्वविकल्पतत्त्वं प्रारब्धवान्प्रभविनिर्णयार्थम् ॥ ३
 ऐकान्तिकं सांशयिकं च मूढं स्वाभाविकं वैनायिकं तथैव ।
 व्युदग्राहितं यद्विपरीतसंज्ञं मिथ्यात्वभेदानवबोध सप्त ॥ ४
 जीवादितत्त्वं न च वेत्ति किंचिदेकान्तामिथ्यात्वविमोहितात्मा ।
 जात्यन्धमर्त्यः खलु चित्रकर्म द्रष्टुं विबोद्धुं च यथा न शक्तः ॥ ५
 हिंसानुर्धर्मस्त्वथ वेत्यहिंसां संदेहमिथ्यात्वविमूढचित्तः ।
संदिग्धबुद्धिर्न च निश्चिनोति गोऽश्वान्तरं दूरगतं यथैव ॥ ६

१ क °मिन्द्रोत्कटान्यः, [पृथिव्याः].

श्रेयो यदज्ञानमिति ब्रवीति संमूढमिथ्यात्वनिरस्तुद्धिः ।
 विषामृतज्ञो विषमेव पीत्वा यथा विनाशं ह्यवशं प्रयाति ॥ ७
 आहोस्त्रिदज्ञानतया विद्धिर्हिसामहिंसेति मतिं विधत्ते ।
 सुवर्णमिच्छन्नसुवर्णधातुं धमत्यथाज्ञः श्रममभ्युपैति ॥ ८
 श्रुतं तदर्थं कलुषीकरोति स्वभावमिथ्यात्वविदूषितात्मा ।
 सशर्करं क्षीरमहिः प्रपाय विषाककाले विषमादधाति ॥ ९
 चन्द्रार्कनक्षत्रमहीजलाद्या विनीतमिथ्यात्वविमोहितस्य ।
 देवा दिवि स्वर्गतिभिः पताका मतिर्घरुद्धिः समुदीरते^१ च ॥ १०
 कुदृष्टिदृष्टान्तविनष्टमार्गव्यूर्ध्वाहिताख्यो^२ हतधीर्मनुष्यः ।
 चौरेण नीतो गहनान्तराणि यथैव जात्यन्धगणः प्रणष्टः ॥ ११
 सतः पदार्थान्विपरीतदृष्टिविपर्ययं पश्यति बुद्धिदोषात् ।
 जवेन नावी जलमध्ययायी यथा महीपर्वतकाननानि ॥ १२
 अभव्यमिथ्यात्वमनाद्यनन्तमनाद्यनन्तश्च यथैव कालः ।
 भव्यात्मनां सान्तमनादि तच्च तेष्वेव केषामपि सादि सान्तम् ॥ १३
 मिथ्यात्वतो मोहविवृद्धिमाहुर्मोहात्प्रवृत्युद्धवमापनन्ति ।
 प्रवृत्तितोऽनेकविधं हि जन्म दुःखं ततो जन्मवशादवश्यम् ॥ १४
 मिथ्याविनाशात्क्षयमेति मोहो मोहक्षयान्वश्यति सा प्रवृत्तिः ।
 प्रवृत्तिनाशान्व च जन्म तत्स्यात्तन्नाशतो नाशमियर्ति दुःखम् ॥ १५
 दुःखप्रणाशात्सुखमभ्युपैति नृदेवविद्याधरभोगभूषु ।
 तपोऽग्निना दग्धमलः क्रमेण निर्वाणसत्सौख्यमुपैति जीवः ॥ १६
 स्पृष्टं यदा दर्शनमात्रमेतद्येनेह जीवेन मुहूर्तमेकम् ।
 संसारवासे बृहदुग्रदुःखे स पुद्धलानां परिवर्तते^३ धर्मम् ॥ १७

१ क °विरुक्षितात्मा. २ म समधीरते, [समुदीरते]. ३ [°मार्गे]. ४ म
 व्युदाहिताख्यो, [व्युदाहिताख्यो]. ५ क निर्वाणतसौख्यं .

गृहीतसम्यक्तवमतिः स्थिरात्मा षट्प्रष्टिकालं जलधिप्रसंख्यम् ।
स्वर्गावनिक्षेमसुखं निषेव्य पश्चाद्वामोति च मोक्षसौख्यम् ॥१८

सम्यक्तवरत्नान् परं हि रत्नं

सम्यक्तवमित्रान् परं हि मित्रम् ।

सम्यक्त्वबन्धोर्न परोऽस्ति बन्धुः

सम्यक्त्वलाभान् परोऽस्ति लाभः ॥ १९

त्रिकालविद्धिविजगच्छरण्यैर्जीवादयो येऽभिहिताः पदार्थाः ।

श्रद्धानमेषां परया विशुद्ध्या सद्वर्णनं सम्यगुदाहरन्ति ॥ २०

नैसर्गिकं तद्वयुपदेशजं च सद्वर्णनं तद्विविधं जिनोक्तम् ।

तत्कायिकं ह्यौपशमं च मिश्रं तदेव भूयस्त्रिविधं वदन्ति ॥ २१

यथैव चक्षुः पटलावृतं यत्र पश्यति द्रव्यगुणादितत्त्वम् ।

तदेव भूयः पटलादपेतं समीक्षते द्रव्यगुणादिभावान् ॥ २२

तथैव मिथ्यापटलावृतं यत्सम्यक्त्वचक्षुर्न च वीक्षतेऽर्थान् ।

तदेव सज्जानशलाक्याशु समञ्जितं पश्यति सर्वभावान् ॥ २३

प्रसन्नमिथ्यामलकर्दमेषु जीवेषु जीवादिरथावगम्ये ।

यथैव भूशैलवनप्रदेशः संहश्यते शान्तमलास्वथाप्सु ॥ २४

मिथ्यान्धकारोदयमन्दभावे सवेदकः पश्यति जीवतत्त्वम् ।

यथैव वैद्यूर्यमणिप्रदीपो गृहे घटादीनवलोकतेऽर्थान् ॥ २५

व्यपेतदुर्दर्शनमोहनीयो यक्षोऽपि कः पश्यति सर्वभावान् ।

यथैव मेघादपनीतमूर्तिर्लोकं विवस्वानिव दीपरश्मिः ॥ २६

प्रशान्तपङ्कादकतुल्यमाद्यं वैद्यूर्यरत्नप्रतिमं द्वितीयम् ।

तत्कायिकं बालदिवाकराभं तिस्रस्त्रयाणामुपमा भवन्ति ॥ २७

१ क °शलाक्या सु°. २ क °गम्याः, [°गम्यः]. ३ म °मलस्त्रिवाप्सु.

मिथ्यानिवृत्तिं लभते ऽन्तरात्मा सम्यक्त्वलाभादपरिश्रमेण ।
 ज्ञानं ततो झेयविशेषदर्शि ज्ञानेन सञ्चावगुणोपलब्धिः ॥ २८
 सञ्चावविज्ञप्तिफलोदयेन धुंवं विजानाति हिताहितानि ।
 हिताहितज्ञो मतिमानवश्यं संसारवासे न रति करोति ॥ २९
 विभक्तसंसारनिवासरागो विभेति जात्याद्यमुखावहेभ्यः ।
 भयादिंतः प्राणिगणेषु नित्यं दयापरः स्यान्निरवद्यभावः ॥ ३०
 तथा पुनः स्थापयते मनस्स्वं मनः प्रसादाज्जयतीन्द्रियाणि ।
 जितेन्द्रियस्त्यक्तपरिग्रहः स्याद्विरक्तसंगो विहरत्यथैकः ॥ ३१
 ईर्यापथादिष्वपि चाप्रमत्तो निर्वेदसंवेगविशुद्धभावः ।
 परीषषान्दुर्विषहान्विजित्य तपस्क्रियां तां यतते यथोक्ताम् ॥ ३२
 संप्राप्य सार्वद्यमनुत्तमंश्रीर्विधूय कर्माणि निरस्तदोषः ।
 निःश्रेयसां शान्तिमुदारसौख्यां लब्ध्वा चिरं तिष्ठति निष्ठितार्थः ॥
 इत्येवमुर्वर्ष्वरसत्सुताय धर्माभिरागोद्यतसत्क्रियाय ।
 सम्यक्त्वमिथ्यात्वफलप्रपञ्चं सविस्तरं साधुपतिर्जगाद् ॥ ३४
 मुनीन्द्रिवाक्यादवबुद्ध्य तत्त्वं विहाय मिथ्यात्वमनादिबद्धम् ।
 प्रहृष्टरोमाङ्गुरिताङ्ग्यष्टिः कुताञ्जलिर्वाक्यमिदं वभाषे ॥ ३५
 अणुवतानां परिपालका ये ते मङ्गलं ये च तपश्चरन्ते ।
 स्थातुं तपस्युग्रतमे न शक्तो व्रतानि देष्टुं कुरु मे प्रसादम् ॥ ३६
 भवत्प्रसादोदयलब्धदष्टिः कुतीर्थदुर्मार्गनिवृत्तदष्टिः ।
 नरामररैरप्यविकम्प्यदष्टिव्रतानि गृह्णाम्यहमात्मशक्त्या ॥ ३७
 मदोद्धतैः क्षत्रियपुङ्गवैस्तैः परस्पराधातनिमित्तजातम् ।
 विहाय तद्युद्धमुखं तदेकं^१ मुने परप्राणिदया ममाशु ॥ ३८

१ क द्वृतं. २ म अनुत्तमा श्रीः. ३ [तथैक]. ४ [ममास्तु].

परोपघातान्तदुर्वचांसि परस्वहारित्वमपार्थरोषः ।
 पराङ्गनालिङ्गनसंगसौख्यमाजीवितान्तादमुच्चं यतीश ॥ ३९
 निशम्य भव्यस्य वचो मुनीन्द्रः प्रसन्नभावस्य समाहितस्य ।
 कृताभ्यनुज्ञः स्वयमेव तस्मै चकार सम्यग्वतरोपणानि ॥ ४०
 तेषां व्रतानां बहुभिः प्रकारैः फलान्यभिप्रेतफलप्रदानि ।
 इहाप्यमुत्रापि यशस्कराणि प्रदर्शयामास नृपात्मजाय ॥ ४१
 अन्धो यथा तुष्यति नेत्रलाभान्निधेः प्रलाभाच्च यथा दरिद्रः ।
 तथा गृहीतव्रतभारसारो ह्यभूतपूर्वा मुदमाससाद् ॥ ४२
 महर्षिपादावभिनूय भूयस्तपोऽधिकाञ्छीलनिधीश्च साधून् ।
 प्रदक्षिणीकृत्य पुनः प्रवन्द्य विसर्जयामास यथानुपूर्व्या ॥ ४३
 गृहीतसम्यक्त्वद्वृत्ततात्मा आत्मर्षिदेवैः कृतसाक्षिकस्तु ।
 मुनेर्गुणांस्तान् हृदि संविधाय लब्धाभ्यनुज्ञः पुरमध्यगच्छत् ॥ ४४
 पुरं विशालं प्रविभक्तशालं चन्द्रांशुजालामलकीर्तिमालम् ।
 अरातिसैन्यक्षण्णातिकालं विवेश वृद्धैः क्रमशः सलीलम् ॥ ४५
 नरेन्द्रपुत्रो नगरं प्रविश्य वयोपचारं पितरौ समीक्ष्य ।
 प्रणम्य पादं प्रणिपातनार्हं सुखं निविष्टो मुनिसंकथाभिः ॥ ४६
 तथाँ तपस्को विजहार यत्र ततश्चकार स्वशिरः शयानः ।
 बालस्वभावं प्रविहाय विद्वान्प्रज्ञानुवृत्तिं प्रचचार धीरः ॥ ४७
 प्रातः कुमारः कृतमङ्गलार्थो जिनेन्द्रविम्बार्चनतत्परोऽभूत् ।
 ततो गुरुन्साधुतमान्पूज्य पश्यत्युपस्थानगतः स्वकार्यम् ॥ ४८
 तत्रोपविष्टो जिनदेवमार्गं प्रकाशयन्संकथयन्परेभ्यः ।
 विचारयन् हेतुभिरप्रदृष्टैः पुरोत्तमेरंस्त सदा वराङ्गः ॥ ४९

१ म कृताभिनुज्ञैः. २ [संविधाय]. ३ [नयोपचारं]. ४ [तदा तपस्वी].

स्थानासने निष्क्रमणे सभासु शय्याधिरोहे भुतजृम्भणेषु ।
 सदा नमस्कारपदानि पञ्च करोति सङ्घावपुरस्सराणि ॥ ५०
 प्रजेष्ठकारी मितमृष्टभाषी विशिष्टशास्त्रार्थनिविष्टबुद्धिः ।
 अशिष्टशासी खलु शिष्टपाली कुटृष्टिष्टान्तपथैरपेतः ॥ ५१
 ग्लानातिबालस्थविराङ्गनानां मर्यादिया पश्यति कार्यजातम् ।
 दयापरान्धर्मरुचीन्वनीतान्प्राज्ञांश्च सन्मानयते यथावत् ॥ ५२
 वृपस्तु पुत्रस्य गुणानुदाराञ्जनेरितान्संसदि संनिशम्य ।
 प्रहृष्टचेताः प्रियकृत्प्रजानां कृतार्थमात्मानममंस्त सद्यः ॥ ५३
 स्वपुत्रसत्कृत्यनुरक्तबुद्धेवृपस्य चित्तानुगतं विदित्वा ।
 अनन्तचित्राजितदेवसाहौ विज्ञाप्यन्मन्त्रिवरा नरेन्द्रम् ॥ ५४
 प्रकृत्यनुज्ञातगुणो विनीतो दक्षः कृतज्ञश्च कृती सुशास्त्रः ।
 एतेषु सर्वेषु भवत्सुतेषु योग्यः प्रजाः पालयितुं वराङ्गः ॥ ५५
 तेषां हितप्रीतिनिवेदकानां स्वराज्यसंवर्धनतत्पराणाम् ।
 निशम्य वाक्यान्यनुमन्य राजा राज्याभिषेकाय शशास सर्वान् ॥
 आज्ञापितास्ते वसुधेश्वरेण अमात्यसेनापतिमन्त्रिवर्गाः ।
 श्रेष्ठप्रधानाः पुरवासिनश्च संपादयांचक्रुरभीप्सितानि ॥ ५७
 वीथिप्रवेशोद्धृतकेतुमाला विन्यस्तनानाबलिभक्तिचित्राः ।
 पर्णापिधानोज्ज्वलपूर्णकुम्भाः सतोरणालम्बितलोलमालाः ॥ ५८
 सुगन्धिसच्चन्दनकुद्धुमाक्ता महाध्यवस्त्राभरणा युवानः ।
 गृहीतचित्रध्वजपाणयस्ते आजग्मुरत्युज्ज्वलचारुवेषाः ॥ ५९
 पुराङ्गना मङ्गलयोग्यलीलाः सलङ्गिकाः सिङ्गितभूषणाढ्याः ।
 अलङ्गकृताङ्गयः समदाः सलीलं समन्ततो निर्ययुरम्बुजास्याः ॥

१ क प्रचेष्टकारी. २ क पथेष्पेतः. ३ [°धीवराहा]. ४ [व्यशापयन्].

शुभे मुहूर्ते करणे तिथौ च सौम्यग्रहेषुपचयस्थितेषु ।
 सिंहासने श्रीमति राजपुत्रं निवेशयां पूर्वमुखं वभूवुः ॥ ६१
 आनन्दितप्रीतिमुखे हताशाः पुरप्रवेशं सकलं ननाद (?) ।
 वंशा मृदङ्गाः पणवाः स्वरैस्स्वैरापूर्यां सर्वदिशां वभूवुः ॥ ६२
 अष्टादशश्रेणिगणप्रधाना बहुपकारैर्मणिरत्नमिश्रैः ।
 गन्धोदकैश्चन्दनवारिभिश्च पादाभिषेकं प्रथमं प्रचक्रुः ॥ ६३
 सामन्तभूमीश्वरभोजमुख्या आमात्यसांवत्सरमन्त्रिणश्च ।
 ते रत्नकुम्भैर्वरवारिपूर्णैर्मूर्धाभिषेकं मुदिताः प्रचक्रुः ॥ ६४
 स्वयं नरेन्द्रो युवराजपदं पुरस्कृतश्रीयशसे बबन्ध ।
 वृपाङ्गयाष्टौ वरचामराणि संचिक्षिपुस्तान्यभितस्तरुण्यः ॥ ६५
 चलत्पताकोज्ज्वलकेतुमाला प्राकारकाश्ची स्तुतिरूर्यनादा ।
 प्रपूर्णकुम्भोरुपयोधरा सा पुराङ्गना लब्धपतिस्तुतोष ॥ ६६
 सबालवृद्धं जनमात्मनीनं पुराणि राष्ट्राणि च पत्तनानि ।
 यानानि रत्नानि च वाहनानि सपर्यज्ञमिपतिः सुताय ॥ ६७
 यथा मयि स्लेहनिबद्धचित्ताः सर्वे भवन्तो मम शासनस्थाः ।
 तथावनीन्द्रास्तनयस्य नित्यं भवन्तु वश्या इति तानुवाच ॥ ६८
 जगज्जना बालनराधिपं तं श्रियोज्ज्वलन्तं नयनाभिरामम् ।
 किरीटसत्कुण्डलहारभारं प्रोचुः समीक्ष्यात्ममनोगतानि ॥ ६९
 सर्वान्नरेन्द्रानभिभूय भासा रराज सम्यग्युवराज एषः ।
 प्रणष्टमेघे गगने निशायां ग्रहानिवैकः परिपूर्णचन्द्रः ॥ ७०
 एतस्य पूर्वार्जितपुण्यबीजं विद्वा वयं चेदमितप्रभस्य ।
 विसृज्य पूर्वापरयोग्नतारं समर्चयिष्याम इति व्यवोचेत् ॥ ७१

१ क हताशा. २ म भजन्तु. ३ क तिरीट०. ४ [°योग्यतां च]. ५ [व्यवोचन].

दायादकानां च वृपात्मजानां वेतांसि तान्याकुलितान्यभूवन् ।
 कुलं बलं रूपमपीह लब्ध्वा स्थानं च यन्म ह्यलभामहीति ॥७२
 ग्रहाश्च तारा निशि गन्दमन्दं प्रकाशमानाः पुनर्स्कंभासा ।
 आदर्शनं यान्ति यथैव लोके तथा वयं बालवृपार्कभासा ॥७३
 बाल्यात्प्रभृत्येव हि मङ्गल्युद्दे प्रधावने वा हयवारणानाम् ।
 पञ्चायुधे शास्त्रपरीक्षणे वा नास्त्रसमो बालवृपः कदाचित् ॥७४
 संसेव्य तादग्निधमल्पसत्त्वं संजीवमानो मरणं वरं तत् ।
 देशातिथित्वं ज्वलनप्रवेशो विषाशनं वा क्षममित्यवोच्चन् ॥ ७५
 तेषां पुनर्मानमदोद्धतानां वृपात्मजानां वचनं निशम्य ।
 प्रत्यूचुरन्ये क्षितिपालपुत्रा औदौर्यतो रागविनोदनाय ॥७६
 सत्त्वाधिकः शिल्पकलाविदग्धो विपश्चिदप्युन्नतवंशजो वा ।
 रूपान्विता वा कृतिनः पुरस्तात्प्रधावतीत्येष विनिश्चयो नः ॥७७
 पुष्पाणि ताम्बूलविलेपनानि चित्राणि वस्त्राणि विभूषणानि ।
 आ बाल्यतो वः प्रविभज्य भुड्णते न तस्य हानिर्भवतां विनाशः ॥७८
 केनाभिषिक्तः करिराङ्गुनेषु तत्तुल्यरूपास्त्वतरे गजाश ।
 वन्या गजास्तेऽपि वशानुगाश्वेत्कथं न वश्यः परपोषजीवी ॥७९
 न शक्यतेऽर्कः स्थगितुं करेण नासूयतां नश्यति या परस्त्रीः ।
 अपुण्यवद्धिः कृतपूर्वपुण्याः संसेवनीया इति लोकसिद्धम् ॥ ८०
 अथेतरे मानमदान्धनेत्रा भृशं स्वरोषस्फुरिताधरोष्टाः ।
 सगद्वासक्तनिघृष्टवाक्या वृपात्मजोक्ताश्चुकुपुस्तदानीम् ॥ ८१

१ [अदर्शनं]. २ क हयवारणेषु. ३ [संजीवतां नो]. ४ म अवोचत्.
 ५ म चौदौर्यतो. ६ क परमोपजीवी. ७ [नासूयया]. ८ [परश्रीः].

राजात्मजा किं न भवाम सर्वे किं मातरोऽन्येनुपतीः कुलीनाः ।
 किं शौर्यवीर्यद्युतिधैर्यहीनाः किं वाथ लोके व्यवहारबाह्याः ॥ ८२
 स किं विसोद्धुं युवराज्यभारं स्थितेषु चास्मासु विगृहं सक्तः ।
 सुवर्णसारो निकषोपलेन भविष्यति व्यक्तिरूपवश्यमाशु ॥ ८३
 इत्येवमाभाष्य नरेन्द्रपुत्राः परस्पराकृतविनिश्चयार्थाः ।
 ततः सुषेणप्रमुखा वृशंसा उत्तस्थुरत्र व्यवहारबुद्ध्या ॥ ८४
 ते मन्त्रिणस्तान्सहसा समीक्ष्य विजृम्भितक्रांघविरूपदर्पणं ।
 निष्केवलं वाक्लहप्रवृत्तान्विवारयां राजसुतान् बभूवः ॥ ८५

युवनृपतिमुदीक्ष्य राजपुत्रा-
 स्तुतुषुरुदारधियः स्वभावभद्राः ।
 सकलुष्ठष्टदयाः प्रवृद्धरागा
 रुरुषुरनुष्ठितमत्सरास्तथान्ये ॥ ८६
 अथ युवनृपतिर्विशालपुणः
 सकलदिग्नतविसर्पिकीर्तिमालः ।
 अवनिमुदाधिमेखलाकलापां
 मुदितजनां स बभूव जेतुकामः ॥ ८७
 इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 युवराज्यलाभो नाम
 एकादशमः सर्गः ।

[द्वादशः सर्गः]

नृपाङ्गनाभिर्वरल्पिणीभिः सहोपविष्टा नरदेवदेवी ।
 तुतोष पुत्रस्य हि राज्यलाभं संश्रुत्य राजप्रहितान्मनुष्यात् ॥ १
 अभ्यागतं प्रीतिनिवेदनाय संपूज्य वस्त्राभरणप्रदानैः ।
 नरेन्द्रपत्नी स्वजनस्य मध्ये अद्यास्मि देवीति मुदाभ्यवोचत् ॥ २
 श्रुत्वा वराङ्गस्य हि यौवराज्यं सर्वाः सपत्न्यो गिरमित्थमूचुः ।
 अस्माकमस्पत्सुतबान्धवानां पुरापि नाथासि विशेषतोऽद्य ॥ ३
 तासां समाजे नृपमुन्दरीणां काचिन्नपेष्टा मृगपूर्वसेना ।
 अर्पषसंक्षोभितमानसा सा अधोमुखी स्वं भवनं जगाम ॥ ४
 तत्रोपविश्य स्ववदश्रुनेत्रा कराग्रसंधारितवामगण्डा ।
 विचिन्तयन्ती कृतमीश्वरेण निनिन्द सा दुःकृतपाकमित्थम् ॥ ५
 न स्यात्सुतः किं नृपतेः प्रियो वा के वा गुणा मत्तनये न सन्ति ।
 ज्येष्ठे सुते राज्यधुरः समर्थं पराभिषेकं तु कथं सहिष्ये ॥ ६
 इत्येवमात्मन्यविचार्यं कार्यं मुहुर्मुहुः कोपवशाञ्जलन्ती ।
 सुषेणमाहूय विविक्तदेशे प्रोवाच राज्ञी सुतमात्मनस्तम् ॥ ७
 नो वत्स कार्यं विदितं त्वयैव वराङ्गनाम्नो युवराज्यलाभम् ।
 ज्ञात्वा यतः क्षीणनृपात्मशक्तिः स्थितोऽसि तूष्णीं धिग्पौरुषत्वम्
 नीचानुवृत्तेः प्रियजीवितस्य निरस्तस्त्वस्य हि मन्दशक्तेः ।
 परावधूतार्थपराक्रमस्य का जन्मवत्ताँ भुवि पुत्रं पुंसः ॥ ९
 समीक्षमाणा गुणदेविकायास्तस्याः सुतस्यापि वरां विभूतिम् ।
 प्राणान्विसोदुं न सहेऽतिमात्रं शिरस्तु मे विस्फुर्टीव कोपात् ॥ १०

१ क साधुः कृतः २ [ज्ञात्वा च यत्क्षीणः ३ [धिग्पौरुषत्वम् ४ म जन्मवती (जन्मवारी ?) ५ क अतिमात्रां ६ क निस्कृटति ।

मात्रैवमुक्तो निजगौ सुषेणो नैवाम्ब नाज्ञायि न चानशक्तेः (१)।
 राज्ञा कृतं वेत्यनवेक्ष्य सर्वमथाशिषं युद्धमतिं विगृहा ॥ ११
 तदैव कैश्चिन्नृपजैः सहायैरुद्यम्य खड्गं स्फुरदंशुजालम् ।
 त्वं वा महीं पाह्यथवा वयं वा इति स्थितं मान्यरुचत्स मन्त्री १२
 वचो निशम्यात्मसुतस्य राज्ञी आहूय तं मन्त्रिणमात्मनीनम् ।
 पूर्वोपचारैरभिसंप्रूज्य वचः प्रसंहेदमवोचदित्थम् ॥ १३
 यथा पितृभ्यां प्रहितोऽस्मदर्थं तथोपकारो भवता कृतश्च ।
 यत्नैर्द्रुतं संपरिवर्ध्य भूयो विच्छेत्स्यसि त्वं तव का चिकिर्षा १४
 वयं विशुद्धा यदि च त्वदर्थे अस्मत्सुहस्त्रिः सुकृतं यदि स्यात् ।
 निवर्त्य तस्याद्य हि यौवराज्यं सुषेणमास्थापय यौवराज्ये ॥ १५
 न्यायादपेतं यदि युक्तिमच्च निशम्य राज्ञीवचनं सुबुद्धिः ।
 अपक्षरागस्त्वतिद्वरदशी चिरं परीक्ष्यैतदवोचदर्थम् ॥ १६
 वाञ्छनित ये नाशयितुं सपुण्यं ते यान्ति पूर्वं हि विनाशमाशु ।
 मत्तद्विपेन्द्रैः सह युध्यमानाः प्रयान्ति नाशं कलभाः पुरैव ॥ १७
 न शक्यते स्थापयितुं गतश्रीने शक्यते नाशयितुं पृथुश्रीः ।
 यथात्मना पूर्वमुपाश्रितश्रीस्तथैव सा संश्रयते नरः श्रीः ॥ १८
 अनागतं कार्यमुपस्थितं च येऽनात्मबुद्ध्या प्रविचारर्थ्यन्ति ।
 स्वकार्यसिद्धिं हनवाप्य मृदास्ते संश्रितैस्तैः सह यान्ति नाशम् १९
 अबुद्धिमस्त्रिः प्रवितर्कितोऽर्थो विनाशमभ्येष्यति निश्चयेन ।
 आश्रित्य तस्माद्युवराजमेव संजीवनं नो हितमित्युवाच ॥ २०
 इत्युत्तरं बुद्धिमतोपदिष्टं प्रत्युत्तरं वक्तमसावशक्ता ।
 सा मन्त्रिणं प्रार्थितकार्यसिद्धौ प्रयाचमाना ससुतेन देवी ॥ २१

१ [मां न्यरुधत्]. २ [यदयुक्तिमच्च]. ३ क नर श्रीः, [नरं श्रीः]. ४ क प्रतिचारयन्ति.

संचिन्त्य पन्त्री स्वशिरः प्रकम्प्य स्वस्वामिसंबन्धमवेक्षमाणः ।
 संपूज्य देवीं समुतां नताङ्गो भक्त्या क्रियाविद्विरमित्युवाच ॥ २२
 यद्यस्ति पुण्यं तनयस्य तेऽस्य तन्मे सहायत्वमुपैति देवि ।
 कालेऽभ्युपायोद्यतशक्त्वशक्तिः सिद्धैयै यतिष्ठे धृतिमोहि साध्यै ॥
 अन्योन्यसंप्रत्ययकारणानि परैवज्ञातपथस्थितानि ।
 रहस्युपामन्त्र्य तदर्थजानि शैनैरपेयुर्दृढगूढमन्त्राः ॥ २४
 संधर्तुकामश्च सुषेणराज्यं वराङ्गराज्यं विनिहन्तुकामः ।
 तिष्ठन्त्रजञ्जाग्रदपि स्वयं च रन्ध्राणि पश्यन्प्रणिनाय कालम् ॥
 उद्यानयाने बलदर्शने वा सभास्वरण्येषु पुरान्तरेषु ।
 क्रीडासु नानाविधकल्पनासु छिद्रप्रहारी स बभूव तस्य ॥ २६
 ताम्बूलधूपाङ्गनभैषजेषु वस्त्राद्यलङ्घारविलेपेषु ।
 मालासु शश्यासनवाहनेषु द्रैष्टं नरं प्राणि शशाक राङ्गः ॥ २७
 नवान्ववांस्तानपरिश्रेण प्राप्तानुदारान्विषयोपभोगान् ।
 अभ्यर्थमानानकृतैर्मनुष्यैः समक्षुवानस्य जगाम कालः ॥ २८
 ततः कदाचिद्भृगलीश्वरेण संप्रेषितौ तौ युवभूमिपाय ।
 जात्या किशोरौ कमनीयरूपावावासभूमौ शुभलक्षणानाम् ॥ २९
 शुभान्वयौ बालमृगेन्द्रतुल्यौ हयोत्तमौ भूमिपतिः समीक्ष्य ।
 को नाम शक्तो विनिनेतुमेतांवित्यभ्यवोचत्सहसा सभायाम् ॥ ३०
 तद्वाक्यलब्धावसरः स मन्त्री उत्थाय सोऽन्तर्हृदि जातहर्षः ।
 मत्तोऽस्ति काश्रेत्पुरुषो विनेता द्रक्ष्यामि सौर्धं कातिचिद्विनानि ॥
 इत्युक्तवन्तं गतवन्तमन्तं शास्त्रार्णवस्योत्तरमन्त्रिणं तम् ।
 संपूज्य राजा वरहेमरत्नैरश्वोत्तमौ तौ विसर्ज तस्मै ॥ ३२

१ म तस्य. २ म धृतिमोह०. ३ [द्रष्टं न रन्ध्राणि]. ४ क विनेतुमेतां,
[शक्तो हि विनेतु०]. ५ [सार्थै].

तेनाश्वशास्त्रक्रमकोविदेन मासैश्चतुर्भिः परिषुष्टगात्रौ ।
 धूपाञ्जनैर्मन्त्रपवित्रभूतैर्हयोचमौ तौ दमितौ यथावत् ॥ ३३
 न्यायोपदेशेन च दान्त एको मायाप्रयोगेन तथा द्वितीयः ।
 गृहीतशिक्षौ तपनीयभाण्डावादाय मन्त्री नृपमाससाद् ॥ ३४
 पुराद्विर्मण्डलभूमिमध्ये आरुह्य सोऽश्वं जनतासमक्षम् ।
 वीथीविभागैर्गमयन्सलीलं जहार सद्यो युवराजचित्तम् ॥ ३५
 अश्वक्रियास्वप्रतिकौशलस्य ज्ञात्वा कुमारस्य संदर्थतोषम् ।
 सर्वाश्वं सभ्यानाभिसंस्तुवानानुवाच मन्त्री प्रियमित्थमाशु ॥ ३६
 अतो विशिष्टो हय एष राजस्तवैव योग्यस्त्विति संप्रभाष्य ।
 दुःशिक्षितं वारितवाँगशीलं निवेदयामास युवेश्वराय ॥ ३७
 प्राप्तव्यतायास्तुरगानुरागाद्युवत्वगर्वोद्घतगौरवाच्च ।
 दुर्ग्राहितं तं ह्यपरीक्ष्य साक्षादारोद्गुमच्छन् नृपतिस्तदानीम् ॥ ३८
 तुरङ्गमङ्गाङ्गतरङ्गवलं सद्रत्नविद्युत्परिणद्गात्रम् ।
 माङ्गल्यवेषः क्रिययाभिरुह्य चित्रं महत्या गमयांवभूव ॥ ३९
 अर्थर्जुना तेन यथाविनीतः कर्शाकशष्टैरवबोध्यमानः (?) ।
 क्रोधोद्धतो वायुसमानरंहाँ धनुर्विमुक्तेषुरिव प्रयातः ॥ ४०
 दुःशिक्षया क्षोभितदुष्टचित्तो नरेश्वरेणाश्वमता श्रमेण ।
 निवर्त्यमानोऽप्यनिवृत्तवेगः क्रोधादतिक्रम्य गतोऽतिदूरम् ॥ ४१
 संज्ञानभिज्ञेन नरेश्वरेण कृतानि कर्माण्यफलान्यभूवन् ।
 उन्मार्गशिक्षे हि तुरङ्गमुख्ये वक्रस्वभावे स्वकृतानि यद्रूत् ॥ ४२
 द्वाभ्यां शुजाभ्यामथ संनिरोद्धुं यथा यथावाञ्छदतुल्यतेजाः ।
 निरुद्यमानस्तुरगो जवेन तथा तथाधावदवार्यवीर्यः ॥ ४३

१ म आससार. २ [तदर्थः]. ३ [°वेगः]. ४ [आरोद्गुमैच्छत्].
 ५ [चित्तं...रमयां]. ६ म शशाक शैष्ट॑. ७ म °रंहो.

ग्रामाकरांशापि मटम्बखेटान्पुराणि राष्ट्राणि वहून्यतीत्य ।
 देशान्तमाशु प्रजगाम वाजी पातो यथोत्पातिकवातधूमैः ॥ ४४
 अथेतरे वाजिगजा नराश्र महाजवास्तेऽप्यनुगन्तुकामाः ।
 नाशकनुवन्पक्षिगणाः समेताः खे संपतन्तं गरुडं यथैव ॥ ४५
 कचित्तरुणां गहनान्तरेषु निम्नोन्नतोपान्तवनस्थलीषु ।
 तुरङ्गवेगान्यपतच्छिरस्थं किरीट्यङ्गाच्च विभूषणानि ॥ ४६
 अथोन्तरीयं निपपात भूमौ माला विशीर्णा हृदयं विषण्म् ।
 तनुश्चकम्पे वदनं शुशोष वभ्राम दृष्टिः पिदधौ श्रुतिश्च ॥ ४७
 अथावनीशः क्रमन्दशक्तिर्हयप्रवेगोन्मथितप्रतापः ।
 वल्लीतणाच्छादितकूपरन्धे पपात तेनैव हयेन सार्धम् ॥ ४८
 निपत्य तस्मिन्स पुराकृतेन हयो मृतशूर्णितसर्वगात्रः ।
 लतां गृहीत्वा स्वयमन्तर्लेले कूपाच्छनैरुर्ध्वमथारुरोह ॥ ४९
 तत्रोपविश्याप्रतिकान्तरूपः क्षुधा तृषा श्रान्ततनुर्युवेन्द्रः ।
 सर्शकरापांशुखरप्रदेशे महीतले मोहमुपाजगाम ॥ ५०
 आप्यायितः शीतवतानिलेन शनैः समुन्मीलितचारुनेत्रः ।
 उच्छ्वस्य दीर्घं स्वतनुं विलोक्य निनिन्दं संसारचलस्वभावम् ॥
 विचिन्त्य मातापितरौ स्वबन्धुन्मित्राणि भृत्यानथ देशकोशान् ।
 वधूश्र ता देववधूसमानाः क्लेशाभिभूतो विललाप तत्र ॥ ५२
 शोको भवेद्वन्धुं जनैर्वियोगाद्वैर्यं त्वं भूद्राजसुताभिमानात् ।
 क्रोपोऽभवन्मन्त्रिकृतावमानाद्विरागताभूदनवस्थितत्वात् ॥ ५३
 यद्यङ्गनावद्गुदि सत्त्वहीनो निरर्थमासे विजने वनेऽहम् ।
 आपत्यतीकारमवेक्षमाणो नावश्यमाप्स्यामि पुनर्विभूतिम् ॥ ५४

१ क मडम्ब०. २ क पाथो. ३ म यथोत्पातित०. ४ क तिरीट०. ५ क स्वपुराङ्गतेन. ६ म स्वयमन्तराणि. ७ [शोकोऽभवद्वन्धु०].

अरण्यवासो न शुभावहो मे इह स्थितेनैव गुणोऽस्ति कश्चित् ।
 इतो व्रजामीति मतिं निधाय धृतिं प्रतिष्ठाप्य महानुभागः ॥ ५५
 प्रालम्बकाद्यानि विभूषणानि भ्रष्टवशेषाण्यवलुच्छय देहात् ।
 विसुज्य कूपे च विचिन्त्य दूरं ततः प्रतस्थे नृवरोऽतिसच्चः ॥ ५६
 भुजङ्गमातङ्गविहङ्गजुष्टां महाटवीं श्वापदसेवितां ताम् ।
 अनेकवृक्षशुपगुल्मकक्षां च चार दिङ्गम्भूमितिः स एकः ॥ ५७
 सूर्ये तदास्तंगिरिमध्युपेते व्याघ्रं च तत्कालमनुप्रयातम् ।
 समीक्ष्य चासन्नतयातितर्णं नृपात्मजः पादपमारुरोह ॥ ५८
 आहत्य पुच्छेन तलं धराया दृष्टेऽर्धदृष्टिर्विट्ये निविष्टम् ।
 उद्वेजयन्भीमवपुस्तदानीं शार्दूलपोतः प्रसर्भं जगर्ज ॥ ५९
 शार्दूलनिर्भत्सनविस्मिताक्षः शाखान्तरे भूमिपतिर्निविश्य ।
 निरीक्षमाणः स च तद्रिकारान् कृच्छ्रेण रात्रिं गमयांबभूव ॥ ६०
 वियोगचिन्ताकलुषीकृतस्य परिश्रमम्लानमुखाम्बुजस्य ।
 क्षुत्तर्षतान्तस्यं सदुःस्थितस्य एका निशानेकनिशेव सासीत् ॥ ६१
 न चामिषां सा प्रतिबद्धचित्तो निर्गन्तुमिच्छैनिपतिष्यतीति ।
 शार्दूलयानप्रतिलिप्समानो न राजपुत्रोऽप्यवरोहमैच्छत् ॥ ६२
 इत्थंगते मत्तमहाकरीन्द्रं करेणुभिः सार्धमभिप्रयातम् ।
 विलोक्य दूरान्पृतिर्नादं व्याघ्रं गजेन्द्रेण विमर्दयिष्यन् ॥ ६३
 आकर्ण्य नादं सहसा निवृत्तः क्रोधोद्भृतैः सोच्छ्रितकर्णपुच्छः ।
 विशेषसंप्रश्नुतिदानलेखो गर्जनगाजो वायुरिवाजगामै ॥ ६४

१ म क्षुत्तर्षतार्तस्य. २ [चामिषाशाप्रति०]. ३ [निर्गन्तुमैच्छत्]. ४ क निमर्दयिष्यं, [निमन्त्रयिष्यन्]. ५ [क्रोधोद्भृतः]. ६ क संप्रश्रुति, [संप्रश्रुति]. ७ क वाजिरिवाजगाम.

गजं तमायान्तमुदग्रकोपाब्राघः समुत्प्लुत्य तदंशकुम्भे ।
 दष्टेऽतिरुष्टुः स च दन्तकोश्या जघान शार्दूलमधो निहत्य ॥६५
 स तस्य संप्रेक्ष्य गजेश्वरस्य जयं महान्तं रिपुमर्दनस्य ।
 अन्तर्गतभीतिमनाः कृतज्ञो युवेश्वरो वाक्यमिदं जगाद् ॥ ६६
 ममाशरण्यस्य वने स्थितस्य व्याघ्रातिनिर्भत्सनभीषितस्य ।
 व्यपेतमित्रार्थकलत्रकस्य त्वयेभ दत्ता प्रियजीविताशा ॥ ६७
 गजेश्वरस्त्वं मनुजेश्वरोऽहं त्रातुं भवानेव हि मामतोऽहं ।
 आपद्वतानां हि सतां सहाया भवन्ति लोके महतां महान्तः ॥६८
 पूर्वं महीपालसुतस्त्वभूवनीतैः सुतोऽहं तव नागवर्य ।
 तवोपचारप्रतिकारता हि न शक्यते जन्मशतेन कर्तुम् ॥ ६९
 प्रियाभिराभिर्वरहस्तिनीभिर्वनं चिरं पालय वीतशोकः ।
 इतीभमित्थं वचनैः प्रशस्य गते करीन्द्रेऽवततार वृक्षात् ॥ ७०
 शुधाभिभूतस्त्रृष्या परीतः पानीयमिच्छस्त्वरितं तरस्वी ।
 यथो गजेन्द्रानुविमर्दितेन व्रजन्सरोऽपश्यददूरदेशे ॥ ७१
 सरः प्रसन्नोदकमत्यगाधं मन्दानिलोत्कम्पितरङ्गमालम् ।
 सैच्छन्नफुल्लोत्पलपुण्डरीकं मदप्रलापाण्डजमृष्टनादम् ॥ ७२
 तत्तीरफुलद्रुममञ्जरीणां गन्धैः सुगन्धीकृतचारुतोयम् ।
 मन्त्रभ्रमत्थट्पदगीतरम्यं मनोहरं शीतलमाससाद् ॥ ७३
 हसाङ्गना बालनृपं समीक्ष्य कुलाङ्गनावद्वशुस्तिरस्थाः ।
 अन्तदेधुः काश्चन काश्चिदस्थुर्षृष्टं जगुर्वेश्यवधूवदन्याः ॥ ७४
 आसाद्य तत्तीरमुखप्रदेशं प्रक्षाल्य धीमानथ पाणिपादम् ।
 पिपासितः क्षामर्नयाम्बु शीतं पपौ पलाशेन पयोरुहस्य ॥ ७५

१ म तदंशु०, [तदंस०]. २ क दष्टेतिरुष्टुः. ३ [°सुतस्त्वभूवमितः].
 ४ [पथा]. ५ [संछन्न०]. ६ क °ददुशुस्तिरस्थाः, [दुदुशुस्तिरस्थाः],
 °स्तटस्थाः]. ७ क °वैश्य. ८ क पिपासितक्षाम० .

सुवर्णरूप्योत्तमभाजनेषु त्रिजातकर्पूरकवासिताम्भः ।
 मप्रियाकराग्रोपहृतं मनोज्ञं यः पीतवानराजगृहे यथेष्टम् ॥ ७६
 शार्दूललालाविलमध्वसिन्नो वरद्विपानां मदवारितिक्तम् ।
 इंसांसंविक्षुब्धतरङ्गमालमसंस्कृतं वारि पपौ कुमारः ॥ ७७
 हस्त्यश्वयानान्यभिसंस्कृतानि आरुहमाणो भटसंकंटेन ।
 श्वेतातपत्रोज्जवलचामराङ्कः क्रीडार्थमुद्यानवनं ययौ यः ॥ ७८
 विनष्टमार्गः स्फुटिताग्रपादो विशीर्णवासा ग्लपिताङ्गयष्टिः ।
 स एव पङ्ग्यामटवीपदेशं खरं सपाषाणमयं चचार ॥ ७९
 पुरा हि सच्चन्दनकुद्धमाक्तः प्रदग्धकालागरुधूपितो यः ।
 स एव संखेदमलाविदग्धो वभ्राम कक्षे मलिनाम्बरेण ॥ ८०
 पञ्चेन्द्रियाणां विषयाननूनान्यः प्राप्तवान्पुण्यफलोदयेन ।
 स एव पूर्वार्जितपुण्यनाशान्वैकेन्द्रियं तर्पयितुं समर्थः ॥ ८१
 य एव पर्याप्तसुखार्णवस्थः श्रीमङ्गलाशीर्वचनैः प्रणूतः ।
 दुर्भाष्यमाणस्त्वपि वासुकुन्तैर्दुःखार्णवे स क्षणतः पपात ॥ ८२
 एवंविधानां हि महर्दिकानां नैकाकरग्रामपुराधिपानाम् ।
 सूर्यत्विषामूर्च्छितपौरुषाणां यद्यावदीद्वक्षणतोऽभ्युपैति ॥ ८३
 नित्यं परप्रेषणतत्पराणां नक्तंदिवं क्लेशसहस्रभाजाम् ।
 निकृष्टवृत्तित्वमुपागतानां किमस्ति वाच्यं कृमिमानुषाणाम् ॥ ८४
 यद्येवं शकटमयोमयं सुवद्धं
 तत्स्याच्चेदनिलबलेरणप्रणीतम् ।

१ क हस्तावलि०, [हंसावलि०]. २ म °स्वसिवासकुन्तौ०, [°स्त्रपि वा
 शकुन्तौः, °स्वशिवं शकुन्तौः]. ३ म नैवाकर०. ४ म कृति०.

यद्विष्टं^१ प्रचयकृतं प्रभञ्जनेय
 किं तिष्ठेदतिलघुचञ्चलस्वभावम् ॥ ८५
 आहोस्त्वकनकमयं शरावपात्रं
 तन्निष्टुं व्रजति यदीह मूषिकाभिः ।
 श्रद्धेयैः किमु धृतपूरितो गुडाक्तः
 श्रीमोदस्थितं इति मूषिकाबिलेषु ॥ ८६
 एवं ये धृतिवलसत्त्वसारयुक्ताः
 सेवाज्ञामतिविभवोरुद्यैर्यवन्तः ।
 तेऽवस्थामतिविकृतामथाश्नुवीरन्
 किं वर्ण्य मृगपशुभिः सेमा न पुंसः ॥ ८७
 निर्मुच्य स्वजनगतं मनः पृथुश्री-
 रात्मानं स तु वृत्तिसंपदावलम्ब्यम् ।
 पीत्वाम्भो विगततृष्णो युवावनीन्द्रः
 स्नानार्थं जलममलं शनैर्जगाहे ॥ ८८
 इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 युवराजसरोदर्शनो नाम
 द्वादशमैः सर्गः ।

१ म यत्पत्रं. २ क तिष्ठेदतिलनस्वं. ३ क शुद्धेयुः. ४ [श्रीमोदः]. ५ क
 समेषु. ६ समधृतिं, [शमधृतिं]. ७ [द्वादशः].

[त्रयोदशः सर्गः]

सरः प्रविश्योत्पलफुल्लपङ्कजं प्रकृष्टकारण्डवसारसाकुलम् ।
 मृदा कषायेण मलापहारिणा निघृष्य संस्लावनुकूलमात्मनः ॥ १
 पुनः सरोऽन्तर्गतरागमानसः स्वकर्मनिष्पत्तिफलप्रचोदितः ।
 श्रमव्यपोहार्थमगाधवारिणि ततारदोभ्यां सुतरं तरङ्गिणि ॥ २
 चिरं हि तीर्त्वा कमलोत्पलान्तरे तरङ्गसंगप्रविधौतदेहिनः ।
 विनिर्ययासोः सहसानुसृत्य तं जग्राह नक्रश्वरणं महीपतेः ॥ ३
 विबुध्य नक्रग्रसनं स दुर्धरं बलाद्विर्निष्पतितुं समुद्यतः ।
 अशक्नुवन्क्षीणबलो निरासपदो विचिन्तयामास विष्णुमानसः ॥
 व्यपेतशार्दूलभयस्य मे पुनः किमेतदन्यत्समुपस्थितं महत् ।
 द्रुमाग्रपातोऽद्वदुःख्येतसो बभूव भूयो मुस्लाभिधातवत् ॥ ५
 पुरे च राष्ट्रे च गिरौ महीतले महोदधौ वा सुहृदां च सन्निधौ ।
 नभस्त्वले वा वरगर्भवेश्मनि न मुश्वति प्राकृतकर्म सर्वथा ॥ ६
 अयं विधिनिःप्रतिकारकारणः सुदुर्धरः किं करवाणि सांप्रतम् ।
 विचिन्त्य कर्माणि पुरा कृतानि बभूव राजा सुविशुद्धभावनः ॥ ७
 अनेकजात्यन्तरदुःखकारकान्कषायदोषान्विषमांस्तथाविधान् ।
 विशुद्धवाकायमनस्समाहितः कृताङ्गलिर्भक्तिजलार्द्मानसः ।
 नुनाव सामान्यविशेषसत्पर्दैर्वचोभिरव्याकुलितार्थशोभनैः ॥ ९
 गिरां पर्ति सद्यशसां च संनिधिं धियामधीशं दहनं स्वकर्मणाम् ।
 निसर्गशुद्धान्वयधर्मदर्शिनं जिनं नयामीष्टफलप्रदायिनम् ॥ १०

१ म स स्लात्यनु०. २ [सुतरां]. ३ म तरङ्गरङ्ग०. ४ क मुशलाभिं०.

विनष्टकर्मष्टकबुद्धिगोचरं
 समस्तबोध्येष्टहितार्थदर्शनम् ।
 सुदृष्टिचारित्रपथाधिनायकं
 न तोऽस्मि निर्वाणसुखैधितं जिनम् ॥ ११
 व्यपेतसर्वैषणधीरसद्वतं
 प्रशस्तशुक्लप्रविधूतदुर्नयम् ।
 अवासनिर्वाणसुखं निरामयं
 न तोऽस्मि तं विघ्नविनायकं जिनम् ॥ १२
 प्रशस्यतां दृष्टिपथानुरोधिनीं
 सुरूपतां चापि सुयौवनं वपुः ।
 सुविभ्रतो यस्य मनो मनोभुवा
 न नाशितं तं प्रणतोऽस्मि यत्नतः ॥ १३
 चतुर्विधामेत्य गतिं सुदुःखिताः
 स्मराग्निना ये निहताः शरीरिणः ।
 शमाम्भसा शान्तिमिताः स यस्य वै
 जिनो हि मेऽद्य प्रददातु सत्सुखम् ॥ १४
 शरीरिकायस्थितिसंगदर्शिनं
 निरञ्जनं निर्दुरितं निरामयम् ।
 अमोघविद्यं निरवद्ययोगिनं
 शरण्यतां यामि तमद्य शान्तये ॥ १५
 त्रिलोकबन्धुस्त्रिजगत्प्रजाहित-
 स्त्रिलोकचूडामणिरासकेवलः ।

त्रिकालदर्शी सुगतिं समेयिवा-

न्स मां जिनो रक्षतु दुःखसंकटात् ॥ १६

सजातयो रोगजरोरुमृत्यवो

यथाक्रमं लोकमिमं जिधांसवः ।

समुद्धृता येन चिराय निस्तुषाः

स मे विमुक्तिं विदधातु नक्रतः ॥ १७

निरस्तदुर्नीतिविशेषसाधनो

विशिष्टदिव्याष्टसहस्रलक्षणः ।

परीषहक्षेशविजिष्णुरद्य मां

स रक्षतु ग्राहमुखाज्जिनेभरः ॥ १८

इति स्तुवानं प्रविशुद्धचेतसं

स्थितं च सम्यज्जिनदेववर्त्मनि ।

स्तुतिप्रसादैधितपुण्यपौरुषं

ददर्श यक्षी सहसा नृपात्मजम् ॥ १९

निरीक्ष्य या तं भृशमापदि स्थितं

दयान्विता सा वसंदारितात्मकम् ।

अदृष्टरूपा शनकैः सुदर्शना

विमोचयां ग्राहभयाद्भूव ॥ २०

अपेतनक्रो बहिरेत्य तत्क्षणा-

त्सविस्मयः सर्वदिशो निरीक्ष्य च ।

न किञ्चिदैक्षिष्ठ विमोचकं परं

जिनप्रसादादिदमित्यमन्यत ॥ २१

इदं मनुष्यत्वमनेकजन्मतः
 सुलभ्य जात्यादिगुणांश्च सर्वथा ।
 प्रवच्छितो मोहब्लैरितः स्मृति-
 रितक्षिभिः शुद्धतमोऽस्मि नित्यशः ॥ २२
 तपश्च सज्ज्ञानमनूनदर्शनं
 त्रिरत्नमेतत्त्रिजगद्वितप्रदंभ् ।
 जिनप्रसादोदयतो भवे भवे
 तदस्तु मे संस्कृतिमोक्षकारणम् ॥ २३
 इति ब्रुवाणस्य महीपतेः शनै-
 निंशम्य देवी वचनं प्रसन्नवत् ।
 विसृज्य वैकारिकरूपमात्मनः
 स्थिता पुरस्ताद्विपरीक्षितुं युनः ॥ २४
 प्रलम्बहारोज्ज्वलहेमकुण्डला
 प्रफुल्मौलस्तवकावतंसिनी ।
 कराग्रसंधारितमाधवीलता
 वराङ्गना सस्मितमब्रवीद्रुचः ॥ २५
 विबोद्धुमिच्छाम्यहमागमः कुतः
 इह स्थितो वा किमु ते प्रयोजनम् ।
 क वा गमिष्यस्यमुतः प्रदेशा-
 अ चेद्विरोधोऽस्ति वदार्य मे स्फुटम् ॥ २६
 स तां निरीक्ष्याप्रतिरूपकारिणीं
 विचारयामास यथावदीश्वरः ।

इयं हि किं दिव्यवधूर्न मानुषी
 मनुष्यबेषा किमु राक्षसी स्वयम् ॥ २७
 निराश्रये शापदसेविते वने
 व्यपेतशङ्का विजने विलासिनी ।
 प्रवर्तितभूलिताननेन्दुना
 समेत्य मां पृच्छसि का नु कस्य वा ॥ २८
 निगृह्य भावं स्वमनीषितं हि सा
 हथान्यदुक्ता वचसाविशाङ्किनी ।
 व्यपेतपुण्या वसुधेश्वरात्मजा
 वसामि भूढेति जगाद देवता ॥ २९
 परिभ्रमन्ती कृतपूर्वधर्मतो
 भवन्तमद्राक्षमिहैव सांप्रतम् ।
 इतः प्रभृत्येव वशानुवर्तिनी
 भवेयमार्तामगतिं दृहाण माम् ॥ ३०
 अहं सुदुःखा प्रविनष्टचेतना
 निरास्पदा तत्पतिकारदुर्लभा ।
 त्वमेव भर्ता शरणं गतिश्च मे
 किमर्थमासे प्रतिवाक्यदुर्लभः ॥ ३१
 अनेकविज्ञानकलाविदग्धया
 तयाभिपृष्ठो बहुशः प्रगल्भया ।
 स्वकेशवस्त्राङ्गविरुक्षतां स्वयं
 समीक्ष्य तां किंचिदुचाच लज्जितः ॥ ३२

सुभाषितं खल्विदमात्मनो वचः
 प्रियं च तथ्यं च तथैव शोभते ।
 न मे गतिः काचिदपीह विद्यते
 गतिस्तवार्ये कथमस्मि कथ्यताम् ॥ ३३
 स्वयं प्रबुद्धः प्रतिबोधयेत्परान्
 परान् प्रतिष्ठापयते स्वयं स्थितः ।
 स्वयं न बुद्धस्त्वनवस्थितः कथं
 परानवस्थापनरोधनक्षमः ॥ ३४
 अथैवमुक्तानुजगाद सा गिरं
 न युज्यते ते प्रतिवाक्यमीद्वशम् ।
 निगद्यते कापुरुषैरकामिभिः
 प्रतीच्छ मां भक्तिमतीमुपाश्रिताम् ॥ ३५
 तयोदितं वाक्यमनङ्गसाधनं
 निशम्य सदौवनरूपवानपि ।
 स्वदारसंतोषरतिव्रतं महद्
 विचिन्त्य तामित्थमुवाच भूपतिः ॥ ३६
 अहं पुरा सर्वद्वशस्तु पादयोः
 प्रणम्य मूर्धा बहुमानतोऽहर्तः ।
 स्वदारसंतोषसमाहितं व्रतं
 गृहीतवानस्मि मुनीन्द्रसाक्षिकम् ॥ ३७
 न वा न काम्यस्मि न चास्म्यपौरुषो
 न कामिनी वैष्णवी सुगात्रि चिन्त्यताम् ।

१ म परां. २ [°बोधन°]. ३ क नोःपि.

गृहीतदारव्रतभूषणस्य मे
अयुक्तमेतद्वतलङ्घनं पुनः ॥ ३८

द्वद्वतत्वे स्थिरबुद्धितां तदा
विबुद्ध्य देवी परिहृष्टमानसा ।

स्थिता स्वरूपेण नभस्युवाच सा
परीक्षणायाकृतमृष्यतामिति ॥ ३९

सुदर्शनेनाप्रतिमेन केवलं
स्थिता वयं शीलगुणौर्विवर्जिताः ।

व्रतेन सद्वृष्टियथानुगामिना
स्थितो यतस्तेन सुराधिको भवान् ॥ ४०

स्वसा तवाहं नरदेव धर्मतो
गुरुर्महान्नो वरदत्तसन्मुनिः ।

तवास्तु तज्जद्रमिति प्रशस्य तं
नभस्त्थले सान्तरधाच्च तत्क्षणात् ॥ ४१

ततो विमुक्तो भयसंकटद्वया-
दितः किमु स्यात्करणीयमुत्तरम् ।

प्रयाम्यथासे किमु वा करोम्यह-
मितीहमानो गमनं व्यरोचत ॥ ४२

शनैः समुत्थाय ततो युवाधिपो
वरं वनं स्निग्धतरूपशोभितम् ।

गिरिस्त्रवच्छीतजलाविलान्तरे
ददर्श रम्यं पनसं फलाकुलम् ॥ ४३

१ म निबुध्य. २ क °मुष्यताम्, [परीक्षणायै]. ३ [°पथ°]. ४ क
शुचीणु (गुरु) रुनो.

स तैः फलैर्हेमसमानकोशकैः
 पितृन्प्रतपर्य प्रविनीय तु क्षुधाम् ।
 स्वकार्यसिद्धयै नृपतिर्वनान्तरा-
 त्ततः प्रतस्थे वरनागविक्रमः ॥ ४४
 नदीरगाधा हृदवारिकाकुला
 गिरीश्च निम्नोभ्रतदुर्गसंकटान् ।
 वनप्रदेशांस्तरुषण्डमण्डिता-
 न्भुजद्वितीयो विचचार सोद्यमः ॥ ४५
 विशीर्णवस्त्राः केपिलाङ्गमूर्धजाः
 प्रवृद्गण्डस्थलरोमभीषणाः ।
 सिताग्रदन्ता रुधिरोरुदृष्टयः
 पिपीलिकापङ्गिनिभा वनेचराः ॥ ४६
 परिभ्रमन्तं गिरिकन्दरोदरे
 यद्वच्छया तं ददृशः पुलिन्दकाः ।
 गृहीतदण्डासिशरासनात्मकाः
 प्रतर्जयन्तः परिविरे नृपम् ॥ ४७
 परीत्य सर्वे युगपनिगृह्णता-
 मितः कुतो मा चल दीनजीवित ।
 क गच्छसीति प्रतिगृह्ण निर्दया
 बबन्धुरुद्धान्तकुलाग्रपाणयः ॥ ४८
 लतां गले संपरिषज्य दुर्दमा
 मुहुस्तुदन्तो धनुरग्रकोटिभिः ।

१. क हृदवालकाकुला, [हृदवारिजाकुला]. २. म कपिलाम्°. ३. म पुलीन्दकाः.

अदण्डनार्हं सुकुमारमीथरं
 विनिन्युरात्मावसथाय दस्यवः ॥ ४९
 पुलीन्द्रपल्लीं द्विपदन्तसंबृतां
 मृगास्थिमांसोरुकलेवराञ्चिताम् ।
 वसान्त्रवल्लुरविकीर्णमण्डपां
 प्रवेशयामासुरनिष्टगन्धिनीम् ॥ ५०
 दुरात्मभिव्याधजनैरभिद्रुतः
 सबन्धनो वेदनया विरुक्षितः ।
 जुगुप्सनीये नयनाप्रिये गृहे
 स्मरन्न शेते स्वपुराकृतां क्रियाम् ॥ ५१
 कुमन्त्रिणा मन्त्रमुखेन वैरिणा
 समर्पितं प्राप्य तुरङ्गमाधमम् ।
 इमामवस्थामनुभूय सांप्रतं
 क वा गमिष्यामि कृतान्तं कथ्यताम् ॥ ५२
 पुरा मया किं तुं कृतं ह्यजानता
 विपाकतिक्तं हि दुरीहितात्मना ।
 अनेकदुःखार्णववीचिसंकटा-
 निवृत्तिरद्यापि न मेऽस्ति पापिनः ॥ ५३
 वियोगचिन्तापरिखिन्वचेतस-
 स्ततश्च शार्दूलभयाद्विनिच्युतः ।
 जलाशयान्निर्गमितस्य मे पुनः
 इदं महत्कष्टतमं ततोऽभवत् ॥ ५४

१ [किं तु]. २ [विनिश्चयुतः]. ३ क पुनविदं, [पुनस्त्वदं].

अहो दुरन्ता दुरज्ञाष्टिताः क्रिया
 अवश्यभाव्यास्त्वविचार्यवीर्यकाः ।
 अवन्ध्यरूपाश्र विपाकदुस्सहा
 इति प्रचिन्त्यात्मनि मौनमादधौ ॥ ५५
 तमोगृहे पूतिकर्चर्मसंवृते
 बहुप्रकारे क्रिमितीवदर्शके ।
 संमार्जनादिप्रतिकर्मवजिंते
 महीतले शीतलवायुबाधने ॥ ५६
 क्षुधापमानाङ्गविबन्धपीडनै-
 रनिष्टगन्धद्रवणेऽप्रियेक्षणैः ।
 अनात्मवश्यस्य सहस्रसंगुणा
 गता निशा सा बहुदुःखचिन्तया ॥ ५७
 ततः प्रभाते च कुसुम्भभृत्यका
 महीपतिं तं कलुषान्तरात्मकाः ।
 प्रगृह्य याता वनदेवतागृहं
 द्विजा ऋतुं छाँगमिव प्रहिंसितुम् ॥ ५८
 तदैव कौसुम्भमेयवीर्यकं
 वनं प्रयान्तं मृगयाभिकाङ्क्षया ।
 उदग्रकोपश्चरणप्रमर्दना-
 हृदंश दंष्ट्रोग्रविषो भुजंगमः ॥ ५९
 स तेन दष्टः क्षणमात्रतः पुनः
 पपात भूमौ विषवेगमूर्च्छितः ।

१ [°दशके]. २ [ऋतुञ्छाँगमिव].

विमोहितासुं प्रसमीक्ष्य बन्धवाः
पितुः सकाशं ह्यभिनिन्युरावृताः ॥ ६०

गतासु मुद्रीक्ष्य स तं वनेश्वरो
यथा वचार्या गृहमीक्षितुं गतः ।

तमासितं तत्र नृपं सबन्धनं
समीक्ष्य पपच्छ विषप्रणाशनम् ॥ ६१

पुलीन्द्रनाथेन स चोदितो भृशं
करोम्य हं निर्विषमित्यभाषत ।

तदैव तुष्टाः परिमुच्य बन्धनं
कुरु प्रसादं त्वमिहात्मसूनवे ॥ ६२

ततो नृपो मन्त्रसुरस्कृतैः पदै-
महर्षियोगीश्वरसाधुसाधितैः ।

जिनेश्वराभिष्टवमिश्रिताम्बुधिः
सिषेच तस्मिन्विषदोषहारिभिः ॥ ६३

यथा यथा मन्त्रितवारिविन्दुभिः
प्रसेचितः कुम्भमुखात्परिसूतैः ।

तथा तथा निर्विषतामुपेयुंवा-
न्प्रसन्नचेताः प्रकृतिं ययौ पुनः ॥ ६४

ततः कुसुम्पमुखाः पुलीन्द्रकाः
कराङ्गुलिभ्रामणविस्मितेक्षणाः ।

महापराधोऽकुशलात्मभिः कृतः
क्षमस्व नाशेति यथाचिरे भृशम् ॥ ६५

१ [यथामन्तर्यामगृह०]. २ कुलिन्द०. ३ [°मुपेयिवान्].

प्रहृष्य भूयः कटकादिभूषणा-
 न्विचित्रवस्त्राणि च संपदाय ते ।
 वरान्मेतत्त्वं योग्यमिष्यतां
 श्रमं व्यपोह्य ऋग्यतः प्रयास्यसि ॥ ६६
 तमूचिवान्नोदनकार्यमस्ति मे
 न माल्यगन्धाम्बरभूषणादिभिः ।
 महापथं दर्शय देशगामिनं
 विमुच्यतां लघ्वभियाम्यविघ्नतः ॥ ६७
 ततः पुलिन्दाधिपतेश्च शासना-
 न्हैः सुदूरं गमितो नरेश्वरः ।
 प्रदर्श्य मार्गान्वहुदेशगामिनः
 पुनर्निवृत्ता वनगोचरास्तदा ॥ ६८
 गतेषु तेषु स्वकृतानुरूपतां
 विचिन्त्य सम्यग्वहुशो नराधिपः ।
 स्वदेशयानं प्रति किं विशेषतौ
 ब्रतान्यदेशाटनमिष्यते क्षमः ॥ ६९
 किमत्र चिन्त्यं कुशलानुबन्धि य-
 त्तदा त्वयुक्तागतिसिद्धिकारकम् ।
 यथा परैर्नो परिभूयते पुन-
 स्तथा हि कार्यं स्वहिताभिलाषिणा ॥ ७०
 महापदं प्राप्य नरोत्तमः पुन-
 ने चैच्छदात्मप्रियवन्धुदर्शनम् ।

१ क वराङ्गमेतत्. २ क विशिष्यतो. ३ म कुशलानुबन्धे. ४ म यदा त्वयुत्

नराधमः स्त्रीधनपानवर्जितः

स बन्धुसंगं कृपणो हि वाञ्छति ॥ ७१

यथैव राज्यादपनीय तत्क्षणा-

चकार मां निर्विभवं पुराकृतम् ।

तथैव राज्यं सुकृतं यदस्ति चे-

त्तदैव मां स्थापयतु स्वकालतः ॥ ७२

इमामवस्थामनुभूय यद्यहं

व्रजामि चेद्धन्धुसकाशमाशया ।

भवाम्यरीणां परिहासकारणं

स्वबन्धुमित्रेष्टजनातिशोचनः ॥ ७३

न चोभयं मे परदेशदर्शने

भविष्यतीति स्वमतिं विधाय सः ।

महापथेनाप्रतिमाभपौरुष-

स्ततः प्रतस्थे स्वमतानुसिद्धये ॥ ७४

खरान्प्रदेशान्स्थलनिम्ननिर्जलान्

गिरीन्द्रीः काननकक्षकन्दरान् ।

अतीत्य सूर्यास्तमनेऽह्निपोपरि

ह्यशेत कायोपसृतिं विचिन्तयन् ॥ ७५

पुनः प्रभाते तरुतोऽवतीर्य तं

प्रयान्तमध्वानमवेक्ष्य सार्थिकाः ।

प्रवाध्य निर्भर्त्स्य निरुद्ध्य निर्दया

उपेत्य प्रच्छुरथागति गतिम् ॥ ७६

१ क श्रीधन०. २ [राज्ये...चेत्तदव]. ३ क कायोनुसृति, [कायोपस्थिति].

कव यासि किं पश्यसि किं प्रयोजनं
 क वेश्वरो वा क च तस्य नाम किम् ।
 कियद्वलं वा कतियोजने स्थितं
 वदेति संगृह्य बबन्धुरीश्वरम् ॥ ७७
 अथागतः सार्थपरीक्षणाय चे-
 त्परीक्ष्यतां साधु परीक्ष्य चारिकः ।
 प्रवालमुक्तामणिरूप्यकाञ्चनै-
 रयं भृतः सार्थ इतो निगद्यताम् ॥ ७८
 न चारिकोऽहं न च वित्तमार्गणो
 न दुष्टबुद्धिर्न च चौर्यतत्परः ।
 न कस्यचित्प्रेष्यजनो भवाम्यहं
 भ्रमामि निःकेवलमित्युवाच सः ॥ ७९
 वयं न विद्वोऽर्थपतिः प्रमाणको
 गुणागुणान्वेषणतत्परायणः ।
 स एव जानाति यदत्र युक्तिमा-
 निति ब्रुवाणाः पतये प्रणिन्यिरे ॥ ८०
 सबन्धनं चारुसमग्रयौवनं
 सुलक्षणव्यञ्जनलक्ष्मविग्रहम् ।
 समीक्ष्य सार्थाधिपतिर्न तस्करो
 विमुच्यतां लघ्वयमित्युवाच सः ॥ ८१
 नरेन्द्रपुत्रः स्वयमेव वा नृपः
 शरीरचार्वाकृतिसौम्यदर्शनः ।

ै क नः केषलं. २ म °लक्ष्म, [°लक्ष्य].

कथं निवापापदमासवानयं
स सार्थनाथः परिपृच्छति स्फुटम् ॥ ८२
कुतस्तवायातिरितः क गच्छसि
पिता च माता च सुहृजनः क ते ।
श्रुतं च गोत्रं चरणं च नाम किं
न चेद्विरोधो वद वत्स पृच्छतः ॥ ८३
स एवमुक्तः प्रविचक्षणो नृपः
परीक्ष्य पूर्वापरकार्यमब्रवीत् ।
इयं त्ववस्था कथयत्ययत्नतः
किमेतया संकथया विमुच्यताम् ॥ ८४
निशम्य तद्वाक्यमुदारसौष्ठुवं
समूचिवान्ससंदि सार्थनायकः ।
अहो विशुद्धान्वयतास्य पश्यतो
न विस्मयं गच्छति नैव कुप्यति ॥ ८५
इति प्रशंसन्गुणरूपसंपदं^१
निरीक्ष्य च क्षामकपोलनेत्रताम् ।
करेण हस्तं प्रतिगृह्य दक्षिणं
स नीतिवानात्मनिवासमादरात् ॥ ८६
प्रदाप्य पाद्यं वणिजां पतिस्ततो
हितं वचः श्रोत्रसुखं निगद्य च ।
वरासने वेत्रमये निवेश्य तं
सतैलसंवाहनतामकारयत् ॥ ८७

१ [पश्यत]. २ म ^१संमदं. ३ क निगद्यत । वरासने वेत्रमवावेद्यसि निवेश्य संवाहनतामकारयत् ॥.

दयासंप्रयुक्तो वणिकश्रेणिनाथः

शशासात्मभत्यं लघु स्नापयेति ।

यथेष्टुं वरान्नं चतुर्भिस्त्वहोभि-

रभुद्दन्ताग्रतः श्रोष्टिनः संनिविष्टः ॥ ८८

सुगन्धं सुमाल्यं वरं वस्त्रयुग्मं

प्रदायात्मशक्त्या क्षमस्वेत्यवोचत् ।

भवद्दिः सहैवागमिष्यामि ताव-

दिति प्राह सोऽप्येवमस्त्वत्युवाच ॥ ८९

इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।

स्फुटशब्दर्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥

सागरवृद्धिसंदर्शनो नाम

त्रयोदशैः सर्गः ।

[चतुर्दशः सर्गः]

एकाकिनारण्यपथेन याता प्राप्तानि दुःखानि सुदुस्सहानि ।

इति प्रसंधार्य निवृत्त्यानः सार्थाधिपेनैव सहोपविष्टः ॥ १

प्रगृह्ण मानाकृतिचारुवेषान्विभूष्य माल्याम्बरभूषणानि ।

भुक्त्वा यथेष्टुं वणिजस्तु गोष्ठीनिष्टुः संमध्यासत संकथाभिः ॥ २

सार्थेन सर्वदिमतार्थिनस्ते सहागता ये नटनर्तकाद्याः ।

वागङ्गचेष्टाकृतिकौशलं स्वं प्रारेभिरे दर्शयितुं यथावत् ॥ ३

गायन्ति गीतानि मनोहराणि नृत्यन्ति नृत्यान्यपरे विधिज्ञाः ।

वाद्यानि वीणामुरजादिकानि शिक्षानुपूर्वं प्रतिवादयन्ति ॥ ४

१ [त्रयोदशः]. २ म गोष्टे निष्टुः. ३ [समध्यासत]. ४ म °मुरजा°.

प्रहाससंलापविलासवन्ति रसानुविद्वानि सुकल्पितानि ।
 लोकप्रवृत्तानि कथान्तरेषु भाण्डाविचित्राणि विलम्बयन्ति ॥ ५
 तदैव दिग्रक्षणतत्पराक्षाः पुलिन्दसंदर्शनतो विभीताः ।
 अभ्येत्य तूर्ण वणिजां समूहे इत्थं पुनः सागरवृद्धिमूर्च्छः ॥ ६
 महाबलौ क्रूरतमावस्थायौ कालो महाकाल इति प्रतीतौ ।
 पुलिन्दकानां त्रिचतुर्सहस्रैराजगमतुर्नाथ हितं कुरुष्व ॥ ७
 दिग्रक्षकाणां वचनं निशम्य आहूय युद्धाय नरान्सुभृत्यान् ।
 वाग्दानमानैरभिसंपूज्य संनद्धतेति प्रशशास तूर्णम् ॥ ८
 संनद्धतस्तान्नुपतिः समीक्ष्य श्रुत्वातितूर्ण पृतनाद्रयस्य ।
 सर्वेषां खड्गवरिष्ठमेकं श्रेष्ठिन्ममापि त्वमुपानयस्व ॥ ९
 बालः कृशङ्गः सुकुमारकोऽसि सुदुर्धरं युद्धमुखं हि भद्र ।
 किमायुधेनास्त्व मयैव सार्थमित्युक्तवान्सार्थपतिः कुमारम् ॥ १०
 अथानयोर्व्याधवणिग्नवजिन्योर्विद्युद्गुप्तश्चलशस्त्रवत्योः ।
 शृङ्गाण्यदभ्राः पटहाश शङ्खा उद्देजयन्तोऽतिभृशं विनेदुः ॥ ११
 पुलिन्दनाथौ बृहदुग्रीयौ द्विषट्सहस्रेण बलेन साकम् ।
 शरोरुवर्षं प्रतिवर्षयन्तौ प्रत्युद्धतौ वन्यगजेन्द्रलीलौ ॥ १२
 प्रत्यागतांस्तान्वणिजः समीक्ष्य पुलिन्दसेना ज्वलदग्रिकल्पा ।
 धनुर्धरास्तीक्ष्णमुखैः पृष्ठकैरमोघपातैर्विधुर्विचित्रैः ॥ १३
 क्रोधोद्धता मानमदावलिप्ता लोभाभिभूता दृढबद्धवैराः ।
 सुबद्धकक्षाः पगृहीतशस्त्राः परस्परं जघ्नुरुपेत्य शूराः ॥ १४
 दण्डाभिघातैः क्षपणैः प्रहारैः संभिण्डमालैर्मुसलैस्त्रिशूलैः ।
 कुनैश्च टङ्कैर्गुरुभिर्गदाभिः सतोमरैः शक्त्यसिमुद्धरैस्तु ॥ १५

१ [भाण्डानि चित्राणि विडम्बयन्ति]. २ म श्रेष्ठिन्यामि. ३ क °वस्त्राः.
४ [सभिन्दपालैँ].

विदार्यः वक्राणि विभिद्य कायान्वितुद्य नेत्राणि विकृत्य बाहून् ।
शिरांसि चिच्छिद्य परस्परस्य निपातयां भूमितले बभूवुः ॥ १६

'शिरांसि निस्तीक्ष्णतमैरकुन्तै-

रमर्षमाणास्तु वणिकपुलिन्दाः ।

अन्योन्यमर्माणि विचिच्छिदुस्ते

प्राणाञ्जहुः केचन मूर्च्छिताश्च ॥ १७

वक्षस्मु तेषां समरप्रियाणां स्ववन्महाशोणिततोयधाराः ।

रेजुर्भृशं क्रोधबलेक्षणानां तटे गिरीणामिव गैरिकाम्भः ॥ १८

स संप्रहारो रणकर्कशानां वीरव्रणालङ्कृतभासुराणाम् ।

मत्तद्विषेन्द्रोपमविक्रमाणां पर्यन्तसंघट्टसमो बभूव ॥ १९

एवं प्रवृत्ते समरेऽतिघोरे पादाभिघातप्रभवै रजोभिः ।

संछादितं खं धरणीतलं च सैन्यद्रयं प्रापददृश्यरूपम् ॥ २०

महाहवः शोणितचन्दनाक्तो बँहुप्रकाराङ्गदचारुलीलः ।

क्षरद्विलोलान्तनिबद्धमालः सन्ध्याम्बुदाकारवपुर्वभार ॥ २१

अँसूक्क्रिमिश्रोणिरुजांसि^१ भूयस्तान्येव सिन्धूरवपूर्षि बञ्चुः ।

ते चापि योधा द्विगुणाभिरोषाः परस्परं प्रेक्ष्य जिहिंसुरुग्राः ॥ २२

पुलिन्दकानां वणिजां च योरं मुहूर्तमेवं समयुद्धमासीत् ।

ततः पुलिन्दैरभिभूयमानाः परावभूवुर्वणिजो भयार्ताः ॥ २३

मृष्टान्नपानानि हि योषितश्च भोगांश्च चित्रान्समनुस्मरन्तः ।

न्यायाजितक्षेमधना वयं तु न योधुमीशा इति ते प्रदुदुवुः ॥ २४

विज्ञाय भङ्गं वणिजां तदानीं पुलिन्दसेना प्रबला सती सा ।

सार्थं कृतार्थं विदितार्थसंख्यमितोऽमुतः प्रारभत प्रलोमुम् ॥ २५

१ [शरासिभिस्तीक्ष्णतमैश्च कुन्तैः]. २ म °तमैरकण्ठै°. ३ क °द्विषेन्द्रोत्तम°.
४ म बाहु°. ५ क अस्त्रकृमि°. ६ [°श्रेणिरजांसि].

विद्रावयन्ती वणिजां प्रशुत्वं समन्ततः प्राय पुलिन्दसेना ।
 तां राजपुत्रः प्रसर्मीक्ष्य शूरश्चुक्षोंपे शार्दूल इवातिधृष्टः ॥ २६
 हत्वा प्रदस्युन्समरागतांस्तान्विणगजनं तं परिपालयामि ।
 अहोस्त्रिवत्रैव च दस्युसंघैर्हतो मृतः स्वर्गमितः प्रयामि ॥ २७
 एवं विनिश्चित्य पुलिन्दमेकं पादप्रहारेण निपात्य भूमौ ।
 सखेटकं खड्डमवार्यवीर्यः प्रसह्य जग्राह मृगेन्द्रसत्त्वः ॥ २८
 उद्धाम्य खड्डं विधिवत्क्रियावान् प्रविश्य मध्ये शरसंकटस्य ।
 शरप्रपातान्यपि वश्चयित्वा पुलिन्दनाथात्मजमाप तूर्णम् ॥ २९
 पूर्वं त्वमेव प्रहरस्य तावत्पश्यामि पश्चाद्वलमावयोस्तु ।
 इत्येवमुक्तो धृतशस्त्रपाणिस्तस्यौ पुरस्ताद्द्रुतमुग्रवीर्यः ॥ ३०
 निरुद्ध्यमानः क्षितिपात्मजेन पुलिन्दनाथस्य सुतोऽतिमुग्धः ।
 नरेश्वरं तं प्रजहार रोषादीशक्षितो वन्य इव द्विपेन्द्रः ॥ ३१
 नैष प्रहारोऽसुनिपातदक्षः क्षमस्व मे सांप्रतमेकघातम् ।
 इति ब्रुवन्खेटकखड्डहस्तः क्रोधोद्धतो वल्गनमाचकार ॥ ३२
 शिक्षाबलेनात्मपराक्रमेण स तं प्रहारं प्रतिवार्य वीरः ।
 प्रहारमेकं प्रददावमोघं येनाहतोऽसून्प्रजहौ स कालः ॥ ३३
 कालस्य कालप्रतिमः पिता॒सौ लोके महाकाल इति प्रतीतः ।
 हतं सुतं प्रेक्ष्य रुजा प्रदीपः संमाप्तकालः स्वयमाययौ सः ॥ ३४
 हत्वा सुतं मे कुनु गच्छासि त्वं यद्यस्ति शौर्यं तव तिष्ठ तिष्ठ ।
 त्वामन्तकप्राभृतिकेऽतियुक्तो भवेयमद्यैव हि मा वरिष्वं ॥ ३५
 वैर्वस्वते मे न च भक्तिरस्ति न चाप्यहं त्वद्वच्चनाद्वजामि ।
 त्वं भक्तिमान्योग्यतमश्च तस्मैत्वां प्रापयामीति जगाद् राजा ॥ ३६

१ [प्राप]. २ [चुक्षोभ]. ३ क समास्त°. ४ [त्वमन्तकप्राभृतके°].
 ५ [भवेदमद्यैव...वरिष्व]. ६ म वैवस्वतो. ७ क तद्वच्चनाद्.

किमत्र चित्रैर्वचनैर्निरर्थकैर्योत्स्ये प्रतीक्षस्व हि मा चलस्त्वम् ।
 इत्याश्रितो योऽुमना युवेन्द्रः सोऽप्यागतस्तीव्रनिबद्धवैरः ॥३७
 परस्परोदश्चनकुञ्चिताक्षौ परस्परच्छिद्रपरायणौ तौ ।
 परस्पराघातविवृद्धरागौ परस्परं जग्नतुरुग्रकोपौ ॥ ३८
 पुलिन्दनाथस्य तु शस्त्रपातं प्रैपञ्चयत्यात्मकलाबलेन ।
 नरेन्द्रपुत्रस्य दृढप्रहारस्तस्याङ्गभङ्गं बहुशश्चकार ॥ ३९
 ऊर्ध्वप्रहारेऽवनतिं प्रपेदे अधःप्रहारे पुनरुत्पपात ।
 समप्रहारे विययौ च पार्खं रक्ष शिक्षागुणतः स्वगात्रम् ॥ ४०
 उत्कृष्य खड्गं विधिनोपसृत्यास्थानं समास्थाय रुषा परीतः ।
 वामांसमाक्रम्य जघान तस्य मत्तद्विपं सिंहशिर्यथैव ॥ ४१
 लब्धप्रहारः क्षितिपात्मजेन विभ्रान्तदृष्टिः स पुलिन्दनाथः ।
 स्फुरत्तनुर्भूमितले पपात दवाग्निनात्युच्छ्रितशालकल्पः ॥ ४२
 शेषांश्च दस्युन्प्रतियोदुकामान् जघान तांस्तानसमरे युवेन्द्रः ।
 पलायमानानपरान्निरुद्ध्य चिच्छेद तेषां करकर्णनासम् ॥ ४३
 वृपात्मजेन प्रतिहःयमानास्तमेव केचिच्छरणं प्रजग्मुः ।
 विन्यस्य वक्रे त्वपरे तृणानि जिजीवितांशाः प्रयुरुर्भयार्ताः ॥४४
 हते॒श्वरे सापि पुलिन्दसेना दुद्राव शस्त्राणि विसृज्य दूरात् ।
 नरेश्वरोद्भादितश्चनुपक्षः पुनर्निवृत्तः समराजिराय ॥ ४५
 रणावनौ सिंहरवानुकारी क्षेमप्रशंसी पटहो ननर्द ।
 प्रत्यागतास्ते पटहस्वनेन प्रच्छुरन्योन्यमाविघ्नतां च ॥ ४६
 विघाटिता रत्नसुवर्णपेटा भिन्नानि भास्वन्माणिभाजनानि ।
 दुकूलकौशेयकचामराणां भारान्विशीर्णानथ वीक्षमाणः ॥ ४७

१ [इत्यास्थितो]. २ म पुलीन्द्र०. २ [प्रवञ्चयत्यात्म०]. ३ म उत्कृष्य.
 ४ म °शालि०. ५ [विजीविताशाः]. ६ [हते॒श्वरा]. ७ [नरेश्वरोद्भादित०].

तत्रावनीन्द्रं परिमूर्च्छिताशं व्रणस्त्रवच्छोणितलिपगात्रम् ।
 ईषच्छ्वसन्तं हि निमीलिताक्षं रणाजिरे सार्थपतिस्त्वपश्यत् ॥४८
 शरासिपात्रणमण्डिताङ्गः श्रमाभिभूतो विनिपत्य भूमौ ।
 रराज राजा कमनीयरूपो लाक्षारसक्लिन्न इवेन्द्रकेतुः ॥ ४९
 हाँ वत्स किं जातवदार्यवर्य किं मौनमास्थाय सुखोषितोऽसि ।
 उत्तिष्ठ भद्राशु कुरु प्रसादं प्रदेहि नाथ प्रतिवाक्यमेहि ॥ ५०
 बालोऽसहायो बलवर्जितश्च सकर्पटोऽजग्निथ शत्रुसैन्यम् ।
 युवा समर्थः स्वपदे स्थितश्चेत्स शासनः शान्तवधाः प्रति स्यात् ॥५१
 अयत्नतस्त्वं पुनराधमर्ण्य प्रसव्य यातः कुशलोऽस्यतीव ।
 कृतोपकारः प्रतिकारहीनो गतासवे किं करवाणि ते हि ॥ ५२
 नैवाब्रवीस्त्वं कुलबन्धुदेशान्स्मृत्वापि यांस्तुष्टुमना ब्रुवेयम् ।
 किं वा सदेशं न गतोऽसि भद्र इति ब्रुवन्विप्रललाप सार्थी ॥ ५३
 वणिग्जनानां करमर्शनेन शीतोदकैश्चन्दनवारिभिश्च ।
 आप्यायमानो व्यजनानिलैश्च उन्मील्य नेत्रद्रव्यमालुलोके ॥ ५४
 ततो मुहूर्तात्प्रतिलब्धसंज्ञः शैनैः समुत्थाय कुमारवर्यः ।
 प्रभाषमाणो विगतश्रमस्सन् सुखं निषण्णः परिचारितस्तैः ॥ ५५
 आश्र्यमस्मान्न च विद्यतेऽन्यज्जीवो गतोऽस्य प्रतिसंनिवृत्तः ।
 इति ब्रुवाणा वणिजां प्रधानाः सविस्मयाः संतुतुपुः समेताः ॥ ५६
 सार्थाधिपो तद्विदि जातहर्षः कृतस्य स प्रत्युपकारमिच्छन् ।
 सद्रललक्षं च सुवर्णकोटी ददौ नृपायाप्रतिपौरुषाय ॥ ५७
 आनीतमर्थं प्रविलोक्य धीमान्नैवागमद्विस्मयमाभिजांतः ।
 तस्यानुमानं स पुनर्विदित्वा दत्स्व त्वमिष्टेभ्य इतीत्थमूरुः ॥ ५८

१ [हा वत्स जाते तव किं वदार्य] , २ [°जात्यः] .

तद्राक्षतः सार्थमलुब्धबुद्धिः शशास सर्वं क्रियते तथेति ।
 आज्ञापिताः स्वाङ्गलिभिर्दिरदा नटा विटाश्रादधुरादरेण ॥ ५९
 तं स्लापयित्वा व्रणशोणिताक्तं क्षिंसौषधानि व्रणरोपणानि ।
 शमं प्रचक्रुः कतिभिर्दिनैश्च स्वाम्याज्ञया ते भिषजां वरिष्ठाः ॥ ६०
 ततः प्रशस्ते दिवसे तु सार्थः संप्रस्थितो राष्ट्रमभिप्रवेष्टुम् ।
 नरेश्वरः सागरवृद्धिनैव शनैः प्रयातः शिविकाधिरूद्धः ॥ ६१
 नटा विटाः कार्पटिका भटाश्र सार्थानुयाता द्विजजातयश्च ।
 देशान्तरं प्राप्य समान्तरेषु ते तस्य कीर्तिं प्रथयांबभूवुः ॥ ६२
 द्विषद्सहस्रं तु पुलिन्दवृन्दं जित्वा रणे मत्तकरीन्द्रलीलः ।
 कश्चिन्द्रटः सार्थमथैक एव वने ररक्षेति यशस्तान ॥ ६३
 ग्रामेषु राष्ट्रेषु पुरेषु चैव विश्रम्य सार्थः खलु तत्र तत्र ।
 शनैः प्रपेद स्वपुरुं पुराणं निर्विघ्रसंपादितभाण्डसारः ॥ ६४
 कृतार्थकार्यं प्रतिसंनिवृत्तं निशम्य ते सागरवृद्धिवृद्धम् ।
 स्त्रियः पुमांसश्च सवालवृद्धाः प्रत्युद्ययुर्नागरिकाः समग्राः ॥ ६५
 स्त्रीभिः समं सागरवृद्धपत्नी कृतार्थयात्रं स्वपतिं दिव्यक्षुः ।
 कश्चिन्द्रटं ख्यातयशोवितानं पूर्वं तमालोकितुमाजगाम ॥ ६६
 तां श्रेष्ठिपत्नीं निरवद्यभावां कश्चिन्द्रटो वीक्ष्य संसंभ्रमः सन् ।
 प्रत्युत्थितो मातृसमामभीप्सन् सौ चापि मेने स्वसुताधिकं तम् ॥ ६७
 ततः स्वभर्तारमुपेत्य साध्वी प्रहृष्टभावा विनयं नियुज्य ।
 चिरप्रवासागतमादरेण प्रच्छ किंचित्कुशलं प्रियस्य ॥ ६८
 स्वबन्धुमित्राणि च पुत्रदारान्सनागरान्स्थानविशेषयुक्तान् ।
 समानवृत्तान्वयवृत्तशीलान्समीक्ष्य तान्कौशलमभ्यपृच्छत् ॥ ६९

१ [क्रियतां]. २ [क्षिंसौषधानि]. इ क सा चाभिमेने.

पुलिंदसेनागमनिर्गमी च कालोरुकालद्रव्यधर्मकालम् ।
 कश्चिद्भट्टश्रापतिपौरुषं च सर्वं तथाचष्ट यथानुवृत्तम् ॥ ७०
 अष्टादशश्रेणिगणप्रधानैः संपूजितः सागरवृद्धिना च ।
 कश्चिद्भट्टश्रालविशालवेषो महाविभूत्या नगरं विवेश ॥ ७१
 श्रेष्ठी ततः स्वं भवनं प्रविश्य व्याहृत्य कश्चिद्भट्टमादरेण ।
 पृथक्पृथग्द्रव्यमनेकरूपं तत्ततु तस्मै कथर्याबभूव ॥ ७२
 इमाः स्वसारस्त्वनुजास्तवेमे^१ इयं हि माता स्वजनस्तवायम् ।
 इदं धनं पुत्रकमित्रवर्गः सर्वं त्वदायैत्तमितः प्रविष्टि ॥ ७३
 इत्येवमर्थाधिपतिस्तमर्थं सजीबनिर्जीवमयत्नसिद्धम् ।
 सदर्थ्य भूयः स्वजनैः समेतः सुखं कृतार्थः स्वगृहेऽभ्यवासीत् ॥ ७४
 अथान्यदा श्रेणिगणप्रधानाः संमन्त्र्य वृद्धैरनुकूलवृत्तैः ।
 अभेत्यं पत्न्या सह सोपचारं कश्चिद्भट्टं कान्त्वयेत्थमूलुः ॥ ७५
 अस्मिन्पुरे ये वापिजः प्रधाना अनेककोव्यर्थविशेषवन्तः ।
 त्वदूपविज्ञानगुणान्समीक्ष्य प्रदातुमिच्छन्ति सुताः प्रतीच्छुः ॥ ७६
 अपेतभाग्यस्थिरसत्त्वसारो वने भ्रमस्त्वां कथमप्यपश्यन् ।
 तदेव पर्याप्तमितः किमु स्यादित्यूचिवान्सागरवृद्धये सः ॥ ७७
 श्रेष्ठी पुनः सर्वमिदं तवैव निश्चाङ्कितो भुडक्षव दधतस्वं पुत्र ।
 यथेच्छसि त्वं तु तथा भजस्व मा मैव इत्थं वद इत्यवोचत् ॥ ७८
 इत्यौचिषि श्रेष्ठिनि सोऽभ्यवोचद्यथेष्टचेष्टः सह शिष्टगोष्टया ।
 वसाम्यथैवं यदि रोचते ते किं दारकार्येण विमुश्यामि ॥ ७९

१ म पुलीन्द०. २ क तनुजास्तयेमे. ३ म तदायत्तं. ४ [स्वगृहेऽभ्यवासीत्].
 ५ म अभीत्य, [अभ्येत्य]. ६ म कान्त नयेत्थ०. ७ [प्रतीच्छ]. ८ क
 अपेत्य भाग०, [भागयोऽस्थिर०]. ९ [अपश्यम्]. १० म तदस्त्व. ११ म
 इत्याचिषि. १२ [विवक्षयामि].

स तस्य चित्तानुगतं विदित्वा तथा तथास्तामिति संप्रधार्य ।
 प्रियाणि सार्थाधिपतिनिंगद्य स्वधर्मकर्माभिरतो बभूव ॥ ८०
 अथान्यदोद्यानवनं प्रयाता वणिकसुताः शिष्टघटाश्च सर्वाः ।
 संमन्त्र्य कश्चिद्भट्टमादरेण श्रेष्ठी भवेत्युच्चुरुदारवृत्तम् ॥ ८१
 नरेन्द्रपुत्रोऽहमभूवमादौ युवावनीन्द्रस्तु युवत्वकाले ।
 प्रवर्धमानो वणिजां प्रभुत्वं पर्यासमेतावदिहात्मवदभ्यः ॥ ८२
 प्रवर्धमानः किल भूमिपालः श्रेष्ठित्वमाज्ञाति च लोकवादः ।
 स एष वादो मयि सत्यभूत आप्नोति नामानि बहूनि जीवः ॥ ८३
 प्रीतिं त्वमीषां न निवारयामि एतच्च पश्यामि वणिकप्रभुत्वम् ।
 इति स्मरन्नात्मपुराकृतानि तेषामनुज्ञाय बभूव तृष्णीम् ॥ ८४
 कश्चिद्भट्टस्याप्रतिपौरुषस्य विज्ञाय चित्तं ललितानगर्याम् ।
 वणिकसुताः शिष्टघटाः प्रपद्य श्रेष्ठित्वपद्दं हि बबन्धुरिष्टाः ॥ ८५
 वणिकप्रभुत्वेन विराजमानं कश्चिद्भट्टं कान्ततमं गुणौघैः ।
 समीक्षमाणाः पुरवासिनस्ते इदं समूच्चुः स्वमनोऽभिलाषम् ॥ ८६
 पूर्वं तु पुण्योपचितान्मनुष्यान्स्वयं धनः श्रीमुखताः श्रयन्ते ।
 वियोगधीर्दुःखविपत्तिशोकाः श्रयन्ति मर्त्यानकृतः पुमांस्तु (?) ॥
 कुतो गतो व्याधगणान्बभञ्ज्ञे कुतो गतः श्रेष्ठिसुतत्वमाप ।
 कुतो गतः सार्थपतिर्बभूव कुतो गतः सर्वजनैः प्रकथ्यः ॥ ८८
 कश्चिद्भटः सार्थपतिः सदारः पुत्राश्च पौत्रा बहुबन्धुर्वर्गः ।
 पुरोपवासवतपुण्यपुण्यं सहार्जयित्वा तदिहागताः स्युः ॥ ८९
 रूपं वपुः शौर्यमथापि शीलं शुचित्वमारोग्यमुदारबुद्धिम् ।
 जगज्जनाक्षिप्रियतापदुत्वं कश्चिद्भटः केन सुलब्धवान्स्यात् ॥ ९०

१ म श्रेष्ठित्वमासोऽपि. २ [धनस्त्रीसुखदाः]. ३ म °गणाद्वभञ्ज. ४ [°जन्य°].

पुरा त्वनेनाध्युषितं पुरं यत्स्मिन्मनुष्या न च भाग्यवन्तः ।
 यस्मिन्पुरेऽनेन वसन्ति सार्थं ते भाग्यवन्तस्त्वति केचिदूचुः ॥
 गुणाधिकेनाप्रतिपौरुषेण यदुज्जितं शून्यवदेव तत्स्यात् ।
 इदं पुरं भद्रगुणं प्रकृत्या सौभद्रमेवेति च केचिदूचुः ॥ ९२
 वृणां प्रियोऽसौ खलु पौरुषेण रूपेण नारीनयनाभिकान्तः ।
 विद्वद्दुरुणां विनयोपचारैः कश्चिद्दटोऽतिप्रियतां प्रयातः ॥ ९३
 एवं महात्मा प्रथितप्रणादः कश्चिद्दटारुणां प्रतिलभ्य शूरः ।
 वराङ्गनामत्वमथापमृज्य वणिग्जनैः सार्धमुवास तस्मिन् ॥ ९४
 आरुण्यायिकाभिश्च कथाप्रपञ्चैर्नार्थैश्च गीतैः परिवादिनीभिः ।
 उद्यानयानै रतिहेतुभूतैः कश्चिद्दटेन प्रतिनीयतेऽद्वा ॥ ९५
 एकान्ततः संस्मरति स्वबन्धून् कदाचिदन्तर्गतदाहभावः ।
 कदाचिदुन्मत्त इव ब्रवीति स्वस्थः कदाचित्परमार्थदृष्ट्या ॥ ९६

ललितपुरनिवासिभिर्वणिभिः
 सुखधनधर्मफलानि पृच्छच्यमानः ।
 अकथयदखिलानि तानि तेभ्यो
 युवनृपतिः स जगत्प्रयोजनानि ॥ ९७
 पुनरथ सकलान्कलानगुणांश्च
 प्रतिगमयन्पुरधीवाणिग्जनानाम् ।
 जिनमतममलं प्रकाशयंश्च
 ललितपुरं ललितैः सहाध्युवास ॥ ९८
 इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 ललितपुरप्रवेशो नाम
 चतुर्दशः सर्गः ।

[पञ्चदशः सर्गः]

अथोत्तमपुरे तस्य वाजिनापहृतस्य यत् ।
 वृत्तान्तं कथितं सर्वमिदमन्यनिबोधत ॥ १
 राजानो राजपुत्राश्च मन्त्रिणो दण्डनायकाः ।
 भोजका भृत्यवर्गाश्च ये राजा सह निर्गताः ॥ २
 युवराजाधिरूढं तं वाजिनं वायुरंहसम् ।
 अनुगम्याप पश्यन्तो बभ्रमुस्ते वनान्तरे ॥ ३
 अपरे संनिवृत्याशु तुरङ्गहृतनायकाः ।
 आक्रोशन्तो विषण्णास्ते निवेदयितुमागताः ॥ ४
 पितरं तस्य संहृश्य बालादित्यसमप्रभम् ।
 संसंभ्रमा समाश्रित्य वचनं चेदमञ्चुवन् ॥ ५
 वाजिनावार्यवीर्येण दुर्विनीतेन पार्थिव ।
 वायुवेगप्रतापेन युवराजोऽपहारितः ॥ ६
 केनापि हयरूपेण द्वदानवरक्षसा ।
 सर्वेषामग्रतो नीतो वराङ्गस्तु महीपते ॥ ७
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा समाहृयात्ममन्त्रिणः ।
 मन्त्रमध्यास्त मतिमान्युवराजाय वाहने (?) ॥ ८
 विचारयत केनायं द्विषता नोपवाहितः ।
 कुमारोभ्यतरस्वेन बत बाहेन मण्डले ॥ ९
 रूपलावण्यलोभेन विद्यावलयुवा स्त्रिया ।
 देवरक्षःपिशाचैर्वा हृतः स्यात्पूर्ववैरिभिः ॥ १०

१ [अनुगम्य प्रपश्यन्तो]. २ म आक्रोशन्ते. ३ [कुमारोऽभ्यन्तरस्वेन].

इत्याज्ञाप्य नृपोऽमात्यान्मण्डलानि प्रतीक्षितुम् ।
 दूतान्संप्रेषयामास मार्गणार्थमितोऽसुतः ॥ ११
 ते मडम्बुरग्रामान्वयरण्यगिरिविजान् ।
 परीत्य न च पश्यन्तो निराशाः पुनराययुः ॥ १२
 केचिदध्वानुमार्गेण गत्वा दूरं वनान्तरे ।
 वाजिनं तु गतप्राणं कूपेऽपश्यन्यद्वच्छया ॥ १३
 युवराजमपश्यन्तो भ्रान्त्वा वननदीगिरीन् ।
 कक्षवृक्षशुपाकीर्णान् पुरमेव गतास्ततः ॥ १४
 कटकं कटिसूत्रं च केयूरं कुण्डलद्रव्यम् ।
 अश्वभाण्डं च संगृह्य राज्ञे सर्वं निवेदैयन् ॥ १५
 श्रुत्वा तेषां वचो राजा दृष्टा तस्याङ्गभूषणम् ।
 मुश्चन्नुष्णं च निःश्वासं दुःखसंभ्रान्तलोचनः ॥ १६
 गणस्थलं करे न्यस्य सुतं शोचनमुहुर्षुहुः ।
 प्रत्युवाच पुनस्तेभ्यः कम्पयन्करपलुवम् ॥ १७
 कथाकाव्यपुराणेषु अश्वेनापहता इति ।
 अश्रूयन्तमिदं सर्वं प्रत्यक्षं समुपास्थितम् ॥ १८
 सुतदुःखहिमाक्रान्तं मम्लौ वदनपङ्कजम् ।
 तुषाराम्बुसमाक्रान्तं प्रफुल्लमिव पङ्कजम् ॥ १९
 यद्वप्तूर्णशरच्चन्द्रो निःप्रभो राहुणावृतः ।
 राजेन्द्रो निर्बभौ तावच्छोकग्रहसमाप्लुतः ॥ २०
 यथा हृतमणिर्नांगो भग्रदन्तो गजोऽपि वा ।
 तथा गतसुतो राजा न रेजे कान्तिमानपि ॥ २१

१ क मार्गणार्थमितोऽसुतःः २ म °ग्रामान्मध्यरण्य° ३ [न्यवेदयन्]. ४ म अश्रूयन्तमिदं, [आश्रूयन्त इदं].

एवं दुःखार्णवे मग्ने पत्यौ वर्षचरोत्तमाः ।
 गुणदेव्यै यथावृत्तमुपगम्याच्चक्षिरे ॥ २२
 श्रुत्वा पुत्रवियोगं सा देवी बाष्पाकुलेक्षणा ।
 हा पुत्र केन नीतस्त्वमित्युक्त्वा न्यपतद्धुवि ॥ २३
 ततः परिजनैस्तूर्णं शीतलव्यजनानिलैः ।
 चन्दनोदकसंमिश्रैर्गात्रसन्धिषु पस्पृशे ॥ २४
 शनैराप्यायिता देवी उन्मील्य नयनद्रयम् ।
 हा वत्स क गतोऽसीति विविधं विललाप सा ॥ २५
 तवागतात्र या पीडा सा मे किं न भविष्यति ।
 वरं मे मरणं वत्स जीवितं किं त्वया विना ॥ २६
 कुण्डलाङ्कितगण्डस्य हारशोभितवक्षसः ।
 तव यदर्शनं पुत्र त्रैलोक्यैर्वर्यतोऽधिकम् ॥ २७
 वत्स हित्वा ऽनवद्याङ्गं विद्रज्जननिषेवितम् ।
 कथं स्मरन्ती जीवामि विनयाचारभूषितम् ॥ २८
 चलच्चामरवृन्देन ज्वलन्मकुटशोभया ।
 ज्वलन्तं यौवराज्येन कथं वा विस्मराम्यहम् ॥ २९
 मया वियोजिताः पुत्रा मृगाणामन्यजन्मनि ।
 तत्कर्मपरिणामोऽयं सादृष्टिकमुपस्थितम् ॥ ३०
 अत्राणाशाश्वतासारा जन्मवत्ता हि देहिनाम् ।
 सा मयाद्य परिज्ञाता जाँता नैवास्ति कस्यचित् ॥ ३१
 पुरात्मचरितं कर्म तदवश्यमवाप्यते ।
 प्रतिषेद्धुं नियन्तुं वा न शक्यं त्रिदशैरपि ॥ ३२

१ [वर्षधरोत्तमाः]. २ [°मुकुट°]. ३ [सांदृष्टिक°]. ४ [शता].

एवं पुत्रवियोगेन मनस्संतापकारिणा ।
 महीपतौ च देव्यां च तदुःखं मूर्तिं गतम ॥ ३३
 भार्यास्त्वनुपमाद्यास्ता विद्युधेन्द्राङ्गनोपमाः ।
 वियोगं युवराजस्य श्रुतवन्त्यस्तु तत्रसुः ॥ ३४
 वायुनातिप्रचण्डेन लता इव विकाम्पिताः ।
 भर्तृदुःखानिलहता निपेतुर्वसुधातले ॥ ३५
 ततो वामनिकाः कुब्जा धात्र्यः संपरिचारिकाः ।
 रुदन्त्यस्त्वरथाभ्येत्य सर्वास्ताः परिवत्रिरे ॥ ३६
 अपराश्रेतनावन्त्यः शीतलोदकविन्दुभिः ।
 गोशीर्षचन्दनाक्तैस्तैः सिषिच्चुः परितोऽङ्गनाः ॥ ३७
 तालवृन्तानिलैर्हारैर्मणिभिः पुष्पदामभिः ।
 सुखसंस्पर्शनं चक्रुश्चलद्वलयपाणयः ॥ ३८
 अथोपलब्धसंज्ञास्ता युवराजप्रियाङ्गनाः ।
 विलपन्त्यो रुदन्त्यश्च स्फुरन्त्यश्च समुत्थिताः ॥ ३९
 निरर्था इव वाञ्छाला लता निःकुसुमा इव ।
 युवराजस्य भार्यास्ता भर्तृहीना न रेजिरे ॥ ४०
 काश्चिद्देमजलास्पृष्टा विषष्णकमलाननाः ।
 अशुधारां विमुच्चन्त्यः प्रचेलुर्दुःखवायुना ॥ ४१
 गण्डदेशे करं न्यस्य विकीर्णासितमूर्धजाः ।
 काश्चिज्जगाहिरे भोगान्दुरन्तान्विगतस्पृहाः ॥ ४२
 काश्चिन्मृदुपदन्यासैः करै रक्तोत्पलोपमैः ।
 दुःखवेगातिविभ्रान्ता नवृतुः कौशलादिव ॥ ४३

१ म निकम्पिताः २ म सपरिचारकाः

वियोगतापसंतप्तः काश्चिन्मम्लुः क्षणात्पुनः ।
 काश्चित्प्रकृतितन्वङ्गयश्चिन्मूला लता इव ॥ ४४
 काश्चित्कारुण्ययुक्तानि गीतानि मधुरस्वरैः ।
 तद्गुणरूपापकान्येव विलेपुर्विविधानि ताः ॥ ४५
 कृतान्तं निर्भयं क्रूरं स्त्रीवधं ध्रुवमाप्स्यसि ।
 प्रियादस्मान् वियोज्य त्वमित्यूचुः काश्चिदङ्गनाः ॥ ४६
 अस्मान्वा नयं तं देशं तमिहानय वा प्रियम् ।
 अन्यथा हि कृतान्तस्ते महापातो भविष्यति ॥ ४७
 एवमाक्रन्दमानास्ताः सवदश्रुविलोचनाः ।
 उत्पत्तन्त्यः पतन्त्यश्च जग्मुः श्वशुरमीक्षितुम् ॥ ४८
 उपगम्यावनीशस्य प्रणिपत्य हि पादयोः ।
 इत्थं विज्ञापयांचक्रुः सर्वा युवनपाङ्गनाः ॥ ४९
 न्यायविद्वष्टुनिग्राही धर्मराजः प्रजाहितः ।
 दयावानिति सर्वत्र कीर्तिस्ते विश्रुता भुवि ॥ ५०
 अतो वयमिमाः सर्वा अनाथा दीनवृत्तयः ।
 आगताः शरणं त्वद्य विना चात्मपतिं प्रभो ॥ ५१
 दया स्त्रीबालवृद्धेषु कर्तव्येत्यधुना जगुः ।
 इति मत्वा महाराज त्वं प्रमाणं क्रियानिधौ ॥ ५२
 इति नानाविचित्राणि विलपन्त्यो वराङ्गनाः ।
 चुकुशुः करुणं घोरं श्वशुरस्यान्तिके स्तुषाः ॥ ५३
 ततः कञ्चुकिनो वृद्धा अन्तःपुरमहत्तराः ।
 तद्वासीदासभृत्याश्च चक्रुराक्रन्दनं महत् ॥ ५४

तेषां स्त्रीवालवृद्धानां रुदतां करुणध्वनिः ।
 अभूत्प्रक्षुभ्यतोयस्य समुद्रस्येव निस्वनः ॥ ५५
 गुणदेवी स्नुषा दृष्टा स्वपुत्रोत्कण्ठगदूदा ।
 न शशाक वचो वक्तुं बाष्पव्याकुललोचना ॥ ५६
 रत्नहारप्रवालांश्च नृपुरप्रकटाङ्गदेम् ।
 मुक्ताप्रलम्बसूत्राण मालावलयमेखलाः ॥ ५७
 कटकान्यूरुजालानि केयूराः कर्णमुद्रिकाः ।
 कर्णपूरान् शिखाबन्धान्मस्तकाभरणानि च ॥ ५८
 कण्ठिकावत्सदामानि रसनाः पादवेष्टकाः ।
 आलुण्ठचाकुञ्च्य सर्वाणि चिक्षिपुर्विदिशो दिशः ॥ ५९
 पतितैरङ्गतस्तासां राज्ञीनां विगतौजसाम् ।
 घौरिव ग्रहनक्षत्रैर्भूषणैर्भूरभासत ॥ ६०
 सर्वासां राजपत्नीनां समेतानां समग्रतः ।
 कृताङ्गलिरुवाचेदं युवराजप्रियाङ्गना ॥ ६१
 न जीवितुमितः शक्ता विना नाथेन पार्थिव ।
 त्वया प्रसादः कर्तव्यः पावकं प्रविशाम्यहम् ॥ ६२
 राजा निशम्य तद्वाक्यं द्विगुणं दुःखविद्रुतः ।
 क्षरन्नेत्रोदकाद्रास्यः प्रत्युवाच ततः स्नुषाम् ॥ ६३
 मैवं त्वनुपमे मंस्थास्तदत्यन्तमशोभनम् ।
 असंमतं च साधूनां पुनर्दुःखाय कल्प्यते ॥ ६४
 शक्त्ररज्ज्वादिघातश्च मण्डलेन च साधनम् ।
 भृगुप्रपतनं चैव जलवह्निप्रवेशनम् ॥ ६५

१ [°प्रक्षुब्ध°]. २ म °प्राकटाङ्गदम्. ३ [कल्पते].

देहत्यागश्च गृद्धेभ्यो जिहोत्पाटविषाशनम् ।
 एतानि परणान्यार्थं निषिद्धानि महात्माभिः ॥ ६६
 निःशीला निर्नमस्कारा निर्व्रता निर्गुणा नराः ।
 जरामरणरोगार्ताः क्लिश्यन्तीति विनिश्चिनु ॥ ६७
 त्रिलोकगुरुवोऽर्हन्तः सर्वज्ञास्तत्त्वदर्शिनः ।
 ते पवित्रं च माङ्गल्यं मत्कुलस्य ममापि च ॥ ६८
 करोषि यदि मद्राक्यं धर्मे धत्स्वात्मनो मतिम् ।
 शनैरेव महाम्भोधिं तारयत्यापदार्णवम् ॥ ६९
 इत्युक्ता भूभुजा साध्वी श्वशुरं धर्मवत्सलम् ।
 यस्त्वया शश्यते धर्मः स एवोपास्यते मया ॥ ७०
 इति तस्या वचः श्रुत्वा नरेन्द्रः प्रीतमानसः ।
 स्नुषाशोकविनाशाय साधूनामन्तिकं ययौ ॥ ७१
 राजा ताभिः समाश्रित्य शान्तं यमधरं मुनिम् ।
 परिक्रम्य प्रणम्यैवं प्रोवाच विनयान्वितः ॥ ७२
 युवराजवियोगेन दुःप्रतिज्ञास्त्रवस्थिताः ।
 एतासां बुद्धिमास्थाप्य सद्गर्मं प्रतिपादय ॥ ७३
 ततो मुनिपतिस्तासां शोकनिष्टसचेतसाम् ।
 वकुं मनःप्रसादाय प्रारब्धो मधुरा गिरा ॥ ७४
 प्रायेण प्राणिनो दुःखं सुखमत्यल्पमुच्यते ।
 संस्काराः क्षणिकाः सर्वे भङ्गुराः प्रियसंगमाः ॥ ७५
 यौवनं बाधते नृणामैश्वर्यं त्वनवस्थितम् ।
 आयुर्वायुविनिर्धूततृणलग्नाम्बुचञ्चलम् ॥ ७६

प्रीतिः सन्ध्याम्बुदाभेव संपदो विद्युता समाः ।
 नानारूपा रुजस्तीव्रास्तनवः फेनदुर्बलाः ॥ ७७
 कस्य माता पिता कस्य कस्य भार्या सुतोऽपि वा ।
 जातौ जातौ हि जीवानां भविष्यन्ति परे परे ॥ ७८
 आत्मैव चात्मनो बन्धुरात्मा चैवात्मनो रिपुः ।
 आत्मनोपार्जितं कर्म चात्मनैवानुभुज्यते ॥ ७९
 प्रीतिपूर्वं कृतं पापं मनांवाक्यकर्मभिः ।
 न निवारयितुं शक्यं संहितैख्यदशैरपि ॥ ८०
 बन्धुभिर्भृत्यमित्रैर्वा मन्त्रोपायबलैरपि ।
 वित्तैर्वात्मकृतं पापं तदशक्यमसेवितुम् ॥ ८१
 यद्यद्विनिर्मितं कर्म येन येनान्यकर्मणि ।
 तस्य तस्यानुमार्गेण तदिहागत्य तिष्ठति ॥ ८२
 अज्ञानावृतचित्तानां रागद्रेषवतां नृणाम् ।
 क्षणवद्वद्विमाप्नोति तत्कर्म यदनेकधा ॥ ८३
 तीव्रमध्यममन्दैस्तु परिणामप्रपञ्चनैः ।
 तीव्रमध्यममन्दं तत्कलमात्मा समश्नुते ॥ ८४
 हिंस्यन्ते हिंसकाः पापैरापद्यन्तेऽपवादकाः ।
 मुष्यन्ते मोषकास्त्वन्यैर्विलुप्यन्ते विलोपकाः ॥ ८५
 वध्यन्ते बन्धकास्तीवं रुध्यन्ते रोधकाः पुनः ।
 बाधकास्तु विवाध्यन्ते द्विष्यन्ते द्रेषकारिणः ॥ ८६
 दण्ड्यन्ते दण्डका दण्डैः शुच्यन्ते शोचकारिणः ।
 प्रवञ्चकास्तु प्रवञ्च्यन्ते वियुज्यन्ते वियोजकाः ॥ ८७

१ म तदशक्यं निषेधितुं. २ [येनान्यजन्मनि]. ३ क पापैरुपाद्यन्ते,
 [पापैरपोद्यन्ते].

सायं पादपमभ्येत्य निशायां तु सहोषिताः ।
 इतोऽमुतः प्रभाते तु यथा गच्छन्ति पक्षिणः ॥ ८८
 तथा कुलतरुं प्राप्य मर्त्या दुरितवृत्तयः ।
 सहोषित्वा पुनर्यान्ति स्वकर्मवृत्तवर्त्मना ॥ ८९
 यथा नावं समारुद्ध व्यतीत्य कुलदुर्गमम् ।
 स्वभाण्डमथ विक्रेतुं भ्रमन्ति नगराकरान् ॥ ९०
 तथा कर्मपथारूढाः प्राणिनो दुःखभाजिनः ।
 पापभाण्डं च विक्रेतुं व्रजन्तीह चतुर्गतीः ॥ ९१
 यथा पतन्ति पर्णानि प्रकीर्णानि महीतले ।
 संचीयन्तेऽनिलैकेन वियुज्यन्तेऽपरेण च ॥ ९२
 तथा जीवाः समुद्भूताः प्रकीर्ण हि महीतले ।
 चीयन्ते कर्मणैकेन नीयन्ते त्वपरेण च ॥ ९३
 यथोदितस्य सूर्यस्य ध्रवं पतनमग्रतः ।
 प्रदीपस्य प्रदीपस्य चोपशान्तिर्यथोदता ॥ ९४
 यथा नभसि मेघानां विलयः पुरतः स्थितः ।
 तथा जातस्य जविस्य मरणं लुबमग्रतः ॥ ९५
 पार्थिवाः खेचराश्चैव केशवाश्चक्रवर्तिनः ।
 मानवा ब्रह्मरुद्राश्च योगसिद्धा दमेश्वराः ॥ ९६
 इन्द्राश्च चन्द्रसूर्याश्च लोकपालास्त्वनीकिनः ।
 पतन्ति स्वेषु कालेषु त्राता कश्चिन्विद्यते ॥ ९७
 यथैव मत्तमातङ्गः प्रविश्य कदलीवनम् ।
 पाददन्तकराग्रैश्च प्रमृद्नाति मुहुर्मुहुः ॥ ९८

१ म स्वकर्मकृतः. २ क व्यतीतकुलः. ३ म विक्रीतुं. ४ म च दुर्गतीः.
 ५ म °सर्याख्यौ. ६ क पादण्डः.

तथैव मृत्युमातङ्गस्तिर्यग्रसुरासुरान् ।
 प्राप्तकालान्प्रमृद्वाति दिवानिशमवारितः ॥ ९९
 तिर्यग्योनिषु सर्वासु मर्त्यदैत्यामरेषु च ।
 नारकेषु च दुर्वार्यो विहरत्यन्तकः सदा ॥ १००
 विषैश्च विषमाहारैः पानीयैरनलानिलैः ।
 शस्त्रोल्कावहिसंपातैव्याधिरूपैरूपैति सः ॥ १०१
 जरया मृत्युना जात्या क्लेशाननुभवंश्चिरम् ।
 आत्मा संसारवासेऽस्मिन्बम्ब्रमीति पुनः पुनः ॥ १०२
 यत्र जीवस्य जातिः स्यात्त्रावश्यं जरा भवेत् ।
 जरापरीतगात्रस्य ध्रुवं त्युर्भविष्यति ॥ १०३
 जातेर्दुःखं परं नास्ति जरसः कष्टं न विद्यते ।
 भयं च मृत्युतो नास्ति तत्र यत्सेव्यते ध्रुवम् ॥ १०४
 ह्योविद्धि निर्गतं जन्म स्वोदच्च तदनागतम् ।
 अद्यवद्रूतमानं स्यादित्युक्तं कर्मदर्शिभिः ॥ १०५
 रात्रिस्तमोमयी चात्र कृतानं समुपेष्यति ।
 कश्चिद्द्वन्धुर्न हि त्राता कृतो धर्मोऽभिरक्षति ॥ १०६
 धर्मो दयामयः प्रोक्तो जिनेन्द्रैर्जितमृत्युभिः ।
 तेन धर्मेण सर्वत्र प्राणिनोऽशनुवते सुखम् ॥ १०७
 तस्माद्धर्मे मतिं धत्स्व यूयमिष्टफलप्रदे ।
 स वः सुचरितो भर्तुः संयोगाय भविष्यति ॥ १०८
 एको धर्मस्य तस्यात्र सूपायः स तु विद्यते ।
 तेन पापास्त्रवद्वारं नियमेनापि दीयते ॥ १०९

१ [ह्योविद्धि]. २ क स्वोदच्च, [श्वोदच्च]. ३ [नियमेनापि दीयते].

व्रतशीलतपोदानसंयमोऽहत्प्रपूजनम् ।
 दुःखविच्छिन्नतये सर्वं प्रोक्तमेतदसंशयम् ॥ ११०
 अणुव्रतानि पञ्चैव त्रिःप्रकारं गुणव्रतम् ।
 शिक्षाव्रतानि चत्वारि इत्येतद्वादशात्मकम् ॥ १११
 देवतातिथिप्रीत्यर्थं मन्त्रौषधिभयाय वा ।
 न हिस्याः प्राणिनः सर्वे आहिंसा नाम तदव्रतम् ॥ ११२
 लोभमोहभयदेवैर्मायामानमदेन वा ।
 न कथ्यमनुतं किंचिच्चत्सत्यव्रतमुच्यते ॥ ११३
 क्षेत्रे पथि कले वापि स्थितं नष्टं च विस्मृतम् ।
 हार्यं न हि परद्रव्यमस्तेयव्रतमुच्यते ॥ ११४
 स्वसृमाँत्रस्वसाप्रख्या द्रष्टव्याः परयोषितः ।
 स्वदारैरेव संतोषः स्वदारव्रतमुच्यते ॥ ११५
 वास्तुक्षेत्रधनं धान्यं पशुप्रेष्यजनादिकम् ।
 परिमाणं कृतं यत्तसंतोषव्रतमुच्यते ॥ ११६
 ऊर्ध्वाधो दिग्निदिक्मथानं कृत्वा यत्परिमाणतः ।
 पुनराक्रम्यते नैव प्रथमं तद्वृणव्रतम् ॥ ११७
 गन्धताम्बूलपुष्पेषु स्त्रीवस्त्राभरणादिषु ।
 भोगोपभोगसंख्यानं द्वितीयं तद्वृणव्रतम् ॥ ११८
 दण्डपाशविडालांश्च विषशस्त्राग्निरज्जवः ।
 परेभ्यो नैव देयास्ते स्वपराधातहेतवः ॥ ११९
 छेदं भेदवधौ बन्धगुरुभारातिरोपणम् ।
 न कारयति योऽन्येषु तृतीयं तद्वृणव्रतम् ॥ १२०

१ म त्रिःप्रकारगुण०. २ [कुले]. ३ [°मात्रसुता°]. ४ म परिमाणकृतं-
 ५ क विरालाश्च. ६ म योग्येषु.

शरणोत्तममाङ्गल्यं नमस्कारपुरस्सरम् ।
 व्रतवृद्धै हृदि ध्येयं सन्ध्ययोरुभयोः सदा ॥ १२१
 समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावनाः ।
 आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्वि सामायिकं व्रतम् ॥ १२२
 मासे चत्वारि पर्वाणि तान्युपोष्याणि यत्नतः ।
 मनोवाक्यायसंगुप्त्या स प्रोष्ठधविधिः स्मृतः ॥ १२३
 चतुर्विधो वराहारः संयतेभ्यः प्रदीयते ।
 श्रद्धादिगुणसंपन्न्या तत्स्यादतिथिपूजनम् ॥ १२४
 बाह्याभ्यन्तरनैःसंग्याद्वीत्वा तु महाव्रतम् ।
 मरणान्ते तनुत्यागः सल्लेखः स प्रकीर्त्यते ॥ १२५
 इत्येतानि व्रतान्यत्र विधिना द्रादशापि ये ।
 परिपाल्य तनुं त्यक्त्वा ते दिवं यान्ति सद्व्रताः ॥ १२६
 सौधर्मादिषु कल्पेषु संभूय विगतज्वराः ।
 तत्राष्ट्रगुणमैश्वर्यं लभन्ते नात्र संशयः ॥ १२७
 अप्सरोभिश्चिरं रन्त्वा वैक्रियातनुभासुराः ।
 भोगानतिशयान्प्राप्य निश्च्यवन्ते सुरालयात् ॥ १२८
 हरिभोजोग्रवंशे वा इक्ष्वाकूणां तथान्वये ।
 उत्पद्यैश्वर्यसंयुक्ता ज्वलन्त्यादित्यवद्धुवि ॥ १२९
 विरक्ताः कामभोगेषु प्रत्रज्यैवं महाधियः ।
 तपसा दग्धकर्माणो यास्यन्ति परमं पदम् ॥ १३०
 इत्येतद्यतिना प्रोक्तं दुःखविच्छिन्निकारणम् ।
 तात्र तद्वचनापास्तशोकाग्रहधियोऽभवन् ॥ १३१

अथोत्थाय मुनीन्द्रस्य पादौ नरपतेः स्तुषाः ।
 प्रणम्य जगृहुः सर्वा व्रतान्युक्तानि शक्तिः ॥ १३२
 ततो राजा पुनस्तासां वियोगहतचेतसाम् ।
 हृदयानन्दजननीं गिरमित्थमुवाच सः ॥ १३३
 मा भूवं विक्लवाः सर्वा आसतां धर्मवाञ्छया ।
 उपक्रान्तैरुपायैस्तैः कुमारं मृगयाम्यहम् ॥ १३४
 परिगम्य मुनिं राजा भक्तिप्रेमाद्वचेतसा ।
 प्रणम्यान्तःपुरैः सार्धं स्तुषामिश्रं पुरं ययौ ॥ १३५
 अथान्यदा सुखासीनं राजानमामितप्रभम् ।
 चैत्यपूजाभिलाषिन्यश्चकुर्विङ्गापनं स्तुषाः ॥ १३६
 ततो विज्ञापितो राजा कारयामास मासतः ।
 शरत्कालाम्बुदाकारं जिनेन्द्रभवनं शुभम् ॥ १३७
 मेघचुम्बितकूटाग्रं स्फुरत्केतुविराजितम् ।
 चलद्वण्टारवोनिश्चं ज्वलत्काञ्चनपीठिकम् ॥ १३८
 प्रतिमाः स्थापितास्तत्र नानारत्नविनिर्मिताः ।
 भृङ्गारादर्शशङ्खादिपरिवारोपशोभिताः ॥ १३९
 पूर्वमष्टाङ्गिकं भक्त्या देव्यः कृत्वा महामहम् ।
 प्रारब्धा नित्यपूजार्थं विशुद्धेन्द्रियगोचराः ॥ १४०
 चरुभिः पञ्चवर्णैश्च ध्वजमाल्यानुलेपनैः ।
 दीपैश्च बालिभिश्चूर्णैः पूजां चक्रमुदान्विताः ॥ १४१
 उपवासेन तन्वङ्ग्न्यः शुद्धवाग्मनसःक्रियाः ।
 स्तोत्रैर्मन्त्रैश्च गीतैश्च जिनान्सन्ध्यासु तुषुबुः ॥ १४२
 शेषकालं जिनेन्द्राणां धर्मसंकथया तया ।
 पुस्तवाचनया चापि गमयामासुरुत्तमाः ॥ १४३

कदाचित्संयतेभ्यस्ता दानधर्मपरायणाः ।
 शुद्धयादभिर्गौर्जीर्युक्ता पात्रदानानि संददुः ॥ १४४
 इत्येवं नृपवनिता व्यपेतशोका
 दानोरुत्तरगुणभावनावसक्ताः ।
 देवानां सकलविदां यथाचिरे ताः
 पादेषु प्रणतधियः पर्ति प्रतीष्टाः ॥ १४५
 औत्सुक्यप्रातिहतमानसाः कदाचि-
 द्रण्डान्तप्रणिहितचारुहस्तपद्माः ।
 पक्ष्मांग्रश्वृतसलिला मुहुश्च सन्त्यः
 संदध्युर्युवनृपतिसंमागमाशाम् ॥ १४६
 इति धर्मकथेदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 अन्तःपुरविलापो नाम
 पञ्चदशः सर्गः ।

[षोडशः सर्गः]

अथैवमुर्वीपतिसूनुरिभ्यैर्विभागवद्विर्लिलितैरुदारैः ।
 तेषां च पुत्रैरनुगृह्यमाणो रेमे च तस्यां ललिताद्वपुर्याम् ॥ १
 क्रीडां यथा मत्तगजो वनेषु प्रलालयमानो गजकामिनीभिः ।
 क्लेभे गतिं बन्धगतोऽपि तद्रूपस्वाभिर्नृपोऽप्यत्र हि दुष्क्रियाभिः २
 एवं नृपस्यान्यनरेन्द्रपुर्यां व्यामिश्रयोगेन सुखासुखेन ।
 कालोऽगमत्कर्मवशेन तस्य यशोगुणश्रीधनभाजनस्य ॥ ३

१ क °प्राणिहित. २ [°स्तुतसलिला]. ३ म समागताशां.

तस्यां तु पुर्या वसति क्षितीन्द्रे प्रवृत्तमन्यत्वकृतं महद्यत् ।
 यथागमं तद्विनिगद्यमानं शृण्वन्तु सन्तो गुणभारनम्ब्राः ॥ ४
 आसीन्नरेन्द्रो मधुरांधिपस्तु नाम्नेन्द्रसेनः प्रथितो धरण्याम् ।
 तस्याग्रपुत्रो बलवीर्यद्वम् उपेन्द्रसेनो युवराज् बभूव ॥ ५
 समस्तसामन्तनिवद्धपट्टौ समस्तसामन्तमदावरोधौ ।
 समस्तसामन्तगणातिधैर्यौ बभूवतुश्चन्द्रादिवाकराभौ ॥ ६
 शौर्योद्धतावप्रतिकोशदण्डौ गृहीतसामन्तसमस्तसारौ ।
 तौ देवसेनस्य नरेश्वरस्य गजेन्द्रमाशुश्रवतुश्चरेभ्यः ॥ ७
 स वारणेन्द्रः शुभपीवराङ्गो मदस्तिकिलब्रकपोलदेशः ।
 अतुल्यवीर्यः स्ववदम्बुदाभश्चलद्विरप्रख्यतमोऽतिसत्त्वः ॥ ८
 भद्रान्वयो भद्रमना विनीतः क्रियाविधिक्षेत्रगुणैरुपेतः ।
 मधुप्रभाख्यः सुविभक्तगात्रः पूर्वप्रदेशोन्नतचारुकुम्भः ॥ ९
 तमिन्द्रसेनो वरवारणेन्द्रं बलाज्जिघृष्णुर्धनमानद्वमः ।
 लेखेन साम्ना रहितेन तेन संप्रेषयामास स दूतवर्यम् ॥ १०
 ततो हि दूतः पथि काननानि नदीगिरिप्रस्तवणान्तराणि ।
 देशान्वजन्ग्रामवरांश्च पश्यन् स देवसेनस्य विवेश देशम् ॥ ११
 क्रमात्पुरं तद्वलिताभिधानं प्रपासभोद्यानविशेषरम्यम् ।
 शनैः समासाद्य स दूतमुख्यो दर्दश भूपं विधिनोपसृत्य ॥ १२
 ततस्तु राजा प्रतिमुख्य लेखं लेखोपचारेण च वाचयित्वा ।
 विज्ञाय लेखार्थमपेतसांमं चिक्षेप लेखं कुपितो धरण्याम् ॥ १३
 स ताप्रनेत्रः स्फुरिताधरोष्टः कोपादविज्ञाय परात्मशक्ती ।
 निर्भत्स्य दूतं परुषैर्वचोभिर्वामेन पादेन ममदे लेखम् ॥ १४

अपेतसामानि वचांसि राजा जगाद् दूतं पुरतः स्थितं तत् ।
 उक्तेन किंवा बहुना शृणु त्वं युद्धाद्वते तस्य न शान्तिरास्ति॥१५
 समस्तसामन्तधनानि यानि विक्रम्य जग्राह पुरा बलेन ।
 तान्येव जीर्यन्त्वलमन्यविच्चैः श्रमव्ययाक्षेमकरैरनर्थैः ॥ १६
 भो दूत आस्तां वृपतिस्त्वदीयो निजेन राज्येन हि तुष्टिमेतु ।
 स्थाने न चेत्स्थास्यति सर्वथान्यं संस्थापयिष्याम्यहमेत्य तत्र ॥
 संस्थाप्यमानोऽपि मयेन्द्रसेनः स्थातुं न चेच्छेत्स्वकुलोचितेन ।
 प्राण्यद्वहीतं च धनं परेषां तंद्वा ग्रहिष्यामि दुरात्मनोऽहम् ॥१८
 अथ त्वरा वास्ति हि पौरुषं वा आगम्यतां सर्वबलेन सद्यः ।
 य आवयोर्जेष्यति युद्धशौण्डो भवन्तु हस्त्यश्चपुराणि तस्मै ॥१९
 इत्येवमाघोष्य सभासमक्षं संतर्ज्य रोषादपभीस्तदानभिः ।
 विरोधबुद्ध्या न ददौ स्वलेखं कृत्वार्धमुण्डं विससर्ज दूतम् ॥ २०
 ततो विसृष्टो वसुधेश्वरेण त्रस्तात्मचित्तस्तु कृतार्धमुण्डः ।
 परिस्पृशन्स्वं स शिरः करेण जगाम तूष्णीं ललिताहुपुर्याम् ॥ २१
 अथो ह्युपस्थानगतः स्वदूतं प्रत्यागतं त्वप्रतिलेखमात्रम् ।
 दृष्ट्वा कृताङ्कं पुरतो वृपाणां चुक्रोध राजा भृशमिन्द्रसेनः ॥ २२
 स्वभावतः प्रोन्नतमानदृपः परावमानैकरसानभिज्ञः ।
 मुहुर्मुहुः श्वासविकम्पिताङ्को जज्वाल वाताहतवहिकल्पः ॥ २३
 मत्तोऽधिकाः शक्तिबलप्रतापैर्ये पार्थिवास्तैः सह योद्धुकामः ।
 युद्धाय लेखान्विससर्ज तेभ्यो भयादितास्ते प्रददुर्धनानि ॥ २४
 असौ वराको नयविन्न चासौ परात्मशक्त्यज्ञतयातिमूढः ।
 स मृत्यवे केवलमिद्धमग्निं पतञ्जवद्वाञ्छति संप्रवेष्टुम् ॥ २५

१ क तद्वामयिष्ये खलु मान्वरिष्ठाः । २ क कृतार्धदण्डः । ३ म योद्धुकामाः ।

विशिष्ट एवापतिमल्लहस्ती देहौ पुनर्मेऽपतिमल्लकल्पम् ।
 युद्धाभिरुपिश्चिरकालतो मे भविष्यतीति प्रजगाद राजा ॥२६
 मद्राक्यननीतौ यदि नैव तिष्ठेत्तोभाच्च दर्पादभिमानतो वा ।
 निष्कृष्ट्यते श्रीललिताद्वपुर्याः संस्थापयिष्यामि वशस्थपन्यम् ॥२७
 एकस्य हेतोः करिणो यदासौ नेच्छेत्सुखं जीवितुमुन्नताशः ।
 मत्सैन्यनिर्वासितपौरराष्ट्रो मामेव गन्ता शरणं हताशः ॥ २८
 सर्वक्षितीशेष्वहतप्रतीप आज्ञां मदीयामवमन्यमानः ।
 सभृत्यमित्रः सकलत्रपुत्रः सकोशदण्डः क्षयमेष्यतीति ॥ २९
 अनर्थकैः किं बहुभिः प्रलापैः फले ध्रुवं कार्यमुपैति व्यक्तिम् ।
 इत्येवमाविष्कृतसत्यतिज्ञो बहिस्तदेवाशु पुराजगाम ॥ ३०
 महेन्द्रसेनप्रवरा महीन्द्रा उपेन्द्रसेनप्रमुखाशु पुत्राः ।
 पदातिहस्त्यश्वरथैः समेता नरेन्द्रयातानुपर्थं प्रयाताः ॥ ३१
 अङ्गाश्च वङ्गा मगधाः कलिङ्गाः सुह्माश्च पुण्ड्राः कुरुवोऽश्मकाश्च ।
 आभीरकावैनितिककोशलाश्च मत्स्याश्च सौराष्ट्रकविन्ध्यपालाः ॥३२
 महेन्द्रसौवीरिकसैन्धवाश्च काश्मीरकुन्ताश्चरकासिताहाः ।
 ओद्राश्च वैदर्भकवैदिशाश्च पञ्चालकाश्चाः पतयः पृथिव्याम् ॥३३
 सप्तेत्य सर्वे स्वबलैरुदारैरनेकशस्त्राक्षविभूतिपद्धिः ।
 उत्थापितच्छत्रसुकेतुचिङ्गा निश्चकमुर्भूपतयः प्रयोद्धुम् ॥ ३४
 प्रदानमानैकरसामृवीर्याश्चिकीर्षवः स्वामिहितानि भृत्याः ।
 इहात्मशौर्यं प्रतिदर्शयामो रणे नृपाणामिति केचिदाहुः ॥ ३५
 अस्वामिकार्याणि पुनर्बहूनि दिनान्यतीतानि निरर्थकानि ।
 अद्यात्मशक्तिं नृपतेः समक्षं प्रकाशयिष्याम इति न्यवोचन् ॥ ३६

१ क दधौ. २ [°प्रतापामाशां]. ३ क आभीरकावैनितिन्°. ४ म चौदाश्च,
 [औद्राश्च] .

पश्यामि तावत्समराजिरेऽस्मिन् नृणां पुनः सारमसारतां च ।
 स्याद्भूमकेतौ कनकस्य शुद्धिव्यक्तिं प्रयातीति निराहुरन्ये ॥ ३७
 नृपेन्द्रसेनो बृहदुग्रसेनः कृतात्पशक्तिर्बहुकोशदेशः ।
 अवार्यवीर्यो दृढवद्वैरः सुनीतिनीतार्थविशुद्धबुद्धिः ॥ ३८
 एतैर्गुणैर्न्यूनतमस्तु राजा मानैकसारो ललितेश्वरोऽसौ ।
 तस्यास्य चेति प्रविचिन्त्यमानं तदन्तरं स्यान्मशकेभयोर्यत् ॥ ३९
 अहो तपस्वी ललितेश्वरोऽसौ नोऽपीक्षते स्वं तु बलाबलं यत् ।
 महार्णवानन्तबलेन राजा युयुत्सुरज्ञस्त्वति केचिदूचुः ॥ ४०
 अथैकमत्तद्विरदस्य हेतोरपाप्सति श्रीपुरकोशदेशान् ।
 अकौशलं तस्य हि मान्त्रिणां च निरीक्ष्यतामित्यपरे निराहुः ॥ ४१
 न मन्त्रिणां वा वचनं शृणोति ते वा हितं नास्य वदन्त्युपेत्य ।
 विनाशकालः समुपस्थितो वा बलीयसा यत्कुरुते विरोधम् ॥ ४२
 महाबलस्यास्य पुरः कुतः स्यात्स्थातुं हि शक्तिर्लितेश्वरस्य ।
 सहैव नागेन विमुच्य देशं पलायतेऽसाधिति केचिदूचुः ॥ ४३
 सुनीतिमार्गेण समाचरन्तो जयन्ति शत्रून्वहतोऽपि हीनाः ।
 अनीतिमन्तो बालिनोऽपि गम्या नैकान्तमस्तीत्यपरे निराहुः ॥ ४४
 यः शक्तिमांस्तं पुनरप्रमत्तस्तथाप्रमत्तं न च दीर्घसूत्रः ।
 तौ नीतिमांस्तं खलु दैवयुक्तो जेष्यत्यरीनित्यपरे समूचुः ॥ ४५
 एवं ब्रुवाणास्तु परस्परस्य जेतुं प्रविष्टाः परदेशमाशु ।
 प्रविष्टमात्रेण पुरं विमुच्य ननाश देशं सकलं क्षणेन ॥ ४६
 ततः प्रजास्ताः परचक्रभीता हृतावशिष्टं धनधान्यसारम् ।
 आदाय सर्वं सकलत्रपुत्राः पुरं प्रविष्टा ललिताख्यमुख्यम् ॥ ४७

१ [अपोहति]. २ [शत्रून् हि तेऽपि].

सा चापि सेना महती क्षितीशां पुरीं महासारवतीं विशालाम् ।
 सगोपुराद्वालकतोरणां तां निरुद्य तस्थौ सतृणाम्बुकाष्टाम् ॥४८
 समीक्ष्य सेनां मधुराधिपस्य महद्वियुक्तां ललितेश्वरोऽसौ ।
 स्वान्मन्त्रिणो मन्त्रगुणप्रवीणानाहूय तैर्मन्त्रविधिं चकार ॥ ४९
 एषोऽपि शत्रुः प्रबलः प्रधृष्यः पुरं समावेष्ट्य हि संनिविष्टः ।
 वयं च हीना बलमित्रकोशैर्दुर्गं च सद्वर्गगुणैरपेतम् ॥ ५०
 अस्मै न मे दन्तिवरस्य दित्सा परेण साकं न च योद्धुकामः ।
 पुरं त्यजामीति न मेऽभिलाषः परीक्ष्य तद्योग्यमिह प्रवाच्यम् ॥५१
 इत्येवमुक्ता वसुधाधिपेन सद्बुद्धयः स्वामिनि नित्यभक्ताः ।
 तत्कालयोग्यं स्वमतिप्रणीतं यथानुपूर्व्या विदधुर्वचस्तम् ॥ ५२
 नैवेह कार्यो बलवद्विरोधो दोषः समस्तुल्यबलैर्विरोधे ।
 न्यूने विदित्वा खलु देशकालौ क्रियाप्रसिद्धिं लभते नरेन्द्रः ॥५३
 साम्रा प्रदानेन च कार्यसिद्धिं वाञ्छन्ति तज्ज्ञा निरूपद्रवत्वात् ।
 क्षयव्ययक्लेशसहस्रमूलौ मृत्योः पदं भूमिप भेददण्डौ ॥ ५४
 मानोऽन्तरं सर्वनरेश्वराणां मानस्तु कल्याणफलप्रदायी ।
 अयं प्रकृत्या भृशमात्ममानी तस्मान्तु मान्यो भवतीन्द्रसेनः ॥५५
 स्यान्मानहानिर्यदि सन्धिभागे मा भूत्स दोषः स्मतिष्पृष्ठदिष्टम् ।
 स्वकार्यसिद्धै प्रददौ महेन्द्रो मानं विहायैहिकलोहिताङ्कम् ॥५६
 धनेन देशेन पुरेण साम्रा रत्नेन वा स्वेन गजेन वापि ।
 स येन येनेच्छति तेन तेन संदेयं एवेति जगौ सुनीतिः ॥ ५७
 तद्युक्तिमत्स्यात्खलु सार्वभौमे नरेश्वरे सर्वगुणैरुपेते ।
 अयं गुणैर्मध्यम इन्द्रसेनः शक्यो विजेतुं परमं श्रयेण ॥ ५८

यदेयमस्मै वसुधाधिपाय तदेव कस्मैचिदपि प्रदाय ।

अस्योपरिष्टाद्यमानयामो बलान्वितं तं यदि रोचते ते ॥ ५९

उत्साहमन्त्रप्रभुशक्तियोगज्जयायानयोध्याधिपतिः क्षितीशाम् ।

श्रीवीरसेनोऽस्ति तमाश्रयाम इत्याचचक्षे विनयाद्वितीयः ॥ ६०

किं तेन राजा बलवत्तमेन स्वकार्यसंसिद्धिपरायणेन ।

इदं पुनर्युक्तिमदर्थमन्यद्वीपि वाक्यं यदि रोचते ते ॥ ६१

सन्तीह पुर्या सुजनाः समृद्धा अगाधतोयाश्च तडागवाप्यः ।

शूरा मनुष्याश्च परैरहार्योस्त्वं चापि शक्तिव्रयमभ्युपेतः ॥ ६२

मुख्येषु भेदं प्रतिदर्शयन्तस्तद्वीवचां सारधनं नियोज्य ।

पाण्डीं तथोत्थाप्य हि तस्य देशे विगृह्णते नाशनमेव युक्तम् ॥ ६३

अभ्यर्ण एषोऽपि च मेऽप्यकालः स पाण्डिनरप्यस्य तु पार्वतीयः ।

अतो न सन्ध्याश्रयतां प्रयामः स्थाप्याम एवेत्यबदत्स मन्त्री ॥ ६४

साधूक्तमेभिर्वृपमन्त्रिमुख्यैः सन्ध्याश्रयस्थानगुणैः प्रसिद्धिः ।

एषां प्रयोगस्य गतस्तु कालो ह्यकालतस्तेऽपि भवन्त्यनर्थाः ॥ ६५

यदूतसंप्रेषणकाल एव सामप्रदानाद्युचितानुपायान् ।

अकुर्म चञ्चूमिप सा सुनीतिः कालात्ययः संप्रति दोष एषः ॥ ६६

एभिस्त्रिभिर्मन्त्रिवरैर्महीश कार्यं यदुक्तं तदपोहनयिम् ।

न मे प्रियं युक्तिविवर्जितत्वादित्याचचक्षे विजयश्चतुर्थः ॥ ६७

यत्कारणः स्यादनयोर्विरोधो नरेन्द्रयोरप्रतिवीर्यभासोः ।

स एव हस्ती यदि दीयते चेत्पुंस्त्वाभिमानस्य हि कोऽधिकारः ॥ ६८

अयं च राजेन्द्र समानसेनो नरेन्द्रसेनः समरे समर्थः ।

सर्वस्वमादाय तु यातुकामः कथं पुनर्यास्यति हस्तिमात्रात् ॥ ६९

१ [°स्तद्वीमतां] २ म सारवं. ३ [स्थास्याम]. ४ क

५ [यत्कारणं.....°विरोधे].

कालो व्यतीतो नरदेव शान्तो दानाश्रयस्थानविधिस्तथैव ।
 उपस्थितौ संप्रति भेददण्डौ तस्माद्ये धत्स्व मतिं न चान्यत् ॥ ७०
 धनं शरीरं बलमायुरैश्यं चिरं न तिष्ठन्ति मनुष्यलोके ।
 यशांसि पुंभिः समुपार्जितानि स्थायीनि यस्माद्यशसे यतस्व ॥ ७१
 उपेन्द्रसेनो बलवानिति त्वमैहि मंस्थाः प्रथितोरुसत्त्वः ।
 कार्यस्य तस्यां [~] पुरः सरस्य नासाध्यमस्ति क्षितिपाल लोके ॥ ७२
 तथापि भूपाः समरे कृतार्थाः स्त्रिया नरेन्द्राः स्वमनोऽनुकूलाः ।
 गृहीतशस्त्रास्त्रबलार्थशस्त्राः सन्ति प्रभूता नृपतेः सहायाः ॥ ७३
 अँधर्यं यशस्यं विदुषां प्रशस्यं तेजस्करं मन्त्रिवरोपदिष्टम् ।
 निशम्य वाक्यं हृदयावकर्षी क्षितीश्वरः संमुमुदे स तस्य ॥ ७४
 संपूज्य तान्मन्त्रिगणानशेषान्विशेषपूजां विजयाय कृत्वा ।
 सभासमक्षं समराभिलाषी युद्धाय सर्वं नृपतिः शशास ॥ ७५
 राजानुमत्या विजये जयैषी शूरानुरक्तप्रतिबोधनाय ।
 तस्यां महत्यां ललिताद्यपुर्यां सघोर्णां निर्गमयांचकार ॥ ७६
 राजापि युद्धाभिमुखः सवन्धुः प्रवीक्ष्यते शत्रुविर्दनाय ।
 सन्मानदानैकरसास्त्रवीर्याः पुस्त्वाभिमानास्त्वरयाभ्युपेताः ॥ ७७
 एवंविधा सर्वजनाधिगम्या महाविभूत्या नृपशासनेन ।
 भेर्या नदन्त्या परिघोषणा हि वंभ्रम्यते वारणमस्तके सा ॥ ७८
 कश्चिद्दटः कान्तवपुस्तदार्नां वामांग्रहस्तापितगण्डदेशः ।
 बलं समीक्ष्य स्वपुरान्तकस्य दध्यौ स्वयं किं क्रियते मयेति ॥ ७९

१ क कार्यस्य सन्तीति. २ [तस्यात्म]. ३ म अर्थ. ४ म सर्वान्वृपतीन् शशास. ५ [विजये]. ६ [स्वघोषणां]. ७ म शुद्धाभिमुखः. ८ [प्रतीक्षते].
 ९ [°हस्तार्पित°].

संव्याधिते च व्यसनिन्यनाथे क्षुत्पीडिते शत्रुजनाभिखूते ।
द्वारे वृपाणां पितृभूमिभागे संतिष्ठते यः किल सोऽतिवन्धुः ॥८०
अहं च अत्रैव कयापि युक्तया वसामि मूढः स्वहिताहिताय ।
एषोऽपि मे मातुल एव राजा प्रियोऽरिसैन्यैरभिविदुतंश्च ॥ ८१
अभ्येत्यै दूरादपि युक्तिमत्स्यात् सहायकृत्यं स्वजनेन कर्तुम् ।
तद्वन्धुना कार्यविदा मयाव समक्षभूतेन कथं प्रहेयम् ॥ ८२
वराङ्गनामा तव भागिनेयः सुतोऽस्म्यहं धर्मनरेश्वरस्य ।
इति ब्रुवं चेछलितेश्वराय न श्रद्धात्येष च पां हसेद्वा ॥ ८३
इमान्स्ववन्धुन्मम धर्मलब्धानुदिश्य योत्स्यंऽहमिति ब्रवीमि ।
वणिकसुतत्वात्परिभूयमानः सभासमक्षं लघुतां व्रजामि ॥ ८४
कोस्यान्न युक्तिर्निरवद्यरूपा समाश्रयेयं श्वशुरस्य हेतोः ।
अज्ञातशस्त्रव्यवहारदक्षो भटोऽहमस्मीत्युदिते न दोषः ॥ ८५
नृपोपकारं मम कुर्वतस्तु कीर्त्यात्मवासः प्रकटो ध्रुवं स्यात् ।
इत्यात्मचिन्तागतमानसः सन् शुश्राव घोषं स तु घोषणायाः ॥ ८६
तां मत्तमातङ्गशिरोऽधिरूढामाप्लुष्यमाणां पटहस्वनेन ।
संश्रुत्य कश्चिद्दृट उन्नतश्रीः किं किं किमित्येतदपृच्छदाशु ॥ ८७
ते पृच्छयमाना वरवारणस्थाः स्वस्वामिसंदेशवशानुवृत्ताः ।
यात्यद्य राजा समराङ्गणाय रिपून्निहन्तुं त्विति संजजल्पुः ॥ ८८
निशम्य तेषां वचनं पृथुश्रीः कश्चिद्दृटः सोऽप्यनवार्यवीर्यः ।
सहायकृत्यं वृपतेश्चिकीर्षन् शूरः प्रकृत्या द्विगुणं जहर्षे ॥ ८९
एषा हि नूनं मम भाविनी श्रीरूपस्य वा पूर्वकृतो विपाकः ।
यदत्र कार्यं प्रतिचिन्तयामि तदेव साक्षात्समुपस्थितं मे ॥ ९०

१ क यो व्याधिते, [सव्याधिके]. २ क °विधृतश्च ३ म अभीत्य.
४ [इत्यब्रुवं]. ५ [का स्यान्तु]. ६ [समाश्रये यां]. ७ क तां पुष्यमाणां,
[°माधुष्यमाणां].

इति प्रचिन्त्यात्मनि निश्चितार्थो गुरुं समाहूय निवेश्य भूयः ।
 युद्धाय राजा सह संवजामि त्वं मामनुज्ञाय विमुश्च तात ॥ ९१
 तद्वाक्यसंत्रस्ततनुः पितास्य स्नेहानुरागादभिगृह्ण पादौ ।
 कुरु प्रसादं श्रणु मे वचस्त्वं हितानुबन्धं प्रियमप्रियं वा ॥ ९२
 जानामि ते शौर्यमवार्यमन्यैः शङ्खाख्ययोः कौशलमप्रधृष्यम् ।
 प्रत्यक्षमेतन्मम सर्वमासीत्तथाप्यहं कार्यमिदं प्रवक्ष्ये ॥ ९३
 युद्धावपि केचित्सुकृतैर्विहीना अप्राप्तभोगा मरणं प्रयान्ति ।
 व्यपेतशोकाः स्वगृहे वसन्तो भोगान्विचित्रानुपभुज्जतेऽन्ये ॥ ९४
 वृत्तिं विचित्रां स्वकृतानुरूपां पुंसां विचार्य क्षयिणीं च लक्ष्मीम् ।
 प्रीत्येह च श्रेयसि यद्युनक्ति तदेव कार्यं विदुषा नरेण ॥ ९५
 भोगाभिलाषात्तव विक्रमश्वेद्दोगान्यथेष्टानहमानयामि ।
 अथार्थहेतोर्यदि ते प्रयासः सन्तीह ते पुत्रं हिरण्यकोऽत्यः ॥ ९६
 देशं च कालं च कुलं बलं च परीक्ष्य कृत्यानि जनैः क्रियन्ते ।
 संचिन्त्य तत्सर्वमुदारबुद्धे निर्वर्त्यतां युद्धकृताभिलाषः ॥ ९७
 युद्धं त्वया यत्कृतमासि पूर्वमद्यापि तन्मे भयमादधाति ।
 तस्मादहं त्वां शिरसाभियाचे युद्धेन किं वा सुखमास्व वत्स ॥ ९८
 अहो तपस्वी बत मन्दसत्त्वः स्वजातिसाहश्यमताभिधानः ।
 मामप्ययं यन्मनुते स्वाजाताविन्येवमात्मन्यथ संप्रदध्यौ ॥ ९९
 पितैवमुक्तः सुत इत्थमूचे नार्थेन कृत्यं विषयेन कार्यम् ।
 न यौवनोद्दाममुदारं वशस्थो न चाप्यहं श्लाघ्यतया करोमि ॥ १००
 स्त्रीबिलवृद्धानगतीन्विपन्नाननाथदीनातुरभीतवर्गान् ।
 आपद्धतानाश्रमवासिनश्च त्रातुं मयायं मनसि प्रयासः ॥ १०१

प्रजाहितक्षेमसुखप्रसिद्धयै राज्ञो विजित्यैवं रिपोर्वधाय ।
 तवापि कीर्त्यै मम धर्महेतोर्युद्धेऽनुमन्यस्व न वारयस्य ॥ १०२
 श्रेष्ठी सुतस्याभिमतं विदित्वा चेष्टानुरूपां च यथार्थवार्ताम् ।
 तस्योत्तरं वक्तुमशक्तुवन्स तृष्णीं व भूवार्थपतिविंधिज्ञः ॥ १०३
 हये रथे वा वरवारणे वा पञ्चायुधेनात्मपराक्रमेण ।
 महाहवे योऽत्र मया युयुत्सुस्तस्यास्मि कालः कथितेन किं वा १०४
 इत्येवमाभाष्य पितुः समीपे तदेवं संप्रेष्य पुनर्घटायाम् ।
 समर्थ्य सम्यक्षिप्तरं सहायैः संप्रेषयामास नृपान्तिकं सः ॥ १०५
 कश्चिद्भट्टो मे तनयो वरिष्ठौः साचिव्यमिच्छुः समरागमे ते ।
 मां प्राहिणोदेव यदत्र युक्तं तत्संविधन्स्य त्वमकालहीनम् ॥ १०६
 पुराप्यशृण्वन्विजयप्रधानास्ते तस्य सर्वं श्रुतवीर्यसन्वम् ।
 ध्रुवं जयो देव तवैव भावी इति ब्रुवाणाः सचिवाः शशंसुः ॥ १०७
 न श्रेष्ठिपुत्रस्ववणिकस्वभावान्न प्राकृतः पार्थिवलक्षणत्वात् ।
 क्षात्राणि कर्माणि विशेषवन्ति बहूनि तस्मिन्नुपलक्षितानि ॥ १०८
 हता किलैकेन पुलिन्दसेना द्विषद्सहस्रा मददन्तिगर्वा ।
 देवेन देवेन्द्रसमेन साकं शत्रून् विजित्येति किमत्र चित्रं ॥ १०९

अथ गुणगणमुक्त्वा श्रेष्ठिनस्ते सुतस्य
 नृपसचिवपुरोधाः शिष्टमित्रेष्टवर्माः ।

इति जगदुररीणां धारयन्ती मनांसि
 नदतु विजयिनी नो युद्धसन्नाहभेरी ॥ ११०
 नृपतिरनुनिशम्य क्षेमयोगावहानि
 श्रुतविनयधराणां मन्त्रिणां तद्वांसि ।

श्रुतपरिणतवृद्धिस्त्वर्हदर्चः प्रपूज्य
रिपुबलमथ तीर्थं निश्चितार्थो बभूव ॥ १११

इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गममन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥

राजसंक्षीभो नाम
षोडशः सर्गः ।

[सप्तदशः सर्गः]

अथावनीशो मतिमन्द्विरार्थैः स्ववन्धुभिर्मन्त्रभिरामवर्गैः ।
संमन्त्र्य युद्धाभिमुखस्तदैव स्वाहूतवान्सागरवृद्धिमनुम् ॥ १
कश्चिद्द्वटः स्वैर्लिलैर्वयस्यैर्विणिभरन्यैश्च समेत्य तूर्णम् ।
सिंहासनस्थं वसुषेन्द्रसिंहं ददर्श सोऽन्तर्गतहर्षभावः ॥ २
अन्योन्यनामश्रवणाभिरागावन्योन्यमुद्दीक्ष्य च संप्रहृष्टौ ।
ज्ञानंश्च नेयऽथ नरेश्वराय वक्तुं वराङ्गो न विवेद राजा ॥ ३
स्थितं पुरस्ताद्विनयं प्रयुज्य सङ्क्षेपैरुर्जितसर्वगात्रम् ।
समीक्ष्य नागेन्द्रसमानलीलं कश्चिद्द्वटं भूपतिरित्थमूचे ॥ ४
यो भूपतेरपतिकूलकारी योऽनर्थतासंशमनं करोति ।
यो वा युधि स्थैर्यमतिं न जहाच्यो वा सहायत्वमुपैति युद्धे ॥ ५
यो दर्शयेद्युक्तिमतीं च नीतिं हितप्रवृत्तिं प्रतिबोधनाय ।
स एव बन्धुश्च सुतश्च मित्रं गुरुर्गरीयानिति लोकसिद्धम् ॥ ६
तथापि मैत्री धृत्वमावयोस्तु पुरातनी काचिदिहापि चास्ति ।
अकृत्रिमप्रेमगुणावबद्धस्त्वयि स्ववन्धाविव मेऽनुरागः ॥ ७

१ म °बुद्धिस्त्वर्हदब्जाः । २ [ततुं]. ३ [जानंश]. ४ म द्रुतमावयोस्तु.

मत्पुण्यतो वा तव भाग्यतो वा महाजनानां सुकृतप्रभावात् ।
 जित्वारिसैन्यं यदि संनिवृत्तो दास्यामि ते मत्सुतयार्थराज्यम् ॥८
 ततो बृहद्रत्नपिनद्धारं किरीटेक्युरक्कुण्डलानि ।
 प्रलम्बसूत्रं कटिबन्धनं च पट्टं च तस्मै प्रददौ नरेन्द्रः ॥९
 अन्यांश्च सन्मान्य यथोपचारं भृत्यान्भृशं निश्चितमर्थवादी ।
 आहूय मन्त्रीश्वरदण्डनाथान्संनद्यतेत्याशु शशास योद्धुम् ॥१०
 नरेश्वरो भास्वरसत्किरीटश्छत्रोच्चलच्चामरकेतुलक्ष्यः ।
 सुकल्पितं मत्तमहागजेन्द्रमारुह्यं देवेन्द्र इवाभ्यराजत् ॥ ११
 संनद्यं सर्वायुधसंबृतस्य स्कन्धे गजस्याप्रतिमल्लनाम्नः ।
 कश्चिद्द्रष्टस्त्वप्रतिमश्वकाशे यथोदयस्योपरि वालमूर्यः ॥ १२
 मदप्रभिन्नस्वदार्दगण्डं मातङ्गमम्भोदसमाननादम् ।
 अरिंजयं तं विजयोऽधिरूढः शोभां दधौ चन्द्रमसोऽभ्रमूर्धि ॥१३
 चमूपमन्त्रीश्वरराजपुत्राः गृहीतशस्त्रा युधि दुःप्रधर्षाः ।
 आरुह्यं मत्तद्विरदेन्द्रवृन्दं प्रतिस्थिरे योद्धुमैभीप्सवस्ते ॥ १४
 ते कुञ्जराः काञ्चनरज्जुधाराः श्वेतोल्लसच्चामरवीज्यमानाः ।
 मग्नपिच्छध्वजतुङ्गकूटा रेजुविसर्पीगिरयो यथैव ॥ १५
 रथाश्च सद्रत्नसुवर्णनद्वा भास्वदध्वजच्छत्रचलत्पताकाः ।
 महारथैरप्रतिमैर्निविष्टाः कल्पान्तमूर्या इव ते विरेजुः ॥ १६
 युद्धाध्वभारक्षमसत्त्वयुक्ता विचित्रवर्णाः कुलशीलशुद्धाः ।
 तुरङ्गमा वायुसमानवेगाः समीयुरुर्वीपतिशासनेन ॥ १७
 अनेकवेषो बहुदेशभाषस्तटिद्वपुश्चश्वलघूर्णितास्त्रः ।
 तेषां पुनर्वाजिरथद्विपानां पदातिसंघः पुरतः प्रतस्थे ॥ १८

१ क तिरीट०. २ क °तिरीटः. ३ क योद्धुमभीप्सुवस्ते. ४ [°तड्डिपु°].

केचित्पुनर्भूपतिशासनस्थाः केचित्स्वभावोत्तममानदृष्टाः ।
 केचित्परेन्द्रः परिभूयमाना उत्तस्थिरे योद्धुमभीप्सवस्ते ॥ १९
 देशार्थसंग्रामपुराकरांश्च ताम्बूलवस्त्रोत्तमभूषणानि ।
 प्रदाय योऽस्मान्सकलत्रपुत्रान् वभार सन्मानपुरस्सराणि ॥ २०
 तस्येष्वरस्यापतिशासनस्य समक्षतो मानमदोद्धतानाम् ।
 शिरांस्यरीणामसिभिर्निर्कृत्यं निवेद्यन्तो निरुणो भवामः ॥ २१
 स्वजीवितं बन्धुजनं विहाय जिघृक्षवो ये प्रतिमल्लनागम् ।
 प्रगृह्ण तेषां वरवाहनानि निष्कासयामो निरपत्रपास्तान् ॥ २२
 ये निष्कृपा न्यायपथादपेता विनाश्य देशान्स्वजनं विलुप्त्य ।
 तेषां गदाभिः प्रविचूर्ण्य देहान् विशोपयिष्याम इहाजिभूमौ ॥ २३
 ये स्वामिनं नः परिभूय हृष्टाः प्रत्यागता लोभनिविष्टचेष्टाः ।
 तानद्य हत्वा समरे दुराशाश्चै काकगृध्रानभितर्पयामः ॥ २४
 एवं भट्टाश्चित्रमुदाहरन्तस्तुरङ्गमातङ्गरथाधिरूढाः ।
 समुद्रतास्त्रा धरणीन्द्रगेहान्निश्चक्रतुर्भूपतिना सहैव ॥ २५
 कश्चिद्भृटं योध्दुमभिव्रजन्तं नरेन्द्रवेषोद्धतचारुलीलम् ।
 समीक्षमाणाः पुरवासिनस्ते जजलपुरित्यं स्वमनोगतानि ॥ २६
 नैवासि भद्रार्थविशेषदर्शी हितस्य वक्ता च न तेऽस्ति कश्चित् ।
 न योग्यमेतद्विषयां हि युद्धं किं वान्वयाचिन्तितमेतदार्य ॥ २७
 अनेकहस्त्यश्वरथैः प्रकीर्ण वलं महद्योधसहस्रपूर्णम् ।
 युद्धाविजेतुं समरे न शक्यं मा साहसं कर्म कृथाः प्रशाम्य ॥ २८
 कुताश्रिदागत्य वाणिकसुतोऽभूत्कुताश्रिदागत्य वनेष्वरोऽभूत् ।
 कुताश्रिदागत्य जनपियोऽभूत्वं वत्स मा मृत्युपर्थं प्रयाहि ॥ २९

१ म निकृत्य. २ [निर्क्षणा]. ३ [°श्वकाक]. ४ म समुद्रुतास्त्रा.
 ५ [निश्चकमुः] ६ क [चिन्तितमेतदायम्], [किं वा त्वया चिन्तितमेतदार्य].
 ७ [युद्धं विजेतुं]. ८ क जनेश्वरो.

पुरा वराकानटवीचरांस्तानशिक्षितानल्यमतीन्पुलिन्दान् ।
 जित्वा रणे सागरवृद्धिपुण्यादिदं तथैवेति मनस्यमंस्थैः ॥ ३०
 सुनन्दया किं तव राजपुत्र्या संकेशवैरास्पदभूतया ते ।
 या काचिदत्रैव वणिग्जनानां सुतानुकूला च सुखेन लभ्यते ॥ ३१
 किं श्रेष्ठिपुत्रस्य नृपात्मजा वै वेलोदधिं तर्तुमयं प्रयासः ।
 गजेन्द्रवृन्दैः परिमृद्यमानं समुद्धरेत्किं वद सा सुनन्दा ॥ ३२
 एवंब्रुवाणानपरे निषिध्य समूच्चुरित्यं वचनैर्यथार्थैः ।
 वणिकमुतो राजकुमार एष वपुः प्रकाशीकुरुते स्ववंशम् ॥ ३३
 जयारिसेनां स्वभुजोरुवीर्यं भद्राणि मंक्षवाप्नुहि भद्रमात्या ।
 इत्थं शशंसुस्त्वपरे वचांसि स्वाशीर्जयप्रतिपुरःसराणि ॥ ३४
 जित्वा रिपूनश्तिमपभावो व्यपास्य राज्ञो हृदयस्य तापम् ।
 लभस्य देशं स्वसुतां च पूजां यशःपताकामिति केचिदत्तु ॥ ३५
 एवं जनानां बहुभिर्वचोभिः प्रशंस्यमानः स्तुतिमङ्गलैश्च ।
 पुरो वाहिर्भूपतिना सहैव जगाम कश्चिद्दृट ऊर्जितश्रीः ॥ ३६
 ज्वलन्त्किरीटाङ्गदचारुहाराः समुच्छ्रुतातिध्वजकेतुलक्ष्याः ।
 नरेन्द्रसिंहा बृहदुग्रोषाः परस्परं ते ददृशुः ससैन्याः ॥ ३७
 प्रभञ्जनाभ्याहृतचञ्चलोर्मिरदध्रुनादो जलधिर्यथैव ।
 तथैव रोषानिलवेगनुन्नः सेनार्णवः सोऽतिभृशं चकम्पे ॥ ३८
 गजा जगर्जुस्तुरगा हिहेषुर्ज्यामन्दनादान् रथिनः प्रचक्रुः ।
 पदातिसैन्यस्य च सिहनादैराध्रांतदिक्का धरणी बभूव ॥ ३९
 शङ्खाश्र भेर्यः पटहाश्र घण्टा वंशास्तथा मर्दलका हलाश्र ।
 प्रावृद्धपयोदा इव ते रवेण प्रपूरयन्तो गगनं विनेदुः ॥ ४०

१ म मनस्यमंस्थ. २ म °वीर्यात्. ३ [भंक्षवाप्नुहि]. ४ [भद्रमार्य].
 ५ [°राधमात°].

स्थानानि संपाद्य चतुर्विधानि विस्फार्य चारूणि धनूषि दोर्भिः ।
 आकर्णपूर्णानवकृष्य पाणी परस्परं ते विविधुर्वृश्चराः ॥ ४१
 तैरीयमाणा निशिताः पृष्टका मनोजवा हेमनिवद्धुपुङ्गाः ।
 वक्षांस्यरीणां विभिदुः पृथूनि कूटान्यथालका इव पवतानाम् ॥ ४२
 अथेन्द्रसेनस्य नराधिपस्य सेनाऽप्रसद्याभिययौ सरोषा ।
 उद्धार्य खड्गानशनिप्रकाशान्पत्युद्ययौ देवनरेन्द्रसेनाम् ॥ ४३
 स्वस्यामिसंबन्धकृतप्रतिज्ञा निबद्धरागाः समरऽभिलाषाः ।
 स्ववर्यमानान्नतवद्कक्षाः परस्पराङ्गानि भृशं प्रजहुः ॥ ४४
 ईलीभिरालालितभासुराभिः पादातयः प्राक्सहसाभिहन्य ।
 शिरांस्युरांस्यूरुकटीररीणां विचार्च्छदुस्तीक्ष्णमुखीभिराशु ॥ ४५
 शैरः पराम्बाण्यभिताढ्य शूरा निर्भत्सर्य वक्षांसि ललङ्घिरेऽन्ये ।
 ते लङ्घ्यमाना विगतात्महस्ताः प्रसद्य तान्मुष्टिभिराशु जघ्नुः ॥ ४६
 गुर्वीभिरुर्वीभिरथायसीर्भिर्गदाभिरुद्धाम्य महावलास्ते ।
 विचूर्णयांचक्रुरभीत्य शत्रून्वज्राभिघाता इव पर्वतेन्द्रान् ॥ ४७
 कचग्रहेण प्रदने प्रसद्य निपात्य भूमौ द्विरक्षेप्रहारैः ।
 विदार्य वक्षो जठराण्यरीणां प्राणान्विचिन्वन्त इवार्थुरन्ये ॥ ४८
 केचित्पुनर्लब्धशिरःप्रहाराः क्षरन्ववासुक्षस्थगितात्मवक्त्राः ।
 नैरेक्ष्यमाणा ध्वनिनावगम्या इतोऽमुतो जग्मुरहीनसत्त्वाः ॥ ४९
 विहाय चाभ्यर्णतयाप्नवाने^२ प्रसद्य चक्रः सहसा नियुद्धम् ।
 केचित्परेषां प्रतिशृणु शश्वं व्याहन्तुकामा मुमुचुस्तदानीम् ॥ ५०
 परे पराक्षीणि वितुद्य कुन्तैस्ते निःक्रिया वाक्तुरुक्षवाणैः ।
 अधिक्षिपन्तो ज्वलिताग्निकल्पा विसर्जयामासु रवज्ञयान्यान् ॥ ५१

१ [°सेना]. २ क [°यसाभिः]. ३ [अभीत°]. ४ [प्रथमे]. ५ म
 छुरिता°. ६ [इवासुराण्ये]. ७ म [°स्थनितात्म°]. ८ [निरीक्ष्यमाणा]. ९ क
 पूनुवाने, [विहायसाभ्यर्णतया प्रयाणे].

प्रत्यागतानुद्यतशस्त्रपाणीन् प्रहर्तुकामानभितः समीक्ष्य ।
 प्रवज्ञ्य शिक्षावलकौशलेन विनम्य पाशैर्निबबन्धुरन्ये ॥ ५२
 केचित्पुरापि प्रतिबद्धवैरा: पुनर्विशेषेण हि युद्धशौण्डाः ।
 संज्ञाभिराहूय परस्परस्य गात्राणि शस्त्रैर्विभिदुर्वशंसाः ॥ ५३
 कोचित्पुनर्लोहनिबद्धदण्डैश्चण्डाः परेषामभिसंस्कृतानि ।
 एकप्रहारैस्तु दृढैरभिन्दन् शिरांस्यलामूत्पलवत्प्रस्त्र ॥ ५४
 केचित्प्रभिन्नाः परशुप्रहारैः समुद्धरैस्तीक्ष्णमुखैश्च टङ्कैः ।
 परे गदाधातविचूर्णिताङ्गास्तदैव जग्मुः परलोकमुग्राः ॥ ५५
 तेषां मदोद्दिन्द्रिगजाकृतीनां रणप्रियाणां कृतपौरुषाणाम् ।
 शूरव्रणालङ्कृतभासुराणां सुसंप्रहरास्तुमला वभूत्वं ॥ ५६
 नृकुञ्जराः केचिदहीनसत्त्वाः पादप्रदेशग्रथितान्त्रमालाः ।
 विरेजिरे युद्धभुवि भ्रमन्तः पाशाववद्धा इव मत्तनागाः ॥ ५७
 केचिन्नृसिंहा रुधिराक्तशस्त्राः परप्रहारप्रभवोरुचीर्याः ।
 विरेजुराजावतिघोररूपा व्रन्तो गजेन्द्रानिव दृप्तसिंहाः ॥ ५८
 स्वान्त्राणि केचिज्जठरधृताँनि निगृह्य वामाङ्गकरैर्नेश्वराः ।
 संगृह्य खड्गान्यथ दक्षिणैस्तु विरेजुराजाविव राक्षसास्ते ॥ ५९
 अन्तःप्रकोपात्परिवृत्तनेत्राः केचित्पराधातनिरस्तजीवाः ।
 निःपीड्य दन्तैर्दशनच्छदांस्ते निपेतुरुच्यां तु सहस्रकोद्या ॥ ६०
 उरस्मु केचित्समरप्रियाणां निहत्य पूर्वं पृथुसर्वलोहैः ।
 निःकृष्य यातांब्ररयानुबाध्य तैरेव तांस्तीव्ररुषः प्रजहुः ॥ ६१
 परस्पराधातविघट्टितास्त्राः परस्परं पीनभुजैर्निपीड्य ।
 निपात्य भूमावतिरोषरौद्राः क्रमेण चक्रुस्तदरोत्तरांस्तान् ॥ ६२

१ [शिरांस्यलाबूत्पल०]. २ [वभूत्वः]. ३ म °द्रुतानि. ४ [यातांस्वरयानुबाध्य].
 ५ [चक्रुस्त्वधरोत्तरांस्तान्].

खङ्गः प्रहन्तुनितरेतरस्य विलोक्य वैराग्यमयुः सुभीताः ।
 रागः समो मध्यमधीषु जातः शौर्यान्वितेषु द्विगुणो वभूव ॥६३
 लब्धव्रणाः आन्ततमा रुदन्तस्तृषादिताः शीतजलाभिलाषाः ।
 लज्जां विहायैव जिजीविषन्तः प्रदुद्रुवुः साध्वससन्नचित्ताः ॥६४
 मत्तद्विपानां चरणाभिघातैः खुरावपातैर्वरवाजिनां च ।
 पदातिपातै रथनंभिनंदै रजस्ततानाम्बरदिग्मुखानि ॥ ६५
 अभ्यर्णयोगात्प्रतिमिश्रिताश्र रजोऽवतानान्मतिविभ्रमाच ।
 प्रहर्तुकामाः प्रसमुद्यतार्था न जङ्गिरे ते स्वजनाञ्जनांश्च ॥ ६६
 एवं प्रवृत्ते समरेऽतिघोरे परस्पराधातरवातिभीता ।
 रजःपटागुंडितविग्रहा सा मही न रेजे सभयाङ्गनेव ॥ ६७
 ते चापि योधाः पिहिताक्षिवक्त्राः करावमर्शप्रतिबद्धसंज्ञाः ।
 चिरादिवात्मप्रियवन्धुवर्गान्नाश्लिष्यते मोचयितुं समर्थाः ॥ ६८
 नृणां हयानां करिणां बृहद्विर्वर्णैर्महच्छोणितमुद्दिरक्षिः ।
 रणाजिरोत्कीर्णरजः शशाम प्रावृद्धप्रयोदैरिव रेणुरुच्याः ॥ ६९
 प्रवृद्धधूमाकृतिधूसराणि नभोभुवं च प्रति तानि याँति ।
 असुग्विमिश्राणि रजांसि तत्र तान्येव सिन्धुरवपूषि बभ्रुः ॥ ७०
 प्रशान्तरेणौ चरणप्रचारे परस्परालोकविवृद्धवैराः ।
 आहूय तान्नामभिरुग्ररोषाः पदातयो जघ्नुरतीव शूराः ॥ ७१
 हयांस्तु जातिप्रवरान्विनीतानारुह्य कार्योद्वहने समर्थान् ।
 विकृत्य कुन्तेष्वसिपाशहस्ता बलं रिपूणाममृदुः प्रसह्य ॥ ७२
 अथेतरेऽप्यख्वकलापगलभा भृशं द्विषाङ्गिः परिभूयमानाः ।
 प्रति प्रधाव्याश्र सहस्रवृन्दैः समन्ततस्तान् रुहुयुः क्षणेन ॥ ७३

१ क बद्धव्रणः २ म °नेमिनर्धः ३ [यान्ति]. ४ [रिपूणां ममृदुः].

रथाधिरूढाः प्रचलत्कीटो ज्वलत्तनुत्रावृत्सर्वगात्राः ।
 धनुभिराश्विन्दधनुर्वपुर्भिर्वर्षासु धारा इव तेऽप्यदीव्यन् ॥ ७४
 मदोद्धतानामथ कुञ्जराणां चलन्महाशैलसमाकृतीनाम् ।
 स्कन्धाधिरूढाः प्रतियोदुकामाः परस्परं तेऽभ्यनयन्गजेन्द्रान् ॥ ७५
 एवंप्रकारे तुमुले विमर्दे शौर्यस्य पुंसामनुयोगभूतम् ।
 समुद्रृतासिद्युतिसंनिरस्ता प्रभाविभूतिः स व [— — —] ' ॥ ७६
 ते योधमुख्याः कण्यैर्गदाभिः सतोमैरः पट्टिसभिण्डमालैः ।
 चक्रैश्च शूलैः पृथुलोहवृन्तैः प्रजघ्नुरन्योन्यमपोघमोक्षैः ॥ ७७
 केचिद्विसृष्टानि वरायुधानि स्वकौशलाच्चिच्छुरन्तरिक्षे ।
 केचिदगृहीत्वान्तर एव वीरास्तदैव [-] तौन्यमुच्चन्परेभ्यः ॥ ७८
 गजैर्गजाः प्रस्फुरद्विकल्पा रथै रथाश्वैत्कृतताः समेताः (१) ।
 तदातियुध्यन्त हयैर्हयास्ते पदातयस्तत्र पदातिभिश्च ॥ ७९
 गजास्तुरङ्गाश्च विपन्नदेहाः क्षितौ पतन्तः करुणं चक्षुः ।
 नरा वराका युधि भीरवोऽन्येऽप्यलब्धकामा मरणं प्रयाताः ॥ ८०
 लब्धत्रणानां रणकर्कशानां वक्षस्स्थलेभ्यः सुतरक्तधाराः ।
 युतं विरेजुः कृतसाहसानां शैलेन्द्रभित्तिष्विव धातुधाराः ॥ ८१
 महाजिभूमौ रुधिराक्तगात्रा प्रभग्रमातङ्गरथाश्ववृन्दा ।
 बहिर्गतान्त्राभविलम्बमाला सन्ध्याभ्रागं सकलं बभार ॥ ८२
 कचिद्वजानां शवसंकटत्वात्कचिद्याङ्गावयवैकदेशात् ।
 कचित्कवन्धप्रतिनर्तनाच्च महारणो भीमतमो वभूव ॥ ८३
 स्थितः कचिच्च कचिदेव नग्नैः कचित्पुनः शूरगतिं प्रपन्नः ।
 कवचिच्च नीचः कवचिदेव तुङ्गः क्वचिज्जयं प्राप्य भृशं जहर्ष ॥ ८४

१ क तिरीयाः, २ क बभूव शूराः, ३ [ते], ४ [हुतं], ५ [भग्नः].

इति गजरथवाजिपादभर्तै-
 विपुलबलैः समदैश्चतुर्विधैस्तैः ।
 उभयनृपयशोवसन्तभूतै-
 निंचिततया बभूव मिश्रयुद्धम् ॥ ८५
 ललितपुरपतर्नराधिपस्य
 प्रथितधियो मधुराधिपस्य राज्ञः ।
 यदभवदनयोर्विशेषयुद्धं
 तदहमशेषमतस्तु संप्रवक्ष्ये ॥ ८६
 इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 मिश्रकयुद्धो नाम
 सप्तदशमैः सर्गः ।

[अष्टादशः सर्गः]

नरेश्वरा ये मधुराधिपस्य भृत्याः प्रकृत्यर्थपराः समेताः ।
 तान्सापदानप्रमुखैरूपायैः स देवसेनः स्ववशे चकार ॥ १
 ततो महत्त्वं त्वविगण्य तस्य जिगीषया नीतिपराक्रमाभ्याम् ।
 तदेन्द्रसेनेन स योद्धुकामः स्वयं प्रतस्थे खलु देवसेनः ॥ २
 संतेजनोपायविधानमार्गैः प्रोत्साह्यमानामथ सान्त्वदानैः ।
 विजेतुकामोऽथ वर्णथिनीं तां व्यूहं विधिङ्गः कृतवानभेद्यम् ॥ ३
 कृतोपधानाः खलु योधमुख्याः पृष्ठा यथाकामममृत्युभीताः ।
 अन्वागता येऽप्यनुरागिणश्च सवाहनास्तान्प्रशशास योद्धम् ॥ ४

१ [सप्तदशः].

स्वभावतः शूरतमाः कृतास्त्रा लब्धाभ्यनुज्ञाश्च पुनर्नृपेण ।
 इतस्ततः शत्रुचमू वराह्मैर्घ्नन्तो विचेर्ष्युधि कालकल्पाः ॥ ५
 एवं प्रवृत्तं समरं सुधोरं महार्णवक्षुभ्यतरङ्गलोलम् ।
 शस्त्रातिसंघटनजातवहिं समीक्ष्य राजा च तदेन्द्रसेनः ॥ ६
 बलाहकाख्यं वरवारणेन्द्रं द्रुतं समारुद्धा गृहीतशस्त्रः ।
 षड्भिर्गजानां तु वृतः सहस्रैः किमास इत्येतदथाजगाम ॥ ७
 आयान्तमालोक्य तदिन्द्रसेनं महेन्द्रविक्रान्तमपारवीर्यः ।
 करीन्द्रवृन्दविंजयोऽभ्युपेत्य पुरःसरीं तस्य चमू रुरोध ॥ ८
 आकर्णपूर्णानि शरासनानि कृत्वैव लक्ष्येषु निपात्य दृष्टीः ।
 अन्योन्यमिष्वस्त्रविदः समेताः समन्ततः संविविधुः प्रसव्य ॥ ९
 गजाधिरूढैस्तु निपात्यमानास्ते शङ्कवो हस्तिषु बद्धपिच्छाः ।
 शिखण्डिनः पर्वततुङ्गकूटान्निलीयमाना इव पर्वतेषु ॥ १०
 तेषां तु संनाहवतां गजानां मुखेषु संयन्त्रिवचोदितानाम् ।
 आदन्तवेष्टादितरेतरस्य दन्ता ममर्जुद्दलोहबद्धाः ॥ ११
 ते तोमराधातविभिन्नगात्राः प्रचक्षैरल्लोहिततीवधाराः ।
 गजा मदान्धाः समरे रिपूणामौत्पातिकाम्भोधरभीमरूपाः ॥ १२
 गदाश्च गुर्व्यः परिधा वृहन्तो निशातधारा दृढशक्तयश्च ।
 निपात्यमाना युधि योधमुख्येश्चक्रः परास्तत्करिणः स्वर्यन्तृन् ॥ १३
 अन्योन्यदन्तांस्तु बलाद्वजेन्द्रा उत्पात्य रोषाद्विसंतत्क्षणेन ।
 स्वलोहिताद्रैरभिजघ्नुरन्यान्नीराजनायामिव तैरलातैः ॥ १४
 योधान्गजस्योर्ध्वगतांस्तु केचित्सपूर्वमध्यान्तनिषादिनोऽन्यान् ।
 संबन्धविद्वर्निशितैः पृष्ठत्कर्निपातयामासुरपेत्य धीराः ॥ १५

१ [तमिन्द्रसेन]. २ क संविदधुः ३ [परिक्षरंल्लोहित०]. ४ म संयन्तृन्,
 ५ [रोषाद्विसवत्].

विनिश्चितार्था विजयस्य योधा धनुर्विमुक्तैरिषुभिः किरन्तः ।
 उपेन्द्रसेनस्य बलं विशालं पराङ्मुखीचक्रुरतुल्यवीर्याः ॥ १६
 पराङ्मुखानामथ सैनिकानां पृष्ठेषु कान्ताननवीक्षितेषु ।
 बाणा निपेतुर्द्वतां जवेन पश्चार्धकायेषु च कुञ्जराणाम् ॥ १७
 तेषां पुनः प्रद्रवतां ध्वजाश्च छत्राणि चामीकरदण्डवन्ति ।
 विधृतवालव्यजनानि चैव पेतुः पताकाश्च सवैजयन्त्यः ॥ १८
 उपेन्द्रसेनस्तु विलोक्य सेनां विभज्यमानां विजयप्रधानैः ।
 विहाय लज्जामथ विद्रवन्तीमपारसन्त्वः प्रसर्म चुकोप ॥ १९
 संनाहिनः स्वान्करिणां समूहांस्ततस्तिरस्कृत्य धनुर्विकृष्य ।
 उपेन्द्रसेनस्त्वरितोऽभ्यगच्छज्जिधांसया तं विजयस्य सैन्यम् ॥ २०
 आयातमारोपितचारुचापं शरैः किरन्तं रिषुवाहिनीं ताम् ।
 स्वतेजसा प्रज्वलितार्कभासं मेने जनः कालमिवोग्ररूपम् ॥ २१
 जयश्रिया संजनितानुरागैः स्वसैनिकैः संपरिवारितस्तैः ।
 तस्यौ परस्याभिमुखो मुहूर्तं रणाजिरे युद्धमदोपनद्धः ॥ २२
 उपेन्द्रसेन प्रतिचोद्ययातास्तद्योधवीरा विदिताख्योगाः ।
 शरोरुधारास्त्वमुच्चजसं प्रावृद्धपयोदा इव वारिधाराः ॥ २३
 तच्छौर्यवीर्यप्रतिनष्टचेष्टस्तसैनिकाक्रान्तहृतप्रतापः ।
 तद्वाणनिर्भिन्नतनुः स मन्त्री तिरोदधे स्म स्वनराधिषेन ॥ २४
 उपेन्द्रसेनाभिहतप्रतापं प्रभग्रसेनं विजयं निरीक्ष्य ।
 कश्चिद्दृटस्तर्णमुपेत्य तस्य स्थितः पुरस्तादनपेतसन्त्वः ॥ २५
 घण्टारबोन्मिश्रिततूर्यघोषं रत्नप्रभाहेपितभानुभासम् ।
 गजेन्द्रकेतुं प्रतिलक्ष्यमाणं गजाधिपं त्वप्रतिमल्लसंज्ञम् ॥ २६

आरुण नीलाद्रिसमीसकल्पं कश्चिद्भट्टं बालरविभकाशम् ।
 द्वन्तं स्वसैन्यं प्रसमीक्षमाणस्तमैन्द्रसेनिः प्रसहेनुवाच ॥ २७
 किं वा स्ववंशानुचितेन तेन तवार्धराज्येन मुखेन मृत्योः ।
 सुनन्दया वा किमु कालरात्र्या जीवन्नरः पश्यति भद्र भद्रम् ॥ २८
 नृपैर्नृपाणां समरे प्रवृत्ते नैवासि योग्योऽत्र वणिकमुत्त्वात् ।
 अपोहैथास्मत्पुरतोऽल्पबुद्धे न्यूने वयं नो भुजमुच्छ्रयामः ॥ २९
 लप्स्येऽहमुर्वीशसुतामिति त्वं दुराशया क्लेशमुपैष्यकस्मात् ।
 तादग्निधं निख्पमप्रवीणं न हन्मि निष्कारणमाशु याहि ॥ ३०
 यदि प्रयातं पुरतो न चेच्छेस्तावत्प्रतीक्षस्व मुहूर्तमात्रम् ।
 निकृत्य तेऽज्ञानि नृपात्प्रजायै संप्रेषयाम्यद्य हि मा त्वरिष्ठाः ॥ ३१
 उपेन्द्रसेनस्य युवाधिपस्य युवत्वतेजोबलगर्वितस्य ।
 गिरं निशम्यात्पमनोरुजन्तीं कश्चिद्भट्टः प्रत्यवदद्वृष्टा तम् ॥ ३२
 यो वा स वाहं तव किं मयात्र गजः स एवायमभीमितार्थः ।
 मयाधिरूढस्तु सहैव पित्रा त्वां प्रापयत्यद्य यमातिथित्वम् ॥ ३३
 गजं परेषां परराजधानीं ग्रहीतुकामस्तु विनैव वैरात् ।
 किमागतस्त्वं धनमानदप्तो लज्जान्वितश्चेद्वद् जातिधीर ॥ ३४
 विक्रीतवान्यो नयवद्विनीतः शूरः कृताख्तो न च मृत्युभीरुः ।
 संग्रामकाले स जयत्यरातीनाकृष्यमाणो विषयते न कश्चित् ॥ ३५
 स्वजीवितेनात्र ममाग्रतस्तु यदि प्रयातो निरुपद्वेण ।
 प्रेक्षस्व पश्चात्तव मृत्युकल्पं श्रीदेवसेनाख्यमदीनसत्त्वम् ॥ ३६
 अवज्ञयान्यांस्तु विवक्षते वा यत्किञ्चिदात्मोब्निगर्वदग्धः ।
 निरस्तविज्ञानगुणाववन्धः स लाघवं सत्सु परं प्रयाति ॥ ३७

१ क [समान]. २ क प्रसमन्, [प्रहसन्]. ३ [अपेक्षास्मृत्].
 ४ [प्रयातुं]. ५ [विक्रीतवान्यो].

न केवलं वाक्लहेन कार्यं निरर्थकेनैवमथावयोस्तु ।
 व्यक्तीभवत्यद्य हि पौरुषस्य सुवर्णसारो निकषाश्मनीव ॥ ३८
 प्रशस्य तावद्वणिजां प्रहारान्त्राणक्षयं कर्तुमनीहमानान् ।
 इति ब्रुवाणो वरवारणेन्द्रं कथिञ्चटो योद्धुमुपानिनाय ॥ ३९
 अभ्यर्णमायान्तमुपेन्द्रसेनः समीक्ष्य कोपायतताम्रदंष्ट्रिः ।
 बलाहकं ताम्रगिरिप्रकाशं कथिञ्चटस्याभिमुखं निनाय ॥ ४०
 मृगेन्द्रशावाविव संप्रस्तृ युद्धातिशौण्डाविव भर्त्सयन्तौ ।
 परस्परं व्यद्धुमयःशरायैः प्रारब्धवन्तौ प्रतिबद्धवैरौ ॥ ४१
 बृहत्पृष्ठलैस्त्वथ वत्सदन्तैः सूचीमुखैः पूर्णतमार्धचन्द्रैः ।
 कर्णेषु नाराचवैश्व तीक्ष्णैरविद्यतां तौ च परस्परं हि ॥ ४२
 ताभ्यां धनुर्वेदविशारदाभ्यां विमुक्तनाराचशरोरुवर्षाः ।
 विभासमानाः खतलं वितत्य वर्षासु धारा इव संनिपेतुः ॥ ४३
 अन्योन्यमर्माणि निरीक्षमाणावन्योन्यशक्त्वाणि च वश्वयन्तौ ।
 स्वसन्धिमर्माण्यभिपालयन्तौ शार्दूलोताविव भर्त्सयन्तौ ॥ ४४
 सर्वायसैः प्रासवरैश्च शूलैश्चक्रैश्च गोलायसशङ्कुभिश्च ।
 संभिण्डमालैः कणयैश्च तीक्ष्णैरद्रेरिवाद्रिं क्षिपतः स्म तूर्णम् ४५
 उपेन्द्रमुक्तानि वरायुधानि विकुण्ठितान्यप्रतिमल्लमूर्धि ।
 मुखे ममज्जुर्वणिजात्मजेन मुक्तानि तानीन्द्रसुतद्विपस्य ॥ ४६
 अथेन्द्रसेनस्य सुतेन मुक्ता ममज्जु मूर्धा प्रतिमल्लनाम्नः ।
 बलाहकस्योन्नतकुम्भभेदं चकार कथिञ्चटमुक्तशक्तिः ॥ ४७
 उपेन्द्रसेनाहतशङ्कवस्ते निपेतुराशु प्रतिमल्लमूर्धि ।
 कथिञ्चटप्रेरिततोमराणि बलाहकाङ्गावयवानभिन्दन् ॥ ४८

१ क शूचीमुखैः २ [सभिन्दिपालैः] ३ क ममज्जु, [ममज्जु मूर्धि]

तौ वारणेन्द्रौ भवतस्तदानीं व्रणाननेभ्यः सुतरक्तधारौ ।
 उल्काभिघातक्षतभिन्नरूपौ यथा नगौ स्यन्दितधातुधारौ ॥ ४९
 अमृकपरिक्लिन्नतमाङ्गरागौ गलोज्ज्वलत्काञ्चनरञ्जुबद्धौ ।
 सविद्युतौ सान्ध्यवपुर्भृतौ तौ विरेजतुर्वारिधराविवेभौ ॥ ५०
 अन्योन्यमुक्तानि च तोमराणि सर्वायसान्यप्रतिमद्युतीनि ।
 नभस्तले रेजुरतीव तानि सविद्युदुल्का इव संपतन्त्यः ॥ ५१
 उपेन्द्रसेनेन विमुक्तशक्तिः करेण वामेन निपात्य भूमौ ।
 कश्चिद्दयो दक्षिणवाहुनाशु जघान शक्त्या हृदि सर्वशक्त्या ॥ ५२
 तत्तीक्ष्णशक्तिप्रहतोऽभिपद्य चक्रेण सन्ध्यार्कवपुर्धरेण ।
 पाश्चात्यमप्याशु निपात्य भूमौ कश्चिद्दद्यस्य प्रचकर्ते केतुम् ॥ ५३
 किं वा त्वयाहं चिरमत्र योत्स्ये वणिकमुतेनास्त्रगुणाश्रयेण ।
 इति प्रभाष्य प्रतिभत्स्यनीतिर्मुमोच चक्रं पुनरैन्द्रसेनिः ॥ ५४
 आयान्तमालोक्य हि कालचक्रं तद्रञ्चयित्वा स्थिरधीः सुचक्रम् ।
 धृतं प्रगृह्णान्यदमोघचक्रं चिच्छेद हस्तं कट्टावनद्धम् ॥ ५५
 भूयोऽप्युपेन्द्रस्य हि पारिपार्श्वान्निहत्य तूर्णं कणयप्रहारैः ।
 ध्वजातपत्रामलचामराणि निपातयां भूमितले वभूव ॥ ५६
 शिक्षाबलेनात्मपराक्रमेण छिन्नैकहस्तः पुनरैन्द्रसेनिः ।
 मुहूर्तमेवं युयुधेऽतिवीरो भग्नैकदन्तो द्विरदो यथैव ॥ ५७
 कश्चिद्दयोऽस्त्राण्यमुच्चद्विशङ्को द्वाभ्यां भुजाभ्यां द्रुतमायताभ्याम् ।
 जवेन गत्वा विविशुः शरीरे यथोरगेन्द्रा विवरेऽचलस्य ॥ ५८
 उपेन्द्रसेनस्य वरायुधानि सव्येन हस्तेन विनिःस्तानि ।
 यथुः पुनस्तानि च मन्दमन्दं लूनैकपक्षा विहगा यथैव ॥ ५९

निर्वीर्यतां राजसुतस्य बुद्धा कश्चिद्भट्टश्चारुभटोऽतितूर्णम् ।
 गजं गजेन्द्राप्रतिमलुनाम्ना बलाहकं वायुरिवोन्ममधी ॥ ६०
 दिवा इषन्तं प्रतिभगदन्तं बलाहकं चाप्रतिमलुनागः ।
 प्रहत्य तूर्णं करपाददन्तैर्हस्तेन हस्तं करिणो न्यकासीत् ॥ ६१
 शक्ति सुतीक्ष्णां त्वरया विशृण्व सूपेन्द्रसेनोरसि निर्मुमोच ।
 विभिद्य वक्षस्थलमीश्वरस्य ममज्ज भूमावतिचण्डवेगा ॥ ६२
 शक्तिप्रहारेण विभिन्नदेहं भ्रान्तेक्षणं वीक्ष्य वणिकसुतस्तु ।
 उद्भृत्य खड्डं च तटित्पकाशं शिरश्च तस्य प्रचकर्त शूरः ॥ ६३
 चलज्जवलत्कुण्डलमण्डितास्यं मणिप्रभारञ्जितसत्किरीटम् ।
 शिरः पपातेन्द्रसुतस्य तस्य सौरं यथा मण्डलमस्तमूर्धि ॥ ६४
 मानोन्नतं नावनतं परेभ्यो दोलायमानं भ्रमरावलीकम् ।
 शिरः सपांदं विनिपात्य भूमौ प्रफुल्लपद्माकृतिमादधार ॥ ६५
 प्रभञ्जनप्रेरितनीरदे खे दुःप्रेक्षतां याति यथा ग्रहेन्दः ।
 तथारिपक्षक्षणोदितश्रीः कश्चिद्भट्टश्चारुभटो बभूव ॥ ६६
 संप्राप्य युद्धे विजयावतंसं स्वसैनिकानां मुदमादधानः ।
 महाबलः सिंहनिनादमुच्चैर्नादं चेतो द्रिष्टतां च भिन्दन् ॥ ६७
 अथोभयोर्भूपतयो नृसिंहाः स्वमानविश्रम्भरसोरुवीर्याः ।
 स्वान्स्वान्करीन्द्रानघिरुद्ध्वं सर्वे संनह्य युद्धाभिमुखा बभूवः ॥ ६८
 ततः करीन्द्राः प्रतिगर्जयन्तो वाग्वीरनादागतमेघतुल्याः ।
 परस्परं पादकराग्रदन्तैर्जघ्नुः सयोधाः समुपेत्य चण्डाः ॥ ६९
 मुख्यण्डभिः शक्त्यसियष्टिभिश्च चक्रैर्गदाभिः कणयैश्च टङ्कैः ।
 समुद्दरैस्तोमरसर्वलोहैः परस्परं ते च भृशं प्रजहुः ॥ ७०

१ [°ममद]. २ [न्यकासीत]. ३ [सोऽपीन्द्रसेनोरसि]. ४ क सत्तीरि-
 थम्. ५ [सपातं]. ६ [शिखाण्डभिः].

केषांचिदास्यानि सकुण्डलानि पादाश्र केषांचिदथाम्बुजाभाः ।
 कराः स्फुरत्काश्चनभूषणाढ्याः शस्त्रप्रहारादवनौ निपेतुः ॥ ७१
 किरीटिपटोज्जवलहारसूत्रैश्छत्रध्वजैश्चामरकेतुमाल्यैः ।
 करीन्द्रधण्टाहयकिङ्किणीभिः कृतोपहारेव मही बभासे ॥ ७२
 अंथेन्द्रसेनश्च हि देवसेनः प्रबद्धवैरौ दृढवद्धकक्षौ ।
 कृतप्रतिज्ञावसुरेन्द्रकल्पौ परस्परं ताववलोक्य वरीरौ ॥ ७३
 स्वनामगोत्राण्यभिधाय रोषात्सञ्चिभङ्गे वदने प्रकृत्य ।
 आदाय तान्यस्त्रवराणि दोर्भिरुल्लासयन्तावभिमानया तौ ॥ ७४
 देशाकरग्रामपुराणि यानि बलद्वयेनैकविवन्धनं च ।
 य आवयोरेक इहावशिष्टस्तस्मै भवत्वेतदिति ब्रुवाणौ ॥ ७५
 कुरु त्वमेकं प्रथमं प्रहारं त्वं पश्य पश्येति च भर्त्सयन्तौ ।
 वने गजेन्द्राविव जातदर्पावभीयतुस्तौ समराभिलाषौ ॥ ७६
 शस्त्राणि वज्ञामिविषोपमानि नानाकृतीनि त्वरया प्रगृह्णै ।
 परस्पराङ्गावयवान्प्रतीत्य व्यमुञ्चतां वीतभयौ महीशौ ॥ ७७
 प्रवृद्धकान्तिश्रुतिसत्त्वरोषः श्रीदेवसेनः प्रगृहीतचक्रः ।
 लघ्नीन्द्रसेनस्य महाबलस्य चिच्छेद भास्वन्मकुटं च केतुम् ॥ ७८
 तथेन्द्रसेनोऽतिवृद्धमन्युर्विश्रुत्प्रभां शक्तिमैरं प्रगृह्ण ।
 श्रीदेवसेनं प्रति निर्मुमोच नुनोद सा तस्य किरीटमिद्म् ॥ ७९
 श्रीदेवसेनेन पुनर्विमुक्ता शक्तिः स्फुरद्रत्नगभस्तिमाला ।
 श्वेतातपत्रं मधुराधिपस्य न्यपातयद्वस्तिपकेन सार्थम् ॥ ८०
 छत्रं प्रभग्रं मधुराधिपस्य दन्तप्रभङ्गादिव वारणेन्द्रः ।
 रोषातितूर्णं कण्यां मुमोच स तस्य चिच्छेद मृगेन्द्रकेतुम् ॥ ८१

१ क तिरीट०. २ क विग्रह०. ३ [शक्तिधरां]. ४ [रुषातितूर्णौ].

भिन्नात्मकेतुर्वृहदुग्रोषः प्रलम्बवाहुः प्रतिलब्धसंज्ञः ।
 प्रगृह्य चक्रं मधुरेश्वरस्य गदाग्रहस्तं प्रचकर्त वीरः ॥ ८२
 अथोभयोच्छिन्नविपन्नकेत्वोर्निपातितोपाः तगजाधिनेत्रोः ।
 प्रमर्दितात्मद्विपांदगोत्रोर्मुहूर्तमेकं समयुद्धमासीत् ॥ ८३
 तस्मिन् रणे भीमतमे प्रवृद्धे वलाहकस्त्वप्रतिमल्लनुभः ।
 युगान्तवाताहृतविन्ध्यकल्पः पपात भूमौ करुणस्वनेन ॥ ८४
 वज्राभिघातादिव शैलशृङ्गं शख्वप्रहारप्रतिभग्नगात्रम् ।
 उपेन्द्रसेनं विगतासुमाशु समीक्षिषातामवनीश्वरौ तौ ॥ ८५
 गजावपातध्वनिमप्रगल्भं महाभ्रनादप्रतिमं निशम्य ।
 तौ युध्यमानौ वसुधेन्द्रचन्द्रौ वभूवतुर्द्धधमनःप्रचारौ ॥ ८६
 श्रीदेवसेनो रिपुमर्दनश्रीरुपेन्द्रसेनव्यसनं समीक्ष्य ।
 जयं परं प्राप्य विभासमानं कश्चिद्द्रेष्टं चापि भृशं जहर्ष ॥ ८७
 सोऽपीन्द्रसेनस्तनयावभङ्गाद्विषां प्रवृद्धे द्विगुणातिरुष्टः ।
 समित्समिद्धाग्निरिव प्रकामं जज्वालं जात्यादिमदावलिसः ॥ ८८
 धिकशूरसेनाधिपतित्वलक्ष्मीं धिगिन्द्रसेनत्वमिदं मयाद्य ।
 निर्देवसेनां यदि नैव कुर्या महीमिमां सागरवागुरान्ताम् ॥ ८९
 इति ब्रुवन्नेव सुनिश्चितार्थो विपन्नहस्तादवतीर्य नागात् ।
 मदान्धमन्यं द्विषदेककालं सुकम्पितं वारणमारुरोह ॥ ९०
 ततोऽस्तु सम्यकप्रभवान्गुणान्स्वान्प्रकाशयामास रणे प्रचण्डः ।
 यद्यत्पुनर्दृष्टिपथोपनीतं द्विषद्वलं स्थातुमलं न तस्य ॥ ९१
 तदेवसेनस्य तु सैन्यमाजौ शङ्कां परां संजनयन्नपस्य ।
 भङ्गावतंसां विजयैकलक्ष्मीं निजां चकारेव भर्यात्तदानीम् ॥ ९२

१ क द्विपसाद, [°गोञ्जो °]. २ क कश्चिद्द्रुटश्चापि. ३ क प्रवृद्धिः.
 ४ [ततस्तु]. ५ [भग्नावतंसां].

उपेन्द्रसेनं युवराजमाजौ निहत्य भूयः प्रतिलब्धसंज्ञः ।
 कश्चिद्दृटः साधुयशोऽवतंसं विभ्रत्स वभ्राम मृगेन्द्रलीलः ॥१३
 परिभ्रमन्काल इवान्तरूपः कश्चिद्दृटः शत्रुषु लब्धतेजाः ।
 स देवसेनं सबलं मनस्वी ददर्श मृदून्तमथैन्द्रसेनम् ॥ १४
 दृष्टा तमाराद्विजयं परीप्सन्सव्यापसव्यं प्रकिरच्छरौघान् ।
 निसृष्टवानप्रतिमलुमाजौ युयुत्समानो मधुराधिपेन ॥ १५
 तमाप्नुवन्तं बलवन्तमन्तं सूनोः समीक्ष्याशु स इन्द्रसेनः ।
 शरासनं स्वं बलवद्विकृष्य मुमोच नाराचवराङ्गिघांसन् ॥ १६
 तानन्तरिक्षे स्वधनुर्विमुक्तैर्विच्छिद्य तीक्ष्णैः पुनरर्धचन्द्रैः ।
 विव्याध बाणैरपरैर्बृहद्विर्क्षस्यरि सोऽन्तमुपानिनीषुम् ॥ १७
 सन्तानमुक्तैर्विशिखैरनेकैर्गजस्य नेताँरमधो निपात्य ।
 चकर्त भद्गेन शितेन रोषात्कश्चिद्दृटस्तद्भनुरैन्द्रसेनम् ॥ १८
 परं न गृह्णाति धनुः स यावद्विव्याध तावद्गुजमुन्नतांसम् ।
 गजेन्द्रकुम्भोद्दितुरान्पृष्ठत्कान्ससर्ज शुष्काशनिभीमरूपान् ॥१९
 इतोऽमुतो भग्नविशीर्णसेनामात्मानमत्यन्तसुरक्षताङ्गम् ।
 समीक्ष्य चापस्य च भङ्गमाजौ विपन्नवृद्धस्ववपुवभूव ॥ १००
 ततोऽवस्थाशु स मेघनादात्क्षतस्वच्छोणितवारणेन्द्रात् ।
 हयं समारुद्ध तदातिभीतः पराप्रतस्थे मधुरावनीशः ॥ १०१
 गते नरेन्द्रे मधुराधिपे तु विनायकं त्रस्तभयेतवीर्यम् ।
 बलं तदा वातसमूहघातविशीर्णतूलप्रतिमं बभूव ॥ १०२
 ततश्च कश्चिद्दृट ऊर्जितश्रीहतावशेषं बलमाजिघांसन् ।
 अनुप्रतस्थे सशरौघवर्षी रूपी प्रजाः संहरतीव कालः ॥ १०३

१ [^निनीषुः]. २ म नेतारमधो. ३ [°शरक्षताङ्गम्]. ४ क °भयोत्थवीर्यम्.

केषांचिदङ्गान्यसिना चकर्ष पिपेष वीरो गदया शिरांसि ।
 विदार्य केषांचिदुरांसि चक्रैर्निपातयामास वसुंधरायाम् ॥ १०४
 केषांचिदुनिक्षमसुचामराणि छत्राणि चन्द्रोदयपाण्डुराणि ।
 धनूंषि पुष्टधवजकेतुमालाः शरावपूर्णानि सुधीश्वर्कर्ते ॥ १०५
 शङ्खाभिवर्तकमसौष्ठवाभ्यां सतोमराभ्यां स्थिरधीः कराभ्याम् ।
 वर्माणि वर्मप्रतियातनानि क्षणाद्विभेदाप्रतिमान्यरीणाम् ॥ १०६
 छिन्नाग्रहस्ता विमुखाश्च केचित्केचिन्नताः साञ्जलयो विभीताः ।
 केचिच्च तत्रैव विमोहैमायुर्लम्बिरेऽन्ये गजमस्तकेभ्यः ॥ १०७
 अन्तर्दधुर्गुल्मलतासु केचित्केचिच्च वैलमीकशिखाधिरूढाः ।
 केचिच्चत्रुणादाः प्रतिमुक्तकेशा गतासवः केचिदुपेयुरुर्वीम् ॥ १०८
 यतो यतस्त्वप्रतिमलनागं स्थूलोच्चयेनैव गतिक्रमेण ।
 संचारयामास स जातर्हस्तस्तस्तः शत्रुबलं दधाव ॥ १०९
 अथावशिष्टां रिपुवाहिनीं तां निरुद्ध्य सर्वाश्च कृतानुयात्रान् ।
 स्वपक्षदृष्ट्यै परपक्षभीत्यै दधौ स शङ्खं बृहदभ्रघोषम् ॥ ११०
 ततोऽरिचकं प्रविजित्य धीमान्निदाघमध्याह्नरविप्रकाशम् ।
 उपेत्य राजानमुदारकीर्तिं ननाम पादौ कमलावदातौ ॥ १११
 विलोक्य पादावनतं नरेन्द्रः प्रोत्थाप्य नागात्स्वपुरो निवेश्य ।
 प्रसारितेनात्मभुजद्वयेन स हृष्टचेता भृशमालिलिङ्गे ॥ ११२
 हृष्टं मया पौरुषमेतदार्यं तवाद्वितीयं युधि दुःप्रधर्षम् ।
 त्वतः परोऽन्यो न च मेऽस्ति बन्धुरित्यब्रवीद्वर्षविबुद्धवक्तः ॥
 मन्त्रीश्वरश्रेणिगणप्रधानाः समक्षभूताः परिहृष्टभावाः ।
 त्वयाद्य कश्चिद्भृट साधु साधु नामानुरूपं कृतमित्यवोचन् ॥ ११४

१ [चकर्ते]. २ [विमोहमापुँ]. ३ [वस्त्रीक].

संपूज्य तं सागरवृद्धिमिभ्यं कश्चिद्भट्टं चाप्रतिमप्रभावम् ।
 गजेन्द्रमारोप्य धृतातपत्रः पुरं विवेशावनिपः सलीलम् ॥ ११५
 आनन्दभेर्यः पटहा मृदङ्गा वीणाः सवंशाः सह कंसतालैः ।
 जयं नरेन्द्रस्य निवेदनार्थमाशीर्गिरश्चाप्याधिकं विनेदुः ॥ ११६
 गृहे गृहे चन्दनधामचित्राः समुच्छ्रिताः पञ्चविधाः पताकाः ।
 प्रभञ्जनस्पर्शविवर्तिताङ्गा रेजुस्तरङ्गा इव सागरस्य ॥ ११७
 प्रासादगर्भादभिनिस्मृतानि वराङ्गनानां मुखपङ्कजानि ।
 वभुर्भ्रमत्पद्वरणावलीभिः सबन्धनानीव सरोरुहाणि ॥ ११८
 वातायनेभ्यः खलु पुष्पवर्षं वराङ्गनावाहुलताः सलीलाः ।
 प्रचक्षरुच्चूर्णरजोविमिश्रं वातावधृता इव कामवल्लघः ॥ ११९
 पुराङ्गनास्ताः पुरमाविशन्तं कश्चिद्भट्टं भूपतिनैव सार्धम् ।
 समीक्ष्य वाक्यानि मनोनुगानि जातप्रहर्षा कथयांबभूवः ॥ १२०
 कश्चिद्भट्टं पश्यत पश्यतैनं श्रियोज्जवलन्तं विबुधेन्द्रलीलम् ।
 एकोऽप्यनेकान्वलवीर्यद्वसीज्जिगाय शत्रूनिति काश्चिदूचुः ॥ १२१
 एकस्य हेतोः करिणो नरेन्द्रः स माधुरो दूरतरादथैत्य ।
 स्त्रियं सुतं कोशगजांश्च सारानुत्सज्य यातस्त्विति काश्चिदाहुः ॥ १२२
 जगज्जनानां पुरपुण्यतस्तु रिपुं जिगायायमथाश्रमेण ।
 अतोऽन्यथा केवलमानुषेण कुतो जयो लप्स्यत इत्यवोचन् ॥ १२३
 काश्चिन्नरेन्द्रार्जितपूर्वपुण्यात्काश्चित्सुनन्दासुकृतप्रभावात् ।
 काश्चित्स्वयं स्वेन पराक्रमेण रिपुं जिगायेत्यवदंस्तरुण्यः ॥ १२४
 कुतस्तु कश्चिद्भट्टं एष धीमान्कुतो वणिकेवलमानुषोऽप्यम् ।
कुतो वणिकत्वं कुत एतदैश्यं नास्माकमस्मात्खलु विस्मयोऽस्ति ॥

राजा सहायान्तमिभेन्द्रभूर्धि विलोक्य तं सागरवृद्धिमूच्चुः ।
 इदं पुनः पश्यत दर्शनीयं कश्चिद्दाटाय श्रियमेष भुङ्गे ॥ १२६
 येनात्पनोपार्जितमत्र पुण्यं तेनैव भोक्तव्यमिति प्रदिष्टम् ।
 इदं विपर्यस्तमिवोपलक्ष्यं परैः कृतं यद्धि परस्तु भुङ्गे ॥ १२७
 अवश्यमन्यत्र महाकृतिभ्यामाभ्यां सहैवाचरितं तपः स्यात् ।
 तदेतदुद्धतफलप्रश्चं सुव्यक्तमासीदिति काश्चिदूच्चुः ॥ १२८

इत्येवं ललितपुराधिवासिनीभिः

प्रीत्या तौ कथितौ विलासिनीभिः ।
 तेनैव क्षितिपतिना वर्णिकसुतौ तौ

संप्राप्तौ नृपगृहमृद्धिवृद्धिशालम् ॥ १२९
 राज्ञीभिर्मदनरसं प्रदायनीभिः^३

कान्ताभिः प्रचलितचारुभूषणाभिः

युद्धश्रीश्रुतिसंकथारताभिर्हृष्टः

स [--] नृपतिरथाविशत्स्वगेहम् ॥ १३०

इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।

स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥

कश्चिद्दूटविजयो नाम

अष्टादशः सर्गः ।

१ [कश्चिद्दूटस्य]. २ क °ऋद्धिवृद्धिशालम् , [°ऋद्धिमद्धिशालम्].
 ३ [°रसप्रदायनीभिः].

[एकोनविंशः सर्गः]

अथान्यदा वृद्धतमैर्नेरन्द्रैः सुखं निषण्णः तनयां प्रदित्सुः ।
 आहूय कश्चिद्दटमाससित्वा पप्रच्छ वंशानुगतां प्रवृत्तिम् ॥ १
 विज्ञानकान्तिवृत्तिसत्त्वयुक्तो यतो दिग्नन्ते प्रथितोरुकीर्तिः ।
 धन्यौ ततस्ते पितरौ कुतस्तौ विज्ञातुमिच्छामि न चेद्विरोधः ॥ २
 स्मित्वा ततः सोऽर्थपरेऽङ्गितज्ञः कश्चिद्दटो नात्मगुणप्रशंसी ।
 प्रच्छाद्य सञ्चत्मदार्थमन्यद्वचो बभाषे क्षितिपाय युक्त्या ॥ ३
 कश्चिद्दटः शूर उदारकीर्तिः श्रेष्ठवज्ञस्तुनुस्त्वति लोकवादः ।
 स एव मे बन्धुतमः पिता च पिता न चान्यो भुवि विद्धि राजन् ॥ ४
 जानामि तेऽहं क्रियमाणमर्थं वचोविकारैर्हृदि वर्तमानम् ।
 कुतस्त्वयं किं कुलमस्य वेति कन्यापदानं प्रति ते विमर्शः ॥ ५
 सा तिष्ठतु स्वा सुसुतानवद्या न तां महीपाल वृणे त्वदीयाम् ।
 वर्णकसुतश्चेति मनो निधाय प्रसीद मे वा परिणामरम्याम् ॥ ६
 सभागतास्तद्वचनं निशम्य प्रसन्नतां वीक्ष्य विनीततां च ।
 आकृतमीशस्य च संप्रबुध्य विज्ञापयां भूमिपतिं वभूवुः ॥ ७
 त्वयेन्द्रसेनः समरे जितश्चेत्तुभ्यं प्रदास्ये सुतयार्थराज्यम् ।
 इत्येवमाघोष्य सभासमक्षं भूयो विचारस्तव नानुरूपः ॥ ८
 यत्पूर्वमाख्याय सदस्मु राज्ञां तत्प्रत्यनीकं न च युक्तिमेति ।
 महाजनानां परिहास एष धर्मस्य चात्यन्तविरुद्धमेतत् ॥ ९
 ब्रवीति चक्षुर्मनसो विकारं ब्रवीति सौख्यं वपुषश्च शोभा ।
 कुलं हि नृणां विनयो ब्रवीति इत्येवमुक्तं सदसि प्रधानैः ॥ १०

१ [नरेन्द्रः]. २ [सदभूतमपार्थँ].

स्वैर्पन्निभिः स्वस्य हितं श्रुतिद्विस्तथा त्वनुज्ञातमिदं पयेति ।
 कन्याप्रदाने कृतनिश्चयोऽभून्मुदा नरेन्द्रो मतिमान्विधिज्ञः ॥ ११
 ततो नरेन्द्रो विजयप्रधानैः समेत्य वृद्धैः उरवासिभिश्च ।
 प्रहृष्टचेताः कृतसत्यसन्धो विवाहकार्यय शशास सर्वान् ॥ १२
 नित्यप्रवृद्धाः प्रचलत्पत्ताका नित्योत्थितान्येव च तोरणानि ।
 नित्योत्सवाढ्यां ललिताद्वपुर्यां तानेव संपादितमास पूर्वम् (?) ॥
 त्रिकांश्चतुष्कानथ चत्वरांश्च वीथीप्रदेशान्मुमहान्पथांश्च ।
 विशोध्य सञ्चन्दनतोयगन्धैः पुष्पाणि तत्रै प्रकिरन्विधिज्ञाः ॥ १४
 यावद्गृहद्वारमिलाधिपस्य यावत्पुनः सागरवृद्धिग्रहम् ।
 तावच्च संस्कारितमृद्धिमद्भिः प्रेक्षांगृहैश्चित्रितमण्डपैश्च ॥ १५
 कचिच्च मुक्तास्तरलाः पराढ्याः कचित्कचिद्विदुमदामकानि ।
 कचिच्च हैमाम्बुरुहाणि रेजुः प्रलम्बितान्यप्रतिमानि तानि ॥ १६
 कचिद्विचित्रं नवृतुस्तरुण्यः कचिच्च गीतं मधुरं जगुश्च ।
 आस्फोट्य भाण्डाः करतालशब्दान्विलैम्बनां चक्रुरितोऽमुतश्च ॥
 श्रीमण्डपे लम्बितपुष्पदाम्नि विचित्रविन्यस्तवलिप्रदेशे ।
 सिंहासने काञ्चनपादपीठे निवेश्य कश्चिद्दटमीशपुत्र्या ॥ १८
 पद्मापिधानैर्वरहैमपुष्टैः सुशीतगन्धोत्कटवारिगर्भैः ।
 श्रेणिप्रधाने वरमन्त्रमुख्यास्तौ स्नापयां प्रीतिमुखा बभूवुः ॥
 ज्वर्लत्किरीटं प्रणिधाय मूर्ध्नि स्वयं नरेन्द्रस्तु बबन्ध पद्मम् ।
 कृत्वाप्रिधर्मोदकसाक्षिभूतं कश्चिद्दटाय प्रददौ सुनन्दाम् ॥ २०

१ म किंतु प्रदाने सुविचार्य कार्ये कन्याप्रदाने कृतनिश्चयोऽभूत् । २ क दान्वेव संपादितमास॑ । ३ क रत्न, [पुष्पाणि रत्नान्यकिरन्] । ४ म प्रेष्या ।
 ५ [विडम्बनां] । ६ क ज्वलत्तिरीटं ।

मत्तद्विपानां तु सहस्रसंख्या द्विषद्सहस्राणि तुरङ्गमानाम् ।
 ग्रामाः शतेन प्रहताः सहस्रा हिरण्यकोटयश्च चतुर्दशैव ॥ २१
 द्वात्रिंशदायोजितनाटकानि वृद्धाः किराता विविधाश्च दास्यः ।
 मुशिलिपनः कर्मकरा विनीता दत्तानि पित्रा विधिवद्वुहित्रे ॥
 अन्यच्च लोकेऽतिशयप्रवृत्तसुसंस्कृतं द्रव्यमनेकभेदम् ।
 क्रीडानुरूपं विधिना विभूत्यै प्रीत्या ददौ भूमिपतिः सुतायै ॥
 सद्रल्लसंस्कारितचारुरूपां दिवाकरांशुप्रतिमां महाहीम् ।
 आरुह्य तौ तां शिविकां महाध्या प्राचक्षितां सागरवृद्धिगेहम् (१)
 अष्टादशश्रेणिगणप्रधानैरष्टादशान्येव दिनानि तत्र ।
 कथित्वद्विषयावनिपात्मजायाश्चके विभूतिं महतीं महाद्विः ॥ २५
 ताम्बूलवस्त्रोत्तमभूषणानि विलेपनं स्वग्वरभोजनानि ।
 प्रस्तर्धयेवाहरहस्तदानां संप्रेषयन्ति स्म नरेन्द्रपत्न्यः ॥ २६
 स्वबाहुवीर्यार्जितभोगवत्या भूपश्रिया साधु विभासमानम् ।
 कथित्वद्विंश्टं राजसुतां च वीक्ष्य जगज्जनः स्वैरमभाषतेत्थम् ॥ २७
 किं किञ्चरीणां मिथुनं त्विदं स्यादाहोस्विदायात्मथेन्द्रलोकात् ।
 विद्याधराणां विषयादपेतं यद्वच्छयेहागतमित्यमंस्त ॥ २८
 अज्ञातवंशः परदेशजातो धन्योऽयमस्याः पतितामुपेतः ।
 पुण्यान्वितानां हि वृणां वृलोके पुण्यान्विता एव भवन्ति भार्याः ॥
 ईद्वक्सुरुपाणि महीगतानां कीदृक् शिवा तत्र नभश्चराणाम् ।
 ईद्वयदि स्याल्लितं नराणां कीदृक्सुराणामिति किं वचोऽस्ति ३०
 किं वानयोः पूर्वकृतं तपः स्यात्काराधिताभ्यां खलु देवता वा ।
 व्रतानि कान्याचरितान्युभाभ्यामित्यब्रवीद्विस्मयफुल्लनेत्रः ॥ ३१

१ [महाही]. २ [कीदृक्श्रियस्तत्र].

एवं जनानां स्थितवान्मनस्यु स्वर्वनिर्वर्तितपुण्यभागी ।
 विस्मित्य कश्चिद्दट आत्मबन्धुन्रंमे नवैर्बन्धुजनैः समेतः ॥ ३२
 नरेन्द्रपुत्रीमनवद्यरूपामवार्यकान्तिद्युतिसौकुमार्यैः ।
 रहोविहारेष्वनुवर्तितैः स्वैः स रञ्जयामास गुणैर्गुणज्ञः ॥ ३३
 गन्धर्वगीतशुतिगन्धयुक्त्या काव्यप्रयोगेन कथाप्रपञ्चैः ।
 नाव्यावलोकेन कथाविशेषैस्तस्या मनस्स्वैः स्वबन्धवङ्माः ॥ ३४
 साप्यात्मनीयैर्लिलैरुदारैः कलागुणज्ञानकथाविशेषैः ।
 दाक्षिण्यवेषैर्विनयोपचारैर्जहार चेतः सततं स्वभर्तुः ॥ ३५
 उद्यानयानैश्च नदीविहारैर्वनप्रदेशाद्रिनिरीक्षणैश्च ।
 महार्हहर्म्येषु रतिप्रमोदैः कश्चिद्दटस्तां रमयांवभूव ॥ ३६
 अन्योन्यसंभाषणसक्तचित्तमन्योन्यसंदर्शनतत्पराक्षम् ।
 अन्योन्यमङ्गेषु कृताङ्गरागमन्योन्यमेवं मिथुनं जहर्ष ॥ ३७
 एवं तयोस्तु प्रथितोरुक्तीत्योः परस्परोद्वर्तितभोगरत्योः ।
 विश्रम्भभावानुगतप्रणीत्योः कालो व्यतीतः पुरपुण्यमूर्त्योः ॥ ३८
 ततः कदाचिन्नृपसेवनार्थं कश्चिद्दटारूपं नृपतिं विशन्तम् ।
 मनोरमा नाम नरेन्द्रकन्या यद्यच्छयापश्यदतुल्यशौर्यम् ॥ ३९
 समीक्ष्य रूपं च युवत्वमस्मिन्नास्थां चकार क्षितिपालकन्या ।
 लङ्घावकाँशो मदनस्तदानीं हृदि प्रविव्याध मनोरमायाः ॥ ४०
 अनङ्गमुक्तः स च तीक्ष्णबाणः संप्राप्य वेगादथ चित्तलक्ष्यम् ।
 ददाह तस्यास्तनुमन्तरन्तो वहिर्यथान्तःसुषिरं द्रुमस्य ॥ ४१
 नालङ्गकृता सा न सखीभिरासे संभाष्यमाणा न ददौ च वाचम् ।
 नैवासं किंचिन्पपौ न सास्मो^१ कन्दर्पदर्पाभिहता वराङ्गी ॥ ४२

१ [विस्मृत्य]. २ म °वर्तैस्तैः. ३ [स बन्धव]. ४ म बन्धवाः. ५ म शब्दावकाशो. ६ [नैवाश]. ७ [साङ्खीर्].

कदाचिदुदानवनैकदेशे स्थिता पुनः सास्मितनिश्चलाक्षी ।
 काश्चिद्भट्टं चित्रकलाविदग्धा लिलेख पुंखी^१ नृपतेः शिलायाम् ॥४३
 अवेक्ष्य चित्रस्थमतीवविद्धं तहुर्लभत्वं च विचिन्तयन्त्याः ।
 सदीर्घनिःश्वासमुखं रुदन्त्या हिमाहताम्भोजमिवास तस्याः ॥४४
 सखी तिरोऽभ्येत्य ततस्तदानीं वैचिन्त्यमस्या ह्यवगम्य युक्त्या ।
 सा पृष्ठतस्तां शनकैरुपेत्य नेत्रद्रूयं तत्पिदधौ कराभ्याम् ॥४५
 सख्याः कराग्रप्रतिमर्शनेन मृगीव तत्रास तदानभिज्ञा ।
 तद्वाक्यतः सा विदितानयेति किंचित्प्रहस्यात्मनि सा ललज्जे ॥४६
 अन्यार्थसंत्रीडनवेपिताङ्गी हस्तद्रूयेन प्रमर्ज चित्रम् ।
 सखी च तद्रीक्ष्य जगाद वाक्यं चित्रं किमेतद्वद मे निशङ्का ॥४७
 भ्रूयश्च तस्या वदनं निरीक्ष्य ससाध्वसं मृदमनोभवार्ता ।
 एकाकिनी त्वं हि किमर्थमासे वने वदेत्येवमथाभ्यपृच्छत् ॥४८
 सा चैवमुक्ता धरणीन्द्रपुत्री सख्या तदाचारगुणं ह्यवत्याँ ।
 नैवालि मे कार्यमवश्यभावि क्रीडाप्रसङ्गादहमागतास्मि ॥४९
 इत्थं ब्रुवाणा कुशला सखी सा विज्ञाय तस्या हृदि वर्तमानम् ।
 अन्यापदेशेन सदर्थमन्यं मनःप्रसादार्थमिमां जगाद ॥५०
 मुखं परावर्तिंकान्ति कान्ते ग्लानिं गता ते तनुरङ्गतन्वी ।
 विगृहसे किं हृदि यद्यलीकमेकाकिनी वोद्गुम्बुं समर्था ॥५१
 मातुः पितुश्चैव विलासिनीनां विश्रम्भनीया ननु साध्वं सख्याः
 नियन्त्रणां त्वं मयि संविधत्स्व शक्ता विनेतुं हृदयस्य तापम् ॥५२
 जानामि विद्यां विविधप्रकारां मायामदृश्यां मदनप्रयोगम् ।
 आवेशनं भूतवशीकृतिं च यदीच्छासि त्वं प्रवदेत्यवोचत् ॥५३

१ [पुत्री]. २ [विशङ्का]. ३ [शब्देत्य]. ४ क विगृहसि, [निगृहसे] .

संश्रुत्य सा तद्वचनं यथार्थं लब्ध्वावकाशं नरदेवकन्या ।
 मनोगतार्थप्रतिबोधनाय संमानपूर्वा गिरमित्यमूर्चे ॥ ५४
 का मे प्रिया का च हितप्रवक्त्री मनःप्रसादस्य च का नियोक्त्री ।
 का देवता कः सुजनोऽनुवर्ती ऋते भवत्या शरणं न मेऽस्ति ॥ ५५
 नरेन्द्रसेवार्थमिहागतं तं यदा नु कश्चिद्भट्टमभ्यपश्यम् ।
 तस्मिस्तदैवात्ममनः ससञ्जे किं गूहितव्यं हितमित्युवाच ॥ ५६
 यथा यथा तं मनसा स्मरामि मृगेन्द्रविक्रान्तमनङ्गरूपम् ।
 तथा तथा मां प्रदहत्यनङ्गः कुरुष्व तच्छान्तिमरं वयस्ये ॥ ५७
 एवं प्रदिष्टा मनसो विकारं विज्ञाय तस्याः कमलायताक्ष्याः ।
 सर्वैरुपायैस्तव कार्यमार्ये संसाधयामीति ततो जगाद् ॥ ५८
 अथामितं तं शनकैरुपेत्य कश्चिद्भट्टं सा तु विविक्तदेशे ।
 मनोरमायाः सकलामवस्थां व्यजिङ्गपद्मागुपपात्तिदक्षा ॥ ५९
 नयादपेतं बहुदोषमूलं निशम्य तस्या वचनं पृथुश्रीः ।
 कश्चिद्भटो मेरुरिवाप्रकम्प्यो न युक्तमेतद्विनयादवोचत् ॥ ६०
 एतद्वचस्ते न च युक्तरूपं विभ्राजते कर्मणि नैव भासः ।
 स्वदारसंतोषमणुव्रताख्यं सौध्वीश्वरो मह्यमुपादिदंश ॥ ६१
 इत्युक्तवत्युत्तमचारुरूपे कश्चिद्भटे सापि पुनर्जगाद् ।
 व्रतोपदेशात्समनुग्रहीतुं मनोरमां नेच्छसि मे सखीं ताम् ॥ ६२
 प्रत्यक्षभूतं फलमुद्दिहाय परोक्षपातं मृगये ह्यपार्थम् ।
 न पण्डितस्त्वं बत बालिशोऽसि संदिग्धवस्तुन्यथ मुख्यमास्ते ॥
 व्रते दिवं यान्ति मनुष्यवर्या दिवश्च सारोऽप्सरसो वराङ्गस्यः ।
 व्रताभिगम्या यदि देवकन्या इयं हि ताभ्यो बद केन हीना ॥ ६४

१ [संमानपूर्वे]. २ [तच्छान्तिकरं]. ३ क साध्वीति रोमाङ्गमुपादिदेश.
 ४ [मुख्यता ते].

सा चापि तन्वी त्वयि सक्तभावा प्रसीद नाथानुगृहणं भद्राम् ।
 इति ब्रुवाणां परिशुद्धबुद्धिः सहेतुकं वाक्यमिदं जगाद् ॥ ६५
 ये शीलवन्तो मनुजा व्यतीता दृढवतास्ते जगतः प्रपूज्याः ।
 परत्र देवासुरमानुषेषु परं सुखं शाश्वतमाप्नुवन्ति ॥ ६६
 न मज्जयन्त्यम्बुनिधौ सुशीलान्न दग्धुमीशो ज्वलदर्चिरश्मिः ।
 न देवता लङ्घयितुं समर्था विद्वा विनश्यन्ति दशामयत्नात् ॥ ६७
 इहाप्यशीलाः परिभूयमाना दुःखान्यनेकानि समश्नुवन्ति ।
 परत्र तीव्राण्यसुखानि भद्रे ध्रुवं लभन्ते नरकेषु मूढाः ॥ ६८
 ये शीलवेलामिह लङ्घयेर्दर्मं महान्तं नृपतेर्लभन्ते ।
 यथा तथा दर्शय वाग्मुखानां नृणां परत्रापि यशश्च साध्येः ॥
 सुशीलमाहात्म्यवशेन पूर्वं विमुक्तशापोऽहमभूवमेषः ।
 ततो मया लङ्घयितुं न शक्या व्रतस्थितिः सा मुनिसाक्षिभूता ॥
 यद्यप्यनुज्ञां कुरुते नरेन्द्रो गृह्णामि कन्यां विधिपूर्वकेन ।
 आप्नोऽन्यथा सर्वजनापवादं वोदुं न शक्तो न हितं परत्र ॥ ७१
 इत्येवमुक्ता प्रतिभग्रवाक्या सखी विनिर्गम्य नरेन्द्रपुत्रीम् ।
 मनोरमां मन्मथशापबद्धामाश्वासनार्थं मधुरं जगाद् ॥ ७२
 यत्प्रार्थितं राजसुते त्वया तु तत्सर्वमाचक्षितमन्वियाय ।
 सोऽप्यादरेणानुमतः क्रियार्थः प्रकाशयामात्ममनो बभूव ॥ ७३
 तस्मात्सुखं साध्वि सखीभिरास्त्व स्नात्वा हि भुंक्ष्व त्वमलंकुरुष्व
 द्वित्रिष्वहस्तु प्रतिपादयिष्ये शोकं विनुद्य स्थिरधीर्भव त्वम् ॥
 मद्विप्रलम्भार्थमयं प्रयोगः श्रोत्रप्रियः केवलमर्थदूरः ।
 ज्ञातुं मया मन्दधिया हि शक्यं धन्या न जाताश्च मृता युवत्यः ॥ ७५
 एवं वदन्ति व्यपयातहर्षा सरोदनारोपितरक्तदृष्टिः ।
फलोदयं स्वस्य पुराकृतस्य पुनः पुनस्तं तरुणी जङ्हार्ह ॥ ७६

 १ [मज्जयन्त्यम्बुनिधिः]. २ [साध्यम्]. ३ म सुशीलसंपन्नवयेन. ४ [जगर्ह].

पृथुश्रियं यौवनकर्कशाङ्गं पद्मेष्ठणं पत्तगजेन्द्रलीलम् ।
 कश्चिज्जटं वश्यमनं न लप्स्ये सलज्जवत्या न हि मेऽस्ति शान्तिः ॥
 इति नरपतिपुत्री कामवहिप्रतमा
 ज्वलदनलशिखार्ता प्रातपत्रा लतेव ।
 अहरहरभिमानक्षीयमाणाङ्ग्यष्टि-
 नेभासि बहुलपक्षे चन्द्रलेखेव सासीत् ॥ ७८
 यदि मम गृहधर्मे जीवितं जीवयोनौ
 भवति भवतु सम्यक्त्वेन कश्चिज्जटेन ।
 वदनकमलसङ्गं तेन सार्धं मम स्या-
 द्रवचरणसुबोधं लब्धं मे मुक्तिमार्गम् ॥ ७९
 जिनवरमत्प्रयं स्वर्गसोपानपद्मिक्त-
 र्यदि मम न हि भाग्यात्संपनीपद्यते^३ चेत् ।
 स्फुरदनलकलापज्वालमालासु देहं
 मदनश्शरसुलक्ष्यं तद्रहोष्ये (?) तमाशु ॥ ८०
 स्थिरमतिरकृतार्था सम्यगीहकप्रतिज्ञा
 व्रतगुणनियमानां भावयन्ती क्रमेण ।
 स्वसनदवथपक्षमास्वासभाषा च साध्वी
 प्रियंगतिरतितृष्णालापदा पाण्डुगण्डा ॥ ८१
 इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गच्चरिताश्रिते ॥
 मनोरमामतिविभ्रमो नाम
 एकोनविंशतिः सर्गः ।

१ म सम्यक्तेन. २ क लब्ध ते, [लभ्यते]. ३ [संप्रती^०].
 ४ क मदनशत. ५ [^०नियमांस्तान्]. ६ [श्वसनदवथपक्षमासभाषा].
 ७ [प्रियमति^०]. ८ [एकोनविंशतिः].

[विंशतितमः सर्गः]

अथ च धार्मिकसाच्चिकमानैव-
 र्बहुकलागुणशास्त्रविशारदैः ।
 ललितपूर्वपुरप्रतिवासिभि-
 श्रिरमरस्त सुखेन वाणिग्नुपः ॥ १
 नृपतिकान्तसुतां कुलनन्दनी-
 ममरराजवधूप्रियदर्शनाम् ।
 जनपदार्धहयद्विपनाटकैः
 समुपलभ्य न चैव मंदं ययौ ॥ २
 प्रवरहर्म्यतलेषु च शर्वरीं
 नैयत शीलगुणानथ पर्वसु ।
 द्रविणमर्थिषु साधुजनेषु च
 [.....] ॥ ३
 अनुभवन्विषयांश्च मनोहरान्
 सुकृतकर्मफलोदयपाकतो ।
 ललितनामपुरे पुरुषोत्तमः
 सुखमुवास नृपात्मजया तया ॥ ४
 पुनरितः क्रमतः पितृपुत्रयोः
 अमितसत्त्वपराक्रमधैर्ययोः ।
 प्रवरधर्मसपूर्ववराङ्गयोः
 यदभवत्कथयामि तदीक्ष्यतां ॥ ५

१ म मुदं. २ [नयति]. ३ [°धर्मजपुण्य°].

अपहते सुसुते वरवाजिना
 नरपतेर्मनसोऽसुखशान्तये ।
 मतिवरप्रमुखा नृपमन्त्रिणः
 समभिमन्त्र्य सुषेणमतिष्ठिपन् ॥ ६
 युवनृपत्वमवाप्य नृपात्मजः
 प्रतिविबुद्धनवाम्बुरुहाननः ।
 भृशतरं स कृतार्थतया बभौ
 गतघने च निशीव निशाकरः ॥ ७
 उदितबालदिवाकरतेजसो
 विषयरागवशीकृतचेतसः ।
 जगदनर्थगणात्परिरक्षतः
 कतिपयानि दिनान्यगमन्मुदा ॥ ८
 परनरेन्द्रबलेन विमर्दितं
 स्वविषयं परिभूयं महाजनम् ।
 अथ कदाचिदवेत्य युवाधिपः
 स्वयमियाय सं योऽुमना बलैः ॥ ९
 रथपदातितुरङ्गमवारणैः
 समुपगम्य भृशं युयुधे युधि ।
 रिपुनृपोऽतिरुषा भैकुटीपुटः
 प्रतिजघान सुषेणबलं बलात् ॥ १०
 युवनृपोऽभिहतो रिपुसेनया
 क्षणविभिन्नविचूर्णितशासनः ।

१ [परिभूत०]. २ म रुषा स बलान्वितः । = [भैकुटीधरः].

अथ जितः समरे सतुरङ्गमो
द्रुततरं प्रययौ पुरमात्मनः ॥ ११
रिपुनरेन्द्रबलाहतपौरुषं
प्रतिनिवृत्तमवेक्ष्य पुनः सुतम् ।
नरपतिश्चिरमात्मनि संस्मरन्
वरतनोः स्मृतवान्बहुशो गुणान् ॥ १२
विनयशीलविचित्रसमन्वितं
बहुजनप्रियमप्रतिपौरुषम् ।
परमधार्मिकमाहववल्लभं
समुपलभ्य न चाहमवश्चितः ॥ १३
स्वतनुदुर्बलतां जरयान्वितां
परिभवं रिपुभिः कृतमात्मनः ।
वरतनोश्च गुणाननुसंस्मर-
न्न च शशाक स धीरयितुं धृतिम् ॥ १४
युवनृपस्य ततः प्रपलायनं
विबलतास्मुपलभ्य च भूपतेः ।
हयरथद्विपदेशधनेच्छया
रिपुनृपस्त्वरया पुनराययौ ॥ १५
दलितभागतया वयमास्थिता
विषयभाग इतो भवतामिति ।
जनपदार्थमथ प्रविरुद्ध्य त-
त्प्रविससर्ज ततः स वचोहरम् ॥ १६

परुषवाक्यसमन्वितमीश्वरः
 समभिवीक्ष्य च पत्रगताक्षरम् ।
 अतिकषायविषाञ्चितलोचनः
 प्रतिजगर्ज मृगेन्द्र इव द्विपम् ॥ १७
 यदि मदात्सं कुलोचितया तथा
 प्रथितया धरया न हि संस्थितः ।
 ध्रुवमहं विनिहत्य मदोद्धतं
 परनृपाय ददाम्यतिवर्तिनम् ॥ १८
 इति वचः सदसि प्रविलोक्य सः
 समजगर्ज मृगेन्द्रपराक्रमः ।
 सपरुषं प्रतिलेखविसर्जनं
 प्रतिविहार्य तदैव ययौ पुरात् ॥ १९
 परिवृतो नृपतिश्चतुरङ्ग्या
 रिपुमदप्रशमप्रदसेनया ।
 चलदुरुध्वजचित्रपताकया
 स निविवेशं गताध्वनियोजनम् ॥ २०
 सुपतयोऽजितचित्रसुरादयो
 विनयतः समुपेत्य नरेश्वरम् ।
 वचनमित्थमिदं हितमर्थव-
 जगदुरेवमनिन्दितपौरुषम् ॥ २१
 तव नरेश्वर सञ्चपराक्रमौ
 सुविदितौ जगता न विलङ्घितौ ।

१ क °स्वकुलोचितया. २ म ददाम्यनुवर्तिनः, ३ [समजगर्जदथेन्द्र°].
 ४ म प्रतिविवाय, [प्रतिविधाय]. ५ क निनिवेश. ६ क जगता.

प्रतिविधानवियुक्ततया वयं
 परिचितेन च वक्तुमुपाश्रिताः ॥ २२
 सखिजनाः स्वसुताः कृतपौरुषाः
 परबलस्य मदं प्रतिभाङ्गिनः ।
 तव न सन्त्यरयोऽपि बलोत्कटाः
 कथमिदं त्वपरीक्ष्य कृतं त्वया ॥ २३
 विगतगाधमथोदकमप्लवः
 समुपलङ्घयितुं विघटेत कः ।
 रिपुबलार्णवमुत्क्रमितुं पुन-
 र्वृप न शक्यमपक्षवतस्तव ॥ २४
 ललितसाहपुराधिपतिर्भृशं
 प्रियहितोऽहितदर्पविघाटनः ।
 यदि वयं नरदेव वचोहरान्
 प्रविस्तजामहि चेद्ग्रुवमेष्यति ॥ २५
 अथ च युक्तिमदर्थसमान्वितं
 हितमिताक्षरसारसमुच्चयम् ।
 अनुनिशम्य हि मन्त्रिवचोऽवद-
 न्नृपतिराशु तथा क्रियतामिति ॥ २६
 क्षितिपशासनतीव्रतया [~]⁹
 जनपदस्य विनाशभयेन च ।
 स्वपतिभक्तिया च वचोहरा
 ललितसाहपुरं प्रयुरुद्गुतम् ॥ २७

१ [प्रविस्तजेमहि]. २ क (जवैः), [तदा].

समभिवीक्ष्य तथोचितवृत्तिः
 क्षितिपतेरथ लेखमदर्शयत् ।
 तमवगृह्ण निधाय स मस्तके
 प्रतिविमुच्य तदर्थमबुध्यत ॥ २८
 समवर्तार्थं मृगेन्द्रधृतासना-
 त्समुपविश्य ततोऽन्यदुपहरे ।
 अभिजिजल्पिषुराभतमैः सह
 वृपतिराह्वयदाशु वणिग्नवृपम् ॥ २९
 वरतनोस्तुरगेण विनाशनं
 रिपुबलाच्च सुषेणपराभवम् ।
 परवृपस्य पुनः समराङ्गणं
 ह्यकथयस्कलं सकलार्थवित् ॥ ३०
 प्रकटमास्त्व भवान्परिपालयन्
 जनपदं स्वपुरं निरुपद्रवम् ।
 मम धुरंधरता च भवत्वथो
 जिगमिषामि सुहृद्यसनार्थ्यहम् ॥ ३१
 इदमिह प्रहितं जनकेन मे
 त्वमभिपश्य गुणार्णवं पत्रकम् ।
 करपुटेन नवाम्बुरहत्विषा
 समुपगृह्ण पुनस्तदवाचयत् ॥ ३२
 परिभवं द्विषतः पितृदुःस्थितिं
 वरतनोर्गमनं पितृराष्ट्रतः ।

प्रतिनिशम्य च पत्रगतं त्वभू-
 त्सलिलविन्दुपरिप्लुतलोचनः ॥ ३३
 नयनवारिपरिप्लुतमाननं
 हृदयवेष्टुना सह वीक्ष्य च ।
 अथ नृपो ललिताख्यपुराधिपः
 प्रतिविबुध्य सुधीरनुमानतः ॥ ३४
 वरंवराङ्गं पुरा विदितो मया
 कथमिहोषितवानसि संवृतः ।
 इति वदन्नुपसृत्य नरेश्वरो
 हृष्फुलमुखः परिषस्वजे ॥ ३५
 वनगतोऽहमथोदधिवृद्धिना
 करुणया परया तनयीकृतः ।
 तदनु ते^३ तनयामुपधाय मे^३
 नरपतित्वपदे त्वमधिष्ठिपन् ॥ ३६
 अथ ततो भवतो शाधिको न मे
 शुवि न कश्चन बन्धुतमः परः ।
 इति वदन्तमवेक्ष्य पितुर्जन-
 श्ररणयोरपतत्करुणं ब्रुवन् ॥ ३७
 गतवति त्वयि नाथ समन्ततो
 गिरिगुहासु वनेषु नदीषु च ।
 नृपनियोगधराः परिवभ्रमु-
 ने विविदुश्च भवन्तमिहागतम् ॥ ३८

१ [हृषितः]. २ [मे]. ३ [मां]. ४ [त्वमतिष्ठिपः].

इति निवृत्तगिरि स्वजने ततो
 नृपतिरित्थमुवाच मुदान्वितः ।
 भवत एव मया परिवर्धितं
 परिगृहाण पुनस्तनयाशतम् ॥ ३९
 अनुनिशम्य स मातुलभारतीं
 हृदयपङ्कजकुइमलबाधिनीम् ।
 नृपगणः कुरुतात्त्व शासनं
 समरूपं त्वनयेत्यवदत्पुनः ॥ ४०
 स्वभगिनीसुतवाक्यरतो नृपो
 गुरुतयाभिर्दधौ स निगृह्य तम् ।
 परिगृहाण गुणोदयभूषणां
 प्रियसुतां मम वत्स मनोरमाम् ॥ ४१
 नृपतिवाक्यमुदारमतिस्तत-
 स्तदनुमत्य तथास्त्वति संजगौ ।
 युवनृपाय मतङ्गजगामिने
 समददात्तनयां मुदितस्तदा ॥ ४२
 प्रणयवानपि यन्नृपतिः पुरा
 स्वजनताश्रुतिबद्धमनोरथः ।
 द्विगुणया स महोत्सवसंपदा
 प्रतियुयोज सुधीर्भगिनीसुतम् ॥ ४३
 इति समाप्य विवाहमनुत्तमं
 जिगमिषुः स्वपुरात्परमार्दितः ।

स्वसुतया सकलैः^१ सह बन्धुभि-
 नरपतिः कृतवान्सह भोजनम् ॥ ४४
 मदनतापनखेदितचेतना
 पतिमुपेत्य मनोगुणितं चिरम् ।
 रविकराभिहता जलदागमे
 वसुमतीव जहर्ष मनोरमा ॥ ४५
 अथ यियासुरतुल्यपराक्रमो
 वरतनुर्विषयं प्रति चात्मनः ।
 उदधिवृद्धिमुपेत्य वचः स्फुटं
 समधुराक्षरमित्थमभाषत ॥ ४६
 असुहृदो वनगोचरिणो भवा-
 न्मप पिता न पितापि पिताभवत् ।
 किमिह खेदकर्वहुभाषितै-
 रुभयलोकहितो न परो गुरुः ॥ ४७
 विनय एव हि भूषणमुत्तमं
 विनयमूलमिदं जगतः पदम् ।
 तत इतो विनयं वणिजां पते
 तव करोमि यशःपरिवृद्धये ॥ ४८
 अविदितं भवता न च विद्यते
 नरपतेरिदमस्य चिकीर्षितम् ।
 रणनिमित्तमनेन हि गच्छता
 जिगमिषामि सहानुमतेन ते ॥ ४९

इति वचः कथितं तनयेन त-
 त्समवबुध्य पिता पुनरभ्यधात् ।
 इह भवन्तमपास्य हि जीवितुं
 मम मतिः सुमते न च वाञ्छति ॥ ५०
 तव गुणेन च पुत्र गुणप्रिय
 प्रथितकीर्तिरभूवमहं भुवि ।
 नृपतिना समतां पुनरामवा-
 ननुपमां जगतो बहुमानताम् ॥ ५१
 इह विहाय हि मां प्रगते त्वयि
 किमवलम्ब्य मया प्रतिषज्यते ।
 व्रजसि मन्दरधीर यतो यत-
 स्तनय मां च नयस्व ततस्ततः ॥ ५२
 इति वचोविरते वणिगीश्वरे
 वरतनुस्त्वथ चास्त्विति चोक्तवान् ।
 अथ पुरान्नृपतेर्लिताह्या-
 दुदयितुं समयश्च तदाभवत् ॥ ५३
 विविधबन्दिमहाविट्यागध-
 स्फुटमुखोष्टपुटप्रविजृमिभतः ।
 जय जयेति जयावह ऊर्जित-
 स्त्वविरतध्वनिरास समन्ततः ॥ ५४
 अपि च पर्वणि वृद्धिमथर्च्छेतः
 पवनघट्टितचारुतरङ्गिणः ।

ललितपूर्वपुरं नृपतेर्गमेः

जलनिधेः सकलध्वनिमादधौ ॥ ५५

हयरथद्रिपपादविघट्ना-

त्स्फुटसमुच्छ्रतधूलिविधूसरः ।

न दद्वशे खलु तत्क्षणमम्बरं

दिनकरश्च परिस्फुरदंशुमान् ॥ ५६

अपनयाशु जैड स्वतुरङ्गमं

मदविभिन्नकटद्विरदान्तिकात् ।

तुरगपूर्वगतां च किशोरिका-

मपनयेति रवः परिशुश्रवे ॥ ५७

मधुरवाक्यरसैरनुगच्छतः

पुरजना नृपतिं त्वविश्यताम् ।

युवनृपेण दिवाकरतेजसा

परबलोन्मथनार्थमतोत्युधैः (१) ॥ ५८

प्रबलकेतुपतद्विहगाकुला

प्रथितमुत्तमनामपुरार्णवम् ।

ललितपूर्वपुराद्रिगुहामुखा-

दभिससार च सैन्यनदी द्रुतम् ॥ ५९

तदनु सागरवृद्धिवणिकपतिः

शकटसार्थसहस्रसमन्वितः ।

नृपसुताशिविकाग्रगतस्ततो

बहुभटानुवृतः प्रययौ शनैः ॥ ६०

गिरिगुहामुखकाननसंकटे
 नरपतेर्वजतः परिपार्थतः ।
 युवनृपः पृतनां परिपालय-
 अगमदिन्द्रसुतोपमविक्रमः ॥ ६१
 स्वविषयाद्विषयान्तमुपेत्य च
 प्रतिनिवेश्य नृपस्तु वरुथिनीम् ।
 अभिनिवेदयितुं द्रुतमागतं
 जलधिवृद्धिमतो विसर्ज सः ॥ ६२
 नृपवचोर्थविशेषपरावरं
 मनसि वाक्यपदुर्गणयंस्ततः ।
 अभिसमीक्ष्य नृपस्थितपौरुषं
 स्वनृपकार्यमशेषमदुद्रुवत् ॥ ६३
 उपगतं ललिताद्वपुराधिपं
 जलधिवृद्धिमुखादवबुध्य तम् ।
 अपजयं च परस्य जयं स्वकं
 मनसि निश्चितवान्स महीपतिः ॥ ६४
 परमहर्षविबुद्धमुखाम्बुजो
 हृषितरोमचिताश्चितविग्रहः ।
 कुशलतां नृपतेः परिपृच्छय तं
 पुनरपृच्छदसौ बलसंपदाम् ॥ ६५
 कति गजाः समदाः कति वाजिनः
 कति हि योधगणाः कति नायकाः ।

१ म स विषयाद्. २ [सुतमागतं]. ३ [नृपस्थितपौरुषं].

कति च मन्त्रविदः कति वल्लभाः
 कथय वेदितुमिच्छति मे मतिः ॥ ६६
 इति महीपतिना प्रतिचोदितः
 स्वपतिचक्रबलस्थितिपौरुषम् ।
 युधि वराङ्गविनिर्मितसाहसं
 जलाधिवृद्धिरजिज्ञपदाशु तत् ॥ ६७
 हृदयहारिवचःश्रवणामृतं
 सपदि सम्यगिदं समुदाहृतम् ।
 सकलमेतदैवमि वराङ्ग इ-
 त्याभिहितं भवता वद कीदृशम् ॥ ६८
 स्थितिगतिद्युतिरूपपराक्रमैः
 प्रियमुत्स्तव सोऽस्ति भवत्समः ।
 व्यतिगतेषु दिनेष्विभकारणो
 नृवर येन कृतः प्रथितो रणः ॥ ६९
 इति सरित्पतिवृद्धिवचः पुन-
 हृदयतुष्टिकरं तु निशम्य सः ।
 कटककुण्डलहारवरादिभिः
 सदसि पूजितवान्बहुभूषणैः ॥ ७०
 गतमुत्स्य कथाश्रुतिविस्मितो
 विकसितोत्पललोलविलोचनः ।
 नृपतया नृपतिश्रुतुरंगया
 द्रुतमगात्तनयस्य दिव्यक्षया ॥ ७१

१ [कीदृशः]. २ [पृतनया].

स्वतनयाभिनिरक्षणकाङ्क्षया

गुदयति क्षितिपे मुदितात्मनि ।
पथि वराङ्गकथाभिरतो जनो

न बुबुधेऽध्यपरिश्रममादतः ॥ ७२

प्रहतदुन्दुभिशङ्खमहारवै-

स्तमुपगम्य नृपं समुपाश्रितम् ।

परिगतो युवराद् ललितेश्वर-

श्वरणयोः समुदौ प्रणिपेततुः ॥ ७३

वरवधूस्तनकुट्टमललम्पर्तं

प्रमृदितोत्तमचन्दनकुङ्कुमम् ।

भुजयुगं प्रविसार्य महीपति-

स्तत उभावधिकं परिषस्वजे ॥ ७४

प्रियसुतं च समैथुनमात्मन-

श्विरतरेण समीक्ष्य महीपतिः ।

वसुमती लवणार्णवमेखला

प्रविजितेति मया स्फुटमभ्यधात् ॥ ७५

अतुलहर्षसमन्वितमानसौ

समनुरक्तजनैः सह भूभुजौ ।

वरतनोः कथया श्रवणीयया

ह्यवसतां तदहर्विगतोत्सुकौ ॥ ७६

प्रतिगमय्य निशामुदयागते

दिनकरे त्वरया कृतमङ्गलः ।

१ [परिगतौ.....ललितेश्वरौ चरणयोः]. २ [प्रमृदितोत्तम°]. ३ क
सुमैथुन°.

विश पुरं जननीपभिवादय

त्वमिति भूमिपतिः सुतमन्वशात् ॥ ७७

इति नृपाभिहितो रणकर्कशः

पितरमित्थमवोचदिदं वचः ।

तमवतर्प्य रणातिथिमायुधे-

स्तदनु नाथ पुरं प्रविविक्ष्यते ॥ ७८

तंमवगम्य चैर्वकुलेश्वरो

वरतनोर्भट्टां बलसंपदम् ।

अपजगाम मनाभयविक्लवं

न्यगपगन्धहतो द्विरदो यथा ॥ ७९

बकुलराजबलाबलमीक्षितुं

नृपनियोगकराः पुरुषा गताः ।

अपगमस्य निवेदनसंभ्रमाः

प्रतिनिवृत्य महीपतये जगुः ॥ ८०

अपरपक्षपराभवसंश्रया-

त्प्रतिविबुद्धमुखाम्बुरुहा नृपाः ।

प्रजहर्षुर्जयदुन्दुभयो ध्वनं (?)

जलधरा इव ते जलदागमे ॥ ८१

उदितबालरविप्रतिमद्युतिं

प्रथमयौवनभूषितविग्रहम् ।

भुवनवल्लभमेकपति भुवः

स्वजनमेव जनाः खलु मेनिरे ॥ ८२

अवनिराज्यधुरं भजतामिपां
 प्रतिगृहाण न चान्यदिहोच्यताम् ।
 इति जगुर्गुरवः सदसि स्थितं
 वरतनुं मुदिता॑ गुणभाजनम् ॥ ८३
 स च गुरुप्रतिकूलभयादतः
 किमपि चात्मगतं हृदि॒ चिन्तयन् ।
 न च शशाक निवारयितुं बला-
 न्नृपतिता॑ क्षितिपैः॒ समधीयत ॥ ८४
 रजतरुकमघटैरभिषेचितः
 प्रवरपट्टविभूषितमस्तकः ।
 प्रचलदुज्ज्वलचामरवीजितः
 प्रविरराज शशीव गताम्बुदः ॥ ८५
 समदवारणमूर्धि॑ प्रतिष्ठितो
 नृपतिभिर्बहुभिः॑ परिवारितः ।
 प्रचलदुच्छ्रितकेतुलसञ्ज्ञजः
 पुरवरं प्रविवेश महेन्द्रवत् ॥ ८६
 प्रवरहर्म्यतलस्थितयोषितो
 विलसितामलसन्नयनावलीः ।
 सललितं स हरं^३ मुदितः॑ शनै-
 रूपससार गृहं सैं नरोत्तमः ॥ ८७
 उदितकाश्चनतोरणगोपुरं
 रुचिमदुच्छ्रितकूटटांत्कटम् ।

१ म मुदितो. २ क °विभूषणभूषितः. ३ [स हरन्]. ४ [गृहं च].

नृपगृहं प्रविशन्विवभौ नृपो
जलदगर्भमयेन्दुरिवामलः ॥ ८८

प्रमुदिता च वराङ्गवराङ्गना
सकलचन्द्रमुखी कुलनन्दिनी ।
प्रहतमङ्गलतूर्यरवैः सह
प्रविशति स्म मनोरमया पुरम् ॥ ८९

अथ नरपतिरन्तर्गेहलक्ष्मीमिवैकां
सविनयमुपसद्य प्राञ्जलिर्जातहर्षः ।
विकचकपलभासः सन्ननाम स्वसारः
प्रणतजनविभूत्या पादयोः पादयोः सः ॥ ९०

सदयमनुपमाद्यासन्नतान्ताश्च दृष्ट्वा
हृदयमपि वसन्तीर्योषितिः संप्रपृच्छ्य ।
चरितपरिकथां तामात्मनः संनिवेद्य
क्षपितरिपुबलौघः स्वस्थचित्तो बभूव ॥ ९१

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥

स्वजनसमागमो नाम
विंशतितमः सर्गः ।

[एकविंशः सर्गः]

पुरा वराङ्गस्तु कुमन्त्रिमन्त्रित-
 स्तदात्मदुर्वृत्तविपाकतश्च सः ।
 वनान्तरे व्यालमृगादिसेविते
 निरन्तरं दुःखमनेकमासवान् ॥ १
 स एव पूर्वार्जितपुण्यपाकतः
 समुद्रवृद्ध्यादिभिराससंगतः ।
 क्रमेण भूयः समवाप्य सञ्च्छ्रयं
 स्ववन्धुमित्रेष्टजनैः सहोषितः ॥ २
 विपत्तयश्च व्यसनानि संपदः
 सुखासुखोन्मिश्रफलप्रवृत्तयः ।
 वियोगसंयोगसमृद्धिहानयो
 भवन्ति सर्वत्र मनुष्यजातिषु ॥ ३
 जिनेन्द्रसच्छासनमार्गयायिना
 त्रिलोकसञ्ज्ञाविदा महात्मना ।
 उदारवृत्तेन शुचं व्यपास्यता
 सुखं परत्रेह च लभ्यते ध्रुवम् ॥ ४
 ततः कदाचित्सुरसेनभूपतिः
 समाप्तकार्यो नृपमायतश्रियम् ।
 सुखोपविष्टं समुपेत्य सादरं
 व्यजिज्ञपद्यातुमथात्मनः पुरीम् ॥ ५
 विचिन्त्य लोकानुगतिप्रवर्तनं
 मृगेन्द्रमत्तद्विपविक्रमक्रमः ।

प्रदानमानादिभिरचनाहैः
 समर्च्य राजा विससर्ज भूपतिम् ॥ ६
 स देवसेनो भगिनीं सुताद्रूयं
 समर्प्य लोकस्य गतिस्थितिक्रियाः ।
 विमोच्य जामातरमानतद्रिष्टं
 स्वदेशमृध्या परया ययौ नृपः ॥ ७
 गते वराङ्गः श्वशुरे महान्तुतौ
 दिगन्तरख्यातविशिष्टौरुषः ।
 समेत्य कान्तापितृमातृबन्धुभि-
 र्गतश्रैमः संमुमुदे पुरोत्तमे ॥ ८
 अथैवमुर्वीं तु वराङ्गनामानि
 प्रशासति न्यायपथेन भूभुजि ।
 सुषेणमाता च सुषेणधीवरौ
 कृतापराधानिति^१ नैव शिस्यरे (?) ॥ ९
 अहो क्षमा धैर्यमहो गभीरता
 वराङ्गनाम्नोऽमितसच्चतेजसः ।
 सति प्रभुत्वेऽपि कृतापराधिनः
 कृपान्वितो नः सहते दुरात्मनः ॥ १०
 विहाय मानं क्षममस्य दर्शनं
 पुरापि नास्मद्वचसि स्थितौ^२ युवाम् ।
 यदुक्तमेतद्युपपद्यते यदि
 तदेव साध्वभ्युपगम्यतामिह ॥ ११

^१ म महोद्यतौ. ^२ क गतः श्रयः. ^३ क कृतापराधा निशि. ^४ म स्थितो.

इति प्रधार्यात्मनि ते हिताहितं
 विनिश्चितार्थाः प्रणिपातनं प्रति ।
 महाभयाकम्पितगात्रयष्टुयो
 विविक्तदेशे प्रणिषेतुरीश्वरम् ॥ १२
 महानथास्माभिरकार्यपण्डितैः
 कृतोऽपराधोऽनपराधिनस्तव ।
 जिजीविताशाः शरणागता वयं
 प्रसादमस्मासु कुरुष्व सांप्रतम् ॥ १३
 तामुत्थितोऽ मातरमागतां विभु-
 नेनामैवं प्रकृथाऽ इति ब्रुवन् ।
 करेण पस्पर्शं सुषेणमञ्जसा
 जगाद मा भैरिति तं च धीवरम् ॥ १४
 विगृह्य ये ऽत्र प्रतिलोमगाः स्थिता
 नयामि तांस्तान्यमसादनं प्रति ।
 वशस्थितौ ये परिपालयामि तान्
 स्थिता प्रतिज्ञा महती ममेद्वशी ॥ १५
 कृतापराधेषु हि ये क्षमान्विताः
 क्षमावतस्तान्पुरुषान्विदुर्बुधाः ।
 गुणेषु विन्यस्तधियां कृतागसां
 विचेष्टते दैवकृतैव सा क्षमा ॥ १६
 वराङ्गवाकचन्दनतोयबिन्दुभि-
 स्त्रयः समाप्यायितमानसास्तदा ।

१ म तमुत्थितो. २ म प्रकृथा. ३ क देवरं. ४ म वशस्थिता.

प्रहर्षफुल्लाननपङ्कजाः पुन-
 व्यपेतशोकाः स्वगृहं ततो ययुः ॥ १७
 गतेषु तेषु त्रिषु मित्रभावतः
 प्रतापदाक्षिण्ययशोबलान्वितः ।
 स्वयं जगामोदधिवृद्धिना सह
 पितुः सकाशं खलु कार्यवत्तया ॥ १८
 यथोचितन्यायपथेन संश्रितः
 प्रणम्य पादौ पितुरायतश्रियः ।
 मनोभिसंधारितकार्यगौरवः
 कृतावकाशं शनकैर्व्यजिज्ञपत् ॥ १९
 प्रशास राजन्स्वकुलोचितां महीं
 सुषेण एषोऽपि तदर्थभावपुनः ।
 अहं च राज्ये विनियोजितस्त्वया
 नृपाः पुरेऽस्मिन्कथमासते त्रयः ॥ २०
 आदाय तन्मानुषवार्जितं वनं
 निवेशायिष्यामि तवाभ्यनुज्ञया ।
 यदि प्रसादो मयि विद्यते प्रभो
 विमुच्च मा भूदुपरोध एष ते ॥ २१
 निशम्य पुत्रस्य वचो महीपति-
 र्जगाद वाक्यं हृदयङ्गमाक्षरम् ।
 त्वमेव पुत्रः शरणं गतिश्च मे
 विहाय यातुं न हि मामतोऽर्हसि ॥ २२

य एवमुक्तो जनकेन सोऽभ्यधा-
 दैयै मि राजन्नुरागमात्मनि ।
 तथापि मे बुद्धिरियं विजृम्भते
 ह्यपूर्वदेशग्रहणाय शाधि माम् ॥ २३
 इति ब्रुवन्तं गमने हृष्टवतं
 विबुध्य राजा प्रियमात्मनः सुतम् ।
 मनोरथानां परिवृद्धिसंपद-
 स्तवाचिरात्सन्त्वति मुक्तवान्सुतम् ॥ २४
 ततो वराङ्गः पितरौ प्रणम्य तौ
 विमुच्य सर्वान्स्वजनान्यथाक्रमम् ।
 कृतानुयात्रान्मुदितैर्महाजनै-
 र्ययौ महाध्या नगरादथोत्तमात् ॥ २५
 पितुर्नियोगाद्रयोधमन्त्रिणो
 विपश्चितोऽथागमसागरान्तगाः ।
 अनुप्रयाताः सुतराज्यदुर्धराः
 प्रयातमैत्तं मदगर्वितां द्विषाम् ॥ २६
 मुहूर्तनक्षत्रविलग्नसंपदं
 विलोक्य सद्भिः सह चास्विग्रहः ।
 मुदा प्रतीतः कमलायतेक्षणो
 नगेन्द्रमापन्मणिमन्तमीश्वरः ॥ २७
 सरस्वती नाम नदी च विश्रुता
 मणिप्रभावान्मणिमान्महागिरिः ।

१ क प्रयातमात्रां, [°मन्तं...°गर्वितद्विषाम्]. २ म नरेन्द्रमापन्मणिमन्तमीश्वरः.

तयोर्नदीपर्वतयोर्यदन्तरे
बभूव चानर्तपुरं पुरातनम् ॥ २८
पुरा यदूर्नां विहगेन्द्रवाहनो
जनार्दनः कालियनागमर्दनः ।
रणे जरासन्धमभीर्निहत्य य-
बनर्तवान्नर्तपुरं ततोऽभवत् ॥ २९
वराङ्गराजो मृगराजत्रिकमो
जितारिपक्षो विजितेन्द्रियः स्वयम् ।
अनन्तनामप्रमुखैः स्वमन्त्रिभिः
सुमन्त्र्य सम्यग्वहुनीतिपारगैः ॥ ३०
पुरापि यत्कालपरंपरागमा-
ब्ररेन्द्रसंक्षोभविशेषजर्जरम् ।
समीक्ष्य तद्रस्तुविदा प्रदर्शितं
निवेशयामास पुरं स पूर्ववत् ॥ ३१
पुरस्य बाह्यं गिरिकूटसंकटै-
स्तडागवापीपृथुदीर्घिकाहौः ।
विबुद्धपौः कलहंसमालिभी
राज सोद्यानवैः समाकुलम् ॥ ३२
बभूव यस्मिन्पारिखा समुद्रव-
द्विरिप्रकाशः परिवेष्टितश्च यः ।
हिमाद्रिकूटोपममास गोपुरं
शरत्सिताभ्रप्रतिमा गृहावली ॥ ३३

सभाप्रपादेवगृहाश्रमाश्रयं
 विभक्तनानात्रिचतुष्कचत्वरम् ।
 पुरं विशालं वृत्तिलोचनप्रियं
 बभौ सदोद्धाटितविश्रुतापणम् ॥ ३४
 पुरस्य मध्ये प्रविभक्तभूतले
 समुन्नते श्रीमति वीरवस्तुनि ।
 सुखावलोके बहुशिल्पिनिर्मितं
 रराज तद्राजगृहं महर्द्धिमत् ॥ ३५
 सभागृहं वासगृहं रहोगृहं
 जलाग्निदोलागृहनन्दिवर्धनम् ।
 महानसं सज्जनमण्डनाहयं
 त्रिपञ्चषट्सप्तनवाष्टभूमिकम् ॥ ३६
 गजाश्वशालायुधगेहपङ्गः
 सुवर्णधान्याम्बरभेषजालयाः ।
 पृथकपृथग्भाण्डविकल्पतस्तदा
 सुसंस्कृता राजगृहे समन्ततः ॥ ३७
 नरेन्द्रगेहोत्तरादिकप्रतिष्ठितो
 जिनेन्द्रगेहो मणिरत्नभासुरः ।
 चलत्पताको ध्वजवृन्दसंकुलः
 सहस्रकूटोत्कटसंकटोऽप्यभूत् ॥ ३८
 वृपस्य पुण्योदयतो महाजनः
 समन्ततः प्रश्रुतवान्समागमत् ।

१ [श्रुतिं, स्मृतिं]. २ म भैषजालयाः..

महाटवीग्रामसहस्रसंकटो
 वनं त्वभूद्वेवजसंनिवेशितम् ॥ ३९
 तपोधनानां निलया वनान्तरे
 शिलालयाः कृत्रिमरम्यभूतलाः ।
 महापथोपान्तविरुद्धपादपाः
 कचिज्जलोपाश्रितफुल्लवल्लिकाः ॥ ४०
 कचित्सगोधूमयवातसीतिलाः
 कचिच्च केदारविष्कशालयः ।
 कचित्पुनर्त्रीहिसमाकुला मही
 कचिच्च मृद्वीक्षुवनं व्यराजत ॥ ४१
 सरांसि शालीं जहसुः स्वपङ्कजैः
 विबुद्धपत्रैरिव चारुविग्रहैः ।
 हियोत्तमाङ्गान्यवनम्य शालयः
 स्थिता इव स्थूलतया चकासिरे ॥ ४२
 कचिच्च नार्यः कमलायतेक्षणाः
 पिधाय कुम्भान्कुमुदोत्पलाम्बुजैः ।
 सुमङ्गलायैव कृतप्रसादनां-
 ज्ज्वलत्प्रबन्धुर्विलसत्पयोधराः ॥ ४३
 पथिश्रमाः काश्चनविभ्रमाश्चिताः
 प्रसज्य कण्ठे वनिताः स्वयं ययुः ।
 परस्परं ग्रामसहस्रदर्शिनो
 निपेतुरभ्यर्णतया हि कुकुटोः ॥ ४४

१ क °संनिवेशतुम्. २ [कृतप्रसाधना जलं]. ३ [पथिश्रमाः] ४ म कुर्कटाः

उपद्रवासद्भयदोषवर्जना-
 त्प्रदानमानोत्सवमङ्गलोद्यमात् ।
 प्रभूतभोगार्थविशेषसंपदः
 कृतार्थतां तत्र जनाश्च मेनिरे ॥ ४५
 सुखोपभोगात्सुजनः कुरुपमो
 धनागैरप्रतिमैः सदाकरः ।
 प्रदानमानप्रशमोपचारतो
 विदेहदेशेन समानतां ययौ ॥ ४६
 व्रजास्तु ते ग्रामसमानतां गताः
 पुरोपमा ग्रामवरास्तदाभवन् ।
 पुरं जहासेव च वज्रिणः पुरं
 रराज शक्तप्रतिमो महीपतिः ॥ ४७
 पुराकरग्राममडंबपत्तने-
 ष्ववाप वृद्धिं क्रमशो जनार्णवः ।
 मुदं महीन्द्रो महतीमवाप्नुवान्
 पुराः मसंस्कारितपुण्यकर्मणा ॥ ४८
 ततः स जित्वाम्बुधिमेखलां धरा
 यशोवितानस्थगिताम्बरावधिः ।
 सुरेन्द्रवच्चारुमहर्दिशोभितो
 रराज राजाप्रतिमोरुपौरुषः ॥ ४९
 नृपश्च निर्वर्तितकार्यनिश्चयः
 सहासितः प्राज्ञतमैश्च मन्त्रिभिः ।

विचिन्तया सागरवृद्धिना कृतं
नृपाभिषेकाय तदांशिसंमुदा ॥ ५०

निशम्य राजो वचनं वणिकपतिः

प्रसादमात्मन्यवगम्य धीमतः ।

वणिक्तया दुर्लभतां नृपाश्रियो

हृदि प्रकुर्वन्निदमभ्यधाद्रचः ॥ ५१

नृपाभिषेको नृप नः पुरातनै-

रनासपूर्वः कुलसंतातिस्त्वयम् ।

कुलोचितं मार्गमपोह्य मे पुन-

नवेन मार्गेण गतिर्न शोभते ॥ ५२

अथेवमुक्तश्च समुद्रवृद्धिना

तमब्रवीन्नान्यदिहोच्यतां त्वया ।

सुतो नृपस्तस्य पिता वणिकिल

इति प्रहास्यं भुवि किं न बुध्यसे ॥ ५३

ततः प्रसह्यद्दिसमन्वितं नृपः

सचामरं विष्टरमुच्छ्रितातपम् ।

ददौ नृपत्वं स समुद्रवृद्धये

भवान्विदर्भाधिपतिर्भवत्विति ॥ ५४

समुद्रवृद्धयसुताय धीमते

ददौ धनाख्याय महीं सकोशलाम् ।

कलिङ्गराष्ट्रं करिवृन्दसंकटं

वसूक्तये संप्रददौ कनीयसे ॥ ५५

अनन्तनाम्ने स्थिरसत्त्वबुद्धये
 दिदेश देशं प्रथितं हि पल्लवम् ।
 सकाशिभूमिं विबुधाय मन्त्रिणे
 सुचित्रसेनाय च वैदिशं तथा ॥ ५६
 अमातिराष्ट्रं त्वजिताय संददौ
 प्रतिप्रधानाय च मालवाह्न्यम् ।
 स्वबन्धुशिष्टेजनोपसेवितां
 यथानुरूपं प्रविभक्तवान्महीम् ॥ ५७
 ततः सुषेणाय युवाधिपाय तां
 महीमपश्यन्नथ संविभाजितुम् ।
 विमृश्य सस्मार यदच्छ्या पितुः
 कृतापराधं च कुलाधिपं तदा ॥ ५८
 गुरुं मदीयं परिभूय दुर्दमो
 विनाश्य देशं प्रविलुप्य गोधनम् ।
 विगृह्य योद्धुं पुनरागतो बलैः
 प्रवृद्धभोगोच्छ्रितमानदर्पितः ॥ ५९
 तथैव शौर्यं त्वभिमानसंभवं
 तदस्ति चेद्योद्धुमिहैतु सांप्रतम् ।
 उत प्रभावो न च तस्य विद्यते
 विमुच्य देशं वनमभ्युपेतु वा ॥ ६०
 इति प्रगर्ज्यात्मसखासमक्षतो
 व्यपेतसामं प्रतिलेख्य लेखकम् ।

वचोहरानामतमान्मनस्वनः

शशास सद्वश्च कुलाधिपान्तिकम् ॥ ६१
 असामयुक्तं प्रसमीक्ष्य लेखकं
 उपप्रदानाद्रहितं च शासनम् ।
 निशम्य वाक्यं च वचोहरोदितं
 सदश्वकम्पे सहसैव साकुलम् ॥ ६२
 कृतपराधादकृतात्मवीर्यतो
 निराश्रयान्विःप्रतिकारकारणात् ।
 मृगेन्द्रनिर्भर्त्सनतो मतङ्गजो
 यथाहवे विद्धि कुलाधिपस्तथा ॥ ६३
 बलेन वित्तेन पराक्रमेण च
 महीपतिभ्योऽतिमहान्महीपतिः ।
 कृतार्थकृत्यस्त्वनवार्यवीर्यवान्
 किमत्र योग्यं वदतार्थचिन्तकाः ॥ ६४
 स्वनाथवाक्यं हि निशम्य मन्त्रिणो
 हिताहितोपायविचारदक्षिणः
 मनोहरं तच्च हितं मिताक्षरं
 स्वकार्यसिध्यर्थमुदाहरन्वचः ॥ ६५
 सुखं हि साम्नैव तु कार्यसाधनं
 शुप्रदानेन च मध्यमं भवेत् ।
 प्रभेददण्डौ खलु मृत्युनाशगौ^१
 चतुष्टयी वृत्तिरिहौवतां महीम् ॥ ६६

१ क °नाशनौ. २ क वृत्तिहिवाहतां.

अतो वरिष्ठा तनया मनोहरां
 प्रदाय सम्यग्विधिना महीपतेः ।
 कृतैककार्याः सुखमास्महे वयं
 न चान्यथास्तीश्वर सन्धिकारणम् ॥ ६७
 स्वमन्त्रिसंदर्शितनीतिचक्षुषा
 विचिन्त्य दीर्घं प्रविचार्य चात्मनि ।
 प्रदातुकामो वरविग्रहाय तां
 निनाय पुत्रीमनवद्यरूपिणीम् ॥ ६८
 निवेद्य चात्मागमनं महीपते-
 रनुज्जया तस्य विवेश मन्दिरम् ।
 विलोक्य सिंहासनमध्यधिष्ठितं
 ननाम मूर्धा नमितात्मशत्रवे ॥ ६९
 कुलोचितं राज्यमपोह्न मामकं
 विभज्य तावत्स्वमनोऽनुवर्तिने ।
 कृतापराधस्तु मया सहस्व तं
 नृनाथ इत्येवमयाचत प्रभुम् ॥ ७०
 अनुप्रभाष्यैवमतीव नीतिवि-
 वरेन्द्रचित्तं च कुलेश्वरोऽहरत् ।
 स्वभावभद्रः कृपया समन्वितो
 नृपः स तस्मै कृतवाननुग्रहम् ॥ ७१
 प्रसादलाभात्परितुष्टमानसः
 कृतार्थतां तामवगम्य चात्मनः ।

१ [कृतोऽपराधस्तु].

मनोहरां मूर्तिपतीमिव श्रियं
 ददौ सुतां भूपतये मनोहराम् ॥ ७२
 यया हि भूतिः कनकावदातया
 मनोहरश्रोणिकुचप्रदेशया ।
 नरेन्द्रपुत्र्या नरदेवसत्तमो
 न सा विभूतिर्गदितुं हि शक्यते ॥ ७३
 तुरङ्गमानां तु सहस्रमात्रया
 मतङ्गजानां शतसंख्यया तथा ।
 हिरण्यकोट्या वरलम्बिकाशतै-
 वराङ्गराजं च कुलोऽभ्यमूमुदत् ॥ ७४
 ततः परेषामविलङ्घयशासनः
 स्ववीर्यसंपादितकार्यसाधनः ।
 रराज रक्षन्सकलां वसुंधरां
 पुरन्दरो द्यामिव सुव्रतालयाम् ॥ ७५
 नवान्नवान्हर्पविशेषहेतवैः
 प्रियाङ्गनाभृत्यसुमित्रबान्धवान् ।
 सुरत्नहस्त्यश्वरथान्महीपतिः
 समाप्तवान्निम्नतलं जलं यथा ॥ ७६
 समस्तसामन्तसमाहृतैर्दिनैः
 नरेन्द्रनीत्यायतवाहुकर्षितैः ।
 भृशं पुपूरे नरदेवसंपतं
 सरित्प्रवैगैरिव वारिधर्जलम् ॥ ७७

१ क यया हि सस्ना. २ क कार्यसाधनः. ३ [°हेतन्]. ४ क प्रशस्त०.
 ५ [°धर्नै°]. ६ [°संपदं].

दिग्नतविख्यातवसुंधरेश्वराः
 कुलद्विदेशार्थसमन्वितास्तदा ।
 प्रसादमन्विष्य वराङ्गराजतः
 प्रचकुरानर्तपुरस्य सेवनम् ॥ ७८
 इति गुणवति शासत्यप्रतिख्यातकीर्तौ
 सुजनजनपदं तं सर्वसंपत्तिमन्तम् ।
 व्रतनियमसुदानैर्देवपूजाविशेषे-
 मुनिभिरपि च शान्तै रोमिरे तत्र मत्याः ॥ ७९
 जनयति रतिकार्या श्रीमदानर्तपुर्या
 बहुगुणजनवत्यां धर्मकर्मार्थवत्याम् ।
 नरपातिरभिवृद्धिं कोशदेशार्थसारै-
 रहरहमुपयातः शुक्लपक्षे यथेन्दुः ॥ ८०
 इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 आनर्तपुरनिवेशो नाम
 एकविंशतितमः सर्गः ।

[द्वाविंशः सर्गः]

वसुंधरेन्द्रस्य तदा पृथिव्यामनेकहस्त्यध्वपदातिदेशैः ।
 वराङ्गनाभिर्बहुरत्नदेशैरवर्धतात्यर्थमनर्थघाती ॥ १
 सवारणं सर्वजगत्प्रधानं धर्मार्थकामत्रयरत्नपुण्यम् ।
 तदात्मनीनस्य जनस्य सम्यक् स संविभेजे हि समाहितात्मौ ॥ २

१ [वसुंधरेन्द्रश्च]. २ [°केशैः]. ३ क् समाहितार्थी.

सोत्साहैर्यद्युतिपौरुषाणि संदर्शयां शत्रुगणे बभूव ।
 सत्यार्जवक्षान्तिदयादमादीन् गुर्वङ्गनासाधुषु संचचार ॥ ३
 नापत्सु मूढो व्यसनेष्वसक्तो न विस्मितस्त्वभ्युदये नतारिः ।
 अकृत्यकृत्यप्रतिपक्षपक्षमित्रारिमित्रपक्षतिक्रियाङ्गः ॥ ४
 स्त्रीबालवृद्धाश्रमदुर्गतानामनाथदीनान्धरुजान्वितानाम् ।
 बलाबलं सारमसारतां च विज्ञाय धीमानथ संबभार ॥ ५
 धर्मैककार्यान्गुरुवन्ननाम प्रशान्तवैरान्सुतवद्रक्ष ।
 दर्पोच्छ्रात्मानमदावलेपान् दूरं स्वदेशादतिनिश्चकास ॥ ६
 पुराजितात्यन्ततपःप्रकर्षात्सदिन्द्रियप्रार्थितभोगभागी ।
 जगज्जनाक्षिक्षमचारुरूपो मृष्टार्थशिष्टविशिष्टभाषी ॥ ७
 खरं मृदूनां क्रमनायिनां च स्वकालनिर्वर्तितसदुणानाम् ।
 श्रियं नरेन्द्रोऽनुभवव्राज शरद्विनिर्धौत इवेन्दुराजः ॥ ८
 शरद्यथार्काशुविजृम्भतायां प्रसन्नदिक्तोयनभस्तलायाम् ।
 विपकशालीनवलोकमानो महीपतिर्भूमितलेऽतिरेमे ॥ ९
 हेमन्तकाले रतिकर्कशाभिः क्रीडानुषङ्गक्रमकोविदाभिः ।
 प्रियाभिरापीनपयोधराभिश्चक्रीड रम्येषु निशामुखेषु ॥ १०
 शीतादितासेवितबालभानौ तुषारसंसर्गविशीर्णपद्मे ।
 करीन्द्रवृन्दैः शिशिरे नरेन्द्रो बभ्राम देशान्स विहारयोग्यान् ॥ ११
 ततो वसन्ते वरुणातिकान्ते फुल्लद्रुमात्तंभ्रमरोपगीते ।
 तमिन्दुवक्त्राः कुसुमावतंसाः कान्ता वनान्ते रमयांबभूवः ॥ १२
 मयूरमातङ्गमदावहायां विरुद्धबालाङ्गुरशाङ्गुलायाम् ।
 प्रियावृतः प्रावृषि नीरदाभान्वभ्राम राजा धरणीधरांस्तान् ॥ १३

१ म खले. २ म बालभागौ. ३ क °द्रुमार्तभ्रमतोप°. ४ म °नीते.
 ५ [°शाङ्गुलायाम्]. ६ म ख्रियो वृतः.

वर्षसु भीमाशनिगर्जितासु विद्युलतानद्वलाहकासु ।
 खद्योतनात्माकुलितक्षपासु प्रासादमालासु दिनान्यनैषीत् ॥ १४
 अहीनपश्चेन्द्रियकल्पगावो यद्वच्छयाभ्यागतशक्रकल्पः ।
 तत्कालयोग्यान्विविधप्रकारानिष्टैः समेतोऽनुवभूव भोगान् ॥ १५
 कदाचिदुद्यानवनेषु रेमे रेमे पुनः काननपर्वतेषु ।
 कचिनदीनां पुलिनेषु रेमे रेमे सरस्स्वम्बुजसंकुलेषु ॥ १६
 कदाचिदासैः सुतबन्धुमित्रैः शिष्टैश्च तुष्टैर्बहुशास्त्रगोष्ठ्या ।
 युद्धातिशौण्डैर्यमदण्डकल्पैः सुरैः सुरूपैः सुभर्गैश्च रेमे ॥ १७
 गन्धर्वगीताभिरतिः कदाचित्कदाचिर्दहत्कथया प्रसक्तः ।
 प्रासाददेशेषु वराङ्गनानां क्रीडासु रेमेऽतिमनोहरासु ॥ १८
 यद्यन्त्रलोके पुरुषेश्वराणां प्राप्तव्यमासीदनवाप्यमन्यैः ।
 महीपतिः सोऽप्रतिमप्रकाशस्तत्समग्रं समवाप सम्यक् ॥ १९
 इत्थं व्यतीते च सुखेन काले महीपतिः प्राप्तमनोरथानाम् ।
 रन्त्वा कदाचिद्वनकाननेषु कृतानुयात्रः पुरमाविवेश ॥ २०
 तस्याग्रपत्नी पुरमाविशनं प्रजातिकानं सततोपशान्तम् ।
 द्विषज्जनानं विविधर्द्धिमनं प्रासादजालान्तगता ददर्श ॥ २१
 तस्यास्तदानीमवलोकयन्त्या मनस्यभूवन्सकला विशेषाः ।
 पुरप्रमोदो जनतानुरागः सन्माननीयत्वमथात्मनश्च ॥ २२
 पुरा तु मत्स्वामिनि निर्गतेऽस्मिन्नन्याङ्गनासद्यमवापि दुःखम् ।
 तदागमाम्भः परिषेकयोगान्मनः पुनः सा कुरुतामपेतम् (?) ॥ २३
 कृतं मदीयं कियदस्ति भद्रं कियच्चिरं तिष्ठति वा मयि श्रीः ।
 इतः किमु स्याङ्गवित्व्यता वा मया पुनः किं करणीयमत्र ॥ २४

एतानि चान्यानपि चिन्तयन्त्याः सामीप्यमभ्यैद्वरणीपतिश्च ।
 ससंभ्रमा सा प्रविलोक्य देवं ननाम पादाम्बुरुहाय तस्य ॥ २५
 अनुज्ञया तस्य नृपस्य देवी पार्वीपविष्टा हि तदा प्रहृष्टा ।
 कृताङ्गलिं पङ्कजकुट्टलाभां विज्ञापयामात्मवती वभूव ॥ २६
 कथं सुखं केन कुतश्च किं वा कथं भवेत्कर्म सुखानुबन्धि ।
 अखण्डितं तन्निरुपद्रवं च श्रोतुं मनो मां त्वरयत्यतीव ॥ २७
 निशम्य वाणीं सकलां प्रियायाः स्वभावसद्गर्तिर्नरेन्द्रः ।
 विमुक्तिर्थं प्रविहाय तस्यै^३ प्रोवाच सम्यगृहिधर्ममेव ॥ २८
 स्थूलार्महिसामपि सत्यवाक्यमचोरतादाररतिव्रतं च ।
 भोगोपभोगार्थपरिप्राणमन्वर्थदिग्देशनिवृत्तितां च ॥ २९
 सामायिकं प्रोषधपात्रदानं सल्लेखनां जीवितसंशये च ।
 गृहस्थधर्मस्य हि सार एषः संक्षेपतस्तेऽभिनिगद्यते स्म ॥ ३०
 अनन्यद्वित्वमनन्यकीर्तिर्निःशङ्कता निर्विचिकित्सता च ।
 जिनेन्द्रपादार्चनतत्परत्वं नामार्हतां द्विष्टमभिष्टुवन्ति ॥ ३१
 शीलानि दानानि तपांसि पूजाः सम्यक्त्वपूर्वाणि महाफलानि ।
 सत्पुण्यनिर्वर्तनकारणानि चतुर्विधानीह वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३२
 सर्वेषु तेष्वप्रतिमेषु भद्रे तत्साधनेषु प्रवरा जिनार्चा ।
 सास्मद्विधानामपि शक्यरूपा शेषं तु सर्वं गृहिणामशक्यम् ॥ ३३
 ख्यातार्ककीर्तिर्वृषभस्य मनुः प्रजापतिश्चक्रभृतां वरिष्ठः ।
 धर्मार्थकामत्रयरत्नमूर्तिः स नः प्रमाणं भवतो नरेन्द्रः ॥ ३४
 गृहाश्रमे संवसते नराणां धर्मार्थिनामपत्रं सुखप्रियाणाम् ।
 अस्मद्विधानां मनुरादिराजः सोऽष्टापदेऽतिष्ठिपदर्हदर्चाः ॥ ३५

१ [कृत्वाङ्गलिः]. २ क °मात्मपती, [°मात्मपतिः]. ३ म तस्यै.
 ४ म निनिगद्यते. ५ [संवसतां]. ६ क धर्मार्थिनामर्थं

शचीपतिर्दक्षिणलोकपालो महाप्रभावोऽष्टगुणद्वियुक्तः ।
जिनेन्द्रसेवां परया मुदासौ करोति सम्यक्त्वविशुद्धिरित्थम् ॥ ३६
नन्दीश्वरेऽहंतप्रतिमार्चनाय समुद्यमन्ते प्रतिवर्षमिन्द्राः ।
कथं न कुर्याम वयं जिनार्चा संसारपाशच्छदुरप्रभावाम् ॥ ३७
एकापि शक्ता जिनदेवभक्तिर्या दुर्गतेवारायितुं हि जीवान् ।
आसीद्वितत्सौख्यपरं परार्थं पुण्यं नवं पूरयितुं समर्था ॥ ३८
ध्रुवो विनाशोऽर्जितपापराशेधवा हि दुःखस्य विपत्तिरिष्टा ।
सुखान्यवश्यं स्वयमाश्रयन्ते भक्तिर्दृढा यस्य जिनेश्वरेषु ॥ ३९
अनेकजात्यन्तरसंचितं यत्पापं समर्था प्रविहर्तुमाशु ।
तमः समस्तं हि दिग्नन्तरस्थं भानोः प्रभाचक्रमिवोदयस्थम् ॥ ४०
जन्मानुबन्धीनि सुदारुणानि संसारदीर्घीकरणव्रतानि ।
कर्माणि मर्त्या जिनपूजनेषु विरुद्धमूलान्यपि निर्धुनन्ति ॥ ४१
पूज्यानि तान्यप्रतिशासनानि रूपाणि लोकत्रयमङ्गलानि ।
संस्थाप्य नित्यं समुपासयन्तः प्रत्यक्षसर्वज्ञफलं लभन्ते ॥ ४२
जन्मस्थतीतेषु जिनेन्द्रपूजामुपास्य ये तीर्थकरा बभूवुः ।
आस्थाप्य तेषां पुनरर्चनानि भूयः स्वयं तीर्थकरा भवन्ति ॥ ४३
नोदैष्यदकों यदि लोकभूतै लोकान्धकारे न्यपतिष्यदेवम् ।
जिनेन्द्रविम्बं यदि नाभविष्यदज्ञानगर्तेषु जनो न्यमंक्ष्यत् ॥ ४४
परीषहारीश्वतुरः कषायान्विभूय जातिं च जरां च मृत्युम् ।
ये निर्वृतिस्थानमवापुरीशास्तदर्चनानाधिकमन्यदस्ति ॥ ४५
इैव पूजाफलतो जिनानां स्वेष्टार्थसंसिद्धिफलं लभन्ते ।
जन्मन्यमुत्रापि च देवलोके प्राप्स्यन्ति दिव्यान्विषयोपभोगान् ॥ ४६

१ [आसीद्वि]. २ [लोकोऽन्धकारे].

अल्पश्रमेणाल्पपरिव्ययेन जिनालयं यः कुरुतेऽतिभवत्या ।
 महाधनोऽत्यर्थसुखी च लोके गम्यश्च पूज्यो नृसुरासुराणाम् ॥४७
 अनार्यभावैरजितेन्द्रियैर्ये कुदृष्टिवृष्टान्तयथानुरक्तैः ।
 उन्मोहितास्तान्सुगतौ दधाति ये ऽतिष्ठिपच्चैत्यगृहं जिनानाम् ॥४८
 अनासचर्यागमदुर्विदग्धमधःपतन्तं नरलोकमेनम् ।
 उत्पातवातैरभिहन्यमानं पोतं प्रसन्नानिलवद्वियेतु ॥ ४९
 योऽकारयदेश्म जिनेश्वराणां धर्मध्वजं पूततमं पृथिव्याम् ।
 उन्मार्गयातानबुधान्वराकान्सन्मार्गसंस्थास्तु क्षणात्करोति ॥५०
 येनोत्तमद्दिं जिनदेवगंहं संस्थापितं भक्तिमता नरेण ।
 तेनात्र सा निःश्रयणी धरण्यां स्वर्गाधिरोहाय कुता प्रजानाम् ॥५१
 त्रिलोकनाथप्रतिमात्रयसेवां ये कुर्वते शुद्धमनोवचोऽङ्गैः ।
 विभिद्य कर्मारिमहोग्रसेनां क्रमेण ते निर्वृतिमाप्नुवन्ति ॥ ५२
 इत्येवमर्हत्प्रतिमालयस्य फलं विशालं नृपतिर्जगाद् ।
 निशम्य तत्सर्वमतिप्रहृष्टा प्रोवाच वाचं मधुरार्थसाराम् ॥ ५३
 यशोऽर्थकामाश्च मयानुभूतास्त्वन्पादपश्चुतिसंश्रयेण ।
 जिनेन्द्रियम्बार्चनमर्चयिष्ये चैत्यक्रियायाँ प्रणवत्सवुद्धिम् ॥ ५४
 सदा जिनेन्द्रोदितधर्मभक्तो विज्ञाप्यमानः क्रियया नरेन्द्रः ।
 अमात्यमाहूय शशास सद्यो जिनालयं त्वं लघु कारयेति ॥ ५५
 संदेशमीशस्य मुदावधार्य बुधः प्रगल्भो विबुधः स नाम्ना ।
 अल्पैरहोमिर्नगरस्य मध्ये प्राचीकरोच्चैत्यगृहोत्तमं तत् ॥ ५६
 सगोपुराद्वालकचित्रकूटं महाभ्रसंघटिततुङ्गकूटम् ।
 चामीकरानद्वसहस्रकूटं घण्टारवैख्स्तकपोतकूटम् ॥ ५७

१ [°पथानुरक्तैः]. २ [योऽतिष्ठिप्]. ३ क °वध्रियेव, [°वध्रियेत].
 ४ क पृथुव्यां. ५ [°क्रियायां प्रणयस्त्ववुद्धिम्]. ६ [प्राचीकरचैत्य]

व्यालोलमालाकुलितान्तरालं मुक्तास्वगालिङ्गितचारुलीलम् ।
 विचित्ररत्नस्फुरदंशुजालं रेजेऽतिमात्रं वरहर्म्यमालम् ॥ ५८
 सुशिलिपनिर्मापितरम्यशालं पदङ्गीतध्वनिशुङ्गशालम् ।
 वन्दारुदिव्यस्तुतिपूरिताशं बभूव तचैत्यगृहं विशालम् ॥ ५९
 कचित्प्रवालोत्तमदामयष्टिः कचिच्च मुक्तान्तरलोलुयष्टिः ।
 ललम्बिरे ताः सह पुष्पयष्ट्या द्वारे पुनः कामलता विचित्राः ॥ ६०
 द्वारोपविष्टा कमलालया श्रीरूपान्तयोः किञ्चरभूतयक्षाः ।
 तीर्थकरणां हलिचक्रिणां च भित्यन्तरेष्वालिखितं पुराणम् ॥ ६१
 हयद्विपस्यन्दनपुङ्गवानां मृगेन्द्रशार्दूलविहङ्गमानाम् ।
 रूपाणि रूप्यैः कनकैश्च ताम्रैः कवाटदेशे सुकृतानि रेजुः ॥ ६२
 स्तम्भैर्जवलद्विस्तपनीयकुम्भैर्विचित्रपत्रांशुपरीतशोभैः ।
 तैः स्फाटिकैर्दम्पतिरूपयुक्तै रेजे जिनेन्द्रप्रतिमागृहं तत् ॥ ६३
 प्रवालकर्केतनपुष्परागैः पद्मप्रभैः सस्यकलोहिताक्षैः ।
 महीतलं यस्य मणिप्रनेकस्तारासहस्रैरिव खं व्यराजत् ॥ ६४
 वैदूर्यनालैस्तपनीयपद्मैर्महेन्द्रनीलैर्भ्रमरावलीकैः ।
 प्रवालमुक्तामणिभिर्विचित्रैर्नित्योपहैरैः कृतमङ्गलं तत् ॥ ६५
 जिनेन्द्रगोहो वरधर्मदेहः सुधामयस्तुङ्गविचित्रशृङ्गः ।
 दूरावगांद्यो गगनेऽभ्यराजदद्वितीयकैलास इवाद्वितीयः ॥ ६६
 प्रेक्षासभावलयभिषेकशालाः स्वाध्यायसंगीतकपटशालाः ।
 सतोरणाद्वालकवैजयन्त्यश्वलत्पताका रुचिरा विरेजुः ॥ ६७
 प्राकारमालाभिरथो परीतं चैत्यं बभासे जिनपुङ्गवानाम् ।
 मेघावलीभिः परिवेष्ट्यमानः समुद्गुसन्तीभिरिवारराज ॥ ६८

१ क मुक्तान्तरलोरुष्टिः, [°लोल]. २ क रूपैः. ३ म नित्योपहाराः.
 ४ क °धर्मगृहः. ५ [दूरावगांदो]. ६ म प्रेष्या°.

प्रियद्वंशोकदुमकर्णिकारः पुनागनागाशनचम्पकानाम् ।
 वाञ्छो विरेजुः सविहारयोग्या वहिःप्रदेशे भूवनोत्तमस्य ॥ ६९
 आम्रान्तका दाढिममातुलुङ्कैविल्वाश्र चूताः क्रमुकाभयाश्र ।
 तालीद्रुमास्तालतमालवृक्षा वभूवुरुद्यानवनान्तरेषु ॥ ७०
 सुवर्णवासन्तिककुञ्जकानां बन्धुकगन्धोत्कटमल्लिकानाम् ।
 समालतीजात्यतिमुक्तकानां वीर्याभिरैम्याणि वनानि रेजुः ॥ ७१
 खर्जूरमृद्दीर्कमरीचवल्लयो लवङ्गकङ्कोलकनालिकराः ।
 ताम्बूलवल्लयः कदलीवनानि नित्यप्रवृत्तानि मनोहराणि ॥ ७२
 अन्तर्बहिश्चापि समाप्तकर्मा प्रमाणसंवर्धितदिव्यमूर्तिः ।
 जिनेन्द्रगेहो रमणीयरूपः पुरस्य भूतां गौणितां जगाम (?) ॥ ७३
 यः सर्वसंपत्तिगुणोपपन्नः पुण्यावहः पापहरः प्रजानाम् ।
 दिशः स्वभासा प्रतिभासयन्स लीलामुवाहेव महाचलस्य ॥ ७४
 नाम्नेन्द्रकूटो नयनाभिरामो रत्नद्युतिहेपितवालभानुः ।
 सर्वत्रसौख्यः सकलेन्दुसौम्यः सदैव स श्रीनिलयो वभूव ॥ ७५
 उद्दिद्य भूमिं स्वयमुच्छ्रुतः स्यादहो विमानं नभसश्च्युतं तत् ।
 उत्पश्यतां कामगमागतं तदित्यासताका भुवि मानवानाम् (?) ॥ ७६
 नृपाङ्गयार्हत्प्रतिमालयस्य सुंशिलिपिनिर्वर्तितकौशलस्य ।
 विभूतिरित्थं विबुधोपमेन निर्मापिता सा विबुधेन तेन ॥ ७७
 इत्येवं क्षितिपतिशासनेन धीमान्
 दिव्याख्यः प्रियहितमन्त्रवर्गमुख्यः ।
 निष्ठाप्य क्रमविदनुत्तमं नु चैत्यं
 भूपायाकथयदथार्थजातमार्यः ॥ ७८

१ [वाञ्छो]. २ [भवनोत्तमस्य]. ३ [वीर्याभिं]. ४ म मृद्वीक.
 ५ [भूतेर्गणितं]. ६ क °सुताका. ७ क पुंशिलिपि°.

तत्प्रोक्तां हितमहितां निशम्य वाणीं
 संपूज्य प्रियवचनार्थदानमानैः ।
 भूयस्तं मुदितमनाः शशास राजा
 सद्यस्त्वं जिनमहवृत्तये यतस्व ॥ ७९
 इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 सिद्धायनप्रतिष्ठापनो नाम
 द्वाविंशतितमः सर्गः ।

[त्रयोविंशः सर्गः]

अथ प्रशस्ते तिथिलग्नयोगे मुहूर्तनक्षत्रगुणोपपत्तौ ।
 क्षपाकरे च प्रतिपूर्यमाणे ग्रहेषु सर्वेषु समस्थितेषु ॥ १
 संहेपयन्ती स्वरुचा वितानैर्दिवाकरांशून्प्रतिमा जिनस्य ।
 संस्थापिता चैत्यगृहे विशाले नृपाङ्गया स्थापनकर्मदक्षैः ॥ २
 तदाप्रभृत्येव मुदा प्रतीतो धर्मप्रियो भूपतिशासनेन ।
 क्रियाविधिज्ञः पृथुधीरमात्यः प्रवर्तयां तन्महिमानमास ॥ ३
 सर्वत्र भेरीं परिघोष्य पुर्या किमिच्छकं त्वर्थिजनाय दत्वा ।
 धर्मक्रियोद्योगनिविष्टबुद्धी राजा जिनेन्द्रालयमभ्यगच्छत् ॥ ४
 मन्त्रिप्रधानाः पृथुधीविशेषाँ विद्यासमृद्धाः प्रथिताः सदस्याँः ।
 हयद्विपैश्चापि पदातिभिश्च महाविभूत्या तमनुप्रजग्मुः ॥ ५
 देवी नृदेवप्रियकारिणीभिर्यथोपचारैरनुवर्तिनीभिः ।
 जिनेन्द्रपूजाभिदिव्यक्षया सा नरेन्द्रपत्नीभिरमा जगाम ॥ ६

१ क प्रतिसूर्यमाणे. २ म पृथुवी०. ३ क समस्याः.

अनेकयुद्धप्रतिलब्धकीर्तिः सर्वज्ञवक्रोद्धतपुण्यमूर्तिः ।
 जगत्प्रजानन्दकरः प्रदोषे नान्दीमुखं प्रतिमुखश्चकार ॥ ७
 दीपावलीभिर्ज्वलितप्रभाभिरपूर्ववर्गैश्च चरुप्रकारैः ।
 गन्धैश्च पुष्टैर्बलिभिः सुधृपैर्निवेदयां रात्रिबलिं बभूव ॥ ८
 जिनेन्द्रचक्रायुधकेशवानां महर्षिविद्वाधरचारणानाम् ।
 हलेशवागीशपुरन्दराणां बद्धानि नानाचरितानि यानि ॥ ९
 गन्धर्वगीतश्रुतितालवंशमृदङ्गवीणापणवादिमित्रैः ।
 लास्यप्रयोगेष्वथ ताण्डवेषु स्वायोज्य चित्रं नवृतुस्तरुण्यः ॥ १०
 कुर्वद्विरन्यैश्च कथोपदेशान्स्तोत्रैश्च देवानपरैः स्तुवद्विः ।
 प्रदीपभासा वरधर्मपुस्तान्संवाचयद्विश्च सुकण्ठरागैः ॥ ११
 कुदृष्टिपक्षं क्षपयद्विरन्यैरुद्घासयद्विः समयंस्त्वमन्यैः ।
 तपस्विवर्यैर्वरधर्मकार्यनीता त्रियामा निरपेतनिद्रैः ॥ १२
 प्रदीपचन्द्रग्रहतारकाणां प्रभासु पाण्डुत्वमुपागतासु ।
 भेर्यः सशङ्खाश्च समर्दलाश्च प्रणेदुरम्भोनिधिमन्द्रघोषाः ॥ १३
 एवं प्रकारेण कथान्तरेण तस्यां रजन्यामपविद्रुतायाम् ।
 अथोदयोऽभानुहिरण्यकुम्भानभक्त्या जिने विभ्रदिवाभ्यराजत् ॥
 चूर्णैश्च पुष्टैरपि तण्डुलैश्च दशार्धवर्णैर्बलिकर्मयोग्यैः ।
 नानाकृतीस्तत्र बलीन्विधिज्ञा भूमिप्रदेशे रचयांवभूवुः ॥ १५
 उपर्युपर्युच्छ्रुतचित्रकूटं मणिप्रभालङ्कृतसत्कवाटम् ।
 प्रयत्नसंवर्धितवृक्षवाटं राज भूयोऽनरराजवेशम् ॥ १६
 तस्मिन्पृथुश्रीमति राजगेहे पुरोहितेनातिहितेन राज्ञः ।
 द्रव्यं जिनानां स्नपनक्रियार्थं संभारयां बुद्धिमता प्रचक्रे ॥ १७

१ [प्रतिमुखः]. २ म [धर्महस्तान्]. ३ [समयं स्वप्नयैः]. ४ म अथोदये.

आपः पयः पुष्पफलानि गन्धा यवाज्यसिद्धार्थकतण्डुलाश्च ।
 लाजाक्षताः कृष्णतिलाः सदर्भा अर्घ्याणि दध्वा रचितानि तत्र १८
 आपो हि शान्त्यर्थमुदाहरन्ति आप्यायनार्थं हि पयो वदन्ति ।
 कार्यस्य सिद्धिं प्रवदन्ति दध्वा दुग्धात्पवित्रं परमित्युशन्ति ॥ १९
 दीर्घायुरामोति च तण्डुलेन सिद्धार्थका विघ्नविनाशकार्थाः ।
 तिलैर्विवृद्धिं प्रवदन्ति नृणामारोग्यतां याति तथाक्षतैस्तु ॥ २०
 यवैः शुभं वर्णवपुरुष्टेन फलैस्तु लोकद्रव्यभोगसिद्धिः ।
 गन्धास्तु सौभाग्यकरा नराणां लाजैश्च पुष्पैरपि सौमनस्यम् ॥ २१
 सौवर्णरौप्यामलताम्रकांस्यादिन्द्रादिक्षु प्रणिधानयोग्यान् ।
 विभागवित्तं तु यथानुसंख्यं पात्रप्रकारात्रचयांबभूतुः ॥ २२
 सनांदकाकाश्चनका घटाश्च भृङ्गारिकापालिकवर्तकानि ।
 शङ्खादिनानाकृतिभाजनानि प्रापूय यन्त्राणि हरिन्मयानि ॥ २३
 नदीजलं प्रश्रयणोदकं च कौप्यं च वाप्युद्धवसारसं च ।
 तडागतीर्थोद्धवपुण्यतोयं पुरोधसा संजगृहे यथावत् ॥ २४
 पयोदधिक्षीरघृतादिपूर्णा फलाग्रपुष्पस्तबकापिधाना ।
 घटावली दामनिबद्धकण्ठा सुवर्णकारौर्लिखिता रराज ॥ २५
 अष्टोत्तराः शीतजलैः प्रपूर्णाः सहस्रमात्राः कलशा विशालाः ।
 पद्मोत्पलोत्फुल्लपिधानवक्त्रा जिनेन्द्रविम्बस्नपनैककार्याः ॥ २६
 चतुःप्रकारा ह्युपमानिकाख्या हारिद्रिगन्धोदनसत्कृताश्च ।
 निर्वर्तितास्त्राः परिधाप्य सूत्रं दूर्वाङ्कुराग्रै रचिताः शिरस्सु ॥ २७
 सुदर्शनीयाः फलजातयश्च क्षीरद्रुमाणां च कषायवर्गाः ।
 मनःशिलाहिङ्कुलकुङ्कुमाद्या वर्णप्रकाराश्च सुसंगृहीताः ॥ २८

१ म ताम्रकस्यादिन्द्रादि, [ताम्रकांस्यानिन्द्रादि^०]. २ क प्रणिदान^०.
 ३ सनादता^०. ४ म ^०पुराश्च.

गोशीर्षसंज्ञं वरचन्दनं च गन्धान्सुगन्धीन्विधिप्रकारान् ।
 पृथग्विधान् धूपवरानथान्यान्पूजाविधिज्ञो विदधौ पुरोधाः ॥
 विचित्रवर्णान्वरवासचूर्णान्दशार्थवर्णाश्च चरूननेकान् ।
 मालयं च संघातिमकादिरम्यं विपञ्चयोः पञ्चविधा बभूवुः ॥ ३०
 ततो नृपेण प्रतिचोद्यमाना वृद्धाः कराग्रार्पितवेतदण्डाः ।
 इतोऽमुतस्ते त्वरया विचेरुस्त्वरध्वमित्येवमुदाहरन्तः ॥ ३१
 स्नानानुलिपास्तनुशुल्कवस्त्राः कण्ठावसक्तामललोलमालाः ।
 ते ब्रह्मचर्यव्रतपूतगात्रा बभ्रुवलींस्तान्बलिनो युवानः ॥ ३२
 तेषां बलीनां ज्वलनान्पुरस्थानं कृतोपवासाः शुचिशुल्कवस्त्राः ।
 दृढव्रताः श्रावकपुण्डरीका मौलिं यथा मौलबलि दधार ॥ ३३
 प्रदीपमालामणिमण्डितानां मालाकलापैः परिमण्डितानाम् ।
 विभासतामष्टशतैर्बलीनां पेतुः पुरस्त्रीनयनोत्पलानि ॥ ३४
 व्याधूयमानानि विलासिनीभिर्वृन्दानि तान्युत्तमचामराणाम् ।
 उत्पश्यतां तत्र समागतानां समुत्पतद्वंसनिभान्यभूवन् ॥ ३५
 प्रोतैश्च सूत्रैर्मणिभिर्महार्घ्यैः प्रान्ते निबद्धा विलसद्वितानाः ।
 समुच्छिताः काञ्चनदण्डतुङ्गा गङ्गातरङ्गा इव ते विरेजुः ॥ ३६
 हंसांसकुन्दच्छदपाणुराणि वैद्यर्यदण्डानि मनोहराणि ।
 सकिङ्गिणीकानि सदा महानि छत्राणि रेजुर्युवभिर्धृतानि ॥ ३७
 भृङ्गोरिकादर्शनपालकाद्यान्समुल्लसचित्रपटान्सपुष्पान् ।
 हस्तेषु धृत्वा विविधप्रकारांस्तेषां पुरस्ताल्ललना निरीयुः ॥ ३८
 चक्रासिनाराचवराङ्गुशानां युग्मानि च स्वस्तिकवन्धनानि ।
 श्रीमङ्गलार्थानि विभूतिमन्ति कान्ताकराग्रावधृतानि रेजुः ॥ ३९

१ म चरीननेकान्. २ [विपञ्चिकाः]. ३ [ज्वलतां पुरस्तात्]. ४ [महान्ति].
 ५ [भृङ्गारिका]. ६ क °पालिकाद्यान्. ७ म °सप्टान्.

तासामथाग्रे तडिदग्रभासां रूपश्रिया हृप्सरसा समानाः ।
 सुगन्धिरक्तोत्पलवर्णपूरांस्तान्वर्णपूरानबलाः प्रणिन्युः ॥ ४०
 पुण्याम्बुपूर्णान्विहितानयोजैरष्टाधिकांस्तत्र सहस्रमात्रान् ।
 प्रस्पर्धयेवातिविलासवन्त्यो जहुस्तरुण्यो वररुक्मकुम्भान् ॥ ४१
 हसन्ति ये स्वाकृतिमत्तया च विलासिनीनां स्तनकुट्मलानि ।
 समृन्मयांस्तान्कलशाननेकान् जग्राह तोर्यैर्विनितासहस्रम् ॥ ४२
 कन्याः स्मराक्षागतलक्ष्यभूताः प्रोद्धियमानाः स्तनकुट्मलिन्यः ।
 शरावसंवर्धितवहूरीभिः पिधाय माङ्गल्यघटान्प्रणिन्युः ॥ ४३
 मृगेन्द्रपश्चोक्तरथाङ्गवक्षाः सुपर्णनागेन्द्रमहेन्द्रकेतून् ।
 ऊद्धौ चलत्कुण्डलहारयष्टीन् भ्राजिष्णुदेहाः पुरुषाः प्रजग्मुः ॥ ४४
 स स्नापकः स्नातविलिम्पात्रो यक्षः सदक्षः स्नपने प्रवीणः ।
 भृङ्गारकं हेममयं विचित्रं वहन्वभौ मूर्यमिवोदयाद्रिः ॥ ४५
 पुष्पाणि सत्केसरधूसराणि गन्धावबद्धभ्रमरावलीभिः ।
 सिन्कानि सञ्चन्दनतोयगन्धैर्ययुः किरन्तः पुरतस्तथान्ये ॥ ४६
 नटाश्च भण्डाः खलु मागधाश्च विदूषकाश्चापि विडम्बकाश्च ।
 विचित्रवेषाः परिहासयन्तः पूजांजनं तं परितः प्रशंसुः ॥ ४७
 मृदङ्गभेरीरवर्मदलास्य मन्द्रो ध्वनिस्तत्र नृणां श्रवस्सु ।
 विवर्धमानस्य हि सर्वसन्ध्यो महार्णवस्येव रवो बभूव ॥ ४८
 सिता बलाकाश्रयमादधानाः काश्चिच्च सन्ध्यारुणिताम्बराभाः ।
 नीलाश्च पीता हरिताश्च काश्चिदशार्धवर्णा विवभुः पताकाः ॥ ४९
 पराधर्यनानामणिमिश्रितानि समुल्लसत्काश्चनदामकानि ।
 विलम्बिमुक्तातरलाञ्छितानि वीथीषु रेजुर्वरतोरणानि ॥ ५०

१ क [°विहितान्ययोजैः]. २ [°वक्ताः]. ३ म ऊर्ध्वा०. ४ म सस्नापकाः .
 ५ [पूजाचैनं]. ६ [मर्दलस्य] .

तथीर्मुपूर्णाः स्वविभाकरालाः कण्ठावसक्तोज्ज्वलचारुमालाः ।
 पद्मापिधानास्तपनीयकुम्भा रंजुः प्रतिद्वारमुदग्धरूपाः ॥ ५१
 स्वेभावनिर्वर्तितभूतियुक्तं जिनेन्द्रपूजाद्विगुणीकृतार्थम् ।
 ततस्तदानर्तपुरं क्षणेन वैस्वोकसारश्रियमुद्धभार ॥ ५२
 चलत्पताका निपतद्वलाका जनोदकां चामलहंसमाला ।
 वितानकोर्मिर्वलिफेनराशिः पूजामहापुष्यनदी ससार ॥ ५३
 नरेन्द्रगेहाज्जिनदेवगेहं तदोत्तमदिश्च शनैः प्रयान्ती ।
 पूजोद्दतानां विरराज पङ्क्षिः तारागणानां नभसीव पङ्क्षिः ॥ ५४
 द्विष्टस्वसूयां प्रमदास्वनद्वं धनानि दीनेषु मुदं निजेषु ।
 ददेन्कटान्तभ्रमरप्रतानं राजाधिरूढः करिणं जगाम ॥ ५५
 पौराङ्गनाभिः कृतभूषणाभिर्वृद्धैर्नरैः पोष्यजनैः परीताः ।
 नरेन्द्रपत्नीशिविकाः प्रयाता गन्तुं प्रवृत्ता इव सौधमालाः ॥ ५६
 एवं प्रभूत्या नरदेवपत्न्यो नृपेण संप्राप्य जिनेन्द्रगेहम् ।
 प्रदक्षिणीकृत्य बलि प्रविश्य परीत्य तस्थुर्द्युभिषेकशालाम् ॥ ५७
 सुगन्धिगन्धोदकधौतपाणिस्तुरुष्कसंधूपितधूपपाणिः ।
 पुष्पाक्षतक्षेपणदक्षपाणिः स स्नापको दर्भपवित्रपाणिः ॥ ५८
 मृदङ्गगम्भीरनिनादनादं लसत्पताकोरुतरङ्गरङ्गम् ।
 व्यालोलसञ्चामरफेनमालं पूजासरसतच्छनकैर्जगाहे ॥ ५९
 आनीय लोकत्रयनाथविम्बमास्थाय मौनव्रतमासमाप्तम् ।
 आस्थाप्य रत्नाश्चितपीठिकायां पूजाविधौ यत्नपरो वभूव ॥ ६०
 प्रणम्य पूर्वं सुसमाहितात्मा भृङ्गारवर्यं परिगृह्य दोभ्याम् ।
 पादाभिषेकं प्रथमं विकृत्य तत्याज निर्माल्यकमुक्तरेण ॥ ६१

१ [प्रतिद्वारमुदग्र०]. २ म स्वभार०. ३ [वस्वेक]. ४ [जनोदकार्चा०].
 ५ क दधन् .

प्रमार्ज्य हस्ताम्बुरुहद्वयेन अर्धं च वामाग्रकरे निधाय ।
 अङ्गुष्ठमार्गेण निपात्य तोयं स्वाहा जिनादिभ्य इति प्रमन्त्र्य ॥६२
 सम्यग्विधायार्थ्यपथोत्तमाङ्गे मन्त्राक्षराण्यप्युपजाप्य धीमान् ।
 उच्चैः पठस्तोत्रवरं जिनस्य मूर्धाभिषेकं मुदितः प्रचक्रे ॥ ६३
 संधौतहस्तः कुसुमाक्षतानि निक्षिप्य पादाम्बुरुहे जिनस्य ।
 तैर्वर्णपूरैरुपमानिकाभिर्निपातयस्तोयघटैः सहैव ॥ ६४
 स्वच्छाम्बुपूर्णवरहेमकुम्भैस्तर्मृन्मयैः सत्कुसुमावकीर्णैः ।
 घटैरनेकैरभिषित्य नाथं तं गन्धपङ्केन विलिम्पति स्म ॥ ६५
 सुगन्धिसञ्चन्दनतोयसित्ताः स्वकेशरव्याततचूर्णचाम्राँः ।
 पर्यन्तमत्तप्रचलद्विरेका आरोपयामास सुपुष्पमालाः ॥ ६६
 सुवर्णपृष्ठैर्विविधप्रकारै रत्नावलीभिस्तडिदुज्जवलाभिः ।
 विभूषणानि प्रतिभूषयन्तीं विभूषयामास तदा जिनार्चाम् ॥६७
 प्रदाप्य दीपांश्च हविर्निवेद्य निवेदयामास महावलिं च ।
 स्थानं विदित्वा गृहदेवतायां दिशावलीनार्दकरः प्रचक्रे ॥ ६८
 अङ्गिः पवित्रीकृतहस्तपद्मः प्रदर्शयामास स दर्पणादीन् ।
 विमुच्य मौनं ह्यभिषेचनान्ते स स्वस्तिकां त्रिनिरुवाच वाचम् ६९
 मङ्गल्यगीतस्तुतिमन्त्रयुक्तः कृताञ्जलिः साधुगणो हि तत्र ।
 परीत्य सर्वोऽतिविशुद्धभावः सर्वज्ञविम्बं प्रणनाम भक्त्या ॥७०
 धर्मोऽहर्तां सर्वजगद्विताय प्रवर्थतामित्यभिघोषयन्सः ।
 साशीर्वचस्तूर्यमृदङ्गनादैः प्रवेशयां तां प्रतिमां वभूव ॥ ७१
 ततो वचःकायमनोविशुद्धः प्रविश्य राजा जिनदेवगेहम् ।
 प्रियासमेतः प्रणिपत्य भक्त्या जग्राह शेषां जिनदेवतायाः ॥७२

१ म मूर्धाभिषेकं. २ क चूमा, [धूम्राः]. ३ [गृहदेवतानां].

मनोरथं प्राप्य नरेन्द्रपत्नीव विराजमाना ।
 उपोपविष्टा प्रभुनैव सार्धं मुदं परामात्मनि सा जगाम ॥ ७३
 जिनेन्द्रसिद्धान्तविधौत्तुद्विर्वाकायचित्तत्रयजातशुद्धिः ।
 प्रशान्तभावाहितधर्मवृद्धिः कश्चिन्मुनिर्धर्ममवोचदित्थम् ॥ ७४
 इह प्रणिर्वर्तितसत्क्रियस्य जिनेन्द्रगेहस्य फलादमुत्र ।
 सर्वद्विमत्सद्रितिसौख्यवन्ति विमानवर्याणि नरा लभन्ते ॥ ७५
 महामहं यः कुरुते जिनानां सौर्यं मुदा दृष्टि न भोगवृद्धौ ? ।
 भुक्त्वा चिरं तं नृसुरासुराणां सुखं ततो यास्यति मोक्षसौख्यम् ॥ ७६
 संस्थाप्य यत्नात्प्रतिमां जिनानां नरामराणां सुखमभ्युपैति ।
 क्षीराभिषेकप्रमुखक्रियाभी राज्याभिषेकस्य भवेत्स भागी ॥ ७७
 गन्धार्चनैश्चम्पकनागगन्धान्मूर्त्या स्वगन्धैरतिशेरते तान् ।
 धूपप्रदानैः कुलकेतवः स्युस्तेजस्विनः स्युर्वरदीपदानैः ॥ ७८
 माल्यप्रदानैर्विरतेश्वरेभ्यो भवन्ति हेमाङ्गदभूषिताङ्गाः ।
 भवन्ति भास्वन्मकुटप्रदानात्स्फुरत्किरीटोत्तमपद्मचिह्नाः ॥ ७९
 शुद्धिं लभन्ते वरदर्पणेन भृङ्गारतः स्युः कमनीयरूपाः ।
 शान्तिं भजन्ते कलशप्रदानात् स्थालाद्धनेनाढ्यतमा भवन्ति ॥ ८०
 चक्रप्रदानाद्विनतारिपक्षास्त्रौस्त्रिलोकप्रथितप्रणादाः ।
 विद्याधरत्वं हि वितानदानाच्छत्रप्रदानाद्विपुलं हि राज्यम् ॥ ८१
 घण्टाप्रदानान्मधुरः स्वरः स्याञ्चैर्विचित्रैरभिवारिताँः ।
 सर्वैः प्रवन्द्यो जिनवन्दनेन सर्वतुसर्वद्विसुखैकभागी ॥ ८२
 इत्येवमुक्त्वा तदनुग्रहार्थं पूजाफलं दानफलेन सार्धम् ।
 ज्ञेयार्णवस्यान्तमितो महात्मा धर्मोपदेशाद्विरराम साधुः ॥ ८३

१ क ° गद्दौ. २ म प्रतिमां. ३ [मत्याः]. ४ क ° तिरीटोत्तम°. ५ [अभिषारिताशः].

ततस्तु राज्ञाधिकतः प्रगल्भो विद्यासरित्तोयनिधिः प्रशान्तः ।
 प्रमादहीनो गुणशीलमालः स्तुत्यर्थवादान्वितमित्थमाख्यत् ॥८४
 त्वं नन्द वर्धस्व धनैश्च धर्मैः संपन्नसस्या धरणी तवास्तु ।
 वक्षस्तथले ते रमतां च लक्ष्मीरहस्यसादानृप जीव दीर्घम् ॥८५
 शास्ता भव प्रस्वलितात्मकानां त्राता भव त्वं विनयान्वितानाम् ।
 स्त्रीबालवृद्धान्विभूतिप्रियत्वात्सनातनः क्षत्रियधर्म एषः ॥ ८६
 त्वं देवि राज्ञः प्रियकारिणी च स्वपुत्रपौत्रैरभिवृद्धिमेहि ।
 शीलोपवासव्रतदानधर्मसर्वज्ञाभिरता च भूयाः ॥ ८७
 यदैहिकामुष्मिकसौख्यमूलं संपादितं चैत्यगृहं त्वयेदम् ।
 यथा गमिष्यत्यतिर्दीर्घकालं तथा कुरुष्वेति जगाद राज्ञीम् ॥ ८८
 श्रुत्वा मुनिश्रावकयोर्वचांसि मनोगतं चाप्यवबुध्य देव्याः ।
 शौर्यावधूतारिगणो नरन्द्रः प्रीतान्तरात्मा प्रशशास सर्वान् ॥ ८९
 यद्यच्च लोके रमणीयरूपमुपस्करं द्रव्यमनेकभेदम् ।
 निर्वर्तितं चारु हिरण्यरूपैस्तत्तच्च निःशेषमदान्महीशः ॥ ९०
 अष्टोत्तरग्रामशतं वरिष्ठं दासांश्च दासीभृतकानगवादीन् ।
 संगीतकं सान्ततिकं प्रमोदं समर्पयामास जिनालयाय ॥ ९१
 आहारदानं मुनिपुङ्गवेभ्यो वस्त्रान्वदानं श्रवणार्थिकाभ्यः ।
 किमिच्छदानं खलु दुर्गतेभ्यो दत्वा कृतार्थो नृपतिर्बभूव ॥ ९२
 अर्हन्मुनीन्द्रागमचक्रपाणिविद्याधराणां चरितानि तानि ।
 श्रुत्वा च दृष्ट्वा वरपट्टकेषु सनायकः संमुमुदे जनौघः ॥ ९३
 अष्टाहिकं शिष्टजनाभिजुष्टमन्यैरनन्द्रैर्मनसाप्यचिन्त्यम् ।
 एवंप्रकारेण नरेन्द्रवर्यो जिनेन्द्रपूजां प्रयतो निनाय ॥ ९४

१ म प्रगल्भ्यो. २ [°वृद्धान्विभूति प्रियत्वात्]. ३ म भूयात्.

समन्दरं विश्वजनाधिगम्यं समस्तलोकाभ्युदयैकहेतुम् ।
 विशुद्धिशुद्धोऽधिकवृद्धितेजाः पूजार्णवं भूमिपतिस्ततार ॥ ९५
 सुश्रावकः सर्वगुणाधिवासः सद्बन्धपुष्पाक्षतपूर्णपाणिः ।
 स्वस्त्यादिभिर्मङ्गलभारतीभिः शशंस सच्चूतफलावसानैः ॥ ९६
 आचन्द्रतारं जयतौर्जितश्रीः सद्धर्ममार्गः परमार्थसारः ।
 सुखीभवत्वाहृतसर्वसंघः सिद्धालयाः स्फीततमा भवन्तु ॥ ९७
 देशो भवत्वाधिकगोधनाद्यः सुभिक्षनित्योत्सवभोगयुक्तः ।
 राजा जितारिजिनधर्मभक्तो न्यायेन पायात्सकलां धरित्रीम् ॥ ९८
 पाषण्डिनः स्वाश्रमवासिनश्च कृतां स्वसंस्थां न विलङ्घ्यन्तु ।
 यशांसि तिष्ठन्तु चिरं पृथिव्यां दोषाः प्रणाशं सकलाः प्रयान्तु ॥ ९९
 इत्येवमादि स्फुटमर्थतत्त्वं वाक्यं जनश्रोत्रमुखं जगाद् ।
 महाजनस्तं सकलं निशम्य प्रतिप्रसादोदयवान् बभूव ॥ १००
 ततः प्रहृष्टो वरचूर्णवासैः सद्वन्धिमिश्रैः सलिलैः सलीलम् ।
 लाक्षारसैरञ्जनरेणुभिश्च चिक्षेप गात्रेषु परस्परस्य ॥ १०१
 जिनेन्द्रप्रादाम्बुरुहार्पणेन प्रमिद्धनामग्रहणेन भूयः ।
 पूतां च पुण्यां पुरुसिद्धशेषां वसुंधरन्द्रो निदधौ स्वमूर्खि ॥ १०२
 पूजातपःशीलगुणप्रधानैः समर्च्य सद्धर्ममुदारबुद्धिः ।
 महीपतिस्तर्यरवैर्ननद्धिः सान्तःपुरो राजगृहं विवेश ॥ १०३

प्रविश्यात्मगेहं सुरेन्द्रप्रतापो

जिनेन्द्रोरपूजाकथाकाव्यरागः ।

नृपो धर्मकामार्थकार्यप्रवीणः

प्रतुष्टान्तरात्मा सुखं संनिषणः ॥ १०४

कुतीर्थप्रणीतान्विवादान्विहत्य
 प्रतिष्ठाप्य भूयो जगत्संप्रवादान् ।
 प्रकाश्यांसुभक्ति सतीमार्हतीं च
 सदा संदधौ स्वं मनः सद्यायाम् ॥ १०५
 ददत्पात्रदानं विधिज्ञा यतिभ्यो
 धनं॑ बन्धुमित्रार्थिशिष्टप्रियेभ्यः ।
 महापर्वसंधिव्रतैः सोपवासै-
 न्यन्दीर्घकालं नरेन्द्रोऽभिरंभे ॥ १०६
 जिनेन्द्रप्रणीतं शुभं सिद्धिमार्गं
 प्रबुध्यात्मशक्त्या गृहीत्वा व्रतानि ।
 नरेन्द्राग्रपत्न्यः सदा सिद्धपूजां
 नयन्त्यो वराङ्गच्यः कृतार्था वभूवुः ॥ १०७
 इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 अर्हन्महामहवर्णनो नाम
 त्रयोविंशतितमः सर्गः ।

[चतुर्विंशः सर्गः]

अथ भूमिपतिक्षिकालयोग्यान्
 न विरोधेन नयन्सुखार्थधर्मान् ।
 जगति प्रवरां यशःपताकां
 सकलां कान्तिमिवेन्दुवद्धभार ॥ १

१ क °संप्रदानान्. २ [विधिशो]. ३ म वनः ४ क °योग्यानविरोधेन यत्-

गशनः किरणाः स्वभावशीता
 दिनकृत्तीक्ष्णवपुर्जगत्प्रभुः ।
 हुतभुग्दहनप्रकाशनात्मा
 जगदाप्यायनपण्डितो महेन्द्रः ॥ २
 पृथिवी^१ कठिनात्मिका प्रकृत्या
 द्रवता स्नेहगुणस्तथाप्सु वर्चः । .
 सकला नृपतौ गुणाः समेताः
 सति वैरुद्धयत्मेऽप्यबाधमानाः ॥ ३
 क्रतुषु क्रमसंभवेषु तेषु
 प्रतिसंवत्सरमागतेषु तेषु ।
 परिपूर्णपयोधराभिरीशो
 वनिताभिर्विषयान्सुखं निषेवे^२ ॥ ४
 वरवंशमृदज्ञगीतशब्दा-
 न्मुरजध्वानविमिश्रितान्सरागान् ।
 अशृणोच्छ्रवणेन्द्रियप्रियांस्ता-
 न्प्रमदानां मधुराक्षरप्रयुक्तान् ॥ ५
 शयने विमले मणिप्रदीपे
 कमलाख्यैः परिरभ्य कामिनं तम् ।
 वदनैर्जघनैस्तनप्रदेशै-
 मृदुहस्तैरपि पस्पृशुर्पर्हीन्द्रम् ॥ ६
 मदिरामललोललोचनानां
 वनितानां सुरतोत्सवप्रियाणाम् ।

१ क पृथिवी, २ [वन्द्यः]. ३ [क्रतुषु] ४ [निषेवे]. ५ [कमलाख्यः].

गलितांशुकलोलमेखलानां
 न तर्प प्रपिबन्सुखानि तासाम् ॥ ७
 बकुलोत्पलजातिमालतीनां
 सुरभीणां सकदम्बचम्पकानाम् ।
 ललनालककेशपाशवदा
 वरमालाश्च मुहुर्मुहुः स जहौ ॥ ८
 जिनदेवपहीन्द्रकेशवानां
 चरितान्यप्रतिमानि नाञ्चसन्धौ ।
 रसनाञ्चसमन्वितानि शश-
 त्समपश्यद्वरणीपतिः प्रियाभिः ॥ ९
 वसुधोदधिशैलसंभवं य-
 द्वररत्नं रजतं च हेम कुण्डम् ।
 गजवाजिरथायुधप्रधानं
 क्षितिकौः प्राभृतकं समानयंस्तत् ॥ १०
 विधिना परिपालकः प्रजानां
 परिशास्ताहुर्नुष्टितक्रियाणाम् ।
 अगतीनबुधाङ्गनान्दरिद्रा-
 नशरण्यांश्च वभार सर्वकालम् ॥ ११
 नियमैश्च यमैर्वतोपवासै-
 निरवद्यैरपि दानधर्मयोगैः ।
 जिनदेवविशेषपूजनैश्च
 प्रययौ पर्वसु भूपतेः स कालः ॥ १२

१ म प्रविष्ट. २ म प्रदानं. ३ [क्षितिपाः]. ४ [°शास्ता दुरनुष्ठित°].

स कदाचिदतुल्यधीर्विंशिः

स्वभुजध्वंसितशत्रुसैन्यवीर्यः ।

प्रविवेश सभागृहं नरेन्द्रो

मतिमद्विर्वरमन्त्रिभिश्च शिष्टैः ॥ १३

मणिहारकिरीटपट्टचिह्नः

प्रचलत्कुण्डलचारुधृष्टगण्डः ।

स मृगेन्द्रवरासने निषणो

विवभौ भानुरिवोदयस्य मूर्ध्नि ॥ १४

विपुलद्वियशःश्रिया ज्वलन्तं

शरदीवामलपूर्णचन्द्रसौम्यम् ।

नृपतिं प्रसमीक्ष्य मन्त्रिवर्गः

प्रजजल्प स्वमनोगतं वचस्तत् ॥ १५

अयमिन्द्रसमो महर्द्धिकीर्त्या

विभवेनाप्रतिमेन लोकपालः ।

वपुषा यशसा च कामदेवः

कुत एतत्रयमस्य संशयो नः ॥ १६

पुंरुषैश्चिरकालकर्मदैवा-

द्रूहतो वात्र नियोगतः स्वभावात् ।

प्रलयस्थितिसंभवाः प्रलानैँ

नियताद्यैरिति लोकसत्प्रवादः ॥ १७

इति पक्षबहुत्वयोगतस्ते

न समर्था गदितुं स्वपक्षमेकम् ।

अनपेक्षिततत्त्वद्विष्टेष्टाः
 परिप्रच्छुरथावनीन्द्रमित्थम् ॥ १८
 सदसन्नियतिस्वभावपक्षा
 विदिता लौकिकवैदिकास्त्वयेश ।
 विविधांश्च नयानवैषि मूक्षमा-
 न्वद तत्त्वमसंशयं प्रभो नः ॥ १९
 इति मन्त्रिवरैः प्रहृष्टमर्थ
 प्रविचार्यात्मनि दृष्टधर्मतत्त्वः ।
 वृपतिर्मधुराभिधानयुक्तं
 वचनं प्रारभत प्रवक्तुमेवम् ॥ २०
 बहुद्विष्टनिविष्टदुर्मतीनां
 कुकवीनामथवान्याभिप्रैपन्नाः ।
 अतिमुग्धतया नरा विबोद्धुं
 परमार्थान्न हि शक्तुवन्ति बालाः ॥ २१
 यदि दैवनियोगतो महर्द्धि
 लभते चेन्मनुजस्त्वरोगतां वा ।
 सुतभा [] मवद्यलब्धियुक्तं
 स तु दैवः कथमेति दैवभावम् ॥ २२
 यदि तस्करको यजेऽत विद्वान्
 वरमित्थं स्त्वथ..... ।
 उभयोर्यजनं प्रतिगृहीता
 ननु देवो विमतिः स किं करोति ॥ २३

१ म °सत्त्वद्विं० २ म तत्त्वं न संशयं ३ क °न्यभिप्रसंगाः, [वाक्य-
 विप्रपन्नाः]. ४ म यचेत् ।

गृहमप्युदितं भगवद्दनेन
 भवदीयं ननु यस्य दीपतैलम् ।
 चरकैवरं रगन्धमाल्यधूपाः
 स च किं दास्यति निर्धनः परेभ्यः ? ॥ २४
 वरमन्त्रपदैः सुसंस्कृतं य-
 द्विमादाय समक्षतोऽति काँकाः ।
 बलिभुक् सुश्रुगालविट्प्रलिङ्गाः
 स हि किं रक्षति दुर्बलः परं स्वम् ॥ २५
 क्षुधितः परिदाप्य तं श्रुगालो
 विवलं छागमुपाहरेत्प्रसद्य ।
 पुरुषानपि तान्प्रसद्य तद्व-
 वदि गृह्णाति स एव देवदेवः ॥ २६
 पललोदनलाजपिष्ठपिण्डं
 परदत्तं प्रतिभुज्यते च येन ।
 स परानगतिं कथं विभर्ति
 धनतृष्णां त्यज देवतस्तु तस्मात् ॥ २७
 यदि कालबलात्प्रजायते च-
 द्विलः कर्तृगुणः परीक्ष्यमाणः ।
 बलवानथवा यदि कृती स्या-
 द्विलः काल इति प्रवेदितव्यः ॥ २८
 अथ जीवगणेष्वकालमृत्युः
 फलपुष्पाणि वनस्पतिष्वकाले ।

१ म न दीप यस्य. २ म चरकेवर०. ३ म स किं. ४ [काकः].
 ५ [°प्रलिङ्गः].

भुजगा दशनैर्दशन्त्यकाले
 मनुजास्तु प्रसवन्त्यकालतश्च ॥ २९
 अथ वृष्टिरकालतस्तु दृष्टा
 न हि वृष्टिः परिहृश्यते स्वकाले ।
 तत एव हि कालतः प्रजानां
 सुखदुःखात्मकमित्यभाषणीयम् ॥ ३०
 ग्रहतो जगतः शुभाशुभानि
 प्रलपन्तो विमतीन्प्रवश्चयन्ति ।
 न तु तत्त्वमिदं वचो यदि स्या-
 त्स्वयमेवात्माहितानि किं न कुर्यात् ॥ ३१
 ग्रहयोगबलाच्छुभं भवेच्चे-
 तस च रामः प्रियया कथं विहीनः ।
 मविनास्युशनःप्रयुक्तनीतिः
 सकलत्रः स च रावणो विनष्टः ॥ ३२
 बलिनो बलवान् चास्ति लोके
 स च बद्धो रिपुणा मुरारिणासौ ।
 जगति प्रथितः स कामदेवः
 सशरीरस्तु पिनाकिना स दग्धः ॥ ३३
 धनवीर्यपराक्रमातिसत्त्वो
 मघवान्देवगुरुप्रणीतचक्षुः ।
 बहुमित्रसुमन्त्रभृत्यकोशः
 स च शस्त्रः किल गौतमेन तेन ॥ ३४
 १ [अविनाश्युशनः].

धरणीसुत उग्रवीर्यतेजा
 ग्रहराजः स च रावणं बद्धः ।
 बृहतां पितरप्रमेयवृद्धिः
 सकलत्रो भ्रियते स वासवेन ॥ ३५
 रविचन्द्रमसोः ग्रहपीडां (?)
 परपोषत्वमथेन्द्रमन्त्रिणश्च ।
 विदुषां च दरिद्रतां समीक्ष्य
 मतिमान्कोऽभिलषेद्ग्रहप्रवादम् ॥ ३६
 जगदीश्वरशासनाद्यादि स्या-
 त्परपक्षप्रभवविलुप्तता हि न स्यात् ।
 कुलजातिवपुर्वयोविशेषा-
 न च युक्त्या घट्टते तंदुप्सनीयम् ॥ ३७
 अथ सर्वमिदं स्वभावतश्च-
 अनु वैयर्थ्यमुपैति कर्मकर्तुः ।
 अकृतागमदोषपदर्शनं च
 तदवश्यं विदुषामचिन्तनीयम् ॥ ३८
 स्वयमेव न भाति दर्पणः स-
 न वह्निः स्वमुपैति काष्ठभारः ।
 न हि धातुरुपैति काश्चनत्वं
 न हि दुर्घं घृतभावमभ्युपैत्यवीनाम् ॥ ३९
 धनधान्यानि न यान्ति वृद्धिमत्र
 ननु यस्य भवेत्स्वभावपक्षः ।

१ [°विशेषे न]. २ [तदीप्सनीयम्]. ३ [विदुषां हि चिन्त°] ४
 क समैति, [हि वह्निवसुपैति°].

[.....]

स तु दोषे बहुभिः परिप्लुतः स्यात् ॥ ४०
 नियतिर्नियता नरव्ययसंय
 प्रतिभग्नस्थितिकर्मणामभावः ।
 प्रतिकर्मविनाशनात्सुखी स्या-
 त्सुखहीनत्वमनिष्टमाप्नाश्यम् ॥ ४१
 पुरुषो यदि कारकः प्रजानां
 सुखदुःखान्यनवासपौरुषाणाम् ।
 व्रतदानतया विनिष्फलानि
 परघातानृतमैथुनक्रियाश्च ॥ ४२
 प्रकृतिर्महदादि भाव्यते चे-
 त्कथमव्यक्ततमान्नु मूर्तिमत्स्यात् ।
 इह कारणतो नु कार्यमिष्ट
 किमु हृष्टान्तविरुद्धतां न याति ॥ ४३
 यदि शून्यमिदं जगत्समस्तं
 ननु विज्ञप्तिरभावतामुपैति ।
 तदभावमुपागतोऽनभिज्ञो
 विमतिः केन स वेत्ति शून्यपक्षम् ॥ ४४
 अथ सर्वपदार्थसंप्रयोगः
 सुपरीक्ष्य सदसत्प्रमाणभावान् ।
 न च संभवति ह्यसत्सुशून्यं
 परिवृष्टं विगमे सतो महस्त्रिः ॥ ४५

क्षणिका यदि यस्य सर्वभावा
 फलस्तस्य भवेदयं प्रयासः ।
 गुणिनां हि गुणेन च प्रयोगे
 न च शब्दार्थमवैति दुर्मतिः ॥ ४६
 ध्रुवता जगतो यदीष्यते चे-
 द्रिपदा तुल्यमतो व्ययः स्वयं स्वभावात् ।
 गमनागमनक्रियानिवृत्ति-
 न च संसारफलोदयो न मोक्षः ॥ ४७
 यदि सर्वमिदं प्रतीत्यसिद्धं
 ननु सर्वस्य विलोपना प्रसिद्धा ।
 असतस्तु कुतः प्रतीत्यसिद्धे-
 स्तदसिद्धौ वचनं मृषा परस्य ॥ ४८
 यदिहेप्सितमात्मनः प्रदातुं
 ननु कर्मेति तदाहुरासवर्गाः ।
 असतीहेतरश्च कर्मनाश-
 स्तव भावाफलता कुतोऽस्ति लोके ॥ ४९
 असिवद्यदिकोशवच्च लोके
 पृथगेवात्र न लक्षितः स चात्मा ।
 इति यो विवदेदद्वृतत्वः
 स च तेन प्रतिभासँतोऽन्तरात्मा ॥ ५०
 घटपिण्डवदेव जीवराशिः
 क्रियते चेत्परमेष्ठिनेति यस्य ।

१ म सर्वभाषा. २ [विफलस्तस्य]. ३ [प्रतिभासितोऽ].

अनपेक्षिततत्त्वमार्गदृष्टि-
 नं नु नित्येतरतामुपैति तस्य ॥ ५१
 अथ सर्वगतं वदेन्नरो यो
 न हि गत्यागतिवन्धमोक्षभावः ।
 प्रथमाङ्गुलिपर्वरूपमात्रो
 परमात्मेति वदेच्च यः स मूढः ॥ ५२
 सुखदुःखफलात्प्रयत्नतश्च
 ननु गत्यादिविशेषलिङ्गभावात् ।
 स न विद्यत इत्यनल्पबुद्धिः
 कथमात्मानमिहात्मना ब्रवीमि ॥ ५३
 गतयोऽभिहिता न ताश्च शून्याः
 सुखदुःखानुभवोऽस्ति जीवराशेः ।
 स च कर्मपथेन नीयमानो
 मातिमांस्तासु गतीषु बंध्रमीति ॥ ५४
 अनुपायवती ह्युपायपूर्वा
 व्यवसायस्य गतिर्दिंधा विभिन्ना ।
 अनुपायवतां न कार्यसिद्धि-
 र्भवतीत्येवमुदाहृतं महस्त्रिः ॥ ५५
 परिगृह्य नरो धमन्नधातुं
 न सुवर्णं लभते चिरादपीह ।
 परिमन्थ्य महाश्रमेण वहिं
 लभते नैव पुमाननर्तिकाष्टमैः ॥ ५६

१ म जीवराशेः. २ [पुमाननर्थ्यै].

प्रचलोत्थितया द्वान्निशम्य
 परिवाचं प्रपत्तेष्वचक्षुरग्नौ ।
 न च क्षरते पयो विषाणा-
 दिति दुग्ध्यं मतिगानुपायवत्स्यात् ॥ ५७
 अवगम्य बुधस्तु देशकालौ
 शनकैः क्षीरमथाददाति गोभ्यः ।
 मतिमान्कनकं लभेत धातो-
 रनलार्थी लभते ग्निमाशु काष्टात् ॥ ५८
 अनिलाहतद्वद्मिद्मग्निं
 प्रसमीक्ष्यैक्षणवाङ्शनैरपैति ।
 व्यवसायवतामुपायपूर्वाः
 सफलास्ते च यथा सुखक्रियार्थाः ॥ ५९
 विधिवाँक्रृतान्तकालदैव-
 ग्रहभाग्येष्वरपौरुषस्वभावाः ।
 कथितास्तु नयैकमार्गयुक्त्या
 न हि निःश्रेयसकारणं भवन्ति ॥ ६०
 सकला नयभङ्गमार्गनीता
 यदनेकान्तविशेषितास्त एव ।
 महतां वचनानुसारनीता
 विदुषां श्रेयसि हेतवो भवन्ति ॥ ६१
 स्वपुराकृतकर्मपाशबद्धा-
 वरकादींश गतीरनन्तकालम् ।

१ क °याददान्निशम्य. २ [प्रपत्त्य°]. ३ [दुग्धं_मतिमानु°]. ४ [विधिक्षम्-
 कृतान्त°].

प्रतिसंसरति स्वयं स जीवो
 न च मुक्तिं लभते विनष्टचेताः ॥ ६२
 बलवांस्तु यदा क्रियागुणैः स्या-
 न च मुक्तिं लभते स कल्मषात्मा ।
 स यदा बलवान्गुणी गुणेभ्यः
 प्रविमुच्याशु नियाति मुक्तिमात्मा ॥ ६३

[.....]

..... ।]

शुभकर्मयुतः शुभानुबन्धं
 फलमश्वाति परत्र सोऽन्तरात्मा ॥ ६४
 नरकेष्वतितीववेदनेषु
 ह्यमनोऽग्नेष्वसुखावहेषु जीवाः ।
 अकृतार्थतया तमोधृतेषु
 परिपत्यानुभवन्ति घोरदुःखम् ॥ ६५

वधवन्धपरिश्रमाद्यनर्था-

न्बहुला भीमतमास्तिरश्चजीवाः ।

जननार्णवमप्लवा भ्रमन्तः

स्वकृताङ्गः फलतः समश्नुवान्ति ॥ ६६

दुरितान्मनुजा गुणैर्विहीनाः

परभृत्यत्वमुपेत्य दीनभावाः ।

अवैयामि भयाँर्दिता विषण्णा

मरणं यान्त्यथवार्थिनो वराकाः ॥ ६७

१ [स्वकृतानां]. २ [अपयान्ति]. ३ म भवार्धिता.

परिवारधनाप्रमेयलक्ष्मी-
 मतिविज्ञानयशः प्रकाशवंशाः ।
 द्युतिकीर्तिबलप्रतापभोगाः
 सुकृतादेव हि नृणां भवन्ति सर्वे ॥ ६८
 नृपती द्विरदेन्द्रमस्तकस्था-
 नुदितादित्यसमानसत्किरीटान् ।
 शरदिन्दुनिभातपत्रचिह्नान्
 प्रचलच्चामरवीज्यमानलीलान् ॥ ६९
 प्रविराजितरत्नबद्धहारान्
 बहुभृत्यैः परियाचितान्समीक्ष्य ।
 स्वपुरार्जितसत्कियाफलेन
 प्रचलन्तीति बुधाश्च वर्णयन्ति ॥ ७०
 यदतुल्यपराक्रमातिसत्त्वान्
 कुलरूपद्युतिकान्तिभिः समानान् ।
 बहुकोटिनरानथैक एव
 ननु पूर्वार्जितपुण्यतः प्रशास्ति ॥ ७१
 इह जन्मनि यः शुभक्रियार्थः
 स परत्राभ्युपगम्य नाकलोकम् ।
 अणिमादिगुणैर्गुणप्रधानैः
 सुचिरं क्रीडति निर्गमप्रबन्धैः ॥ ७२
 अङ्गराम्बरहेमभूषणाना-
 मपरिम्लानसुदामधारिणीनाम् ।

१ क नृपती, [नृपतीन्]. २ क सत्तिरीटान्. ३ क °सर्वान्. ४ क एवन्ननु, [एवं ननु]. ५ [अरजोऽम्बर°].

शुभरूपकलागुणानिवानां
 प्रतिभावं व्रजति द्युसुन्दरीणाम् ॥ ७३
 स्मितपूर्वमनोऽभाषिणीभिः
 सुरतप्रीत्यनुकूलकारिणीभिः ।
 वरवेषविलासविभ्रमाभी
 रमते नित्यमतन्द्रितः श्रियाभिः ॥ ७४
 रविकोटिसहस्रभासुराणां
 प्रचलत्कुण्डलहारविभूषितानाम् ।
 कुरुते विभुतादिवश्यतीनां-
 ममरेन्द्रः सुकृतादपेतसाकैः ॥ ७५
 इति मधुरवचोभिरथवद्धिः
 समपनयन्दुरनुष्ठितान्पदार्थन् ।
 अधिगतनयहेतुवादमार्गः
 स्फुटमवदनृपतिस्तदा सभायाम् ॥ ७६
 अनुधृदयवश्वनानिमित्तं
 परिपाठितं शठवादिभिर्द्वैर्यत् ।
 पुनरपि वृपतिर्विशालबुद्धिः
 कथयितुमारभते स्म वेदगुह्यम् ॥ ७७
 इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 परवादिविघातको नाम
 चतुर्विशतितमः सर्गः ।

१ [पतिभावं]. २ म °सहस्रप्रभां . ३ [हारभूषितानाम्]. ४ [विभुतां दिवस्पतीनाममरेन्द्रः]. ५ [°शोकः].

[पञ्चविंशः सर्गः]

अथावनीन्द्रः स महासभायां प्रकाशयन्धर्षकथापुराणम् ।
 मिथ्यामहामोहमलीमसानां चित्तप्रसादार्थमिदं जगाद् ॥ १
 अष्टैकं एवात्र यदि प्रजानां कथं पुनर्जातिचतुष्प्रभेदः ।
 प्रमाणदृष्टान्तनयप्रवादैः परीक्ष्यमाणो विघटामुपैति ॥ २
 चत्वार एकस्य पितुः सुताश्रेत्तेषां सुतानां खलु जातिरेका ।
 एवं प्रजानां च पितैकं एव पितैकभावाच्च न जातिभेदः ॥ ३
 फलान्यथोदुम्बरवृक्षजातेर्यथाग्रमध्यान्तभवानि यानि ।
 रूपाक्षतिस्पर्शसमानि तानि तथैकतो जातिरपि प्रचिन्त्या ॥ ४
 ये कौशिकाः काश्यपगौतमाश्च कौण्डन्यमाण्डव्यवसिष्ठगोत्राः ।
 आत्रेयकौत्साङ्गिरसाः सगार्या मौद्ल्यकात्यायनभार्गवाश्च ॥ ५
 गोत्राणि नानाविधजातयश्च मातृस्तुषामैथुनपुत्रभार्याः ।
 वैवाहिकं कर्म च वर्णभेदः सर्वाणि चैक्यानि भवन्ति तेषाम् ॥ ६
 न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पगौराः ।
 न चेह वैश्या हरितालतुलयाः शूद्रा न चाङ्गरसमानवर्णाः ॥ ७
 पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन ।
 त्वग्मांसमेदोऽस्थिरसैः समानाश्रुःप्रभेदाश्च कथं भवन्ति ॥ ८
 कृते युगे नास्ति च वर्णभेदखेताप्रवृत्तावथवाथ भृत्यम् ।
 आभ्यां युगाभ्यां च निकृष्टभावाद्वापरं वर्णकुलाकुलं तत् ॥ ९
 इति प्रवादैरतिलोभमोहैद्रेषैः पुनर्वर्णविपर्ययैश्च ।
 विश्रम्भघातैः स्थितिसत्यभेदैर्युक्तः कलिस्तत्र भविष्यतीति ॥ १०
 क्रियाविशेषाद्ववहारमात्राहयाभिरक्षाकृषिशिल्पभेदात् ।
 शिष्टाश्च वर्णाश्रुतुरो वदन्ति न चान्यथा वर्णचतुष्यं स्यात् ॥ ११

१ [अस्त्वैक]. २ [रूपाकृति]. ३ क चैत्यानि.

वेदाः प्रमाणं यदि यस्य पुंसस्तेन ध्रुवो यज्ञविधिस्त्वभीष्टः ।
 हिंसानुबन्धाः खलु सर्वयज्ञाः हिंसा परप्राणिविहिंसनेन ॥ १२
 प्राणातिपातश्च महानधर्मः सर्वेषु वर्णाश्रमिणां मतेषु ।
 अधर्मतोऽन्धे तपासि प्रविश्य जीवः समाप्नोति विचित्रदुःखम् ॥ १३
 यज्ञे वधे नैव वधोऽस्ति कश्चिद्दृढ्यो ध्रुवं याति सुरेन्द्रलोकम् ।
 इदं वचो धूर्तविटस्य वेद्यं दयोपशान्तिश्रुतिवर्जितस्य ॥ १४
 स्वबन्धुमित्रान्प्रियपुत्रपौत्रान् दारिद्र्यदुःखार्तिवियोगखिन्नान् ।
 सुखार्थिनस्तान्सुगतिप्रकाशान् जुहुर्न चेत्तथ्यमिदं वचः स्यात् ॥
 पश्चनथाज्ञानगतीननाथान्व वाञ्छतः स्वर्गसुखं कदाचित् ।
 आहारमात्राभिरतानभद्रान् हत्वा जडान्किं लभते वराकान् ॥
 यद्यत्र सत्त्वान्विमतीन्निहत्य वेदापदेशाद्विगतानुकम्पे ।
 द्यौर्गम्यते वेदकृतात्मभिस्तैः कैर्गम्यते श्वभ्रसुखं वदन्तु ॥ १७
 स्वायं भुवैर्यज्ञविधावहिंसा प्रोक्ता पुनर्जीवदयार्थमेव ।
 वर्षत्रयप्रोष्ठितपिण्डपिण्डैर्यदिष्यते सत्रिसंस्मैः पुराणैः ॥ १८
 नभश्वरः सर्वनृपप्रधानो वसुर्महात्मा वसुधातलेऽस्मिन् ।
 एकेन मिथ्यावचनेन राजा रसातलं सप्तममाससाद् ॥ १९
 अद्यापि तस्य क्षितिपोत्तमस्य द्विजातिभिर्मन्त्रपदप्रवर्णैः ।
 उत्थापनं यत्क्रियतेऽनभिज्ञैस्तदेव पर्याप्तमिहात्मवद्धयः ॥ २०
 साकेतपुर्या सुलभानिमित्तं कृतं निदौनं मधुपिङ्गलेन ।
 पुरावराभ्यागमनं च तस्य को नाशृणोऽद्वारतजातमत्यः ॥ २१
 तस्माच्च मायामदलोभरागैर्दृषेण रोषेण च संनिबद्धाः ।
 वेदाश्च वेदाव्ययनप्रसक्ता हितार्थिभिस्त्याज्यतमा मनुष्यैः ॥ २२

१ [याशे]. २ भौपत्रपुत्रान्. ३ क जहुर्न. ४ क सत्रितयैः. ५ क निधानं.

दत्तं पुरा क्रूरनृपेण दानं किमिच्छकं सर्वजनाय शक्त्या ।
 इति प्रतीता किल तस्य कीर्तिर्यदुप्रवीरस्य महीतलेऽस्मिन् ॥२३
 तेनान्नरक्षार्थमदुष्टबुध्या स्वांकारितः काष्ठमयोऽतिरौद्रः ।
 निर्भर्त्सितस्तेन पुनर्द्विजान्धः पञ्चत्वमापत्सहसातिभीतः ॥ २४
 एकस्य विप्रस्य विराधनेन श्वभ्रं गतः क्रूर इति श्रुतिश्चेत् ।
 समस्तसत्त्वातिनिपातनेन यज्ञेन विप्रा न कथं प्रयान्ति ॥ २५
 धर्मक्रियाया हि दैवतं मूलं दया विनष्टा परसत्त्वघातात् ।
 तेनाश्नुते दुःखशतानि जीवस्ततो हि हिंसा परिवर्जनीया ॥२६
 फलं कदल्या न हि [-] पायान्नेक्षुर्नंतो कोद्रवतो न शालिः ।
 ततः सुखैषी सुखमेव कुर्यात्सुखं च दद्यात्क्रियया परेभ्यः ॥२७
 द्विजातयो मुख्यतमा नृलोके तद्राक्षयतो लोकगतिः स्थितिश्च ।
 देवाश्च तेषां हवनक्रियाभिस्तृप्तिं प्रयान्तीति च लोकवादः ॥२८
 पत्राणि पुष्पाणि फलानि गन्धान्वस्त्राणि नानाविधभोजनानि ।
 संगृह्य सम्यग्बहुभिः समेताः स्वयं द्विजा राजगृहं प्रयान्ति ॥२९
 प्रवेष्टुकामाः क्षितिपस्य वेशम द्वास्त्थैर्निरुद्धाः क्षणमीक्षमाणाः ।
 तिष्ठन्त्यभद्राः करुणं ब्रुवाणा नालं किमतत्परिभूतिमूलम् ॥ ३०
 यदीश्वरं प्रीतिमुखं त्वपश्यस्ते मन्यते भूतलराज्यलाभम् ।
 पराङ्मुखश्वेन्नृपतिस्तथैव राज्याद्विनष्टा इव ते भवन्ति ॥ ३१
 भवन्ति रोषान्नृपतेद्विजानां दिशो दश प्रज्वलिता इवात्र ।
 द्विजातिरोषान्नृपतेः पुनः स्यान्नलातकस्नेह इवाश्मपृष्ठे ॥ ३२
 ये निग्रहानुप्रहयोरशक्ता द्विजा वराकाः परपोष्यजीवाः ।
 मायाविनो दीनतमा नृपेभ्यः कथं भवन्त्युत्तमजातयस्ते ॥ ३३

१ [श्वा कारितः]. २ क ^०नेक्षुर्नंता, [^०नेक्षुर्नडात्].

तेषां द्विजानां सुखनिर्गतानि वचांस्यमोघान्यघनाशकानि ।
 इहापि कामान्स्वमनःप्रकलृतीन् लभन्त इत्येव मृषावचस्तत् ॥ ३४
 रसस्तु गौदो विषमित्रितश्च द्विजोक्तिमात्रात्प्रकृतिं स गच्छेत् ।
 सर्वत्र तद्वाक्यमुपैति वृद्धिमतोऽन्यथा श्राद्धजनप्रवादः ॥ ३५
 इह प्रकुर्वन्ति नरेश्वराणां दिने दिने स्वस्त्ययनक्रियाश्च ।
 शान्तिं प्रधोष्यन्ति धनाशयैव क्षान्तिक्षयं तेऽप्यनवासकामाः ॥ ३६
 कर्माणि यान्यत्र हि वैदिकानि रिपुप्रणाशाय सुखप्रदानि ।
 आयुर्बलारोग्यवपुः कराणि दृष्टानि वैयर्थ्यमुपागतानि ॥ ३७
 सुमन्त्रपूताम्बुहुताग्निसाक्ष्यः पत्न्यो म्रियन्ते च परैर्भ्रियन्ते ।
 कन्याश्रितव्याधिविशीर्णदेहा वैधव्यमिच्छन्त्यथवा चिरेण ॥ ३८
 विपत्तिमृच्छन्ति च गर्भ एव केचित्प्रमूतावपि बालभावे ।
 दारिद्र्यमन्ये विकलेन्द्रियत्वं द्विजात्मजाश्रेदिह को विशेषः ॥ ३९
 यथा नयो रङ्गमुपेत्य चित्रं नृत्तानुरूपानुपयाति वेषान् ।
 जीवस्तथा संसृतिरङ्गमध्ये कर्मानुरूपानुपयाति भावान् ॥ ४०
 न ब्रह्मजातिस्त्वह काचिदस्ति न क्षत्रियो नापि च वैश्यशूद्रे ।
 ततस्तु कर्मानुवशा हितोत्मा संसारचक्रे परिबंध्रमीति ॥ ४१
 अपातकत्वाच्च शरीरदाहे देहं न हि ब्रह्म वदन्ति तज्ज्ञाः ।
 ज्ञानं च न ब्रह्म यतो निकृष्टः शूद्रोऽपि वेदाध्ययनं करोति ॥ ४२
 विद्याक्रियाचारुगुणैः प्रहीणो न जातिमात्रेण भवेत्स विपः ।
 ज्ञानेन शीलेन गुणेन युक्तं तं ब्राह्मणं ब्रह्मविदो वदन्ति ॥ ४३
 व्यासो वसिष्ठः कमठश्च कण्ठः शक्तयुद्धमौ द्रोणपराशरौ च ।
 आचारवन्तस्तपसाभियुक्ता ब्रह्मत्वमायुः प्रतिसंपर्दाभिः ॥ ४४

१ म °मनःप्रकर्षान्. २ क °साख्यः. ३ म संवृति. ४ [कर्मानुवशा-
 दत्तात्मा]. ५ [ब्रह्मत्वमायुः]. ६ म °संप्रदाभिः. -

यः शङ्करस्योज्ज्ञतनिर्मलानि पादेन मोहाद्यदि संप्रवृद्धिः ।
 स षष्ठिवर्षाणि निकृष्टयोनौ कृमिर्भवेदित्यवनौ श्रुतिः स्यात् ॥४५
 पुरा निविष्टा शिरसीश्वरस्य गङ्गापि नैर्मल्यमतो जगाम ।
 यः स्नाति शौचं प्रकरोति तस्यां कां वा गतिं यास्यति सोऽनुनेयः ।
 योऽश्वाति गङ्गोदेकमादरेण पुनाति तस्यादशनाकुलं तत् ।
 इति प्रवादो जगति प्रतीतो व्यर्थो भवेत्सोऽपि परीक्ष्यमाणः ॥४७
 भीष्मो हि गङ्गातनयो महात्मा महारथो युद्धमुखे च शूरः ।
 शरार्दितः शान्तनूजो नृपर्णिः क्षेत्रे कुरुणां निपात धीमान् ॥४८
 आगर्भतो घातसुखस्य [—] ^१ नोद्धाटितं धर्ममहाकवाटम् ।
 गङ्गाकुरुक्षेत्रमथाजिशौर्यं निरर्थकं तत्त्वयमित्युशन्ति ॥ ४९
 षाण्मासिकं तेन तपोऽतिथोरं शरासनेन क्रियते स्म यस्मात् ।
 तस्मात्तपोमूलमिदं समस्तं जगच्च सेन्द्रासुरमानुषाख्यम् ॥ ५०
 तीर्थानि लोके विविधानि यानि तपोधनैरध्युषितानि तानि ।
 स्तुत्यानि गम्यानि मनोहराणि जातानि पुंसां खलु पावनानि ॥५१
 यथैव लोके गुडमिश्रितानि पिष्टानि माधुर्यमभिव्रजान्ति ।
 तपःप्रकृष्टैरुषितानि यानि स्थानानि तीर्थान्यभवंस्तथैव ॥ ५२
 यः कार्तिकेयः स तपश्चकार कुमारकाले भगवान्कुमारः ।
 सिद्धिं च तस्मिन्ब्रतुलामवाप तेनाभवत्स्यामिगृहं पवित्रम् ॥ ५३
 यस्याः कुमार्यास्तपसः प्रभावात्प्रकाशिता सा खलु दक्षिणाशा ।
 ततः कुमारी वरधर्मनेत्री बहुप्रजानामभवत्स तीर्थम् ॥ ५४
 भागीरथिश्वक्रधरस्य नप्ता वर्षाण्यनेकानि तपः प्रचक्रे ।
 अधोगतानुद्धरणाय धीरो भागीरथी पुण्यतमा ततोऽभूत ॥५५

१ [संप्रमर्पेत्]. २ क गन्धोदक०. ३ [तस्यादश नून् कुले]. ४ क शान्तनचो, [शान्तनबो]. ५ क पूतसुखस्य, [ब्रात०]. ६ [तस्य]. ७ म °सामिगृहं.

कुरुमेहांषेः कुरुवंशजातः कुमारभावे स तपस्त्वत्सम् ।
 मजाहितायः प्रथितप्रभावस्ततः कुरुक्षेत्रमभूत्पधानम् ॥ ५६
 आतापयोगं परिशृणु धीराḥ पाण्डोः सुताः क्लेशविनाशनाय ।
 प्रचक्रिरे तत्र तपोऽतिधोरं मातापनीतेन पवित्रमासीत् ॥ ५७
 श्रीपर्वते श्रीः किल संचकार तपो महद्वर्षसहस्रमुग्रम् ।
 श्रीपुष्करेऽत्म हि पुष्कराख्यः कैलासशैले वृषभो महात्मा ॥ ५८
 तमुज्जयन्तं धरणीधरेन्द्रं जनार्दनक्रीडवनप्रदेशम् ।
 यो दिव्यमूर्तिर्यदुवंशकेतुः सोऽरिष्टनेमिर्भगवान्बभूव ॥ ५९
 गवामसुक्षीरघृतैश्च देवास्तुमाः परांस्तेऽपि च तर्पयन्ति ।
 देवाश्रयान्मेध्यतमास्तु गावः पूताश्च पुण्या इति घोषणैषा ॥ ६०
 गोदानतस्ते च सुरर्षिसंघा दत्ता द्विजेभ्यः सकला भवन्ति ।
 पितृभ्य एवं बहुसारमौल्यं दत्तं भवत्यत्र हि गोप्रदानात् ॥ ६१
 आरोहवाहस्य धनप्रतोदं प्रदोहवाहो दमनक्रियाभिः ।
 प्रपीडिनाः क्लेशगणान्भजन्ते देवर्षिसंघातसुखानि तेपाम् ॥ ६२
 कुदृष्टिदृष्टान्तवचोऽभिधानादेवाश्च दासा इव वर्णितास्ते ।
 तेषां विरोधाचरितादवश्यं जगत्प्रणाशं स्वयमभ्युपैति ॥ ६३
 द्विजैश्च काकैर्यदि भुक्तमन्नं मृतान्पितृस्तर्पयते परत्र ।
 पुराञ्जितं तत्पितृभिर्विनष्टं शुभाशुभं तैन हि कारणेन ॥ ६४
 स्वस्नात्सुताद्यः स्वयमेव पुत्रो जातिश्च जातिस्मर एव कश्चित् ।
 विनाशभुज्ञे पितृपिण्डमन्नं ततो ह्यशक्यं पितृकार्यमेतत् ॥ ६५
 पितृश्च पुत्रस्य च तामसः स्यात्पुत्रो विषानं प्रददौ द्विजेभ्यः ।
 तद्वर्जितं तैरनृतार्थवद्विरतश्चः मिथ्या पितृकार्यमत्र ॥ ६६

१ [तपस्त्वत्स]. २ [स्वस्मात्]. ३ [जातश्च]. ४ [विनाशि].

यादंशि दानानि पुरा द्विजेभ्यो दत्तानि नानारसवर्णवन्ति ।
 फलन्ति तादंशि वृणामयत्नाजन्मन्यमुत्रेति जनप्रवादः ॥ ६७
 श्वभिः शृगालैरपि वृत्रकाकैः सगर्दभैः मूकरचासकूर्मैः ।
 यान्यत्र लब्धान्यथुचीनि तैश्च दत्तानि तान्येव तु किं द्विजेभ्यः ।
 नापुत्रका लोकमिमं जयन्ति नापुत्रकाः स्वर्गगतिं लभन्ते ।
 इतीह पक्षो यदि यस्य पुंसः कुमारभूरि प्रतिनो निविष्टाः ॥ ६९
 यद्यच्च लोके बहुभिर्न दृष्टं तत्त्वप्राणं यदि यस्य न स्यात् ।
 वेदश्चुतीहासपुराणधर्मास्ते ब्राह्मणैकेन न तु प्रदिष्टाः ॥ ७०
 असत्प्रसूतिस्त्वसतो यदि स्याच्छशस्य शृङ्गान्मृगतृष्णिका स्यात् ।
 सतः प्रसूतिस्त्वसतो यदि स्यादृटस्य वीजं शशशृङ्गतः स्यात् ॥ ७१
 असत्प्रसूतिश्च सतो यदि स्याद्वोशृङ्गतः किं न भवेच्च पुष्पम् ।
 सतः प्रसूतिस्तु सतो यदि स्यादग्रेजंलं वानलकोऽम्बुतो वा ॥ ७२
 द्रव्ये सति क्षेत्रयुते च काले भावे च भावान्तरसंनिबद्धाः ।
 भवन्ति भावा भुवनत्रयस्य सहेतुकाः केचन निर्निमित्ताः ॥ ७३
 नासो हि रुद्रस्त्रिपुरप्रणाशादुमापतित्वाद्रतिसंभवाच्च ।
 अनङ्गभङ्गादसुरोपयाताज्याक्षिमूत्रवृषवाहनाच्च ॥ ७४
 अग्निर्मुखं वेदसुरेभ्वराणां योऽपीश्वरस्यापि मुखं ध्रुवं सः ।
 आत्मानमात्मैव च वर्षयेद्यः सोऽन्यान्कथं मुश्चति वश्चितात्मा ॥ ७५
 ब्रह्मापि नासो हरिसौराथिः स्यान्निशुभ्युभुम्भासुरमर्दनाच्च ।
 तिलोत्तमाङ्गप्रतिदर्शनेन चक्रे यतो वक्तव्यतुष्टयत्वम् ॥ ७६
 नासो हि विष्णुर्बलिबन्धनेन तुरङ्गमास्यप्रविदारणाच्च ।
 अनोविनाशाद्वजदन्तकर्षाच्चापूरकं साहिसुराभिघातात् ॥ ७७

१ क शूक्रभास°, [सूक्ररचाष°]. २ क वानलकोऽम्बुतो वा. ३ क हरिः
 ४ क निःशुभ्य°.

यो गर्दभाय प्रतिनदनाय नमश्चकारार्थितया स विष्णुः ।
 अरातिभीतः सुचुकुन्दनान्तः पर्यङ्कदेशातिथितां प्रयातः ॥७८
 वज्रायुधो गौतमभार्ययासौ विभिन्नवृत्तः किल तेन शसः ।
 उमासुतः सोऽपि कुमारनामा भग्नवतोऽभूद्धनगोचरिण्या ॥ ७९
 त्रिशूलवज्रायुधचक्रहस्ता धनुर्गदाशकत्यसिपाणयश्च ।
 सतोमरा देववरा यदि स्युश्चोरांशु सुखल्वत्र हि कीदृशाः स्युः ॥८०
 स्त्रीभूषणैरागिण एव देवाः क्रोधोऽस्ति तेषां स हि सापैशुद्धै ।
 परिग्रहैरायुधसंग्रहैश्च भयं सुराणामपि लोकसिद्धम् ॥ ८१
 नैरात्म्यशून्यक्षणिकप्रवादाद्बुद्धस्य रत्नत्रयमेव नास्ति ।
 रत्नत्रयाभावतया च भूयः सर्वं तु न स्यात्कुत आप्नभावः ॥ ८२
 मृषैव यत्नात्करुणाभिमानो न तस्य दृष्टा खलु सच्चसंज्ञा ।
 तया विना का करुणोपपत्तिः कृपाकथा बालकवश्वनैषा ॥ ८३
 प्राणान्तकृद्वलवचो दुरन्तं रुद्रस्तु सर्वत्र हि रौद्र एव ।
 विष्णुः शठात्मा रतिरोषयुक्तो बुद्धस्तु रौद्रो निरनुग्रहैश्च ॥ ८४
 ब्रह्मादयो यद्यनवासकार्या आयुष्यमाप्तुं न हि शक्नुयुश्चेत् ।
 के नो भवन्त्यात्मगुणोपपन्नास्तेभ्योऽधिकांस्तान्वद पार्थिवासान्
 ये दर्शनज्ञानविशुद्धलेश्या जितेन्द्रियाः शान्तमदा दमेशाः ।
 तपोभिरुद्धासितचारुदेहा आप्ना गुणैरासतमा भवन्ति ॥ ८६
 निद्राश्रमक्लेशविषादचिन्तासुकृद्जराव्याधिभयैर्विहीनाः ।
 अविस्मयाः स्वेदमैरपेता आप्ना भवन्त्यप्रतिमस्वभावाः ॥ ८७
 द्रेषश्च रागश्च विमूढता च दोषाशयास्ते जगति प्ररूढाः ।
 न सन्ति तेषां गतकल्पषाणां तानर्हतस्त्वासप्तमा वदन्ति ॥ ८८

१ [मुचुकुन्दः]. २ [चोरास्तु खल्वत्र]. ३ [शापशुद्धै]. ४ [यस्मात्].
 ५ क निरनुग्रहैश्च. ६ म गुणैरात्मतमा .

अर्हन्त एवाभयदानदक्षा अर्हन्त एवाप्रतिवीर्यसत्त्वाः ।
 अर्हन्त एवामलसत्त्वरूपा अर्हन्त एवातिशयदिँयुक्ताः ॥ ८९
 अर्हन्त एवाकुपया विहीना अर्हन्त एवारिभयैरपेताः ।
 अर्हन्त एवाचलचारुसौख्या अर्हन्त एवातुलमोक्षभासः ॥ ९०
 अर्हन्त एव त्रिजगत्प्रपूज्या अर्हन्त एव त्रिजगच्छरण्याः ।
 अर्हन्त एव त्रिजगद्वरेण्या अर्हन्त एवाखिलदोषमुक्ताः ॥ ९१
 तानर्हतस्त्वास्तमान्विदित्वा तद्राक्यनीतार्थमतं प्रपन्नाः ।
 संसारनिष्टामुपगम्य धीरा निर्वाणसौख्यं परमाप्नुवन्ति ॥ ९२
 तैस्तैः पुनर्लैकिकवैदिकाद्यैरनेकशास्त्रार्थमतिप्रवीणैः ।
 विवक्तुभिर्वीक्षितपक्षरागैः स्वपक्षासिद्धिं निजगाद् राजा ॥ ९३
 कुहेतुदृष्टान्तविनष्टमार्गान्कुञ्जाननीत्यावृतलोचनांस्तान् ।
 निरुत्तरैर्वाक्यपदैर्नरेन्द्रो विबोधयामास तदा सदस्याम् ॥ ९४
 प्रधानमन्त्रीश्वरशिष्टवर्गाः पुरोहितामात्यसभाविदश्च ।
 प्रबुद्धपद्मप्रतिमाननास्ते भूतं प्रहृष्टा गतपक्षरागाः ॥ ९५
 नरेन्द्रसद्राक्यविबुद्धतत्त्वाः प्रसन्नबुद्धीन्द्रियरागमोहाः ।
 विपन्नमिथ्यात्वकषायदोषाः शान्ता वभूवुर्बहवोऽपि तत्र ॥ ९६

इति विमतिप्रबोधनार्थं

स्वमभिमतं च धृतिप्रबृहणाय ।

सुहृदयपरिनिर्मलत्वमिच्छ-

न्सदासि जजल्य मनोहरैर्वचोभिः ॥ ९७

पुनरपि जिनशासनातिभक्तः

परसमयानपविध्य भूमिपालः ।

१ [°भाजः]. २ [सदस्यान्]. ३ म द्विती०

स्वसमयमितार्थमुत्तमश्री-
रिंगदितुमप्रतिमं मनः प्रचक्रे ॥ ९८

इति धर्मकथोद्देशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
मिथ्याश्रुतिविघातको नाम
पञ्चविंशतितमः सर्गः ।

[पद्मविंशः सर्गः]

अहन्मतमिदं पुण्यं स्याद्वादेन विभूषितम् ।
अन्यतीर्थेरनालीढं वक्ष्ये द्रव्यानुयोजनम् ॥ १
अनन्तपर्ययं द्रव्यं सामान्यादिकमिष्यते ।
तच्च द्रेधा विनिर्दिष्टं जीवाजीवस्वभावतः ॥ २
तदेव त्रिविधं प्रोक्तं गुणेद्रव्यैश्च पर्ययैः ।
चतुर्थी भिद्यते तच्च रूपारूपक्रियागुणैः ॥ ३
पञ्चास्तिकायभेदेन पञ्चधा भिद्यते पुनः ।
तदेव भिद्यते षोडा पद्मद्रव्यप्रविभागतः ॥ ४
जीवपुद्गलकालाश्च धर्माधर्मौ नभोऽपि चं ।
षट्द्रव्याण्युदितान्येवं तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ५
उपयोगलक्षणा जीवा उपयोगो द्विधा स्मृतः ।
ज्ञानेन दर्शनेनापि यदर्थग्रहणं हि सः ॥ ६
जीविष्यन्ति च जीवन्ति जीवा यज्ञाप्यजीविषु ।
ते च जीवाख्तिधा भिन्ना भव्याभव्याश्च निष्ठिताः ॥ ७

१ म धर्माधर्मनभासि च. २ [ये चाप्यजीविषुः].

अथ्रदधाना ये धर्मं जिनप्रोक्तं कदाचन ।
 अलब्धतत्त्वविज्ञाना मिथ्याज्ञानपरायणाः ॥ ८
 अनाद्यनिधनाः सर्वे मग्नाः संसारसागरे ।
 अभव्यास्ते विनिर्दिष्टा अन्धपाषाणसंनिभाः ॥ ९
 अर्हस्त्रिः प्रोक्ततत्त्वेषु प्रत्ययं संप्रकुर्वते ।
 श्रद्धावन्तश्च तेष्वेव रोचन्ते ते च नित्यशः ॥ १०
 अनादिनिधने काले निर्यास्यन्ति त्रिभिर्युताः ।
 भव्यास्ते च समाख्याता हेमधातूपमाः स्मृताः ॥ ११
 सर्वकर्मविनिर्मुक्ताः सर्वभावार्थदर्शिनः ।
 सर्वज्ञाः सर्वलोकाच्चर्याः सर्वलोकाग्रधिष्ठिताः ॥ १२
 निर्बन्धा निःप्रतीकाराः समसौख्यपरायणाः ।
 ये च सर्वोपमां नीतास्ते सिद्धाः संप्रकीर्तिताः ॥ १३
 पट्प्रकारविभक्तं तत्पुद्गलद्रव्यमिष्यते ।
 तस्य नाम विभक्तं तत्प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥ १४
 स्थूलस्थूलं तथा स्थूलं स्थूलसूक्ष्मं यथाक्रमम् ।
 सूक्ष्मस्थूलं च सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मेण षड्विदुः ॥ १५
 भूम्यद्रिवनजीमूतविमानभवनादयः ।
 कृत्रिमाकृत्रिमद्रव्यं स्थूलस्थूलमुदाहृतम् ॥ १६
 तनुत्वद्रव्यभावाच्च छेत्रमानानुबन्ध्य यत् ।
 तैलोदकरसक्षीरघृतादि स्थूलमुच्यते ॥ १७
 चक्षुर्विषयमागम्य ग्रहीतुं यन्न शक्यते ।
 च्छायातपतमोज्योत्स्नं स्थूलसूक्ष्मं च तद्भवेत् ॥ १८

१ [सर्वोपमातीताः].

शब्दस्पर्शरसो गन्धः शीतोष्णे वायुरेव च ।
 अचक्षुग्राहाभावेन सूक्ष्मस्थूलं तु तावशम् ॥ १९
 पञ्चानां वैक्रियादीनां शरीराणां यथाक्रमम् ।
 मनसश्चापि वाचश्च वर्गणा याः प्रकीर्तिः ॥ २०
 तासामन्तरवर्तिन्यो वर्गणा या व्यवस्थिताः ।
 ताः सूक्ष्मा इति विज्ञेया अनन्तानन्तसंहताः ॥ २१
 असंयुक्तास्त्वसंबद्धा एकैकाः परमाणवः ।
 तेषां नाम समुद्दिष्टं सूक्ष्मसूक्ष्मं तु तद्बुधैः ॥ २२
 धर्माधर्मौ यथासंख्यं गतिस्थित्योस्तु कारणम् ।
 तत्परिणामिनामेतौ^१ तयोः शेषः समो मतः ॥ २३
 यथोदकं तु मत्स्यानां गतिकारणमिष्यते ।
 स्थानाक्रियासमेतानां महीवाधर्म उच्यते ॥ २४
 धर्मद्रव्यं त्रिधा भिन्नमस्तिदेशप्रदेशतः ।
 अधर्मश्च त्रिधा प्रोक्तश्चास्तिदेशप्रदेशतः ॥ २५
 अस्तिकस्तु^२ स्वपर्यायैर्लोकमापूर्य धिष्ठितः ।
 देशः संक्षेपभागस्तु प्रदेशोऽसंख्यभागताम् ॥ २६
 वर्तनालक्षणः कालविधा सोऽपि प्रभिद्यते ।
 अतीतोऽनागतश्चैव वर्तमान इति स्मृतः ॥ २७
 वर्तमानमुपस्थृत्य व्यतीतोऽतीत उच्यते ।
 वर्तमानस्तु संप्रष्टुरूपस्थास्यत्यनागतः ॥ २८
 उभयोरन्तरालः स्यादृतमानस्तु संप्रति ।
 एष कालविभागस्तु कालविद्धिरुदाहृतः ॥ २९

१ [परिणामिनावेतौ]. २ [तयोरेषः]. ३ म् आस्तिकस्तु.

समयावलिनाड्यश्च मुहूर्तदिनरात्रयः ।
 पक्षमासर्तुवर्षाश्च युगाद्याः कालपर्ययाः ॥ ३०
 आकाशं व्यापि सर्वस्मिन्नवगाहनलक्षणम् ।
 तच्च प्रोक्तं द्विधा भूयो लोकालोकसमन्वितम् ॥ ३१
 द्रव्यैस्तु पञ्चभिर्व्याप्य लोकाकाशं प्रतिष्ठितम् ।
 अलोके खलु पञ्चानां द्रव्याणां नास्ति संभवः ॥ ३२
 परिणामाजीवभावान्वित्यत्वात्कारणादपि ।
 कर्तृत्वात्सत्क्रियत्वाच्च मूर्तिमन्वाद्विभूत्वतः ॥ ३३
 एकक्षेत्रात्तथैकत्वात्सप्रदेशाद्यथाक्रमम् ।
 सर्वं तद्विविधं^१ द्रव्यं विज्ञातव्यं विचक्षणैः ॥ ३४
 जीवाश्च पुद्लाश्चैव परिणामगुणान्विताः ।
 परिणामं न गच्छन्ति शेषाणीति विदुर्बुधाः ॥ ३५
 जीवद्रव्यं हि जीवः स्याच्छेषं निर्जीव उच्यते^२ ।
 मूर्तिमत्पुद्लद्रव्यममूर्तं शेषमिष्यते ॥ ३६
 धर्माधर्मवियज्जीवास्ते नैकक्षेत्रवर्तिनः ।
 एकक्षेत्रस्तु कालः स्यादेको नैकश्च पुद्लः ॥ ३७
 परमाणुश्च कालश्च निःप्रदेशावुदाहृतौ ।
 शेषाणि सप्रदेशानि वर्णितान्यृषिसत्तमैः ॥ ३८
 धर्माधर्मकजीवाश्च असंख्येयाः प्रदेशतः ।
 प्रदेशा वियतोऽनन्ता इति सर्वविदां मतम् ॥ ३९
 जीवाश्च पुद्लाश्चैव कालश्च बहवः स्मृताः ।
 धर्माधर्मविथाकाशमेकैकं वर्णितं जिनैः ॥ ४०

१ [पञ्चभिर्व्याप्तिं]. २ म तद्विविधं. ३ क निर्जीवमुच्यते.

पुद्गला जीवकायाश्च नित्यानित्या इति स्मृताः ।
 कालद्रव्यमनित्यं तन्नित्यान्येवेतराणि च ॥ ४१
 सत्क्रियाः पुद्गला जीवा निःक्रियाणीतराणि च ।
 आकाशं च विभुद्रव्यं शेषमव्यापि तद्विदुः ॥ ४२
 कार्यकारणसंयुक्तं पुद्गलद्रव्यमुच्यते ।
 शेषाण्यकारणान्येव न कार्याणि कदाचन ॥ ४३
 कर्तुं कर्तृत्वसंयुक्तं पुद्गलद्रव्यमुच्यते ।
 द्रव्याण्यन्यान्यकर्तृणि सर्वाणीत्यार्हतं मतम् ॥ ४४
 तेषामधिगमोपायः प्रमाणनयवर्तमना ।
 प्रत्यक्षं च परोक्षं च प्रमाणं तद्विधा स्मृतम् ॥ ४५
 प्रत्यक्षं भिद्यते त्रेधा सावधिश्चित्तर्पर्ययः ।
 रूपिद्रव्यनिबद्धौ तौ केवलं विश्वगोचरम् ॥ ४६
 परोक्षं तर्हि॑ निर्दिष्टं द्रेधा तत्त्वार्थदर्शिभिः ।
 सप्रभेदा मतिश्रैव द्रिविकल्पमपि श्रुतम् ॥ ४७
 संक्षेपतो नयौ द्वौ तु द्रव्यपर्यायसंसृतौ ।
 तन्मात्रस्याभिवित्सायामर्थशब्दविशेषितौ ॥ ४८
 तयोर्भेदा नया जैनैराख्याता नैगमादयः ।
 नीयते यैरशेषेण लोकयात्रा विशेषतः ॥ ४९
 नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहारस्तथैव च ।
 द्रव्यार्थिकनयस्यैते भेदाः प्रोक्ताः मनीषिभिः ॥ ५०
 ऋजुसुत्रश्च शब्दश्च तथा समविरुद्धकैः ।
 इत्थंभूतश्च चत्वारो विकल्पाः पर्यार्थिनः ॥ ५१

१ [तद्वि]. २ [°संश्रितौ]. ३ [समभिरुद्धकः],

नाम च स्थापना चैव द्रव्यं द्रव्यार्थिकस्य च ।
 निषेपादित्रयः प्रोक्ता भाव एवेतरस्य च ॥ ५२
 न हि द्रव्यार्थिको नाम नयः कश्चिद्वस्थितः ।
 पर्यायार्थिको वापि किंतु भावाव्यवस्थितिः ॥ ५३
 उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति नियमात्पर्यायवाचिनः ।
 न जायन्ते न नश्यन्ति भावा द्रव्यार्थिकस्य च ॥ ५४
 ऋते द्रव्यान्न पर्याया द्रव्यं वा पर्ययैर्विना ।
 स्थित्युत्पत्तिनिरोधोऽयं द्रव्यलक्षणमुच्यते ॥ ५५
 प्रोक्ता स्थित्यादयस्तेऽपि तयोः प्रत्येकलक्षणम् ।
 न भवन्ति यतस्तस्मान् तत्त्वं तौ नयौ स्मृतौ ॥ ५६
 न संभवति संसारे द्रव्यार्थिकनयस्य यत् ।
 न पर्ययोऽर्थिकस्यापि^१ यद्द्वौव्यच्छेदवादिनौ ॥ ५७
 सुखदुःखोपभोगस्तु नित्यस्यापरिणामिनः ।
 घटते नाप्यनित्यस्य सर्वथोच्छेददर्शनात् ॥ ५८
 योगतः कर्म बधाति स्थितिस्तस्य कषायतः ।
 एकान्तनित्यानित्यत्वान् बन्धस्थितिकारणम् ॥ ५९
 तस्मादुक्ता नयाः सर्वे स्वपक्षाभिनिवेशिनः ।
 मिथ्यादृशस्त एवैते तत्त्वमन्योन्यमिश्रिताः ॥ ६०
 मणयः पद्मरागाद्याः पृथक्पृथगथ स्थिताः ।
 रत्नावलीति संज्ञां ते न विदन्ति महर्धिणः ॥ ६१
 यथैव कुशलैरेते यथास्थाने नियोजिताः ।
 रत्नावल्यो हि कथ्यन्ते प्रत्येकाख्यां त्यजन्ति च ॥ ६२
 तथैव च नयाः सर्वे यथार्थं विनिवेशिताः ।
 सम्यक्त्वाख्यां प्रपद्यन्ते प्राक्तनीं संत्यजन्ति च ॥ ६३

१ [पर्यायार्थिकस्यापि].

द्रव्यार्थिकनयस्यात्मा कर्मकृतफलभृत्क्षमः ।
 पर्यायार्थिकयस्यान्यः कर्ता भोक्ता तथापरः ॥ ६४
 [द्रव्यार्थिकस्य यः कर्ता स एव फलमश्नुते ।
 पर्यायार्थिकयस्यान्यः कर्ता भोक्ता तथापरः] ॥ ६५
 तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं लोकयात्रासमन्वितः ।
 नययोरनयोर्भेदात्र संभवति युक्तिभिः ॥ ६६
 गुणप्रधानभावेन यदा त्वेतौ परस्परम् ।
 अपेक्षेते तदा तत्त्वं भजतो^३ भजनाश्रितौ ॥ ६७
 अयमेव महापन्थाः पुंसां निःश्रेयसार्थिनाम् ।
 अविरोधात्ततोऽन्यस्तु मिथ्यात्वप्रतिपादकः ॥ ६८
 यावन्तो वचसां मार्गा नयास्तावन्त एव हि ।
 तावन्ति परतीर्थानि यावन्तो नयगोचराः ॥ ६९
 अस्त्यात्मा स हि कर्ता च धुवो भोक्ता च मुक्तिमान् ।
 अस्त्येव मुक्तयुपायश्च षोढा मिथ्यात्वमुच्यते ॥ ७०
 नास्त्यकर्ता न भोक्ता च भज्ञुरो न च मुक्तिमान् ।
 नास्त्येव मुक्तयुपायश्च षोढा मिथ्यात्वमुच्यते ॥ ७१
 प्रकृतेः पुरुषात्कालात्स्वभावान्वियतेरपि ।
 दैवादीश्वरतश्चापि यद्वच्छातो विधानतः ॥ ७२
 सर्वप्रपञ्चसंसिद्धिरेतेभ्यः संप्रचक्ष्यते ।
 केचिदेकान्ततस्तेषां मिथ्यात्वं न निवर्तते ॥ ७३
 तस्मादेवार्हातं युक्तमनेकान्तावलम्बनात् ।
 अविरोधस्तु सर्वत्र सञ्चूतार्थप्रदर्शनात् ॥ ७४

१ क॑यस्यायम्, [पर्यायार्थिनयस्यान्यः]. २ क॒-पुस्तक एव. ३ क॒ क भजते.

अविरोधः कुतः स्याचेदेकपक्षपरिग्रहात् ।
 स पुनः केन चेत्युक्ते नयद्वयपरिग्रहात् ॥ ७५
 [स्याद्वादः खलु पूर्वस्मिन्परस्मिन्नुभयोरपि ।
 उभयोः पादयोर्न स्यादिति केचित्प्रचक्षते] ॥ ७६ ॥
 स्याद्वादस्तु विशेषेण सर्वत्र यदि कल्प्यते ।
 अथवा न प्रकल्प्येत दोषस्तस्य प्रसज्यते ॥ ७७
 कस्तत्र दोष इति चेदेकान्तत्वं प्रसज्यते ।
 एकान्तवादतः किं न लोकयात्रा विनश्यति ॥ ७८
 लोकयात्राप्रसिद्ध्यर्थं युक्तिवादः प्रकल्प्यते ।
 दृष्टान्तास्तस्य चत्वारस्तैर्व्यक्तिमभिगच्छति ॥ ७९
 जीवः स स्यान्मनुष्यस्तु नाजीवो मृद्घटस्तथा ।
 सदद्रव्यमिति^३ सर्वत्र स्याद्वादस्य विकल्पना ॥ ८०
 स्याद्वादः खलु पूर्वस्मिन्परस्मिन्नुभयोरपि ।
 उभयोः पादयोर्न स्यादिति केचित्प्रचक्षते ॥ ८१
 अनेकान्तोऽपि चैकान्तः स्यादित्येवं वदेत्परः ।
 अनेकान्तोऽप्यनेकान्त इति जैनी श्रुतिः स्मृता ॥ ८२
 तस्यानेकान्तवादस्य लिङ्गं स्याच्छब्द उच्यते ।
 तदुक्तार्थं विनाभावे लोकयात्रा न सिध्यति ॥ ८३
 नयानामपि सामग्री प्रकृत्यादीनां च संहतिः ।
 सम्यक्त्वमिति विज्ञेयं नान्यच्छ्रेयोऽस्त्यतः परम् ॥ ८४
 प्रमाणनयनिक्षेपप्रक्रमोपहितं पुनः ।
 एकान्तैकात्मकं वस्तु भावाभावोपबृहितम् ॥ ८५

द्रव्यार्थिकव्यवस्थायमेकं स्यात्पर्ययार्थिनः ।
 अनेकमिति निर्दिष्टं तदेव जिनशासने ॥ ८६
 पितृपुत्रादिसंबन्धं एकस्मिन्पुरुषे यथा ।
 न ह्येकस्य पितृत्वेन सर्वेषामपिता भवेत् ॥ ८७
 चतुर्विधस्वभावोऽयं पर्यायो वस्तुनः स च ।
 प्रमेयत्वं हि हेतुः स्याद्वटो दृष्टान्त उच्यते ॥ ८८
 तस्मात्तत्त्वपरीक्षायामिदमेव समञ्जसम् ।
 स्वायंभुवं प्रवचनं विद्वद्भिः समुपासितम् ॥ ८९
 मिथ्यावादसमूहस्य भद्रं जैनस्य धर्मतेः ।
 अमृतः स्वाँदुतः पुंसां सुगमश्च सुमेधसाम् ॥ ९०
 श्रद्धां कुर्वन्ति ये तस्मिन्ब्रेधन्ते भावतश्च ये ।
 ते सम्यद्वृष्टयः प्रोक्ताः प्रत्ययं ये च कुर्वते ॥ ९१
 तन्मूले ज्ञानचारित्रे मुक्तेरेतानि साधनम् ।
 रत्नत्रयमिदं प्रोक्तं सोपानं स्वर्गमोक्षयोः ॥ ९२
 एतन्मृत्युजराजातिसंततातङ्कभेषजम् ।
 निर्वाणस्वास्थ्यसंधानं पवित्रं परमं शिवम् ॥ ९३
 त्रयाणां समवायेन मुक्तिमार्गः प्रशस्यते ।
 त्रिविष्टपैकदृष्टान्तात्प्रत्येकं न प्रसिध्यति ॥ ९४
 तथापि तेषु सम्यक्त्वं श्रेष्ठमित्यभिधीयते ।
 महीसलिलजीवानां सति योगे तु जीववत् ॥ ९५
 दर्शनाद्वृष्ट एवानुन्नेष्ट इत्यभिधीयते ।
 न हि चारित्रविभ्रष्टो भ्रष्ट इत्युच्यते बुधैः ॥ ९६

१ क [संबन्धं]. २ [धर्मकः]. ३ [स्यादतः]. ४ म तस्मिन्ब्रेदं ते.

महता तपसा युक्तो मिथ्यादृष्टिरसंयतः ।
 तस्य सर्वज्ञसंदृष्ट्या संसारोऽनन्त उच्यते ॥ ९७
 सम्यग्दृष्टेस्तु संसारो यद्युक्तुष्टो भवेत्पुनः ।
 सागराणां तु षट्प्रष्ठिः नातः परतरो भवेत् ॥ ९८
 क्रियाहीनं च यज्ञानं न तु सिद्धिं प्रयच्छति ।
 परिपश्यन्यथा पञ्चमुग्धोऽदग्धो द्वाग्निना ॥ ९९
 ज्ञानहीना क्रिया चापि नात्र कार्यं प्रसाधयेत् ।
 नेत्रहीनो यथा धावन्पतिस्त्वनलार्चिषि^१ ॥ १००
 तौ यथा संप्रयुक्तौ तु द्वाग्निमधिगच्छतः ।
 तथा ज्ञानचरित्राभ्यां संसारान्मुच्यते पुमान् ॥ १०१
 पुमानर्थानयाप्रेष्मुः संपन्नः साधनैरपि ।
 दैवहीनः क्रियावांस्तु न कर्मफलमश्नुते ॥ १०२
 संपन्नो दैवसंपत्त्या साधनैश्च समन्वितः ।
 पुमान्पौरुषहीनस्तु सोऽपि नार्थं स गच्छति ॥ १०३
 युक्तौ विचार्यमाणाणायां य एवोभयवान्भवेत् ।
 स एवेष्पितभागाग्नैर्दण्डोऽरण्ये इवोऽन्द्रवेत् ॥ १०४
 एवं जने^२ क्रियायुक्तस्त्रिगुप्तः संयतेन्द्रियः ।
 निर्धूय सर्वसंकल्पान् ध्रुवमेत्यचलं पदम् ॥ १०५
 द्रव्याणि षट् च गतिभेदसमन्वितानि
 युक्त्या प्रमाणनयमार्गविकल्पितानि ।
 तान्येव तत्त्वपदवीसमुपाश्रितानि
 स्वैर्लक्षणैरभिहितानि नरेश्वरेण ॥ १०६

१ [पञ्चमुग्धो]. २ [पतितस्त्वनलार्चिषि]. ३ क °दैवहीनक्रिया°.
 ४ [°भागम्बर्दण्डो°]. ५ [जने].

कालस्य हानिमथ वृद्धिमपि प्रसंख्यं
 संज्ञां च तस्य खलु भारतवर्षभूमौ ।
 तस्यां तु कारणमहापुरुषांश्च तेषां
 नामादि विस्तरविहीनमतोऽभिधास्ये ॥ १०७
 इति धर्मकथेऽदेशे चतुर्वर्गसमविते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 द्रव्यादिकालो नाम
 षड्विंशतितमः सर्गः ।

[सप्तविंशः सर्गः]

ततो नरेन्द्रः प्रथमानुयोगं प्रारब्धवान्संसदि वक्तुमुच्चैः ।
 सभा पुनस्तस्य वचोऽनुरूपं शुश्रूषयामावहिता वभूव ॥ १
 कालायुधी क्षेत्रमतो जिनांश्च जिनान्तरं चक्रभृतस्तथैव ।
 प्रख्यातवंशौ बलवासुदेवौ तयोश्च शत्रुंश्च निशामयध्वम् ॥ २
 कालं पुनर्योगविभागमेति निगद्यतेऽसौ समयो विधिज्ञैः ।
 संख्याव्यतीताः समयाश्च दृष्टा एका बुधैः सावलिकेति तेऽपि ॥ ३
 शब्दः स एके गणनाव्यतीतास्ताः सप्तभिस्तोकमुदाहरन्ति ।
 स्तोकैर्लेवः सप्तभिरेव चैकस्तेनाधिकाञ्चिंशदथाष्टयुक्ताः ॥ ४
 एको मुहूर्तः खलु नाडिके द्वौ त्रिशन्मुहूर्ता दिनरात्रिरेका ।
 त्रिपञ्चकैस्तैर्दिवसैश्च पक्षः पक्षद्वयं मासमुदाहरन्ति ॥ ५
 क्रतुस्तु मासद्वय एक उक्त एषां त्रयं स्यादयनं तथैकम् ।
 वर्षं तथा द्वे अयने वदन्ति संख्याविभागक्रमकौशलज्ञाः ॥ ६

दशाहतां वृद्धिमतः परं तु संख्यां प्रवक्ष्यामि यथाभिधानाम् ।
एकं दशैवाथ शतं सहस्रं दशाहतं तद्युयुतं वदन्ति ॥ ७
दशाहतं तं त्वयुतं हि लक्ष्या शताहतां तां च वदन्ति कोटीम् ।
लक्ष्या ह्यशीति त्वधिका चतुर्भिः पूर्वाङ्गमेकं मुनिभिः प्रदिष्टम् ॥ ८
कृतिस्तु तस्यैव हि पूर्वमेकं पूर्वाङ्गमाहुः कृतिताडितं तत् ।
तेनाहतं तच्च हि सर्वमेकं सर्वाहतं चापि [~] नाङ्गमाहुः ॥ ९
ततः परं तस्य परस्परेण गुण्यं च विन्द्याद्गुणकारकं च ।
तेषां तु संज्ञाः क्रमतः प्रवक्ष्ये पृथकपृथक्पूर्वमुनिप्रणीताः ॥ १०
ततो नतं तन्नलिनाङ्गमस्माच्चतश्च भूयो नलिनं निराहुः ।
ते द्वे महाशब्दयुते च पूर्वे पद्मं ततः स्यात्कमलं च तस्मात् ॥ ११
ततः परं तत्कुमुदं तुटीयं ततश्च भूयोऽथ टटं निराहुः ।
ततश्च विद्यां ढैमनं तथौहं महं ततस्त्यात्पयुतं प्रतकर्यम् ॥ १२
ततः शिरीषं त्वतिसंयुतं च प्रहेलिका चापि च चर्चिका च ।
संख्याव्यतीतं च ततः प्रमाणमौपम्यगम्यं मुनयो वदन्ति ॥ १३
संख्येयमादौ प्रवदन्ति तज्जास्ततस्त्वसंख्येयमनन्ततां च ।
एकैकमेषां त्रिविधप्रकारं नवप्रकारं द्रव्यमामनन्ति ॥ १४
व्यवहारपल्यं प्रथमं वदन्ति न तेन किंचिद्व्यवहार्यमस्ति ।
उद्धारपल्यं च ततो द्वितीयमद्धारपल्यं च पुनस्तृतीयम् ॥ १५
विष्कंभमानं खलु योजनं स्यात्परिक्षिपन्तं त्रिगुणाधिकं च ।
उत्सेधतो योजनमेव यस्य तत्पल्यमाहुर्गणितप्रधानाः ॥ १६
एकाहिकं सप्तदिनानि यावज्जातस्य रोमणां खलु बर्करश्चै ।
अनेककल्पप्रतिखण्डितानां निरन्तरं तिन्दुसमं प्रपूर्णम् ॥ १७

१ क पर्वेमेकं. २ क दमनं. ३ क तदाहं. ४ [महत्ततः स्यात्].
५ [बर्करस्य].

पूर्णं तथा वर्षशते च तस्मादेककमुद्भृत्य हि लोमखण्डम् ।
 निष्ठां प्रयाते खलु रोमराशौ पल्योपमं तं प्रवदन्ति कालम् ॥१८
 तेषां पुनः स्यादथ पल्यनामां दशाहतां सा खलु कोटिकोटिः ।
 प्रमाणमेतत्खलु सागरस्य निगद्यते वीतमलैर्जिनेन्द्रैः ॥ १९
 ततश्च तस्माद्यवहारपल्याद्वालाग्रमेकं परिगृह्य सूक्ष्मम् ।
 अनेककोट्यब्दविश्वणितं तत्स्यातिपूर्णं निचितं समन्तात् ॥२०
 पूर्णं समासान्तशते ततस्तु एकैकशो रोम समुद्धरेच्च ।
 क्षयं च जाते खलु रोमपुञ्ज उद्धारपल्यस्य हि कालमाहुः ॥२१
 पल्योपमानां खलु कोटिकोटी दशाहता सागरमेकमाहुः ।
 अनेन मानेन मिता मुनीन्द्रैर्दीर्घाः समुद्रा द्वितीयार्धसंख्याः ॥२२
 उद्धारपल्यात्प्रतिगृह्य चैकं तद्रोमखण्डं शतशः प्रकल्प्यम् ।
 अनेककोट्यब्दमुहूर्तखण्डं पूर्णं च तेषां निचितं च पल्यम् ॥ २३
 पाते तथैवाब्दशते क्रमेण रोमैकमेकं तत उद्धरेच्च ।
 निष्ठां प्रयाते खलु रोमराशावद्वारपल्यं समुदाहरन्ति ॥ २४
 तेषां दशश्च खलु कोटिकोटी तन्मानमाहुः किल सागरस्य ।
 दिवौकसां नारकपुंस्तिरश्चामिति स्थितिः कर्मभवाशुचां च ॥२५
 ततस्तु तेषां खलु सागराणां दशाहतास्ता अपि कोटिकोटीः ।
 उत्सर्पिणीं तां प्रवदन्ति तज्ज्ञा भूयस्ततस्तामवसर्पिणीं चै ॥२६
 उत्सर्पिणी वाप्यवसर्पिणी च अनाद्यनन्ताविह यौतकालैँ ।
 तौ भारतैरावतयोः प्रदिष्टौ पक्षौ यथैवात्र हि शुक्लकृष्णौ ॥२७
 सुशब्दपूर्वास्तु भवन्ति तिस्रो दुस्सूपसर्गं प्रहिते समे द्वे ।
 तथातिदुर्भ्यां सहिता समैका एकस्य कालस्य हि षट्प्रभेदाः २८

१ म समाशान्तं । २ क कर्मभवाभवां । ३ क °सर्पिणीं तां । ४ [यौ च कालैँ] ।

आद्यर्थं संख्याः कथिताश्रतस्ततो द्वितीयस्य पुनश्रतस्तः ।
 ततो द्वितीयस्य पुनश्च तिस्र उदाहृते द्वे च तृतीयकस्य ॥ २९
 स्यात्सागराणां खलु कोटिकोट्यश्रुतुर्थकालस्य हि कोटिकोटी
 सप्ताहता षट् च सहस्रहीना त्रिसप्तसप्ताष्टसप्तमासहस्रम् ॥ ३०
 स्यान्मानमेतत्किल पञ्चकस्य षष्ठ्यकालस्य तदेव मानम् ।
 त्रैकाल्यविद्धिः कथितं यथावच्चतुर्थकालस्य हि मध्यकाले ॥ ३१
 उत्पेदिरे कारणमानुषास्ते जिनाश्रुतुर्विशति तत्र जाताः ।
 ते चक्रिणो द्वादश राजवर्या नव प्रदिष्टा खलु वासुदेवाः ॥ ३२
 नवैव तेषां प्रतिशत्रवश्च प्रतिश्रुतिश्चैव हि संमतिश्च ।
 क्षेमंकरस्तत्र तृतीय आसीक्षेमंधरश्चापि चतुर्थकः स्यात् ॥ ३३
 सीमंकरः पञ्चमको बभूव सीमंधरः षष्ठ उदाहृतश्च ।
 ततश्च राजापलवाहनः स्याच्चक्षुष्यता तेन तथाष्टमस्तु ॥ ३४
 ततो यशस्वानभिचन्द्रसंज्ञश्चन्द्राभनामा मरुदेवसाहः ।
 प्रसेनजिन्नाभिरनन्तरश्च ततः प्रसूतो वृषभो महात्मा ॥ ३५
 तस्याग्रपुत्रो भरतो बभूव एते स्मृता वंशकरा विशिष्टाः ।
 यशस्विनः षोडशभूमिपालास्त एव लोके मनवः प्रदिष्टाः ॥ ३६
 नाभेय आद्योऽजितशंभवौ च ततोऽभिनन्दः सुमतिर्यतीशः ।
 पद्माभनामा च तथा सुपार्वः चन्द्रप्रभश्चैव हि पुष्पदन्तः ॥ ३७
 श्रीशीतलाख्यो मुनिराजकेतुः श्रेयो जिनेन्द्रो वरवासुपूज्यः ।
 ततो जिताशो विमलो यतीशोऽप्यनन्तजिद्वर्मजिनौ च शान्तिः ॥ ३८
 कुन्थुस्त्वरो मल्लिरतुल्यवीर्यः श्रीसुव्रतोऽथो नमिरिन्द्रवन्द्यः ।
 अरिष्टनेमिस्त्वथ पार्वदेवः श्रीवर्धमानेन जिनाः प्रदिष्टाः ॥ ३९

१ [आद्यस्य], २ [°विंशतिरत्र]. ३ क तथोष्टमस्तु, [ततोऽष्टमस्तु].

आद्यश्च चक्री भरतेश्वरोऽभूत्तो द्वितीयः सगरो महात्मा ।
 तृतीय आसीन्मघवान्वरेन्द्रः सनत्कुमारश्च चतुर्थकोऽभूत् ॥ ४०
 शान्तिश्च कुन्युस्त्वथ सप्तमोऽरः सुभौमनामा च महादिपद्मः ।
 हरिश्च तस्माज्यसेननामा श्रीब्रह्मदेवश्च ततोऽनितमोऽभूत् ॥ ४१
 आद्यविष्णुपिष्ठश्च ततो द्विपिष्टस्तस्मात्स्वयंभूः पुरुषोत्तमश्च ।
 नृसिंहनामापि च पुण्डरीको दत्तश्च नारायणकृष्णसाहः ॥ ४२
 गुणैरुपेतो विजयोऽचलश्च धर्मस्ततोऽभूदथ सुप्रभश्च ।
 ततः सुदृष्टोऽपि च नन्दिनामा स्यान्नान्दिमित्रश्च हि रामपद्मौ ॥ ४३
 ग्रीवोऽश्वपूर्वस्त्वथ तारकश्च समेरको वै मधुकैटभश्च ।
 ततो निशुम्भो बलिपार्थिवश्च प्रह्लादको रावणकृष्णशत्रू ॥ ४४
 नाभेयतीर्थे भरतो बभूव तथाजितोऽभूत्सगरो नृपेन्द्रः ।
 त्रिपिष्ट आसीत्खलु शैतले च द्विपिष्टकः श्रेयसि तीर्थजातः ॥ ४५
 अभूत्स्वयंभूर्वरवासुपूज्ये स वैमले वै पुरुषोत्तमश्च ।
 दाँतुश्च तीर्थे मघवान्वरेन्द्रः सनत्कुमारो नरसिंहराजः ॥ ४६
 शान्तिश्च कुन्युस्त्वररात्र्योऽपि आर्हन्त्यचक्त्वगुणोपपन्नाः ।
 श्रीपुण्डरीकश्च सुभौमराजोऽप्यरस्य तीर्थे तु बभूवतुस्तैः ॥ ४७
 श्रीमल्लितीर्थे च महादिपर्वते नारायणो दत्तहरीं च जातः ।
 नमेः सुतीर्थे जयधर्मकृष्णे स ब्रह्मदत्तश्च बभूव नेमेः (?) ॥ ४८
 स सप्तहस्तो जिनवर्धमानः पार्श्वो जिनेन्द्रो नवहस्तदीर्थः ।
 आद्यो जिनेशस्तु समुच्छ्रयेण सर्वर्षणा पञ्चधनुः शतानि ॥ ४९
 अथाष्टपञ्चाष्टकसंस्मितैनामूनानि कुर्यात्क्रमशो जिनानाम् ।
 दशाहताः पञ्चदशाथ पञ्च धनूषि नाभेयसमुच्छ्रयात् ॥ ५०

१ [तथाजितेऽभूत्]. २ [धर्मस्य]. ३ [बभूवतुस्तै]. ४ क महादिपद्मा,
 [पद्मौ]. ५ म नारायणोऽधत्त हरी. ६ म सर्वर्षणा. ७ [संस्थितानां°].

शताहतं तच्च सहस्रमेकं द्विसप्तद्व्याहतपूर्वनाम्नाम् ।
 आयुस्स्मृतं नाभिसुतस्य सम्यग्द्विसप्ततिश्चाप्यजितस्य पूर्वाः ५१
 स्यात्पष्टिरेका जिनशंभवस्य दशोदिता पञ्चसु तीर्थकुत्सु ।
 क्रमेण च द्वे खलु पुष्पदन्तः श्रीशीतले त्वेकमुदाहरन्ति ॥ ५२
 द्विसप्तद्व्याह्यसमासहस्रं शताहतं श्रेयसमायुरुक्तम् ।
 द्विसप्ततिश्चापि हि वासुपूज्ये षष्ठिस्तथायुर्विमले जिनेन्द्रे ॥ ५३
 त्रिशहशैकं च तथा त्रयाणां शून्यत्रयं पञ्चनवैककुन्थोः ।
 षट्वर्जिता स्यान्नवतिस्त्वरस्य मल्लिखिशून्योत्तरपञ्च पञ्च ॥ ५४
 त्रिशत्सहस्रं मुनिसुवतस्य नमेः सहस्रं दशसंगुणं तत् ।
 नमेः सहस्रं शतमेवं पार्श्वे द्विसप्ततिः स्यात्खलु वर्धमाने ॥ ५५
 समुद्रकोटीस्त्वाजितेन ताड्या शताहता पञ्चगुणा च भूयः ।
 तदन्तरं स्यादवृषभे जिनेशे चेति प्रदिष्टं हि पुराणविद्विः ॥ ५६
 त्रिशहशातो नवतिः प्रदिष्टा अतः सहस्रं नवतिस्तथातः ।
 शतं सहस्रं नवसंगुणे द्वे स्यात्सप्तमस्यान्तरमर्हतस्तु ॥ ५७
 ततोऽन्तरं तन्नवतिस्तु कोद्यो नवैव कोद्यो नवमान्तरं तत् ।
 समुद्रकोटीगणितप्रमाणात्स्यादर्हतामन्तरं नवानाम् ॥ ५८
 षट्षष्ठिसंख्या नियुतप्रमाणं षट्विंशतिश्चापि सहस्रपिण्डः ।
 शतेन युक्ता किल सागराणां कोटी तथोना दशमान्तरं स्यात् ५९
 षट्द्वया नवात्रिंशद्थो नवाथ चत्वार एव त्रितये तथान्यत् ।
 पादोनपल्योनसमुद्रसंख्या षण्णां जिनानामिदमन्तरं स्यात् ६०
 शान्तेऽन्तरं प्रोक्तमथार्धपल्यं कोटीसहस्रोनकुतं समानम् ।
 अद्यर्धपल्यं किल कौन्थवं तत्कोटीसहस्रैकमरान्तरं स्यात् ॥ ६१

१ म षट्तोद्य०. २ क शतमेव पार्श्वे. ३ म °मतान्तरं स्यात्.

लक्षाहताः षण्वकास्तु वर्षाः षडेव वर्षास्तु नमेस्तु पंच ।
 सहस्रताड्यास्तु पुनस्त्रयशीतिरर्धाष्टमैश्चापि शेतैः समेताम् ॥६२
 पंचाशतां द्वे च शते समेते पार्श्वान्तरं तं कथितं यथावत् ।
 त्रिसप्तसंख्यं च सहस्रमेकं वीरस्य तीर्थान्तरमुक्तमेतत् ॥ ६३
 चतुर्थभागोऽथ पुनर्द्विभागः पादोनभागः परिपूर्णभागः
 पादोनकथापि पुनर्विभागः पल्यस्य तस्यापि चतुर्थकश्च ॥ ६४
 एतावता कालपरिच्छदेन तीर्थस्य विच्छेद उदाहृतश्च ।
 सपुष्पदन्तादिषु सप्तसु स्यादाघन्तयोः संतत एव जातः ॥ ६५
 नाभेयशान्ती श्वथ कुन्थुधर्मावमीह सर्वार्थविमानमुख्यांत् ।
 नन्दाजितौ तौ विजयाद्विमानात्तौ वैजयन्तात्सुमतीन्दुभासौ ॥६६
 नेमिस्त्वथारस्य हि तौ जयन्तान्मल्लिनमिश्राव्यपराजिताख्यात् ।
 तौ प्राणतात्पार्वमुनिव्रताख्यावभ्यागतावप्रतिमप्रतापौ ॥ ६७
 श्रेयांस्तथानन्तजिदन्तिमश्च पुष्पोत्तरादायसुरप्रमेयाः ।
 शुक्रान्महादेरथ वासुपूज्यः श्रीशीतलस्त्वारुणतश्च्युतत्वात् ॥६८
 सहस्रपूर्वाद्विमलस्त्वरान्तादथारुणाख्यात्खलु पुष्पदन्तः ।
 ग्रैवेयकाधः प्रथमाद्विमानादभ्यागतः संभवसंयतेन्द्रः ॥ ६९
 सुपार्खनामा किल मध्यमाख्यादूर्ध्वं च पद्मप्रभ आययौ सः ।
 इत्यर्हतां कारणभावितानामभ्यागतिर्वः कथिता मयेयम् ॥ ७०
 आद्यस्तु नाभिर्जितशत्रुनामा तृतीय आसीज्जितराजसंज्ञः ।
 स्वयंवरश्चैव हि मेघराजः स्यात्सुप्रतिष्ठश्च महाबलश्च ॥ ७१
 सुग्रीवनामा सुद्धो रथान्तो विष्णुर्वसुः स्यात्कृतवर्मसंज्ञः ।
 श्रीसिंहसेनस्त्वथ भानुराजः स विश्वसेनः किल शौर्यधर्मा ॥ ७२

१ म शनैः २ म पञ्चाशताद्वै ३ क °विमानसंख्यात् ४ [नेमिस्त्वथारश्च].
 ५ म °राजहंसः

सुदर्शनश्चैव हि कुम्भराजः सुमित्रनामा जयधर्मराजः ।
 समुद्रपूर्वो विजयोऽश्वसेनः सिद्धार्थराजः पितरोऽहतां च ॥ ७३
 आद्याभवत्सा मस्देव्यतश्च तथा द्वितीया विजयादिसेना ।
 सिद्धार्थसंज्ञा किल मङ्गला च सौम्या च देवी पृथिवी तथैव ॥ ७४
 सा लक्ष्मणासीनवर्मी च नाम्ना नन्दा च देवी खलु वैष्णवी च
 जया तथा श्यामिनिका च देवी सर्वाश्रिया सुत्रतयोरवाचा ॥ ७५
 पद्मालया मित्रसमाह्या च सरक्षिला विश्रुतसोमदेवी ।
 सा वप्त्रिणी चैव शिवाग्रदेवी सब्रह्मदत्ता प्रियकारिणी च ॥ ७६
 वभूवुरेता जिनमातरश्च अनन्यनारीसहशैर्गुणौधैः ।
 नाम्नोपदिष्टाः प्रथिताः पृथिव्यां ततः परं दानपतीन्प्रवक्ष्ये ॥ ७७
 श्रेयांस्तु दानाधिपतिः स आद्यो ब्रह्मा सुरेन्द्रस्त्वथ चन्द्रदत्तः ।
 स पद्मजिञ्चैव हि सोमदेवो महेन्द्रसोमौ खलु पुष्पदेवः ॥ ७८
 पुनर्वसुर्नन्दसुनन्दैनौ च जयाभिधानो विजयस्तथैव ।
 स धर्मसिंहश्च सुमित्रनामा स्याद्भर्ममित्रस्त्वपराजितश्च ॥ ७९
 नन्दी तथैवर्षभद्रतनामा ततः सुदत्तो वरदत्तसंज्ञः ।
 धर्मो महात्मा बकुलाभिधानः प्रवर्तितस्तैरवदानधर्मः ॥ ८०
 आद्यो जिनेन्द्रस्त्वजितो जिनश्च अनन्तजिञ्चाप्यभिनन्दनश्च ।
 सुरेन्द्रवन्द्यः सुमतिर्महात्मा साकेतपुर्या किल पञ्च जाताः ॥ ८१
 कोशांवकश्चैव हि पद्मभासः श्रावस्तिकः स्याज्जिनसंभवश्च ।
 चन्द्रप्रभश्चन्द्रपुरे प्रसूतः श्रेयाञ्जिनेन्द्रः खलु सिंहपुर्याम् ॥ ८२
 वाराणश्चौ तौ च सुपार्वपार्श्वौ काकंदिकश्चापि हि पुष्पदन्तः ।
 श्रीशीतलः खल्वथ भद्रपुर्या चंपापुरे चैव हि वासुपूज्यः ॥ ८३

१ क पृथिवी. २ क पृथिव्यां. ३ म °नन्दगौ. ४ [°तैरथ दानधर्मः].
 ५ [कोशाञ्जिक°]. ६ म वाणारसौ.

कामिपल्यजातो विमलो मुनीन्द्रो धर्मस्तथा रत्नपुरे प्रसूतः ।
 श्रीमुव्रतो राजगृहे बभूव नमिश्र मल्लिमिथिलाप्रसूतौ ॥ ८४
 अरिष्टनेमिः किल शौर्यपुर्यां वीरस्तथा कुण्डपुरे बभूव ।
 अरश्च कुन्थुश्च तथैव शान्तिस्तयोऽपि ते नागपुरे प्रसूताः ॥ ८५
 इक्ष्वाकुवंश्याः खलु षोडशैव चत्वार एवात्र कुरुप्रवीराः ।
 द्वौ चोपदिष्टौ हरिवंशजातावुग्रस्तथैकः किल नाथ एकः ॥ ८६
 मुवर्णवर्णः खलु षोडशैव चन्द्रप्रभौ द्वौ च जिनौ जिताशौ ।
 द्वौ द्वौ च संध्याञ्जनतुल्यवर्णौ द्रावेव दूर्वाङ्कुरकाण्डभासौ ॥ ८७
 अरिष्टनेमिर्मुनिसुव्रतश्च द्रावप्यमूर्गौतमगोत्रजातौ ।
 शेषा जिनेन्द्रा ऋषभादिवर्याः ख्याताः पुनः काश्यपगोत्रवंश्याः
 मल्लिश्र पार्ष्वौ वसुपूज्यपुत्रोऽप्यरिष्टनेमिश्र तथैव वीरः ।
 कौमारकाले वयसि प्रयाता भुत्त्वा भुवं ते प्रययुश्च शेषाः ॥ ८९
 अरिष्टनेमिर्वृषभो जिनेन्द्रः स वासुपूज्यश्च जिनो महात्मा ।
 पल्यङ्कृतः सिद्धिमुपागतास्ते स्थित्यैव शेषाः परिनिर्वृताः स्युः ॥ ९०
 कैलासशैले वृषभो महात्मा चम्पापुरे चैव हि वासुपूज्यः ।
 दशार्हनाथः पुनर्र्जयन्ते पावापुरे श्रीजिनवर्धमानः ॥ ९१
 शेषा जिनेन्द्रास्तपसः प्रभावाद्विधूय कर्माणि पुरातनानि ।
 धीराः परां निर्वृतिमभ्युपेताः संमेदशैलोपवनान्तरेषु ॥ ९२

इति कुलकरदेवदात्रमुख्या
 हलधरकेशवचक्रपाणयश्च ।

इह च नरवराः श्रुता मया ये
 परिकथिता भवतां सप्रासतस्ते ॥ ९३

युगवरपुरुषप्रपञ्चनं य-
 त्तदनुनिशम्य महीपतेर्यथावत् ।
 प्रथितपृथुधियः सुमन्त्रिणस्ते
 प्रतिविविदुः परमार्थमादधुश्च ॥ ९४
 इति धर्मकथोदेशो चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 प्रथमानुयोगो नाम
 सप्तविंशतितमः सर्गः ।

[अष्टाविंशः सर्गः]

अथान्यदानर्तपुराधिपस्य संप्राप्तकल्याणफलोदयस्य ।
 नित्यप्रवृत्तोत्सवसत्क्रियस्य सबन्धुमित्रार्थिजनप्रदस्य ॥ १
 धर्मार्थकामोन्नतिनायकस्य गुणाकरस्याप्रतिपौरुषस्य ।
 नृपस्य तस्याग्रमहामहिष्या बभूव गर्भोऽनुपमाहदेव्याः ॥ २
 जाते च गर्भे जगतस्तदानीमभूतभूतप्रमदोऽतिमात्रम् ।
 विनाशमयिः पुनरीतयश्च प्रशान्तवैरा रिपवो बभूवुः ॥ ३
 ततः प्रपूर्णे नवमे च मासे प्राचीव दिग्भानुमुदग्रभासम् ।
 देवी पृथुश्रीकनकावदातं कुलध्वजं सा सुषुवे कुमारम् ॥ ४
 सामुद्रहोराफलजातकश्च दृष्ट्वा कुमारं पृथुराज्यभारम् ।
 प्रशस्य पुण्यार्पितभारतीभिः सुगात्र इत्येव हि नाम चक्रः ॥ ५
 निर्दीघमासे व्यजनं यथैव करात्करं सर्वजनस्य याति ।
 तथैव गच्छन्नियतां कुमारो वृद्धिं च बालेन्दुरिव प्रयातः ॥ ६

१ [°मभूदभूत°]. २ [पृथुश्रीः]. ३ [°जातकानि]. ४ क निदाह°.

रुपेण वर्णेन गतिस्थितिभ्यां वाक्येन हृष्टा वपुषा श्रियो च ।
 विज्ञानशीलस्थिरमित्रभावैः पित्रा समो राजसुतो बभूव ॥ ७
 प्रमत्तमातङ्गविलासगामी शरत्प्रपूर्णामलचन्द्रकान्तः ।
 विचित्रसङ्ख्यणमण्डिताङ्गो रेजेऽतिपात्रं नयनाभिरामः ॥ ८
 स नीतिचक्षुर्मतिमान्विधिजः कलाविदरधो व्यसनादपेतः ।
 शुचिश्च शूरः सुभगश्च नित्यं बालोऽप्यबालो गुणशीलवृत्तैः ॥ ९
 किं देवविद्याधरकिन्नराणां सुतः प्रवञ्च्यावनिमाजगाम ।
 आहोस्त्विदङ्गावयैरनङ्गो विस्मापनाय स्वयमागतः स्यात् ॥ १०
 तथैव शेषाश्च महेन्द्रपत्न्यः सुरेन्द्रपत्नीसमचारुशीलाः ।
 अतुल्यरूपांस्तनयानविन्दन् शुभोदैये सत्कृतयो यथैव ॥ ११
 अमात्यसेनापतिमन्त्रिपुत्राः सुताश्च सामन्तनरेश्वराणाम् ।
 पुनः प्रेधानदिंतमात्मजाश्च नरेन्द्रपुत्रैः सहसंप्रदानांः ॥ १२
 समानशीलाः समरूपवेषा गुणैः समेताः सहशाः क्रियाभिः ।
 परस्परस्नेहनिबद्धभावाः शिशिक्षिरे राजसुतैः कलाश्च ॥ १३
 यस्यात्मजा नागकुमारकल्पा बलं च यस्यारिजनप्रमाणि ।
 यस्यासमो वैश्रवणो धनेन विभूतिरिन्द्रपतिमा च यस्य ॥ १४
 यस्योरुनीत्या रिपवो हि नाशा गता विनाशं सकलत्रपुत्राँः ।
 प्रजाश्च सर्वदिंगुणैरुपेता वर्णश्रिमांस्तस्थुरथ स्वमार्गैः ॥ १५
 अन्यायवृत्तिर्न बभूव लोके राज्ये च यस्यदिमभिप्रयाते ।
 नवैनवैरर्थसुमित्रपुत्रैः स राजवर्योऽनुबभूव भोगान् ॥ १६
 महापहत्प्रीतिपुरस्सराणि पुण्याहमङ्गल्यशुभक्रियाणि ।
 महोत्सवानन्दसमन्वितानि वर्षाण्यनेकानि गतानि तस्य ॥ १७

१ क दृष्ट्वा, [दृष्ट्या]. २ म क्रिया. ३ क शुभोदया. ४ म पुरःप्रधान०,
 [पुरप्रधान०]. ५ क °संप्रधानाः. ६ [हताशा]. ७ क °पुत्रम्. ८ म स्वमार्गै.

कदाचिदीशानसपानतेजा जाज्वल्यमानोत्तममौलिलीलः ।
 मृगेन्द्रसत्कुण्डलघृष्णगण्डो ज्वलत्प्रलम्बोत्तमहेमसूत्रः ॥ १८
 रत्नोत्पलालिङ्गितहारवक्षा निबद्धकेयूरसुपीनवाहुः ।
 विमिश्ररक्तोत्पलमाल्यधारी दुक्खलवस्त्रोज्ज्वलगात्रयष्टिः ॥ १९
 सुगन्धिसच्चन्दनकुङ्कुमाक्तस्तुरुष्ककालागस्थूपिताङ्गः ।
 शान्तः पुनः कान्तवपुर्नेरन्दः सुखं निषण्णो वरहर्म्यपृष्ठे ॥ २०
 नृपो विरेजे मदशालिनीनां मध्ये स्थितः पार्थिवसुन्दरीणाम् ।
 शशीव कान्त्या निजया समेतः सुतारकामध्यगतोऽम्बरे ह ॥ २१
 यथालकायां सुरसुन्दरीभिः सहैव रेमे भगवान्महेन्द्रः ।
 मदेन विभ्राजितलोचनाभी रेमे चिरं भूमिपतिस्तथैव ॥ २२
 निजांशुभिव्यासंदिगन्तराणि ज्योतींषि पश्यन्प्रतिदर्शयंश्च ।
 प्रियाङ्गनाभ्यः प्रियमावहंश्च निशामुखं भूपतिरध्युवास ॥ २३
 शरन्प्रदोषे विगताभ्रवृन्दान्विचित्रनक्षत्रगणाभिरामान् ।
 विभासयन्ती भुवमन्तरिक्षमुल्का पपाताशु सविस्फुलिङ्गा ॥ २४
 तामापतन्तीं प्रभया परीतामतिप्रवृद्धाग्निशिखामिवोल्काम् ।
 समीक्ष्य राजा सह सुन्दरीभिर्विरागतां तत्क्षणतो जगाम ॥ २५
 ताराभिराभिः परिवेष्टिता सा यथैव चोल्का खतलात्पात ।
 प्रियाङ्गनाभिः परिवार्यमाणो राज्यात्प्रयास्यामि तथाहमस्तम् ॥ २६
 चतुर्विधेनापि महाबलेन स्वबन्धुभिर्मित्रजनैः परीतः ।
 अहं पुरा दुर्दमितेन तेन नीतोऽस्मि दूरं हयसत्तमेन ॥ २७
 एवं पुनर्धर्मपथादपेतो जन्माटवीषु प्रविनष्टचेताः ।
 स्वदुष्कृतोपात्तहयाधिरूढः परिभ्रमिष्यामि तथेत्यनैषीत् ॥ २८

१ क °लीनः, २ म °व्याप्य, ३ क तथैवनैषीत्.

निःश्वस्य दीर्घं स्वाशिरः प्रकम्प्य निर्भिन्नं संसारमपारदुःखम् ।
 उत्थाय तस्यां नृपतिः सभायां स्ववासगेहं प्रविवेश धीमान् ॥२९
 प्रविश्य तं भोगविरक्तचित्तस्तच्चार्थमार्गाभिनिविष्टबुद्धिः ।
 नैस्संग्यमास्थातुमना नरेन्द्रो लोकस्थितिं चिनतयितुं प्रवृत्तः ॥३०
 अनित्यभावं ह्यशरण्यतां च संसारमेकत्वमथान्यतां च ।
 अशौचमप्यास्त्वसंवरौ च सनिर्जिरं बोधिसुदुर्लभत्वम् ॥ ३१
 इमं च लोकं परलोकभावं शुभाशुभं कृत्यमकृत्यतां च ।
 गत्यागतिं बन्धविमुक्तिमार्गं विचिन्तयामास यथास्वभावम् ॥३२
 अमेयवीर्यद्युतिसत्त्वशौर्या दिवौकसस्त्वष्टगुणदिद्युक्ताः ।
 दिवस्पतिं वज्रधरं महेन्द्रं दिवः पतन्तं न हि वारयन्ति ॥ ३३
 द्विसप्तरत्नाधिपतिं निधशिं महौजसं मन्दरसारवीर्यम् ।
 सुरक्षमाणं गणबद्धदेवैर्नैवान्तको मुञ्चति चक्रपाणिम् ॥३४
 जगत्प्रधानाः पुरुषाः पुराणा ब्रह्मा हरो विष्णुरिति त्रयोऽपि ।
 तानप्युदारान्विवशीचकार न मृत्युतो वीर्यतमोऽस्ति कश्चित् ॥३५
 हलीशवागीशगणेश्वराश्च विद्येश्वराः सर्वभुवामधीशाः ।
 योगीश्वरा ये च महर्षयश्च पतन्ति कालेन निपात्यमानाः ॥ ३६
 ताद्विग्नधानां जगदीश्वराणां प्रकाशवंशामितपौरुषाणाम् ।
 न चास्ति चेन्मृत्युपथा विमुक्तो ह्यस्मद्विधानां च कथैव नास्ति ॥३७
 निदाघमासोत्थमहादवाग्निर्दहत्यरण्ये तृणपर्णकाष्ठम् ।
 चराचरं लोकमिदं समस्तं कालाग्निरेवं खलु दंदहीति ॥ ३८
 लोहाय नावं जलधौ भिनत्ति सूत्राय वैद्यर्यमणि दृणोति३ ।
 सुचन्दनं चौषधि भस्मनाऽसौ४ यो मानुषत्वं नयतीन्द्रियार्थे ॥३९

३ क [°सुदुर्लभं च]. २ [°पथाद्विमोक्षो]. ३ [दृणाति]. ४ क [°भस्मनासा, [°भस्मनेऽसौ].

हस्तागतं प्राणबलप्रदं च ल्यक्त्वामृतं स्वादुरसोपपनम् ।
 प्रदाय मौल्यं मतिमन्दभावात्पिबेद्विषं हालहलं दुरन्तम् ॥ ४०
 तथैव लोकद्रव्यसौख्यमूलं विहाय धर्मं हततच्चव्युद्धिः ।
 पापाकुलं कर्म यदीह कुर्या सतां भविष्यामि विगर्हणीयः ॥ ४१
 यथैव शालीक्षुफलप्रदाने सुक्षेत्रयज्ञो निवपेदलाबुम् ।
 तथैव निर्वाणफलप्रदाने वृत्त्वावनौ शोकफलं वपेयम् ॥ ४२
 रत्नाकरं द्वीपवरं प्रविश्य महार्घ्यरत्नानि च तानि दृष्ट्वा ।
 नरो न संगृह्य हि रिक्तपाणिः पश्चादवाभास्ति निवृत्त्यात्राम् ॥ ४३
 एवं सुमानुष्यमवाप्य दुःखाद्रूपादिभिश्चापि गुणैर्युतोऽपि ।
 नुरत्नसारं यदि नादधीयं मुग्धस्त्ववश्यं निहितोऽभवेयम् ॥ ४४
 मोहावृतो विस्मृतधर्मचेष्टो यद्याचरिष्याम्यहमत्र पापम् ।
 योनिष्वनेकासु क्रुतान्तनीतो दुःखान्यनेकान्यहितानि लिप्स्ये ॥ ४५
 नाशून्षि तिष्ठन्ति चिरं नराणां न शाश्वतास्ते विभवाश्च तेषाम् ।
 रूपादयस्तेऽपि गुणाः क्षणेन सविद्युदम्भोदसमानभङ्गाः ॥ ४६
 समुत्थितोऽस्तं रविरभ्युपैति विनाशमभ्येति पुनः प्रदीपः ।
 पयोदवृन्दं प्रलयं प्रयाति तथा मनुष्याः प्रलयं प्रयान्ति ॥ ४७
 विज्ञाय चात्यन्तमनित्यभावमत्राणतामप्यशरण्यतां च ।
 तपो जिनैरभ्युदितं यथावद्यद्यत्र कुर्या न हि वश्चितोऽस्मि ॥ ४८
 किमत्र पुत्रैर्द्विषोपहारैः संसारपाकाङ्क्षारशोकमूलैः ।
 दारैस्तु किं वा हृदयप्रहारैश्चोरारिसंर्पतिमैरथुद्देः ॥ ४९
 किं बान्धवैर्बन्धमयैः सशल्यैरनर्थसंसिद्धिसमर्थलिङ्गैः ।
 आशावपाशैः किमनर्थमूलैरर्थेरपार्थेद्विरितानुबन्धैः ॥ ५०

१ म कृत्वा वनौ. २ क निवृत्तिः. ३ क नावदीयः. ४ [निहतो].
 ५ [लप्स्य]. ६ म °सर्व°. ७ म बन्धुमयैः.

राज्यैस्तु किं वा बहुचिन्तनीयैः संसारसंवर्धनहेतुभूतैः ।
 भौगौः किमायासिभिरप्रशान्तैर्थैर्तुर्गतिक्लेशफलप्रदैस्तैः ॥ ५१
 कः कस्य बन्धुस्त्वथ कस्य मित्रं कस्याङ्गना कस्य बलं धनं वा ।
 के कस्य पुत्राः कुलजातिदेशा रूपादयः के क्षणहष्टनष्टाः ॥ ५२
 स्यं जीवितं न प्रविगण्य चोरः कस्यै समं वाञ्छति तं प्रयासम् ।
 कस्येह चित्तं विपत्तिं न धत्ते विद्युद्पुश्चलजीवितात्मा ॥ ५३
 तिर्यग्मनुष्यासुरनारकाणां योनिष्वनेकास्वशुभावहासु ।
 अनन्तकालं बहुजीवराशौ बंध्रम्यते कर्मरथाधिरूढः ॥ ५४
 संसारवासे वसतामसूनां शोकाय संक्लेशसहस्रभाजाम् ।
 जरा च जातिर्मरणं च तेषामवश्यमेतत्क्षयमभ्युपैति ॥ ५५
 अलाभलाभादिवियोगयोगं मानापमानप्रसवात्मकं यत् ।
 सुखासुखं तद्द्वन्ने समस्ते जीवा लभन्ते स्वपुरात्मकेन ॥ ५६
 इत्येवमादीनृपतिर्विचिन्त्य निर्वेगसंवेगयुर्तासदर्थम् ।
 आहूय तं सागरवृद्धिमासं स्वचित्तसंकल्पितमर्थमूचे ॥ ५७
 पिता ममासीन्नृपतिः क्रियातस्त्वं धर्मतो मे पितृतामुपेतः ।
 वने भ्रमन्तं कृपया कृतार्थं प्रायुंयुजो मामिह बन्धुवर्गैः ॥ ५८
 महायतां युध्यगमस्तदा मे सदाभिभूतं सुखदुःखमात्रम् ।
 स्वतन्त्रमुत्सृज्य च मां गुणज्ञः प्रातिष्ठिपच्छ्रीमति राज्यभोगे ॥ ५९
 ततो गुरुस्त्वं पितृपात्रकल्प आपृच्छनीयश्च समर्चनीयः ।
 निःशङ्क्या तेन वदामि कार्यं तद्रोचतां ते यदि युक्तिमत्स्यात् ६०
 यथैव मां स्थापितवान्नृपत्वे प्रजाहितायात्र गुणैरुदारैः ।
 तथाग्रपुत्रं मम तं सुगात्रं राज्यश्रिया योजय साधु साधुम् ॥ ६१

१ म °प्रशान्त्यैः २ [तद्वन्ने]. ३ म निर्वेद०. ४ [°संवेगयुतः].
 ५ [सहायतां].

मासमत्स्यर त्वं सुतरां कुमारं राज्यप्रकृत्या सह वर्धय त्वम् ।
 अहं पुनः कामविरिक्तभावस्तपश्चरिष्यामि विमुच्च तात ॥ ६२
 निशम्य वाचं वसुधाधिपस्य संसारनिर्वेदपरायणस्य ।
 स्त्रेहेन तं सागरवृद्धिरित्थं प्रोवाच धर्माश्रयणीयमर्थम् ॥ ६३
 स्वामिनिकमेवं त्वविचार्य कार्यं विचिन्तितं केवलमर्थदूरम् ।
 अप्रार्थनीयं मनसापि तादृक् न संमतं स्यात्तदयुक्तिमच्चात् ॥ ६४
 अदेशकाले प्रतिसंनिबद्धं बलाबलक्षेमविचारहीनम् ।
 यत्स्वल्पमप्यत्र हि कार्यजातं प्रारब्धमझैर्न हि सिद्धिमेति ॥ ६५
 इदं हि राज्यं नृपतिर्विंशालं जनोऽप्रगल्भस्तरुणः सुतोऽपि ।
 स्त्रेहश्च पित्रोर्जनतानुरागो विचन्तनीयः खलु सर्वमत्र ॥ ६६
 अरातिभिर्दृष्टतमैरनिष्टैः सामन्तराजैरटवीश्वैश्च ।
 पुरा त्वया साधु विराधितैस्तैः सद्यो विनश्यत्यथ राज्यमेतत् ॥ ६७
 प्रमाणभूतस्त्वमिह प्रजानां नीतिप्रगल्भो विदितत्रिवर्गः ।
 अतो भवन्तं शिरसाभियाचे मा साहसं कर्म कृथा नरेन्द्र ॥ ६८
 निशम्य तत्सागरवृद्धिनोक्तं वचः सदर्थं परिपाकतिक्तम् ।
 महीपतिर्घन्दरतुल्यवीर्यः पुनर्बभाषेऽर्थमचिन्त्यमन्यैः ॥ ६९
 वृणां च संपज्जलबुद्बुदाभा तद्यौवनं द्वित्रिचतुर्दिनानि ।
 आयुः पुनश्छद्रघटाम्बुतुल्यं शरीरमत्यन्तमपापिधर्मि ॥ ७०
 धनं शरन्मेघचलस्यभावं बलं क्षणेनाभ्युपयाति नाशम् ।
 केशास्त्वर्शुक्ळा जरसा भवन्ति मन्दत्वमायान्ति तथेन्द्रियाणि ॥ ७१
 प्रीतिः पराभावमियति सद्यः सुखं च विद्युद्पुषा समानम् ।
 एकैकरूपैरुपयाति मृत्युर्न तस्य लोके विदितैः क्षणोऽस्ति ॥ ७२

१ [मासमान्] . २ [नृपतेर्विंशालं] . ३ [विचिन्तनीयं] . ४ क वृथा .
 ५ [अपायधर्मि] . ६ [केशास्तु शुक्ळा] . ७ [विहितः] .

यान्ति क्षयं ते निचयास्तु सर्वे समुच्छ्रितास्तेऽपि च संपतन्ति ।
 वियोगमूलाः खलु संप्रयोगा मृत्योर्मुखं याति च जीवलोकः ७३
 पिता च माता बहुबन्धुवर्गाः सहोदरा मित्रकलत्रपुत्राः ।
 नष्टस्मृतिं कण्ठगतात्मचेष्टं न मृत्युतो माचयितुं समर्थाः ॥ ७४
 तादग्निर्धैर्भोजनमात्रसंख्यैः किं बान्धवैर्मेऽस्ति हि कार्यमेभिः ।
 तानप्यहं कर्मपथान्तरस्थानं त्रातुं न शक्तोऽप्यथ निश्चितुं त्वाम् ७५
 निरन्तरं तस्य नृपस्य वाक्यं श्रुत्वाब्रवीत्सागरवृद्धिरेवम् ।
 यत्कर्तुमिच्छस्यनवद्यरूपं तदात्मशक्त्या क्रियते मयापि ॥ ७६
 सन्मानमायावनिपैरतीव स्नेहं चकार स्वजनः परश्च ।
 वणिकप्रभुत्वे खलु वर्तमानस्तव प्रसादान्नृपतिस्त्वभूवम् ॥ ७७
 मन्त्रे च युद्धे विषयार्थयोश्च सहायतां ते प्रतिपद्य पूर्वम् ।
 अहं त्विदानीं यदि धर्मकृत्ये परित्यजेयं त्वधमोऽस्मि राजन् ७८
 एवं निगद्य स्थिरर्थैर्यवीर्यो विचार्य राजा विगतद्विषश्च ।
 अन्तःपुरं तस्य हि शासनेन आहाययां सागरवृद्धिरास ॥ ७९
 आहायमानास्त्वरया विभूष्य समेखलानूपुरमन्दनादाः ।
 वराङ्गना भूपतिमध्युपेत्य तस्थुः पुरस्ताद्विकृतोपचाराः ॥ ८०
 स्वभावभद्राः श्रुतिशीलशुद्धा भर्तुप्रियाचारवचोविभूषाः ।
 कृतापराधा इव ता विलोक्य क्षमध्वमित्येवमुवाच राजा ॥ ८१
 तद्वाक्यवाताहतविद्वलाङ्गधः प्रम्लानमाला इव दीनवक्त्राः ।
 आक्रम्यन्तः स्वदश्रुनेत्रा निपेतुरुर्वापतिपादयोस्ताः ॥ ८२
 हिमाहतानामिव पञ्चनीनां पञ्चानि वातातपशोषितानि ।
 वियोगभीतानि मुखानि तासां प्रम्लानदृष्ट्याप्रियतां प्रजग्मुः ८३

१ [निश्चितुं त्वम्]. २ [आक्रम्यन्तः].

प्रोत्थाप्यमाना वसुधेश्वरेण मुहूर्तमात्रादुपलब्धसंज्ञाः ।
 सगद्धाशक्तकलप्रलापा जजल्पुरित्थं विनयानताङ्गयः ॥ ८४
 भवत्प्रसादोदितसर्वसौख्याः पादद्वयालम्बितजीविताशाः ।
 त्यक्तास्त्वया किं करवामै हेऽद्य गच्छाम वा कां गतिमय नाथ ॥
 आधानतः स्तेहनिबद्धरागा नाथेन चात्मप्रियबान्धवास्ताः ।
 कृतापराधाश्च वनभर्त [-] कथं तु न स्त्यक्तुमियेष भक्ताः (?) ८६
 अनन्यनाथा विमतीरपुण्या जहीहि नास्मान्बगतीर्विराकाः ।
 त्वया विना नेत्रनिमेषमात्रं न शैक्षनुवं स्थातुमपि क्षितीश ॥ ८७
 जलेन हीना इव पद्मवत्यः करेणवो वोज्ज्ञतयूथनाथाः ।
 जिजीविषात्मां न वयं नरेन्द्र त्वया विमुक्ता ध्रवमित्यवैहि ॥ ८८
 इत्थं ब्रुवाणा नृपतिप्रियास्ताः सुताम्रनेत्रान्तजलाविलास्याः ।
 स्वस्तेहपाशैरनुबन्धयन्त्यः प्रत्यब्रवीन्निर्गतरागबन्धः ॥ ८९
 यमस्य नाथोऽपि महाप्रतापो वज्रायुधः प्रज्वलितप्रभावः ।
 साक्षात्वैर्वीं मृत्युमुखात्सुनालां स्थातुं परः कः पुरुषस्त्रिलोके ॥ ९०
 अनेककोश्यप्सरसां समूहाः सामानिकाद्याख्विदशेश्वराश्च ।
 शक्रालयाच्छक्रमधः पतन्तं न जातु संतारायितुं समर्थाः ॥ ९१
 ये चक्रविक्रान्तदशाङ्गभोगास्तदर्थभोगाश्च सितासिताङ्गाः ।
 देवासुरेभ्योऽभ्यधिकप्रभावास्ते मृत्युनीता मम का कथेयम् ॥ ९२
 गन्धर्वविद्याधरनागयक्षा योगीश्वराश्चाप्रतिसच्चवीर्याः ।
 प्रियाः स्वका मृत्युमुखं प्र्यान्ति त्रातुं न शेकुर्मम कास्ति शक्तिः ॥ ९३
 जन्मार्णवे मोहमहातरङ्गे जरारुजामृत्युभयप्रकीर्णे ।
 निमज्जनोन्मज्जनसंप्रयुक्तं वृथा हि किं मां शरणं वृणीध्वम् ॥ ९४

१ क करवामदेह्य. २ [भर्ता]. ३ [न शक्तुमः]. ४ [जिजीविषामो].
 ५ [साक्षाद्रविः...स नालं]. क सनालां. ६ [प्रयान्तीत्वातुं].

इष्टविद्योगोऽप्रियसंप्रयोगो जातिर्जराव्याधिरनित्यभावः ।
 यदीह न स्युमरणानि लोके रतिर्वजन्मन्यथ कस्य न स्यात् ॥९५
 जवेन नृणां वपुरायुरर्था धावन्त्युपस्थास्यति सा जरा च ।
 जरापरिक्षीणबलेन्द्रियाणां मृत्युस्ततो नेष्यति कोऽत्र रागः ॥९६
 एका गतिर्निर्वृतिरस्ति लोके निरस्तरोगान्तकजन्मभीतिः ।
 यां प्राप्य नश्यन्ति जरादयस्ते महानदीं प्राप्य यथा तृषांयाः ॥९७
 तां प्राप्तुमिच्छा यदि विद्यते चेत्युष्माकमस्माभिसंमा समेताः ।
 उपाय एकोऽस्ति मनुष्यलोके धर्मोऽहतां प्रापयितुं समर्थः ॥९८
 अहंत्पर्णीतश्चित्सत्सहायाः सदर्शनोन्मीलितशुभ्रेत्राः ।
 चारित्रिसन्मार्गमभिप्रपद्य सुखाकरं मोक्षपुरं प्रयामः ॥ ९९
 पुरापि जैनेन्द्रमतप्रपन्ना नरेन्द्रवाक्यप्रतिबुद्धतत्त्वाः ।
 नृदेवदेव्यः समयं प्रयाय भर्त्रा सह प्रवजनं प्रपैद्युः ॥ १००
 मृष्टान्वपानं वरभूषणानि चित्राणि वस्त्राण्यथ गन्धमाल्यम् ।
 प्रासादशश्यासनयानकानि दत्वा चिरं नो नृपते बभार ॥ १०१
 चन्द्रांशवः सूर्याभस्तयश्च खराश्च मद्यः पुरुषांश्च वाताः ।
 न पस्पृशुर्दुःखनिमित्तभूता भर्तृप्रदानान्व कदाचिदस्मान् ॥ १०२
 लताः स्वपुष्पस्तवकोत्थिताग्रा यथा न शोभां ददति प्रकृष्टाः ।
 द्यौश्वन्द्रहीना च यथा न भाति तथा भवामो नृपतौ प्रयाते ॥ १०३
 अभूषणानादनगन्धमाल्यास्ताम्बूलधूपाञ्जनगन्धहीनाः ।
 अमित्रवर्णैः परिभूयमानाः किमास्महे प्रक्षरदक्षितोयाः ॥ १०४
 एवं विचिन्त्योत्तमधैर्यवन्त्यः कृतप्रतिज्ञा विगतस्पृहाश्च ।
 स्वानेकभक्तिस्थितिमानसाम्भाः प्रोचुर्नेन्द्रं गतभोगतृष्णाः ॥

१ क तृषादयाः. २ [°र्मा]. ३ [प्रपन्नाः]. ४ [नृपतिर्बंभार].
 ५ [पश्चाश्च]. ६ म °स्तवकोर्थिताग्रा. ७ क विचित्रोत्तम°.
 ८ [स्वाम्येक°]. .

यद्यत्र नाथ प्रविहाय राज्यं तपःक्रियायां मतिमादधीथाः ।
समं त्वयैवात्र तपश्चरित्वा संसारनिष्टामभिसंत्रजामः ॥ १०६

इति नृपवानिता नृपेण सार्ध
प्रविकसितोत्पलचारुपत्रनेत्राः ।
शुभि सुखमपहाय ताश्च सद्य-

स्तपसि मनांसि समादधुर्वराङ्गन्यः ॥ १०७

अथ जिगमिषुतां नृपस्य बुद्ध्वा
नरपतयः परितः समेत्य तूर्णम् ।

दद्वशुरधिकसंभ्रमा नरेन्द्रं
त्रिदशपतिं त्रिदशा इव प्रशान्तम् ॥ १०८

इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥

तारादर्शननिमित्ते राज्यभोगनिर्वेगो
नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ।

[एकोनत्रिंशः सर्गः]

श्रीधर्मसेनप्रमुखा नरेन्द्रा वयोऽनुरूपोज्ज्वलचारुभूषाः ।
सभागृहे रम्यतमे विशाले वराङ्गराजेन सुखं निषेदुः ॥ १
पिता वराङ्गस्य नरेन्द्रमध्ये स्नेहेन सज्जावपुरस्सरेण ।
परामृशंस्तस्य करं करेण प्रोवाच साम्नावचनीयमर्थम् ॥ २
राज्यं त्वदायत्तमिदं हि सर्वमाधारभूतस्त्वामिह प्रजानाम् ।
विशेषतो मे नयनं तृतीयं बहिश्चरप्राण इव द्वितीयः ॥ ३

माता च पत्न्यस्तव पुत्रकाश्र प्राणान्त्ययेऽर्कथमत्र वत्स ।
 त्वयि प्रयातेऽहमतोऽभियाचे नास्मद्वचो लङ्घितुमहसि त्वम् ॥ ४
 विना शशाङ्केन नभो न भाति विना मधोना न विभासते द्यौः ।
 विना दयां धर्मपथे न भाति न भाति राज्यं च विना त्वयेदम् ॥ ५
 भारो यथादौ सुकरः प्रवोदुं पश्चादशक्यः स तु गौरवेण ।
 एवं तपःश्रीः सुकरावधर्तुं सुदुर्धरत्वं च शनैः प्रयाति ॥ ६
 आरोहणाद्वारवतो नरस्य दोर्भ्यामपाराम्बुनिधिप्रतारात् ।
 सरित्प्रवेगे प्रतियातनोऽपि तपोऽतिकष्टं सुखमास्य पुत्र ॥ ७
 स्मरानलार्चिःप्रतिदग्धवीर्या भृशन्ति तिर्यग्मनुजासुरेन्द्राः ।
 तं कामवद्विं शमितुं कुतस्त्वं शक्नोति पञ्चेन्द्रियगोचरस्थः ॥ ८
 वयं च सदर्ममथार्हतां हि वुद्धापि तत्कर्तुमशक्नुवन्तः ।
 गृहेषु जीर्णा विषये प्रसक्ताः पुनस्तपस्ते विषमं प्रकर्तुम् ॥ ९
 मासमत्वरिष्ठाँः कुरु धीर राज्यं जयारिवर्गान्विषयान्भजस्य ।
 सहैव गत्वा च तपोवनानि तपश्चरिष्याम इहेत्यवोचत् ॥ १०
 यथोपनीतक्रममादरेण निशम्य वाक्यं पितुरायतश्रीः ।
 वराङ्गराजः स्थितधर्मचित्तः प्रत्यब्रवीदात्महिताय धीमान् ॥ ११
 धर्मार्थकामागमसाधनानि व्रजन्ति पूतां सुतरां प्रसिद्धिम् ।
 तान्येव तत्साधनसत्क्रियाभिर्विपत्तिमायान्ति गतं युवन्वे ॥ १२
 विशीर्णदन्तः शिथिलाङ्गसन्धिः कम्पच्छिरशश्वलपाणिपादः ।
 कराग्रदण्डो जरसा परीतः कथं तपस्तप्यति मन्दचक्षुः ॥ १३
 नष्टश्रुतिर्लुमशरीरचेष्टः स्खलत्पदव्याकुलमन्दवाक्यः ।
 क्षीणेन्द्रियः क्षीणवलः क्षितीश श्रुतार्णवान्तं कथमभ्युपैति ॥ १४

१ [प्राणान्त्रयेरन्, °न्वहेत्व्]. २ [धर्मपथे]. ३ [प्रतियानतोऽपि].
 ४ [भ्रश्यन्ति]. ५ [शक्नोषि]. ६ क प्रशस्ता. ७ [मा त्वं त्वेथाः].

गृहाद्विर्यातुमशक्तिमान्यो यात्वा पुनर्नैव निवर्त्तिं वा ।
 तादग्निधः कायपरिग्रहस्य स्थानावियोगस्य च किं समर्थः ॥१५
 भित्वार्गलं यान्ति चिरं वनान्तं यथा गजा वारयितुं न शक्याः ।
 गृहार्गलं तद्वदहं विभित्य व्रजामि मान्धी वैर एष याचे ॥ १६
 वहिर्यैयासुर्भवनात्प्रदीपात्क्षपत्यरातिः पुनरेव तत्र ।
 दुःखानलादेवमभिप्रयात्तुमापीपतः पार्थिव शत्रुवन्माम् ॥ १७
 क्षुब्धार्णवादुर्गतिवीचिजालात्कृच्छ्रेण कूलान्तमुपागतं तम् ।
 नुदत्यरातिस्तु यथैव तत्र मा नुनुदः संसृतिसागरे माम् ॥ १८
 सुवर्णपात्रे परमान्नमिष्टं बुधुज्यमानस्य विषं ददाति ।
 यथा तथा राज्यविषं देदाति धर्मामृतं भूमिप मे पिपासोः ॥१९
 शुभक्रियाणां च विघातको यः पापक्रियाणां च सहायभूतः ।
 स एव राजन्भर्वबद्धवैरो रिपोश्च कष्टं त्वतुलो न शत्रुः ॥ २०
 रिपुः कर्दाचि [~] दर्थमङ्गं बलं यशो वेह निहनित वा न ।
 धर्मस्य ये विघ्नकरा नृशंसा निघ्नन्ति ते जन्मसहस्रसाँख्यम् २१
 आयुर्बलारोग्यवर्षयांसि प्रणश्वराणि क्षणिकं शरीरम् ।
 धनानि विद्युदपुषा समानि द्वितीय एषोऽपि महांस्तु दोषः २२
 राज्यं हि राजन्बहुदुःखवीजं चित्ताकुलं व्याकृतिशोकमूलम् ।
 वैरास्पदं क्लेशसहस्रमूलं किंपाकपाकप्रतिमं तदन्ते ॥ २३
 दुरन्तता राज्यधुरंधराणां धर्मस्थितानां सुखभागिनां च ।
 विजानतः साधुंसंमुत्थितस्य कथं रतिः स्यान्मम राज्यभोगे २४

१ [त्वा धीवर]. २ [बहिर्यैयासु]. ३ [°प्रयात°]. ४ [बोभुज्य°].
 ५ [ददासि]. ६ म °बद्धवैरी. ७ [रिपुश्च...नु शत्रुः]. ८ क कदाच्चियदर्थ°.
 ९ म व्यावृति° १० क °समस्थितस्य, [°समं स्थितस्य].

निरुत्तरैस्तैर्भुरार्थगर्भैः सहेतुकैर्भूमिभुजो हि मध्ये ।
 मनोहरैर्भूमिपतिर्वचोभिः प्रबोधयां तं पितरं वभूव ॥ २५
 प्रवृद्धवैराग्यरसोदयस्य विशुद्धदृष्टेरविकम्पितस्य ।
 पिता स्वपुत्रस्य वचो निशम्य प्रसन्नबुध्या तमुवाच वाचम् ॥ २६
 सर्वान्तरायानतिलङ्घन्य वत्स धर्मान्तरायो गुरुतामुपैति ।
 जानन्नपि स्नेहपरायणत्वाद्वलादवोचं परिणामतिक्तम् ॥ २७
 यदि श्रमादात्मनि मोहतो वा स्वकर्मणां गौरवतोऽतिरागात् ।
 न्यायादपेतं वचनं यदस्ति क्षमस्य तत्सर्वमुदारबुद्धे ॥ २८
 आबाल्यतः शान्ततमस्य तस्य धर्मानुरागोद्यतसत्क्रियस्य ।
 सुनिर्ब्रश्वितां तामवगम्य बुद्धि मुमोच कृच्छ्रात्तनयं महीन्द्रैः ॥ २९
 तथैव पौरान्स्वजनाञ्जनांश्च सेनापतिश्रेष्ठिगणप्रधानान् ।
 स्वमातरं कृच्छ्रतरान्नृसिंहो विमोचयामास यथाक्रमेण ॥ ३०
 आहूय तं पुत्रवरं विनीतं सुग्रात्रनामानमनङ्गरूपम् ।
 निवेश्य पार्श्वे विनयाद्विनश्च मध्ये वृपाणामिदमित्युवाच ॥ ३१
 मातामहोऽयं तव संनिविष्टः पितामहस्त्वेष गुर्णैर्गरीयान् ।
 गुरुद्वयस्यास्य नृपोत्तमस्य कुरुष्व शुश्रूषणमात्मशक्त्या ॥ ३२
 वृद्धान्गुरुन्प्राज्ञतमानुदारान् दयापरानार्यकलांश्च नित्यम् ।
 विश्रम्भपूर्वं मधुरैर्वचोभिर्मन्यस्व मान्यानथ मानदानैः ॥ ३३
 अरातिवर्गान्विजयस्व नीत्या दुष्टानशिष्टांश्च सदा प्रशाधि ।
 कृतापराधान् शरणागतांस्तान् रक्ष स्वपुत्रानिव सर्वकालम् ॥ ३४
 पञ्चवन्धमूकान्वधिरान्वियश्च क्षीणान्दरिद्रानगतीननाथान् ।
 श्रान्तान्सरोगांश्च विधृष्व सम्यक्पराभिभूतान्परिपालयस्व ॥ ३५

धर्माविरोधेन समर्जयार्थानर्थाविरोधेन भजस्व कामान् ।
 कामाविरोधेन कुरुष्व धर्मं सनातनो लौकिक एष धर्मः ॥३६
 दातव्यमित्येव जनाय चिंतं प्रदेहि सन्मानपुरस्सरेण ।
 भृत्यापराधानविगण्य वत्स क्षमस्व सर्वानहमीशतेति ॥ ३७
 निबद्धवैरानतिदोषशीलानप्रमादिनो नीतिबहिष्कृतांश्च ।
 चलस्वभावान्व्यसनान्तरांश्च जहाति लक्ष्मीरिति लोकवादः ॥३८
 अदीनसच्चान् क्रियया समेतान् श्रुतान्वितान्क्षान्तिदयोपपन्नान् ।
 सत्येन शौचेन दमेन युक्तानुत्साहिनः श्रीस्वयमभ्युपैति ॥ ३९
 भृत्यांश्च मित्राण्यथ कोशदण्डानमात्यवर्गञ्जनतां च दुर्गान् ।
 बुधैश्च पूजां यदि वाञ्छसि त्वं कुर्वात्यनात्मानमतीव पात्रम् ॥४०
 भूयोऽर्हतां शासनमागमस्थानसज्जानचारितपोविशुद्धान् ।
 चतुर्विधं संघमथात्मशक्त्या भजस्व सन्मानय सादरेण ॥ ४१
 गुणैरुपेता गुरवो बहुज्ञा ये शिष्यैन्त्यात्मसुतान् हिताय ।
 सतच्चर्सर्वं बहु शिष्ययित्वा समर्पयामास सुतं गुरुभ्यः ॥ ४२
 ततो नृपैर्मन्त्रवरप्रधानैः सामन्तमुख्यैरभिषिन्य सार्धम् ।
 बबन्धं पद्मं स्वयमेव राजा प्रजाहितार्थं कुलवृद्धये च ॥ ४३
 मुक्तावलीं रत्नपरीतमध्यां कण्ठे च देवेन्द्रधनुर्विचित्राम् ।
 मूर्यप्रभाहेपितसात्किरीटं निधाय पुत्रस्य हि मूर्ध्नि तस्य ॥ ४४
 श्वेतातपत्रं शरदभ्रशुभ्रं दधार भास्वद्वरहेमदण्डम् ।
 अष्टार्धसच्चामरहेममूलं व्युत्क्षेपयामास स सुन्दरीभिः ॥ ४५
 तेषां तु मध्ये वसुधाधिपानां स्वबाहुवीर्योर्जितसद्गुणानाम् ।
 रेजे सुगात्रो नवराज्यलक्ष्म्या कान्त्या ग्रहणामिव शीतरश्मिः ४६

१ [वित्त]. २ [सर्वानहमीशितेति]. ३ [शिक्षयन्त्यात्म°]. ४ [शिक्ष-
 यित्वा]. ५ क सत्तिरीटं. ६ क हेममालं.

नेदुः समन्ताद्वृहदभ्रनादा मृदङ्गभेरीपटहाः सशङ्खाः ।
 उत्कृष्टनादां जनतां चकार लब्धेश्वरा भूवनिता तुतोष ॥ ४७
 ततो नृपो निर्वृतिसौख्यरागः स्वपुत्रसंकामितराज्यभारः ।
 विमुक्तसंगः स्वजनेन सार्थं जगाम तूर्णं जिनदेवगेहम् ॥ ४८
 तत्राहतामपतिशासनानामष्टाहिकां शिष्टजनैश्च जुष्टाम् ।
 यमोपवासव्रतयन्त्रितात्मा चकार पूजां परया विभूत्या ॥ ४९
 पूजावसाने प्रतिमापुरस्तात् स्थित्वा महीन्द्रः सुविशुद्धलेश्यः ।
 स्तुत्वा जिनानां तु गुणानुदाराञ्जग्राह शेषां मुदितान्तरात्मा ५०
 स्तोत्रावसाने प्रणिपत्य देवान्प्रदक्षिणीकृत्य जिनेन्द्रेगेहम् ।
 आरुह्य राजा शिविकामनध्यां दिवाकरांशुद्युतिहारिणीं ताम् ५१
 अत्युच्छ्रौतैः केतुभिरुज्ज्वलाङ्गैः सितातपत्रैर्वर्चामरैश्च ।
 ध्वजैरनंकैनयनाभिरामैर्गच्छन्वभौ शक्र इवावनीन्द्रः ॥ ५२
 मृदङ्गशब्दैः पटहस्वनैश्च शङ्खप्रणादैर्गजवाजिघोषैः ।
 पुण्यैर्वचोभिर्वरमागधानामभूद्ववनिः क्षुब्धसमुद्रतुल्यः ॥ ५३
 पौरजैर्जनैर्वर्षचैररमात्यैः सामन्तवर्गैर्नृपपुङ्गवैश्च ।
 पदातिनागाश्वरथाधिरूढैर्वृतो गृहेभ्यो निरगान्वरेन्द्रः ॥ ५४
 रथैश्च काश्चिद्रवाजियानैर्मनोहराभिः शिविकाभिरन्याः ।
 धर्मक्रियायां विनिवेश्य बुद्धिं नृपाङ्गना भूपतिनैव याताः ॥ ५५
 नृपं प्रयातं प्रसमीक्ष्य केचिद्र्धर्मप्रियाः पौरजनाः प्रहृष्टाः ।
 केचित्पुनर्मोहमहातमोऽन्धा दुर्बुद्धयोऽत्यल्पतमा निनिन्दुः ॥ ५६
 मत्स्यामिषाभ्यां च यथा शृगालः प्रवञ्चितो लोभतया विमूढः ।
 यथा च नारी युवरूपलुभ्याँ भ्रष्टोभयाभ्यां पतितस्कराभ्याम् ५७

१ [°नादाङ्गनता]. २ [°वर्षधरै°]. ३ म. °लब्धा.

तथा नरेन्द्रो विषुलांश्च भोगान्प्रत्यक्षभूतं प्रविहाय बालः ।
 परोक्षमिच्छन्ति सुरसौख्यमोक्षं प्रवच्चयते जम्बुकपुंश्चलीवत् ॥ ५८
 स्वर्गोऽस्ति नास्तीति कथं हि शक्यं श्रद्धानुसज्ज्ञानवचार्ण वैयो यत्
 इतो गतो वा तत आगतो वा पुमान्यदि स्यात्तदिह प्रमाणम् ५९
 विमुच्य हस्तागतमर्थकङ्गो वनेऽन्यमर्थं मृगयेति कथित् ।
 इदं हि राज्यं प्रविसृज्य वाञ्छेदहस्यमिन्द्रत्वमवाप्तुमङ्गः ॥ ६०
 सुसिद्धमन्नं प्रविहाय कथित्पुनः प्रपक्षुं घटते विचेताः ।
 स्याद्वा न वा संशयितुं तदन्नं राज्यं तथा सिद्धमसिद्धमैन्द्रम् ॥ ६१
 पञ्चेन्द्रियाणां विषयाश्च पञ्च ते सेवितव्या इति सत्प्रवादः ।
 सत्स्वान्द्रियेष्वर्थतमेषु सत्सु किमन्यमर्थान्तरमार्गयेद्वाँ ॥ ६२
 अहो नृपोऽयं निरपेक्षितार्थो व्यामोहितात्मा बत किं करोति ।
 न कथिदस्यात्महितस्य वक्ता बन्धुः सखा वा खलु विद्यते ऽत्र ६३
 इत्येवमादीनि वचांस्यथोऽच्चैः प्रभाषमाणानफलानभार्यार्न् ।
 भद्राः प्रकृत्या श्रुतधर्मतन्त्रा विलोक्य तेभ्यः पुनरित्थमूच्चुः ॥ ६४
 धर्मात्सुखैश्वर्यधनानि लोके लभन्त इत्येव कथा ततान ।
 कुतो भवन्तः समुपागता वा जडा वराका श्रुतिबाह्यभूताः ॥ ६५
 शालीक्षुगोधूमयवादिधान्यं वीजाद्विना नाङ्करतामुपैति ।
 तपोमयं वीजमथायनीयं स्वर्मोक्षसौख्यं लभते न कथित् ॥ ६६
 पूजा तपः शीलमपि प्रदानं चत्वारि वीजानि सुखस्य लोके ।
 उम्बा नरास्तानि महीतलेऽस्मिन् क्रमेण धीराः सुखभागिनः स्युः

१ [°भूतान्प्रविहाय]. २ क [वचां चचो, [°वतां वचो]. ३ [°गतमर्थ-
 मङ्गो, °गतमर्थकं यो]. ४ [मृगयेत]. ५ म स्याद्वादवासंशयितुं. ६ [संशयितं].
 ७ [°मापयेद्वा]. ८ [°फलानभद्रान्]. ९ [वीजमथापनीय].

कान्तिशुतिज्ञानविभूतियुक्तं सुखान्वितं धान्यधनान्वितं च ।
 समीक्ष्यमाणोऽपि नरो नरं तं सुपुण्यवानेष इति ब्रवीति ॥ ६८
 पुरार्जितश्रीस्तपसां फलेन इहोपभुङ्गे मनुजः सुखानि ।
 कृत्वेह पुण्यानि महाफलानि सुरासुराणां कुरुते तदैश्यम् ॥ ६९
 एवं च पूर्वार्जितपुण्यपाकादिमां विदित्वा नृपतां नरेन्द्रः ।
 विहाय तां देवपतित्वमीष्मुर्वनं प्रयातीति च केचिदूचुः ॥ ७०
 त्यजन्ति येऽर्थान्महतश्च भोगांस्त एव धन्याः पुरुषाश्च लोके ।
 वयं पुनस्तानसतोऽप्यपुण्यास्त्यक्तुं न शक्ता इति केचिदूचुः ॥ ७१
 किमाख्यहे स्वामिनि संप्रयाते वयं हि तेनैव सहाभियामः ।
 इति प्रतिज्ञामभिगृह्य केचित्पारेभिरे गन्तुमदीनसत्त्वाः ॥ ७२
 एवं हि पौररपरीक्षितार्थैः स्वचित्तसंकल्पितवाक्प्रलापैः ।
 निगद्यमानो नृपतिर्जगाम पुराद्विर्निर्गतरागबन्धः ॥ ७३
 पुरं क्रमेणाप्रतिधीर्व्यतीत्य वनं च नानाद्रुमपुण्यकीर्णम् ।
 रक्तोत्पलैर्वाकुलिताभ्रवृन्दैर्नेषः प्रपेदे मणिमन्त्रसिद्धम् ॥ ७४
 तं पर्वतं ज्ञानतपश्चरित्रैर्विस्तीर्णकीर्तिर्मुनिरध्युवास ।
 गणाग्रकेतुवरदत्तनामा सविग्रहो धर्म इव द्वितीयः ॥ ७५
 स केवलज्ञानविशुद्धचक्षुर्महर्षिविद्याधरदेवतार्च्यः ।
 धर्मामृतं भव्यजनाय यच्छन्बभौ मुनिर्मेसुरिवातितुङ्गः ॥ ७६
 अदूरतस्तं समवेक्ष्य भूपाः स्ववाहनेभ्यस्त्ववतीर्य तूर्णम् ।
 प्रदक्षिणीकृत्य विशुद्धभावा नेमुः शिरोभिर्मुनिसत्तमं तम् ॥ ७७
 वराङ्गराजः शमितात्मरागः प्रणम्य पादौ वरदत्तनाम्नः ।
 स्थित्वा पुरस्तादभिजातहर्षः कृताङ्गलिर्वाक्यमिदं जगाद ॥ ७८

१ म तवैश्वम्. २ क मणिमन्त्रः.

सर्वज्ञं सर्वार्चितं सर्ववन्द्यं सर्वाश्रमाणां परमाश्रमस्थं ।
 शरण्यभूतं त्रिजगत्प्रजानां संसारभीतः शरणागतोऽहम् ॥ ७९
 चतुर्गतीनामसुखान्वितानां योनिष्वनेकासु चिरं भ्रमित्वा ।
 दुःखान्यनेकान्यनुभूय तत्र श्रान्तो भवन्तं शरणागतोऽस्मि ॥ ८०
 नालिङ्गितो यो रजसा कदाचिन्नोपल्लुतो जन्मवियोगशोकैः ।
 मृत्योरनालीढपदप्रचारो नयस्व मां देशमृषे तमाशु ॥ ८१
 ततो मुनीन्द्रस्तदनुग्रहायावदन्महामेघगभीरनादः ।
 यथा सुखं त्वं विषयेषु राजन्नासस्व प्रसाक्षीरिति संदिदेश ॥ ८२
 विशुद्धजात्यादिसुदुर्लभत्वं सद्गर्ममार्गं प्रतिबोधनं च ।
 विमुक्तिधर्माभिसुदुष्करत्वं सर्वे तदाचष्टु गणप्रधानः ॥ ८३
 चेष्टाप्रधाना जगतः क्रियाश्च चेष्टावतां कर्म न चास्त्यसाध्यम् ।
 चेष्टस्व तस्माल्लभते यदिष्टं स्वर्गादिकं मोक्षसुखावसानम् ॥ ८४
 विशालबुद्धिः श्रुतधर्मतत्त्वः प्रशान्तरागः स्थिरधीः प्रकृत्या ।
 तत्याज निर्माल्यमिवात्पराज्यमन्तःपुरं नाटकमर्थसारम् ॥ ८५
 विभूषणाच्छादनवाहनानि पुराकरग्राममडम्बवेदैः ।
 आजीवितान्तात्प्रजहौ स बाह्यमध्यन्तरांस्तांश्च परिग्रहाद्यान् ॥ ८६
 अपास्य मिथ्यात्वकषायदोषान्प्रकृत्य लोभं स्वयमेव तत्र ।
 जग्राह धीमानथ जातरूपमन्यैरशक्यं विषयेषु लोलैः ॥ ८७
 अन्येऽपि सामन्तनृपा महान्तः कौटुम्बिकाश्च द्विजसार्थवाहाः ।
 नरेन्द्रभन्तयार्पितमानसास्ते प्रवव्रजुस्तत्र सहैव राजा ॥ ८८
 नरेन्द्रदत्तो वसुमान्वनेशोऽप्यनन्तचित्रौ च मतिप्रगल्भाः ।
 प्रवव्रजुः स्वाम्यनुरागबद्धा वणिग्वराः सागरवृद्धिमुख्याः ॥ ८९

१ [लभते]. २ [कौटुम्बिकाश्च].

ये भूमिपालाः सुकुपारगात्रा विचित्रभोगप्रतिबद्धसौख्याः ।
 राज्यानि संत्यज्य महर्दिवन्ति कुर्वन्ति चैतेऽपि तपांसि धीराः ॥१
 वयं प्रकृत्या विभवैर्विहीना नित्यं परप्रेषणतत्पराश्च ।
 विशेषतः साधु तपश्चराम इत्येवमुक्त्वा हि परे प्रजग्मुः ॥२१
 क्षितीन्द्रपत्न्यः कमलायताक्ष्यो विचित्ररत्नप्रविभूषिताङ्ग्यः ।
 परीत्य भक्त्यार्पितचेतसस्ता नमः प्रकृत्वन्मुनयो प्रहृष्टाः ॥२२
 ततो हि गत्वा श्रमाणार्जिकानां समीपमध्येत्य कृतोपचाराः ।
 विविक्तदेशे विगतानुरागा जहुर्वराङ्गश्चो वरभूषणानि ॥२३
 गुणांश्च शीलानि तपांसि चैव प्रबुद्धतत्त्वाः सितशुभ्रवस्त्राः ।
 संगृह्य सम्यग्वरभूषणानि जिनेन्द्रमार्गाभिरता वभूवुः ॥२४
 मन्त्रीश्वरामात्यपुरोहितानां पुरप्रधानर्दिमतां गृहिण्यः ।
 नृपाङ्गनाभिः सुगतिप्रियाभिर्दीक्षिरे ताभिरमा तरुण्यः ॥२५

इति नृपतिरपास्य राज्यभारं

व्रतगुणशीलतपांसि संबभार ।

प्रमुदितमनसश्च राजपत्न्यः

परमतपांस्यभिदधिरे हिताय ॥२६

नृपनृपवनिताभिरुज्जितानि

नि ।

अवनितलमुपागतानि रेजुः

कुरुषु यथा तरुजानि भूषणानि ॥२७

नवशरदि भृशं सुपूर्णचन्द्रो

व्यपगतमेघमलीमसाश्च तारा ।

ग्रहणमिह तामलेवच्छर्द्याः

प्रतिविरराज मही विभूषणैस्तैः ॥ ९८

यतिपतिमभिवन्द्य सादरास्ते तदनु मुनीववसंयतांश्च भक्त्या ।
नरवरवनिता विमुच्य साध्वीशमुपययुः स्वपुराणि भूमिपालाः ९९

इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।

स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥

वराङ्गदीक्षाधिकारो

नामैकोनत्रिंशतितमः सर्गः ।

[त्रिंशः सर्गः]^३

गतेषु तेषु प्रियबान्धवेषु स्वेभ्यः पुरेभ्यो मुनिसंकथाभिः ।

दीक्षां प्रपन्नां जहृषुर्विसिंहा वारीविमुक्ता इव मत्तनागाः ॥ १

निरस्तभूषाः कृतकेशलोचाः प्रसन्नबुद्धीन्द्रियशुद्धभावाः ।

धर्मानुरक्ता मुनिराजपार्वं प्रपेदिरे साञ्जलयो यथाहम् ॥ २

पाश्रितांस्तान्कृतमूर्धिहस्तान्विलोक्य साधून्विगतेन्द्रियाशान् ।

भावतो भव्यजनानुकम्पी व्रतोपदेशं कथयांवभूव ॥ ३

आनानि जीवस्य चतुर्दशानि तथैव हि स्थातुचरिष्णुतां च ।

सम्यक्तवमिथ्यात्वविमिश्रितत्वं शशंस सम्यैकसफलं यतिभ्यः ॥४

एण्डांखिगुरुमीर्श्च चतुर्जषायान्द्रव्याणि षड्जीवनिकायभेदाँः ।

दशप्रकारं श्रमणेन्द्रधर्मं तेभ्यः समाचष्ट समाहितेभ्यः ॥ ५

१ [ताम्बलेप०]. २ [°त्रिंशत्तमः]. ३ क म श्रीनेमिनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यम् । नमोऽस्तु नारायणदर्पहारिणे ॥ ४ क प्रसन्ना । ५ [सम्यक्त्वफलं]. ६ [°गुरुश्च]. ७ [°भेदान्].

सज्जनचारित्रिगतिव्रतानि दशार्थभेदान्यवदत्स तेभ्यः ।
 तपोविधिं द्वादशलक्षणं च संसारविच्छिन्निकरं समाख्यत् ॥ ६
 संज्ञाश्रतसः करणानि पञ्च चेर्यापथादीन्समितीश्च पञ्च ।
 आवश्यकाः षट्च षडेव लेख्या योगत्रयं चाप्यवदध्यात् ॥ ७
 चतुर्विधन्यासपदप्रपञ्चं नयप्रमाणानि च मार्गणानि ।
 अष्टप्रकाराननुयोगभावांस्त्रिपञ्चकांश्चैव गुणप्रेदान् ॥ ८
 त्रिलोकसंस्थौगतिमागतिं च स पुण्यपापात्मवसंवरांश्च ।
 बन्धं च मोक्षं चं शिवप्रमेयं मुनिर्मुनिभ्यः कथयांबभूव ॥ ९
 श्रुत्वा मुनीन्द्रोदितमप्रमेयमहीनसत्त्वाः शिवसिद्धिमार्गम् ।
 शीलान्यथादाय महाव्रतानि सद्यस्तमाचारमधीयते स्म ॥ १०
 ततैः सशान्तं शिवदत्तसंज्ञं दयापरं क्षान्तिमुदारवृत्तम् ।
 आधारभूतं नवसंयतास्ते प्रपेदिरे संयमसाधनाय ॥ ११
 ते भव्यसत्त्वा विदितार्थतत्त्वा जन्मान्तरे भावितमुक्तिमार्गाः ।
 अनन्तर्वीर्याः श्रमणत्वमासाः शिशिक्षिरे तत्र सुशिक्षितव्यम् ॥ १२
 वराङ्गराजेन सह प्रयाताः समाहिताः क्षत्रियसंयतेन्द्राः ।
 वैराग्यनिर्वेदपरायणास्ते प्रारेभिरे कर्मरिपुं विजेतुम् ॥ १३
 ममत्वदेहप्रतिकारहीना न हि क्वचित्ते प्रतिबद्धरागाः ।
 त्यक्तप्रमादा निरवद्यभावा समा बभूवुः प्रजने जने वा ॥ १४
 त्रैलोक्यमप्येकमुहूर्तमात्रादुदीरितो नाशयितुं समर्थः ।
 महाबलः क्रोधकषायमल्लः क्षमाबलेनाप्रतिमैर्निरस्तः ॥ १५
 मानो महाशैल इवातितुङ्गः स मार्दवेनाप्रतिमेन जिग्ये ।
 तथैव माया कुटिलस्त्रभावा जितेन्द्रियैश्चैव जितार्जवेन ॥ १६

१ [°संस्थां]. २ [मोक्ष शिवप्रमेयं]. ३ [ततश्च शान्तं]. ४ [क्षान्त०].

लब्धास्पदः सर्ज इव प्रवृद्धः शाखोपशाखाप्रतिमानमूर्तिः ।
 उन्मीलितो लोभकषायवृक्षः संतोषधृत्या क्रियविद्विराघ्यैः ॥ १७
 त्रणाः प्रशल्याँ इव दुश्चिकित्स्या मिथ्यात्वमायासनिदानशल्याः ।
 विमुक्तिमार्गाभिरतैरुदारैर्विवर्जितास्तै कङ्खिभिर्विशेषात् ॥ १८
 जिनेश्वराचार्यवहुश्रुतेषु संघे च धर्मे च जिनालये च ।
 सम्यक्त्वचारित्रितपस्सु नित्यं भाक्ते प्रचक्रुस्तनुरागमोहाः ॥ १९
 नैसर्ग्यमास्थाय शुभप्रयोगा महर्षयो मन्दरसारधैर्याः ।
 चकम्पिरे नैव परीषहेभ्यः प्रभञ्जनैस्तैरचला इवात्र ॥ २०
 यथाजिभूमावरिसैन्यमुग्रं पुरा मर्मदं स्वपराक्रमेण ।
 परीषहारीन्विषयांखिदण्डांस्तथा मैमर्दुर्यतयो जिताशाः ॥ २१
 अर्हद्रचःस्तम्भमुपागमय्य वधद्वा तपोयोगमयैश्च पाशैः ।
 मनोगजान्मानमदार्दगण्डान् ज्ञानाङ्कशैस्ते शमयांबभूतुः ॥ २२
 दुष्टानिवाश्वानपथप्रपन्नान्पञ्चेन्द्रियाश्वान्विषयानुदारान् ।
 संयम्य सम्यग्वररजुवन्धर्महाधियस्ते स्ववशं प्रचक्रुः ॥ २३
 यथा मदान्धाः करिणः प्रयोगैरुपायवन्तो वशमानयन्ति ।
 तथेन्द्रियेभान् कुलजातिद्वैसान् ज्ञानाङ्कशेनात्मवशं प्रणिन्युः ॥ २४
 यथा पुरात्यन्तरदुष्टवर्गानपास्य राज्यं स्वमुखं प्रणिन्युः ।
 तथैव रागादिरिपून्विजित्य सुखं निषणो मुनितामुपेत्य ॥ २५
 शून्यालये देवगृहे श्वशाने महाटवीनां गिरिगहरेषु ।
 उद्यानदेशे द्रुमकोटरे वा निवास आसीद्विषिसत्तमानाम् ॥ २६

१ [उन्मूलितो]. २ [श्रुतविद्विराघ्यैः]. ३ [सशल्या]. ४ [वैराग्य-
 मास्थाय]. ५ क ममदुः. ६ क ज्ञानांशुकैः. ७ क °येभाः...दत्ताः. ८ [पुरा-
 त्यन्तिकदुष्ट°].

रात्रिंचरा भीमरवाः शकुन्ताः शार्दूलसिंहाद्विपजम्बुकर्षाः ।
 यत्राकुला भीमभुजंगमाश्च तत्रास वासो यतिपुङ्गवानाम् ॥ २७
 वर्षासु शीतानिलदुर्दिनासु घोराशनिस्फूर्जथुनादितासुं ।
 दिवानिशं प्रक्षरदम्बुदासु ते वृक्षमूलेषु निषेदुरार्याः ॥ २८
 स्थलेषु निर्जन्तुषु वीतरागा निषद्य ते खीपशुवर्जितेषु ।
 संसारनिस्सारदुरन्ततां च विचिन्तयामासुरनेकशस्ते ॥ २९
 वने पुनर्भीमितमेऽन्धकारे शिवादिवान्धवनिरौद्रूपे ।
 जरारुजामृत्युभयातिभीता निद्रावशं रात्रिषु नैव जग्मुः ॥ ३०
 धाराभिधौताङ्गमलाः सुलेश्याः खद्योतमालारचितात्ममालाः ।
 विद्युल्लतावेष्टनभूषिताङ्गाः प्रज्ञाङ्गरागात्युपभोगशक्ताः ॥ ३१
 हेमन्तकाले धृतिबद्धकक्षा दिग्म्बरा ह्यभ्रवकाशयोगाः ।
 हिमोत्करोन्मिश्रितशीतवायुं प्रसेहिरेऽत्यर्थमपारथैर्याः ॥ ३२
 अस्पर्शयोगा मलदिग्धगात्राः प्रसारणाकुञ्चनकम्पहीनाः ।
 उच्छ्वासनिःश्वासनिमेषलक्ष्याः संतस्थिरे स्थाणुरिवाप्रकम्प्याः
 भूतैः प्रभूतैः सपिपाससंधैः सडाक्षिनीभिः पिशिताशनीभिः ।
 घोरैः पुनर्भीमरवानुकारैस्ते निश्चला तस्थुरमा श्मशाने ॥ ३४
 अस्तानभूरित्रियोगभाराः स्वेदाङ्गमासक्तरजःप्रलिप्ताः ।
 निदाघसूर्याभिषुखा वृसिंहा व्युत्सृष्टगात्रा मुनयोऽभितस्थुः ३५
 ऊर्ध्वा दिवाके प्रदहत्यभीक्षणं पार्श्वे च वायौ पैरुषेऽतिवाति ।
 अधः पुनस्तम्भाशिलासु स्थित्वा प्रदेकुर्वनकर्मकक्षम् ॥ ३६
 निदाघतीक्षणार्ककरप्रहारानुरस्वथादाय निरस्तपापाः ।
 अस्तं प्रयाते च रवौ यतीशाः पराङ्गमुखेरा विवनेवतेऽः ॥ ३७

१ म °नादिकासु. २ क °लक्ष्म्या. ३ [निश्चल]. ४ [ऊर्ध्व]. ५ क
 पुरुषैः. ६ म प्रसेदेकुर्वन°, [प्रदेहुर्वन°]. ७ [लिवरेऽवतेऽः].

विशिष्टवातातपर्वतुपाः क्षुद्राधिरोगारतिरोषणानि ।
 प्रसेहिरे कर्मरजःक्षपाय महर्षयो मन्दरजःप्रकम्प्याः ॥ ३८
 वीरासनस्वस्तिकदण्डशय्याः पल्यङ्कवञ्चोत्कुटिकासना ये ।
 स्थानव्रता मौनपराश्र धीरा महाद्रिकुक्षिष्वभिरेमिरे ते ॥ ३९
 एवं तपःशीलगुणोपपन्ना व्रतैरनेकैः कृशतामुपेताः ।
 अभग्रचर्याः स्थितसन्वसारास्तेषुः सुतीवाणि तपांसि शूराः ४०
 निवृत्तलोकव्यवहारिणस्ते जिनेन्द्रवाक्यानुनयप्रवीणाः ।
 धर्मानुरागोद्यतधीरचर्या ध्यानैकतानाः सततं बभूवुः ॥ ४१
 तपोभिरापीडितसर्वगात्रा महर्षयो निश्चलमानसास्ते ।
 पुरात्मसंक्रीडितकामभोगान्न चैव कांश्चिन्मनसा विद्ध्युः ॥ ४२
 एकान्तशीला विगतान्तररौद्राः प्रशान्तरागाः श्रुतवीर्यसाराः ।
 ध्याने पुनस्ते खलु धर्मशुक्ले दध्युः शुभे पापविनाशनाय ॥ ४३
 जितेन्द्रियाश्र व्रतभूषिताङ्गाः क्षमावलास्ते धृतिबद्धकक्षाः ।
 दयार्थमेव प्रगृहीतसत्या महीं विजहुः समसौख्यदुखाः ॥ ४४
 ग्रामैकरात्रं नगरे च पञ्च समूषुरव्यग्रमनःप्रचाराः ।
 ते किंचिदप्यप्रतिबाधमाना विहारकाले समिता विजहुः ॥ ४५
 नैकप्रकाराकृतिजन्तुमालां चंचूर्यमाणां वसुधां मुनीन्द्राः ।
 पीडां परप्राणिषु नैव चक्रुः पुत्रेषु मातेव दयालवस्ते ॥ ४६
 यस्मिस्तु देशेऽस्तमुपैति सूर्यस्तत्रैव संवासमुखा बभूवुः ।
 यत्रोदयं प्राप सहस्ररश्मिर्यातास्ततोऽथा पुरि वांप्रसंगाः ॥ ४७
 यत्राहृतां जन्मपुराण्यभूवन्प्रवत्रजुर्यत्र च लोकनाथाः ।
 यत्रैककैवल्यमभूदतुल्यं यत्रास निर्वाणमृषीश्वराणाम् ॥ ४८

१ [ततो वायुरिवात्पसंगाः].

तांस्तांश्च देशानथ संविहत्य विशुद्धवाकायमनःप्रयोगाः ।
 समीक्षमाणाश्च तपोवनानि ववन्दिरे दुष्कृतपावनानि ॥ ४९
 शश्यासनस्थानगतिक्रियासु निष्ठीवनोत्सर्गविधिष्वमूढाः ।
 आदाननिक्षेपणभोजनेषु जन्तूत्ररक्षुः क्रियया समेताः ॥ ५०
 नैष्टुर्यपारुष्यनिरर्थकानि कार्कश्यपैशून्यविकारवन्ति ।
 मर्मप्रहाराणि वचांसि वाचा न भाषमाणा यतयो विजहुः ॥ ५१
 ससिंहविक्रान्तितवज्रमध्यान्भद्रोत्तरांश्चाम्लविवर्जितानि ।
 चान्द्रायणारूपप्रमुखानि सम्यगुपोषुरन्यानि च सत्तपांसि ॥ ५२
 ते पारणां कर्तुमथ प्रविश्य बाह्यात्पुरस्य प्रतिसंनिवृत्ताः ।
 कदाचिदन्तर्नगराच्चरुक्षादध्याप्रदेशात्त्रिकतश्च याताः ॥ ५३
 एकान्तभिक्षां प्रविलभ्य याता भिक्षात्रयेण प्रतिमानिवृत्ताः ।
 गृहेषु सप्तस्त्रवगुण्य केचिदग्रासार्धतोऽधोदरिणः प्रयाताः ॥ ५४
 ग्रामान्तरोद्यानवनान्तरे च प्रथान्तरे घोषवति प्रदेशे ।
 शिलान्तरे सैन्यनिवेशने च कान्तारदेशे जगृहुश्च भिक्षाम् ॥ ५५
 संत्यज्य मृष्टाशनपानखाद्यं स्वाद्यानि वर्णेन्द्रियवर्धनानि ।
 तपोऽभिवृद्धै रसहीनमन्नं प्राभुञ्जताहं न च रात्रिभागे ॥ ५६
 उत्पादनं चोद्यमनं सदोषं संयोजनं क्रीडकृतं पुराणम् ।
 अज्ञातमन्नं हरितं त्वद्वृष्टं विवर्जितं तन्मुनिभिस्त्वयोग्यम् ॥ ५७
 अस्वादुकं निर्लवणं विशुद्धं स्त्रिघ्णं च रूक्षं विरसं विवर्णम् ।
 अशीतिलं वाथ सुशीतिलं वा ववलिभरे तच्च तपोऽभिवृद्धै ॥ ५८
 प्रतस्त्रोहे पतितोऽम्बुविन्दुर्यथा क्षयं तत्क्षणतोऽभ्युपैति ।
 तथा विलिल्ये यतिभिः प्रभुक्तं कदञ्चमप्यल्पतया शरीरे ॥ ५९

१ [°चतुर्ष्का°]. २ [पथान्तरे].

अक्षस्य संरक्षणमात्रमन्नं ते भुज्जते प्राणविधारणाय ।
 प्राणाश्र ते धर्मनिमित्तमेव धर्मश्च निश्रेयसलब्धये सः ॥ ६०
 सामान्यसत्काञ्चनशत्रुमित्रा मानावमानेषु समानभावाः ।
 लाभे त्वलाभे सदृशा प्रयोगास्ते वीरचर्या यतयो बभूवुः ॥ ६१
 अखण्डचारित्रमहाव्रतानामगैर्द्वीर्योरुपराक्रमाणाम् ।
 स्वकार्यसंपादनतत्पराणां कुतोऽपि नासीत्तपसि प्रसंगः ॥ ६२
 तेषामृषीणां निरपेक्षकाणामनेकयोगव्रतभूरिभासाम् ।
 क्लेशक्षयायैव समुत्थितानां तपोऽभिवृद्धिर्महती बभूव ॥ ६३
 चतुर्थषष्ठाष्टमपक्षमासाचन्द्रायणाद्यैरुपवासयोगैः ।
 आतापनैरभ्यवकाशवासैः सदृशमूलैः प्रतिमाप्रयोगैः ॥ ६४
 तपोभिरत्युग्रतमैरुदारैः सत्त्वानुकम्पावतभावनाभिः ।
 संकल्प्यसंवार्धितधर्मरागैः कर्माणि तेषां तनुतामुपेदुः ॥ ६५
 कर्मस्तनुत्वं गतवत्सु तेषु महात्मनां सद्यशसां तपोभिः ।
 गते पुनर्वर्षशते यतीनामृद्धिप्रवेका विविधा बभूवुः ॥ ६६
 महर्द्धिभिन्नैकविधा निरीशा दुरासदाभिर्निःसुरासुरैश्च ।
 प्रत्यक्षविज्ञानविभूतिभिश्च प्रभावयां जैनमतं बभूव ॥ ६७
 अहत्प्रणीतागमदृष्टिसत्त्वाः सहेतुदृष्टान्तवचःप्रगल्भाः ।
 नयप्रमाणप्रणिधिप्रवीणा विवादिनां वादमदं विनिन्युः ॥ ६८
 केषांचिदक्षीणमहानसत्त्वं क्षीराश्रवत्वं वरकोष्ठबुद्धिः ।
 संभिन्नता वीजपदानुसारा देवर्द्धिरिष्टैः सगुणैरुपेताः ॥ ६९
 केषांचिदामर्शनमात्रमेव तथा परेषामथ विष्णुषस्तु ।
 क्षेवलार्मलाश्चैव तपोधनानां सर्वं च भैषज्यमभूत्परेषाम् ॥ ७०

१ [सदृशप्रयोगः]. २ म °मनूढँ. ३ [संकल्पः]. ४ [तनुतामुपेदुः].
 ५ [कर्मस्तनुत्वं]. ६ क क्षेलः.

केचिज्जले पुष्पदले च केचित्फलेषु पत्रेषु मरुस्थलेषु ।
 श्रेण्यां च तन्तावथ जङ्घया च प्रयान्ति सम्यक्तपसः प्रभावात्
 केचिद्भूतुर्द्विमहातपस्का उग्रैश्च दीप्तैश्च महातपोभिः ।
 घोरैस्तथा घोरपराक्रमाश्च तपोऽधिकध्यानपराः कृतार्थाः ॥ ७२
 विशिष्टनानन्दिगुणोपयन्ना महर्षयः क्षान्तिदयासमेताः ।
 निर्दर्शनं तद्यमवत्परेषां धर्मार्थिनां भव्यजनोत्तमानाम् ॥ ७३

इत्येवं श्रुतविभवा महर्षयस्ते
 सच्छीलव्रतगुणभावनाभिरिक्ताः ।
 त्यक्ताशाः स्थितमतयः प्रशान्तदोषा-
 स्तीर्थानि प्रवरधियो बभूतुरुर्व्याम् ॥ ७४
 संक्षेपात्युथुयशसां तपांसि तेषां
 प्रोक्तानि प्रथितमहागुणोदयानाम् ।
 भूयोऽपि क्षितिपतियोषितां तपांसि
 राजर्षेरमितगुणस्य चाभिधास्ये ॥ ७५
 इति धर्मकथोदेशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 महर्षीणां तपोविधानवर्णनो नाम
 त्रिशतिंतमः सर्गः ।

१ [॑भिरक्ताः]. २ [त्रिशत्तमः].

[एकत्रिंशः सर्गः]

नरेन्द्रपत्न्यः श्रुतिशीलभूषा निर्वेदसंवर्धितधर्मरागाः ।
 विशुद्धिमत्यः प्रतिपन्नदीक्षास्तदा बभूवुः परिपूर्णकामाः ॥ १
 दीक्षाधिराज्याश्रियमभ्युपेता अनर्थ्यसत्संयमरत्नभाजः ।
 प्रीतिं परां प्रापुरदीनभावा दारित्र्ययोषा इव रत्नलाभात् ॥ २
 अर्थाननर्थाप्रतिमान्विधिज्ञाः विषोपमांस्तान्विषयान्विदध्युः ।
 ता मेनिरेऽरीनिव सांपरायांस्तत्त्वार्थदृष्ट्याहतधर्मरागाः ॥ ३
 व्रतानि शीलान्यमृतोपमानि दयादमौ मातृपितृत्वतुल्यौ ।
 गुणा विशिष्टा वरभूषणेभ्यो ज्ञानं च दध्युर्नयनं तृतीयम् ॥ ४
 ऐश्वर्यवीर्यच्छ्रुतिजातिवित्तिविज्ञानशिल्पर्मदिरामदैश्च ।
 पुरापि ता मुक्तिपथं प्रपद्य शान्ता बभूवुर्नरदेवपत्न्यः ॥ ५
 तपोधनानाममितप्रभावा गणग्रणी संयमनायैका सा ।
 मुनीन्द्रवाक्याच्छ्रमणार्जिकाभ्यो दिदेश धर्मं च तपोविधानम् ६
 ताश्च प्रकृत्यैव कलाविदग्धा जात्यैव धीरा विनयैर्विनिताः ।
 आचारसूत्राङ्गनयप्रभज्ञानाधीयते स्माल्पतमैरहोभिः ॥ ७
 महाबलानिनिद्र्यकुञ्जरांस्तान् दपोच्छ्रुतान्गर्वमदावलिसान् ।
 वशं प्रपन्नान्विवशं प्रणिन्युर्वृद्धयुक्तौः क्षान्तिशिलानिशातैः ॥ ८
 अनर्थसंपादनशक्तिमान्यौ मनोमहादण्डधरो महात्मा ।
 दूरंगमः प्रेरयितेन्द्रियाणां ताभिर्जितो मोहनृपाग्रयायी ॥ ९
 वाक्यायचित्ते प्रणिधेः प्रयोगं क्षणेऽपि पापास्तवहेतुभूतम् ।
 अनर्थकं तत्त्रिविधं गुणिन्यां नोचुर्न चक्रुन्त हि संस्मरंश्च ॥ १०

१ [गुणान्विशिष्टान्], २ [°शिल्पर्मदिरा°]. ३ म °नासका, [°नायिका]
 ४ क °निशान्त्यैः. ५ [°शक्तिमान्यो]. ६ क संस्मरश्च, [सस्मरश्च].

गणाग्रभूषाः पृथुशीलभारा विच्छिन्नकामाङ्करपुष्पबीजाः ।
 स्वशक्तिः संपरिगृह्य योगं तनूनि ताः कर्मरजांसि चक्रः ॥ ११
 उपोष्य पञ्चत्रिष्ठदष्टुरात्रं पक्षश्च मासानपि षट्चतुष्कान् ।
 तपःकृशीभूतशरीरसंस्था आहारमाजहुरथाल्पमल्पम् ॥ १२
 तपोऽग्निनिर्दिग्धविवर्णदेहा व्रतोपवासैरकृशाः कृशाङ्गच्यः ।
 गविशीर्णवस्त्रावृतगात्रयष्ट्यस्ताः काष्टमात्रप्रतिमा वभूवुः ॥ १३
 पुरे वने ऽरातिजने जने वा मानापमानादिषु तुल्यभावाः ।
 त्वक्त्वात्पसंगा निरवध्यचेष्टा धर्मानुरागा वसुधां विजहुः ॥ १४
 यथा प्रसूता महतां कुलेषु यथैव वासन् भ्रुवि राजपत्न्यः ।
 यथैव विज्ञानपथं प्रपन्नास्तथैव शेष्टुः सुतपांसि साध्यैः ॥ १५
 अथैवमुक्तानि तपांसि तासां तपस्विनीनां वरशीलभासाम् ।
 वराङ्गराजर्षितपोविधानं संक्षेपतस्तप्युथगेव वक्ष्ये ॥ १६
 विहाय राज्यश्रियमद्भुतश्रीस्तपःश्रियं संश्रयितुं कृताशः ।
 निस्संगिनीं तां प्रतिपद्य दीक्षां जग्राह धीरः स महाव्रतानि १७
 आचारमादौ समधीत्य धीमान्प्रकीर्णकाध्यायमनेकभेदम् ।
 अङ्गानि पूर्वांश्च यथानुपूर्व्यमल्पैरहोभिः सममध्यगीष्ट ॥ १८
 विधूय संकल्परतिप्रसंगं जिनेन्द्रवाक्याधिगतार्थतत्त्वः ।
 नानाविधानं प्रतिगृह्य योगं तपश्चकारोग्रतपा महात्मा ॥ १९
 सज्जानमत्तद्विरदाधिरूढो दयातपत्रोत्तमपद्वचिहः ।
 सद्यथानचापेरितशीलबाणैर्विव्याध मोहारिमवार्यधैर्यः ॥ २०
 चारित्रजात्यध्यमथाधिरूढः स धर्मवर्मावृतर्गात्रभूषः ।
 विज्ञानकुन्तेन हि कर्मशन्त्रुं निपातयामास यतिर्विभिद्य ॥ २१

१ [पक्षांश्]. २ [तेषुः]. ३ म साध्यः. ४ म °वर्मामृत°.

पञ्चेन्द्रियैरप्रतिलब्धवीर्यं रागानिलप्रेरितधूमजालम् ।
 संकल्प्य संवर्धितकामवहिं ज्ञानाम्बुद्धुम्भैः शमयांबभूव ॥ २२
 सम्यक्त्वत्तद्वत्तनेमिवद्धं शीलोपलोत्तेजित्तीक्ष्णधारम् ।
 तपोर्गुणं वरकर्मचक्रं जघनं संगृह्य हि कामशत्रुम् ॥ २३
 कषायचोरान्विषयारिवर्गान्परीषहान्तस्मिन्थितश्च ।
 निर्वेदखड्डेन बलान्विगृह्य स खण्डशः कल्पितवाङ्गितस्मः ॥ २४
 उद्हामकामातिवलावलिसान्पञ्चेन्द्रियारण्यमतद्वजांस्तान् ।
 तपोऽर्गलैरप्रतिभिद्यरूपैः क्षमोरुवीर्यान्विरुद्धोध धीरः ॥ २५
 स मानसानिन्द्रियदुष्टचोरान्सदर्परत्नं प्रतिसंजिधृक्षुः ।
 प्रज्ञातपः संयमशृङ्खलाभिर्बन्ध दुष्टानिव चोरवर्गान् ॥ २६
 लोभोरुवैरान्सह रागभोगान्कामाशयान् क्रोधविषाग्रदंष्ट्रान् ।
 इच्छास्फुटानिन्द्रियदुष्टसर्पान्दयाम्बुद्धेसकैः शमयांबभूव ॥ २७
 कूर्मो यथाङ्गानि निजे शरीरे स्पृष्टः पुनः संहरतेऽन्तरन्तः ।
 तथैव संसारभयावकृष्टः स्वानीन्द्रियाण्यात्मनि संजहार ॥ २८
 मोहातिरोगोद्भववातरोगं द्वेषाभिधानोद्भवपैत्तिकं च ।
 तथैव हास्यानि च पञ्च धीमान्यमौषधैस्तान् शमयांबभूव ॥ २९
 कामोत्तरद्धं रतिवेगतोयं कषायफेनं विषयोरुमत्स्यम् ।
 अगाधसंसारमहार्णवं तं विशोषयामास तपोबलेन ॥ ३०
 त्रिगुप्तिधारेण दयाप्रभासा चारित्रवेगातिसमीरितेन ।
 सम्यक्त्ववज्ज्ञेण निहत्य धीमान्वचूर्णयामास स कर्पशैलम् ॥ ३१
 अज्ञानतुम्बं विषयोरजानि मोहाभिरागप्रतिबद्धनेमिम् ।
 कषायकृष्णायमतीक्ष्णधारं संसारचक्रं समनुर्जिगाय (?) ॥ ३२

१ [संकल्पः]. २ क पापवहिं. ३ म शीलोपलात्तेजितः. ४ [तपोरणोप्रभः].
 ५ [°परिपन्थिनश्च]. ६ क बलान्विगृह्य. ७ म °प्रभासौ. ८ क °कृष्णः.

कषायवृक्षं विषयोरुक्कम्भं रागम्बुसंवर्धितवल्लिगुल्मम् ।
 ददाह संसारमहाटवीं तां तपोऽग्निना निष्कलुषान्तरात्मा ॥ ३३
 यथा पुराभ्यन्तरदुष्टराशि समूलका [-] विधिना चकार ।
 तथा कषायप्रमुखान् दुरन्तान् धीरः समूलोद्धरणं चकार ॥ ३४
 सम्यक्त्वचारित्रतपत्रिशूलैर्ध्यानावलीनो निशितैः सुतीक्ष्णैः ।
 मनोवचःकायघनीकृतानि विभेद मिथ्यापटलानि तानि ॥ ३५
 क्रोधं ज्वलन्तं कृपया जिगाय मानं जिगायाप्रतिमार्दवेन ।
 मायामृजुत्वेन जिगाय धीमान् लोभं विमुक्त्या मतिमान्विजिग्ये
 शैलाग्रदुर्गान्तरकन्दरेषु नैवरगम्येषु च काननेषु ।
 नदीतटस्थदुमकोटरेषु वने पितृणामवसत्कदाचित् ॥ ३७
 उद्यानमुत्कृष्टगृहान्तराणि तपोधनानां च पुनर्निवासान् ।
 महाटवीं व्यालमृगाभिजुष्टां कदाचिदेको न्यवसन्तुसिंहः ॥ ३८
 सद्यानचारित्रतपःप्रकर्त्तैः प्रशान्तरागः प्रविधूतपाप्मा ।
 विधिज्ञदेशे निरुपद्रवे च ज्ञानोपयोगं स मुनिश्चकार ॥ ३९
 कदाचिदन्यैर्मुनिभिः प्रशान्तैः श्रुतार्णवान्तर्गतवद्विरार्थैः ।
 तपोऽग्निकैर्धर्मधुरंधरैश्च सहोपविष्टः सुविशुद्धचेताः ॥ ४०
 कदाचिदुन्मार्गनिरञ्जितानां दुर्वृत्तदुर्भाषणतत्पराणाम् ।
 मिथ्यामहामोहतमोवृतानां चित्तप्रसादाय दिदेश धर्मम् ॥ ४१
 कल्याणभाजां स कदाचिदीशो भव्यात्मनां भावितसत्कृतीनाम्
 सद्धर्ममार्गश्रवणप्रियाणां हितोपदेशं प्रचकार धीमान् ॥ ४२
 कदाचिदन्तर्गतशुद्धभावो विचित्रपञ्चेन्द्रियरागबन्धः ।
 आस्थाय मौनव्रतमप्रकम्प्यस्तस्थौ स रात्रिप्रतिमामभीक्षणम् ॥ ४३

१ [°महावनं तत्]. २ म °मार्दनेन. ३ [नरैरगम्येषु]. ४ [बद्धः].

कदाचिदुत्कृष्टतपः प्रभावो विविक्तदेशे स चतुर्दिनानि ।
 चतुर्मुखस्थानगृहीतयोगं निनाय निष्कम्पधृतिर्महात्मा ॥ ४४
 कदाचिदुच्छङ्गमहागिरीणां सूर्याशुभिस्तस्महाशिलासु ।
 प्रलम्बहस्तः समपाददृष्टिस्तस्थौ महर्षिः स्वरजःक्षयाय ॥ ४५
 कदाचिदाघूर्णितमण्डलानां सविद्युतां प्रक्षरतां घनानाम् ।
 धाराभिधौताचलगात्रयष्टिस्तस्थौ महर्षिः स्वरजःक्षयाय ॥ ४६
 कदाचिदाघूर्णितमण्डलानां सविद्युतां प्रक्षरतां घनानाम् ।
 धाराभिधौताचलगात्रयष्टिस्तस्थौ रजन्यां स घनागमेषु ॥ ४७
 गृही [~] ^२ ग्योभ्यवकाशयोगो प्रवाति वातायति शीतले च ।
 तुषारपातातिविरुक्षिताङ्गः कदाचिदासैकमनः प्रविष्टः ॥ ४८
 कदाचिदत्यर्थमहोपवासैश्चान्द्रायणायैः प्रथितैरनेकैः ।
 कृशीकृताङ्गो नियमैर्यमैश्च मुनिः प्रचक्रे सुतपोऽतिधोरम् ॥ ४९
 जिनेन्द्रसूत्रोक्तपथानुचारी संयम्य वाकायमनांसि धीरः ।
 सुदुर्धरं कापुरुषैरचिन्त्यं द्विषट्प्रकारं तप आचचार ॥ ५०
 प्रसन्नभावात्तपसः प्रकर्षात्क्षमान्वितः स्वादथुभपणाशात् ।
 अखण्डचारित्रवतो महर्षेषुत्पेदिरे तस्य हि लब्धयस्ताः ॥ ५१
 सर्वौषधित्वं च महातपस्त्वं क्षीरास्ववत्वं च सचारणत्वम् ।
 सुलभ्य लोकातिशयानगुणौघान्सुखं विजहे भुवि वीतशोकः ॥ ५२
 समाप्तयोगैः परिपक्षविद्यैर्विहर्तुकामैरविषण्णभावः ।
 दयात्मभिः साधुगणैरनेकैः क्षितिं विजहे स्वतपोऽभिवृद्धयै ५३
 क्षान्त्या च दान्त्या तपसा श्रुतेन ऋद्धया च वृत्त्या व्रतभावनाभिः
 प्रकाशयामास जिनेश्वराणां स शासनं शासनवत्सलत्वात् ॥ ५४

१ क वाराभि० २ क (°तयो०), [गृहीतयोग्या०]. ३ [वायवति०].
 ४ म °प्रमणात्, [क्षमान्वितत्वाद्युभ०].

पुराणि राष्ट्राणि मटम्बखेटान् द्रोणीमुखान्खर्वडपत्तनानि ।
 विहृत्य धीमानवसानकाले शैनैः प्रेषेदे मणिमत्तदेव ॥ ५५
 तैः संयतैः सागरवृद्धिमुख्यैर्यथोक्तचारित्रतपःप्रभावैः ।
 संन्यासतस्त्यक्तुमनाः शरीरं वराङ्गसाधुर्गिरिमारुरोह ॥ ५६
 आरुह्य तं पर्वतराजमित्यं तपस्त्वभिः सार्धमुपाचयोगैः ।
 निर्वाणभूमौ वरदत्तनाम्नः प्रदक्षिणीकृत्य नमश्चकार ॥ ५७
 पवित्रचित्तो गतरागवन्धः पल्यङ्कुतस्तत्र निषद्य धीमान् ।
 कृताञ्जलिः साधुगणान्समग्रान्क्षमध्वमित्येवमुवाच वाचम् ॥ ५८
 अस्तानकण्डूव्रतमण्डिताङ्गैः प्रपणिदैः पण्डितसाधुवर्गैः ।
 प्रायोपयानं कृतवान्सहैव स पण्डितः पण्डितमृत्युमिच्छन् ॥ ५९
 आजीवितान्तादशनादिभेदान्संसारसंवर्धनहेतुभूतान् ।
 विहाय धीरः स तु मोक्षकाङ्क्षी कृतप्रतिज्ञः सुखमास तत्र ॥ ६०
 अभ्यन्तरं वाह्यमपि प्रसंगं विमुच्य संक्लेशपदं सुधीमान् ।
 द्वन्द्वैर्विमुक्तोऽप्रतिकारदेह आसीन्मुनिः संयमधाम्नि तस्मिन् ॥ ६१
 स्वजीविताशां मरणानुरागं विहाय मित्रेषु ममत्वसंज्ञाम् ।
 स चानुबद्धं वनिताकदम्बमभून्मुनिर्मुक्तिपथैकचेताः ॥ ६२
 प्रणम्य पूर्वं तमरिष्टनेमिमरिष्टकर्मष्टकपाशमुक्तम् ।
 शेषान् जिनेन्द्रानपि च प्रणम्य यथावदालोच्य मुनिः स तेभ्यः
 उदन्मुखस्त्यक्तशरीरचेष्टः प्रसन्नबुद्धिः शमितान्तरात्मा ।
 आराधनां तां च चतुष्प्रकारामाराधितुं प्रारभतानुसूत्रम् ॥ ६४
 ज्ञानाश्रितां दर्शनकारिणीं च बहुप्रकारोग्रतपःश्रितां च ।
 चारित्रमेदोपनिवन्धिनीं च प्रचक्रमे कर्तुमनुक्रमेण ॥ ६५

काले प्रधानैर्विनयप्रधानैस्सन्माननाचिह्नवशप्रयोगैः ।
 ग्रन्थार्थयोरप्युभयप्रयोगैः साराधना ज्ञानविधिप्रणीता ॥ ६६
 संध्यामहीकम्पतटित्प्रचारपर्वादिनिन्देषु च दुर्विनीताः ।
 अध्यापनं चाध्ययनं च भूयो व्याघ्रेडिताद्याः प्रतिपत्प्रदोषाः ॥ ६७
 जीवादयो मोक्षपदावसाना भूतार्थतो येऽधिगताः पदार्थाः ।
 नयप्रमाणानुगतक्रमेण सम्यक्त्वसंज्ञामिह ते लभन्ते ॥ ६८
 अपोह्य शङ्कां विचिकित्सतां च काङ्क्षां निराकृत्य च वत्सलत्वम्
 अमृढतास्थापनभावने च सदृष्टिलङ्घान्युपगृहनं च ॥ ६९
 शङ्का च काङ्क्षा मतिविप्लुता च परस्य दृष्टेरपि च प्रशंसा ।
 भूयः सदानायतनस्य सेवा पञ्चातिचाराः खलु दर्शनस्य ॥ ७०
 नित्याविरोध्युत्तमसंयमस्य खेदो महावाक्तनुमानसानाम् ।
 पूर्वार्जितक्षेत्रविनाशहेतुस्तपः समुद्दिष्टमनाविलं च ॥ ७१
 तद्विप्रकारं मुनिभिः प्रदिष्टं सान्तर्बहिर्भेदविशेषयुक्त्या ।
 आध्यात्मिकं भेदमुपैति षोढा बाह्यं पुनः षड्विधमामनन्ति ॥ ७२
 बहुप्रकारं हि तपोविधानं तद्विद्यमानाशयशुद्धिहेतोः ।
 न्यायं हि दोषान्यतमप्रकोपे विशेषभैषज्यविधानदृष्टम् ॥ ७३
 रागात्मकानामुपवासयोगाद्विषान्वितानां च विविक्तवार्सः ।
 षोढान्वितानां मुनिभिः प्रणीतो ज्ञानोपयोगः सततं तपस्त्वम् ॥ ७४
 महाव्रतान्यप्रतिमानि पञ्च पञ्चैव सम्यक्समितिप्रयोगाः ।
 त्रिगुप्तयो या अवशं विधात्यश्चारित्रमेतत्सकलं मुनीनाम् ॥ ७५
 ईर्यासमादाननिसर्गयत्नो वाणीमनोगुप्तिरपि प्रकाशे ।
 अनिन्द्यभुक्तिः प्रथमतस्य ता भावनाः पञ्च मुनिप्रणीताः ॥ ७६

१ म न्यायं. २ म °दृष्टौ. ३ [°वासयोगो]. ४ म विभक्तवित्तः. ५ [मोहान्वितानां].

क्रोधस्य लोभस्य भयस्य चापि हास्यस्य चात्यन्तमपोहनं च ।
 वाचः प्रयोगोऽप्यनुवीचियुक्त्या पञ्चैव सत्यव्रतभावनास्ताः ७७
 आदाय वक्रानुमतिसंतथैव तस्मिन्नसंगोऽपि च भुक्तिसेवा ।
 सधर्मणश्चानुगृहीतिरेवमाहुस्तुतीयव्रतभावनास्ताः ॥ ७८
 स्त्रीरूपसंदर्शनसंकथानां तदाकुलावासरतिस्मृतीनाम् ।
 त्यागः प्रणीतः सरसस्य चापि ता भावना ब्रह्ममहाव्रतस्य ७९
 मनोहरेष्वप्यमनोहरेषु मुनेरसंकल्प्यसमा मतेषु ।
 शब्दादिषु स्यात्समवृत्तिचेतस्ता भावनाः पञ्चमसङ्गतस्य ॥ ८०
 विसर्जनीयान्यथ वर्जयित्वा गुणानुपादाय यथाक्रमेण ।
 ज्ञानोपयोगात्पश्येन तेन ज्ञानं समाराधितमात्मशक्त्या ॥ ८१
 तथाभिचारातपनीयं सर्वं तज्ज्ञावनाश्रापि सुसाधयित्वा ।
 नित्योपयोगोऽस्ववलितैकदृष्टिः सम्यक्त्वमाराधितवान्यथार्थम् ॥
 अध्यापकं चापि ततः पुरस्तात्कृत्वानुपूर्वोत्तरवर्धितं तत् ।
 विजित्य सर्वान्स परीषहारीस्तपः समाराधितवान्महात्मा ॥ ८३
 सभावनात्युग्रमहाव्रतानि रक्षन्स यत्नात्समितः समित्या ।
 त्रिगुप्तिगुप्तो विगतप्रमादश्चारित्रमाराध्य यथोपदिष्टम् ॥ ८४
 संहृत्य सर्वाण्यपि गोचराणि तथेन्द्रियाण्यात्ममनश्च तेभ्यः ।
 अचिन्तयन्द्वादश चिन्तनीयान्याराधनोत्कर्षगतो यतीशः ॥ ८५
 संध्यातैडिद्विहिंशिखाम्बुदोर्भिं तृणाग्रलग्नाम्बुकणश्रियं च ।
 समावृतीनीह च जीवितानि नृणामिति प्राहुरनित्यतायाः ॥ ८६
 व्यादारितास्ये सति यत्कृताङ्गे न प्राणिनां प्राणैमिहास्ति किञ्चित् ।
 मृगस्य सिंहोग्रनिशातदंष्ट्रा यत्र प्रविष्टात्मतनोरिवात्र ॥ ८७

१ [°मति तथैव]. २ म सुक्तिसेवा. ३ [तथातिचारानपनीय सर्वान्].
 ४ [अचिन्तयद्वादश°]. ५ क °तटिद्. ६ [कृतान्ते]. ७ [त्राण°].

जातौ तिरश्चापथ देवभावे मानुष्यके नारकदुःखयोनौ ।
जीवो घटीयन्त्रमिवास्वतन्त्रो बंध्रम्यते संसृतिकल्पनैषा ॥८८
द्रन्द्रत्रयव्याप्तिषु सर्वकालमेकोऽयमात्मा स्वकृतोपभोगी ।
आध्यात्मिकं बाह्यमिहापि वस्तु न किंचिदस्त्यत्र विचिन्तनीयम् ॥
देहात्मनो भेदविकल्पनायां संज्ञादिभेदं स्फुटमन्यथात्वम् ।
विद्वानथैकं कथमत्र कुर्यात्संगं पुमान्भङ्गिनि कः शरीरे ॥ ९०
स्थानेन वीजेन तथाश्रयेण शश्वन्मलस्यन्दनसंप्रयोगात् ।
शरीरमावेदशुचीति मत्वा शुचित्वमास्मिन् विदुषा न कार्यम् ॥९१
आत्मा नु चेतोविवरेण तेन गृह्णात्ययं कर्म सहेन्द्रियेण ।
तथाम्बु नः छिद्रमतिस्तथैव प्रयोग एवं परिचिन्तनीयः ॥ ९२
संस्तम्भ्य चेतोविवरं यथावत्तथेन्द्रियद्वारमथो पिधाय ।
स्यात्संवृतस्याश्रवसंनिरोधो नावौ यथा वारिणि संवृतायाम् ॥९३
यथापि दुर्वद्विशिखाभिमर्शान्निमेषमात्रेण सभस्मता स्यात् ।
तपोबलात्प्राक्तनकर्महानिस्तथा मुनेः सा खलु निर्जरोक्ता ॥९४
लोके॑ द्विधा कारणकार्यभावैरुत्पादभङ्गस्थितिसंप्रयुक्तः ।
पञ्चास्तिकायात्मकसंनिबद्धो विचित्ररूपस्थितिं लोकचिन्ता ॥९५
अनन्तशः संसरतोऽस्य जन्तोः सुदुर्लभा बोधिरिति प्रचिन्त्य ।
तां प्राप्य तस्मिन्न खलु प्रमादः कर्तव्य इत्येव हि बोधिभिर्नामा ॥
यत्प्राणिनां जन्मजरोग्रस्तुर्महाभयवासनिराकृतानाम् ।
भैषज्यभूतो हि दशप्रकारो धर्मो जिनानामिति चिन्तनीयम् ॥९७
इत्येवमाद्या अनुचिन्तनीयाः प्रोक्ता यथार्थाः क्रमशो विचिन्त्य ।
प्रसन्नचेता विनिवृत्ततृष्णः समाहितः संयतवाक्प्रचारः ॥ ९८

१ [नौशिष्ठद्रवती तथैव]. २ [नावो यथा वारिविसंवृतायाः]. ३
[लोको], ४ [बोधिचिन्ता].

मध्ये ललाटस्य मनो निधाय नेत्रं भुवोर्धा खलु नासिकाये ।
 एकाग्रचिन्ता प्रणिधानसंस्था समाधये ध्यानपरो बभूव ॥ ९९
 संसारनिस्सारमपारतीरं त्रिलोकसंस्थानमनादिकालम् ।
 द्रव्याणि च द्रव्यगुणस्य भावान्स चिन्तयामास यतिर्थार्थम् ॥
 एकस्तु मे शाश्वतिकः स आत्मा सददृष्टिसज्ज्ञानगुणैरुपेतः ।
 शेषाश्र मे वाद्यतमाश्र भावाः संयोगसल्लक्षणलक्षितास्ते ॥ १०१
 संयोगतो दोपमवाप जीवः परस्परं नैकविधानुबन्धि ।
 तस्माद्विसंयोगमतो दुरन्तमाजीवितान्तादहमुत्सज्जामि ॥ १०२
 सर्वेषु भूतेषु मनः समं मे वैरं न मे केनचिदस्ति किंचित् ।
 आशां पुनः क्लेशसहस्रमूलां हित्वा समाधिं लघु संप्रपद्ये ॥ १०३
 इत्येवमर्थान्वहुशो विचिन्त्य विधूय संकल्पमनल्पबुद्धिः ।
 तपःकृशीभूतशरीरबन्धो महामुनिर्मासिमथाध्युवास ॥ १०४
 कृत्वा कपायोपशमं क्षणेन ध्यानं तथाद्यं समवाप्य शुक्रम् ।
 यथोपशान्तिप्रभवं महात्मा स्थानं समं प्राप वियोगकाले ॥ १०५
 त्रिगुप्तिगुप्तेन दृढवतेन द्वारं नयानं [~]हितं^४ यथावत् ।
 स्थितानि कर्माणि कृशीकृतानि तपःप्रभावान्मुनिसत्तमेन ॥ १०६
 स्थित्वापि सद्ध्यानपथं निरोधौत्कृत्वा च चारित्रिविधिं यथावत् ।
 कर्मावशेषप्रतिबृद्धेतोः स निर्वृतिं नापदतो महात्मा ॥ १०७
 परीषहारीनपरिश्रमेण जित्वा पुनर्वान्तकषायदोषः ।
 विमुच्य देहं मुनिशुद्धलेश्यं आरार्थयन्तं भगवाञ्जगाम ॥ १०८

१ [नेत्रभुवोर्वा]. २ [निस्सारसंसारमपार^०]. ३ म शास्त्रतकः.
 ४ [पिहितं]. ५ क निरोधो. ६ [प्रतिबन्ध^०]. ७ [मुनिश्च^०, सुविशुद्ध^०].
 ८ [आराधनान्तं].

यथैव वीरः प्रविहाय राज्यं तपश्च सत्संयममाचचार ।
तथैव निर्वाणफलावसानां लोकप्रतिष्ठां सुरलोकमूर्धिष्टु ॥ १०९

शेषाश्र सर्वे जितरागमोहा

महाधियः संयतपुङ्गवास्ते ।

सज्ज्ञानचारित्रतपःप्रयोगाद्

विशुद्धलेश्याः सुरलोकमीयुः ॥ ११०

अनन्तरं केचन वैजयन्तं

ग्रेवेयकं ह्यारणमच्युतं च ।

माहेन्द्रकल्पं च ययुर्यतीशाः

सुरर्षयो ज्ञानपरायणास्ते ॥ १११

जिनेन्द्रपूजारतयः प्रकृत्या

विशुद्धसम्यक्त्वधियः प्रकृत्या ।

विशुद्धसम्यक्त्वधियः सुलेश्या

लोकान्तिकाः केचन संबभूवुः ॥ ११२

महेन्द्रपत्न्यः श्रमणत्वमाप्य

प्रशान्तरागाः परिणीतधर्माः ।

द्यादमक्षान्तिगुणैरुपेताः

स्वैः स्वैस्तपोभिस्त्रिदिवं प्रजग्मुः ॥ ११३

इत्येवं नरपतिना वराङ्गनाम्ना

यत्प्राप्तं सुखदुःखमप्रचिन्त्यम् ।

राज्यान्ते कृतमिह सत्तपश्च तेन

तत्सर्वं परिकथितं मया समाप्तात् ॥ ११४

तद्वक्त्या चरितमिदं मुनीश्वरस्य
 श्रीकीर्तिश्वतिमतिसत्त्वसंयुतस्य ।
 संभृण्वन्परिकथयन्पठन्मरन्यः
 सोऽवश्यं ध्रुवमतुलं पदं प्रयाति ॥ ११५
 इति धर्मकथोदये चतुर्वर्गसमन्विते ।
 स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
 वराङ्गर्षेः सर्वार्थसिद्धिगमनं नाम
 एकत्रिंशतितमः सर्गः ।

सर्गसमाप्तिपातनिकोपेतप्रन्थप्रमाणमत्र (३८१९)
 एकोनविंशत्यधिकाष्टशतयुता त्रिसहस्री ज्ञातव्या ॥

वराङ्गचरितपद्मानां वर्णनुक्रमसूची

अकारणक्रोधकषाय	६-२७	अथ जीवगणेषु	२४-२९
अक्षस्य संरक्षण	३०-६०	अथ ततो भवतो	२०-३७
अखण्डचारित्र	३०-६२	अथ त्वरा वास्ति	१६-१९
अग्निसुखं वेद	२७-७५	अथ नरपतिः	२०-२०
अङ्गाश्च वज्ञा	१६-३२	अथ प्रशस्ते	२३-१
अचञ्चलं	१०-७	अथ भूमिपतिः	२४-१
अचलेन्द्रादधः सप्त	५-४	अथ यियासुरतुल्य	२०-४६
अजराम्बरहेम	२४-७३	अथ युवनृपतिः	११-८७
अज्ञातवंशः	१९-२९	अथर्जुना तेन	१२-४०
अज्ञानतुम्बं	३१-३२	अथ वृष्टिरकालतस्तु	२४-३०
अज्ञानमूढा	३-५५	अथ सर्वगतं	२४-५२
अज्ञानावृत	१५-८३	अथ सर्वपदार्थ	२४-४९
अणुव्रतानां	११०-३६	अथ सर्वमिदं	२४-३८
अणुव्रतानि	१५-१११	अथागतः	१३-७८
अत इह मतिमन्तो	३-६३	अथानयोर्व्याधि	१४-११
अतन्द्रिताः	१०-१५	अथान्यदा	१४-७५
अतुलहर्षसमन्वित	२०-७६	अथान्यदानर्त	२८-१
अतुस्यनामा किल	२-११	अथान्यदा वृद्धतमैः	१९-१
अतो वयमिमाः	१५-५१	अथान्यदा सुखासीनं	१५-१३६
अतो वरिष्ठां	२४-६७	अथान्यदोद्यान	१४-८१
अतो विशिष्टे	१२-३७	अथामितं तं	१९-५९
अत्युच्छ्रौतैः केतुभिः	८९-५२	अथावननिद्रः स	२५-१
अत्राणाशाश्वता	१५-३१	अथावनीशः	१२-४८
अथ गुणगण	१६-११०	अथावनीशो	१७-१
अथ च धार्मिक	२०-१	अथावशिष्ठां	१८-११०
अथ च युक्तिमदर्थ	२०-२६	अथाष्टपञ्चाष्टक	२७-५०
अथ जिगमिषुतां	२८-१०८	अथाष्ठौ तानि	४-१०८

अथेतरे मान	११.८१	अधीत्य विद्याश्र	८.२४
अथेतरे वाजिगजा	६२.४५	अधोगतिश्र	५.११
अथेतरेऽप्यस्त्र	१७.७३	अधोऽधो नरका	५.११
अथेन्द्रसेनश्र	१८.७३	अध्यापकं चापि ततः	३१.८३
अथेन्द्रसेनस्य	१७.४३	अनङ्गमुक्तः स	६९.४१
अथेन्द्रसेनस्य	१८.४७	अनन्तं सर्वमाकाशं	५.१
अथैकमत्तद्विरदस्य	१६.४१	अनन्तनाम्ने	२१.५६
अथैवमुक्तश्र	२१.५३	अनन्तपर्ययं द्रव्यं	२६.२
अथैवमुक्तानि	३१.१६	अनन्तरं केचन	३१.१११
अथैवमुक्ता	६३.३५	अनन्तशः संसरतो	३१.९६
अथैवमुर्वीपति	१६.१	अनन्यदृष्टिव्यम्	२२.३१
अथैवमुर्वीपतये	६.१	अनन्यनाथा विमतीः	२८.८७
अथैवमुर्वी तु	२१.९	अनर्थकैः किं	१६.३०
अथैवं तिरश्रां	६.५४	अनर्थसंपादन	३१.९
अथोत्तमपुरे	१५.१	अनागतं कार्यं	१२.१९
अथोत्तरीयं	१२.४७	अनागसाम्यपराध	८.३१
अथोत्थाय	१०.६४	अनादिनिधने	२६.११
अथोत्थाय सुनीन्द्रस्य	१५.१३२	अनाद्यनिधनाः	२६.९
अथोपलब्ध	१५.३९	अनासचर्यागम	२२.४९
अथोभयोच्छिन्न	१८.८३	अनामयं	१००६
अथोभयोर्भूपतयो	१८.६८	अनार्यभावैः	२२.४८
अथो ह्युपस्थान	१६.२२	अनित्यभावं हि	२८.३१
अदीनसत्त्वान्	२९.३९	अनिलाहतवृद्ध	२४.५९
अदूरतस्तं	२९.७७	अनुशया तस्य	२२.२६
अदूरतः साधु	३.३३	अनुनिशाम्य	२०.४०
अदेशकाले	२८.६५	अनुपरतमृदङ्ग	१.६९
अद्विः पवित्रीकृत	२३.६९	अनुपायवती	२४.५६
अद्वापि तस्य	२५.२०	अनुप्रभाष्यैवम्	२१.७१
अधित्सवः केचन	३.२४	अनुभवन्विषयांश्च	२०.४

अनुव्रतानां च	१०३०	अन्योन्यनाम	१७०२
अनेककोट्यस्सरसां	२८०९१	अन्योन्यमर्मणि	१८०४४
अनेकजात्यन्तर	८०५	अन्योन्यमुक्तानि च	१८०५१
अनेकजात्यन्तर	१३८	अन्योन्यसंप्रस्त्रय	१२०२४
अनेकजात्यन्तर	२२०४०	अन्योन्यसंभाषण	१९०३७
अनेकदीपावलि	१००३९	अन्योन्यहस्तैः	२०३
अनेकयुद्धप्रति	२३०७	अपकजम्बूफल	८०४७
अनेकयोनिष्ठति	६०५१	अपनयाशु जड	२००५७
अनेकविज्ञान	१३०३२	अपरपक्षपराभव	२००८१
अनेकवेषो बहुदेश	१७०१८	अपराश्रेतना	१६०३७
अनेकसल्लक्षण	२०४	अपेर संनिवृत्याशु	११०४
अनेकहस्यश्व	१७०२८	अपहते सुसुते	२००६
अनेकान्तोऽपि	२६०८२	अपातकत्वाच्च	२५०४२
अनेकोपद्रवाकीर्णी	७०८०	अपात्रदानाश्र	७०४८
अन्तयुक्तप्रभा	७०१३	अपात्रदानेन	७०२९
अन्तःप्रकोपात्	१७०६०	अपास्य मिथ्यात्व	२९०८७
अन्तर्दधुर्गुल्म	१८०१०८	अपि च पर्वणि	२००५५
अन्तर्बहिश्चापि	२२०७३	अपेतनक्रो	१३०२१
अन्तर्मुहूर्ते कथितं	६०४४	अपेतभाग्यस्थिर	१४०७७
अन्धे यथा	११०४२	अपेतानिद्राक्षि	९०४७
अन्यच्च लोके	१९०२३	अपेतसामानि वचासि	१६०१६
अन्यांश्च सन्मान्य	१७०१०	अपेत्य शङ्का	३१०४९
अन्यार्थसंबीडन	१९०४७	अप्सरोभिश्चिरं	१७०२८
अन्यायवृत्तिर्न	२८०१६	अबुद्धिमद्भिः	१२०२०
अन्ये च तेषां	२०७२	अबुधघृदय	२४०७७
अन्येऽपि सामन्तरूपा	२९०८८	अभव्यमिथ्यात्व	११०१३
अन्ये पुनः प्राक्	३०२७	अभूतपूर्वोत्तम	२२०७
अन्योन्यगीत	७०६०	अभूत्यव्यंभः	२७०४६
अन्योन्यदन्तांस्तु	१८०१४	अभूषणानादन	२८०१०४

अभेदामच्छेद्य	१००९	अर्थाननर्थाप्रतिमान्	३१०३
अभेदासश्वैः	१००१०	अर्थ्ये यशस्यं	१६०७४
अभ्यन्तरं बाह्यमपि	१००१८	अर्धतृतीयद्विपस्य	४०२१
अभ्यन्तरं बाह्यमपि	३१०६१	अर्हत्प्रणीतश्रुति	२८०९९
अभ्यन्तरस्य नगरस्य	१००३४	अर्हत्प्रणीतागम	३००६८
अभ्यर्ण एषोपि	१००६४	अर्हद्विः प्रोक्ततत्त्वेषु	२६०१०
अभ्यर्णमायान्तम्	१००४०	अर्हद्वचःस्तम्भं	३००२२
अभ्यर्णयोगात्	१००६६	अर्हन्त एवाकृपया	२५०९०
अभ्यागतं	१२०२	अर्हन्त एव चिजगत्	२५०३१
अभ्यागतानास	२०४४	अर्हन्त एवाभ्यदान	२५०८९
अभ्येत्य दूरादपि	१६०८२	अर्हन्मतमिदं	२६०१
अमातिराष्ट्रे त्वजिताय	२१०५७	अर्हन्मुखागतमिदं	१०५
अमात्यसेनापति	३०१४	अर्हन्मुनीन्द्रागम	२३०९३
अमात्यसेनापति	२८०१२	अहेंस्त्रिलोक	१०१
अमेयवीर्यत्युति	२८०३३	अलाभलाभादि	२८०५६
अयत्नतस्त्वं	१४०५२	अल्पश्रेणात्प	२२०४७
अयमिन्द्रसमो	२४०१६	अवगम्य बुधस्तु	२४०५८
अयमेव महापन्थाः	२६०६८	अवग्रहेहावायानां	४०११
अयं च राजेन्द्र	१६०६९	अवश्यान्यांस्तु	१८०३७
अयं विधिः	१३०७	अवधिः परमाहश्च	४०५६
अयःपिण्डो जले	५०२९	अवनिराज्यधुरं	२००८३
अरप्यवासो न	१२०५५	अवश्यमन्यत्र	१८०१२८
अरातिवर्गान्	२९०३४	अविदितं भवता	२००४९
	२८०६७	अविरोधः कुतः	२६०७५
अरिष्टनेमिर्मुनि	२७०८८	अवेश्य चित्रस्थमतीव	१९०४४
अरिष्टनेमिर्षभो	२७०९०	अशक्रमित्रं	१००८
अरिष्टनेमिः किल	२७०८५	अशुभशुभफलस्य	७०६७
अरिष्टनेमिर्वर	३०१	अश्रद्धाना ये	२६०८
अरिष्टमैरेय	७०१५	अश्वक्रियांसु	१२०३६

अष्टादशश्रेणि	११०६३	अस्मिन्पुरे ये	१५०७६
अष्टादशश्रेणि	१४०७१	अस्मै न मे दन्ति	१६०५१
अष्टादशश्रेणि	१९०२५	अस्वादुकं निर्लवणं	३००८
अष्टानां कर्मणां	४०१०४	अस्वामिकार्याणि	१६०३६
अष्टाहिंकं शिष्ट	२३०९४	अहं च अत्रैव	१६०८१
अष्टभिराभिर्मुखि	२०७०	अहं पुरा	१३०३७
अष्टाविमे भूपतयः	२०३१	अहं सुदुःखा	१३०३१
अष्टोत्तरग्रामशतं	२३०९१	अहीनपञ्चनिद्र्य	२२०१५
अष्टोत्तराः शीतजलैः	२३०२६	अहो क्षमा धैर्यम्	२१०१०
असत्प्रसूतिश्च सतो	२५०७२	अहो तपस्वी	१६०४०
असत्प्रसूतिस्त्वसतो	२५०७१	अहो तपस्वी	१६०९९
असंगतात्	१००२३	अहो दुरन्ता	१३०५५
असंयतेभ्यो वसति	७०४६	अहो नृपेऽयं	२२०६३
असंयुक्तास्तु	२६०२२	अहो वराका	६०२१
असंहितं प्राक्	२०२४		
असातवेदनीयेन	४०२६	आकर्णपूर्णानि	१८०९
असामयुक्तं	२१०६२	आकर्ण नादं	१२०६४
असिवद्यादिकोशवच्च	२४०५०	आकाशं व्यापि	२६०३१
असुहृदो वन	२००४७	आख्यायिकाभिश्च	१५०९५
असुक्षिक्रमि	१४०२२	आगर्भतो द्वातसुखस्य	२५०४९
असूक्ष्मिक्षिच्च	१०५०	आचन्द्रतारं जयतु	२३०९७
असौ वराको	१६०२५	आचारमादौ	३१०१८
अस्तिकस्तु स्वपर्यायैः	२६०२६	आ जन्मनोऽवस्थित	९०४४
अस्त्यात्मा स हि	२६०७०	आजीवशास्त्राणि	८०२५
अस्त्यैकं एवात्र	२५०२	आजीवितान्ता	१००१३
अस्त्वानकष्टूत	३१०५९	आजीवितान्तात्	३१०६०
अस्त्वानभूतिवत्	३००३५	आशापितास्ते	११०५७
अस्त्वानयोगा मल	३००३३	आतापयोगं परिगृह्य	२५०५७
अस्त्वान्वा नय	१५०४७	आत्मा तु चेतो	३१०९२

आमैव चात्मनो वंधुः	१५०७९	आप्यायितः	१२०५१
आदर्शसिंहेभ	७०५८	आफुलचारविमल	१०५६
आदाय तन्मानुष	२१०२१	आबाल्यतः शान्ततमस्य	२९०२९
आदाय वक्रानुमतिः	३१०७८	आप्रान्तका दाढिम	२२०७०
आदितस्तु त्रयाणां	४०३९	आयान्तमारोपित	१८०२१
आदित्यचन्द्र	१००३६	आयान्तमालोक्य	१८०५५
आदित्यतेजो	९०१५	आयान्तमालोक्य	१८०८
आदित्यतोऽन्यो	१००५६	आयुर्नराणामथ	८०६७
आदित्यसंख्या	६०४५	आयुर्वलरोग्य	२९०२२
आश्वश्च चक्री	२७०४०	आयुश्च पञ्चमं	४०४
आश्वश्च संख्याः	२७०२९	आयुष्कं नारकं	४०३४
आश्वस्तु नाभिर्जित	२७०७१	आरुह्यं तं पर्वत	३१०५७
आश्वस्त्रिपिष्ठश्च	२७०४२	आरुह्यं नीलाद्रि	१८०२७
आश्वः क्रोधोदयः	४०६६	आरुह्यं रत्नोज्ज्वल	३०३०
आश्वभवत्सा	२७०७४	आरोहणाद्वारास्वतो	२९०७
आश्वे द्वे मोहनीयं	४०८	आरोहकाः	१००३०
आश्वो जिनेन्द्रस्त्वजितो	२७०८१	आरोहवाहस्य	२१०६२
आश्वो मानोदयः	४०७०	आर्तं च रौद्रं	१००१६
आश्वो मायोदयस्तीत्रो	४०७४	आर्द्धचन्दन	७०५९
आश्वो लोभोदयः	४०७८	आवेष्य तत्पुरवरं	१०३६
आधानतः स्नेह	२८०८६	आश्र्वयमस्मान्	१४०५६
आनन्दभेर्यः	१८०११६	आसाद्य तत्	१२०७९
आनन्दितप्रीतिमुखे	११०६२	आसामनर्थमूलान्ये	५०६८
आनन्दिनी नाम	३०१३	आसीहिवो निजगुणैः	१०२३
आनीतमर्थे	१४०५८	आसीन्नेरन्द्रो	१६०५
आनीय लोकत्रय	२३०६०	आसुं भावम्	५०९१
आपः पयः पुष्प	२३०१८	आस्वादन्ते निरास्वादान्	५०८६
आपृच्छय भूयः	३०३६	आहत्य पुच्छेन	१२०५९
आपो हि शान्त्यर्थे	२३०१९	आहारदानं मुनि	२३०३२

आहूय तं पुत्रवरं	२२०३१	इति ब्रुवन्नेव	१८०९०
आहूयमानास्वरया	२८०८०	इति ब्रुवाणस्य	१३०२४
आहोस्तिकनकमयं	१२०८६	इति मधुरवचोभिः	२४०७६
आहोस्तिवदज्ञानतया	११०८	इति मान्त्रिवरैः	२४०२०
इश्वाकुवंश्याः	२७०८६	इति महीपतिना	२००६७
इश्वाकुहर्युग्र	८०४	इति वचः कथितम्	२००५०
इति कथितमुदार	७०६६	इति वचः सदसि	२००१९
इति कुलकरदेव	२७०९३	इति वचोविरेते	२००५३
इति गजरथ	१७०८९	इति विमतिमति	२५०९१
इति गुणवति	२१०७९	इति समाप्य	२००४४
इति तस्या वचः	१९०७१	इति सरित्पतिवृद्धि	२००७०
इति धर्मकथोदेशे	(सर्गान्ते)	इति सुवानं	१३०११
इति धर्मफलं	८०६८	इतोऽमुतो भग्न	१८०१००
इति नगरमनेन्द्र	१०७०	इत्थं गते	१२०६३
इति नरपतिपुत्री	१९०७८	इत्थं ब्रुवाणा	१९०५०
इति नानाविचित्राणि	१९०५३	इत्थं ब्रुवाणा	२८०८९
इति नृपतिरपास्य	२३०९६	इत्थं व्यतीते च	२२०२०
इति नृपवनिता	२८०१०७	इत्याजाप्य	१९०११
इति नृपभिहितो	२००७८	इत्युक्तवत्युत्तम	१९०६२
इति निवृत्तगिरि	२००२९	इत्युक्तवन्तं	१२०३२
इति पक्षबहुत्व	२४०१८	इत्युक्ता भूमुजा	१९०७०
इति प्रगज्यात्म	२१०६१	इत्यूक्तिः श्रेष्ठिनि	१४०७९
इति प्रचिन्न्यात्मनि	१६०९१	इत्येतद्यतिना	१५०१३१
इति प्रधायार्तमनि	२१०१२	इत्येतानि ब्रतानि	१००१२६
इति प्रवादैरतिलोभ	२५०१०	इत्येवमर्थाधिपतिः	१४०७४
इति प्रशंसन्	१३०८६	इत्येवमर्थान् बहुशो	३१०१०४
इति बहुविधकर्म	४०११३	इत्येवमर्हत्प्रतिमा	२२०५३
इति ब्रुवन्नं	२१०२४	इत्येवमाघोप्य	१६०२०

इत्येवमात्मनि	१२०७	इमं च लोकं	२८०३२
इत्येवमादि स्फुट	२३०१००	इमामवस्थां	१३०७३
इत्येवमादीनि	३०६१	इमाः स्वसारः	१४०७३
इत्येवमादीनि	२२०६४	इमान्स्ववश्वून्	१६०८४
इत्येवमादीन्नपतिः	२१०५७	इमे वयं चापि	२०७७
इत्येवमाद्या	३१०९८	इष्टकापाकसंदर्भी	४०९१
इत्येवमाभाष्य	१६०१०५	इष्टैर्वियोगोऽप्रिय	२८०९५
इत्येवमाभाष्य	११०८४	इह जन्मनि यः	२४०७२
इत्येवमुक्त्वा तद्	२३०८३	इह प्रकुर्वन्ति	२५०३६
इत्येवमुक्ता प्रतिभग्न	१९०७२	इह प्रणिर्वर्तित	२३०७५
इत्येवमुक्ता	२०५०	इह विहाय हि	२००५२
इत्येवमुक्ता वसुधा-	१६०५२	इहायशीलाः	१९०६८
इत्येवमुर्वीश्वर	११०३४	इहैव पूजाफलतो	२२०४६
इत्येवं क्षितिपति	२२०७८	ईद्वसुरूपाणि	१९०३०
इत्येवं नरकगतिः	५०१०९	ईर्यापथादिष्विपि	११०३२
इत्येवं नरपतिना	३१०११४	ईर्यासमादान	३१०७६
इत्येवं नृपतनयस्य	२०९५	ईलीभिराललित	१७०४५
इत्येवं नृपविनिता	१५०५४५	उच्चनीचद्रुयं	४०३६
इत्येवं ललित	१८०१२९	उक्तृष्टादप्यसंख्येयान्	४०२२
इत्येवं श्रुतविभवा	३००७४	उक्तृष्य खञ्जं	१४०४१
इत्येवं सुरनिलयांश्च	९०६१	उत्तरप्रकृतयः	४०३८
इदमिह प्रहितं	२००३२	उत्पद्य हि दुराचारा	५०३१
इदं मनुष्यत्वं	१३०२२	उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति	२६०५४
इदं हि मानुष्यम्	८०६१	उत्पद्यमाना शयनीय	९०३८
इदं हि राज्यं	२८०६६	उत्पन्नान्तहसा	५०३३
इदानीं तव	५०५२	उत्पाद्येयुः स्वभुजेन	९०४८
इन्द्राश्च चन्द्रसूर्ये	१५०९७	उत्पादनं चोद्रमनं	३००५७
इन्द्राश्च सामानिक	९०५०	उत्पेक्षिरे कारणः	२७०३२
इन्द्रियाणां च पञ्चानां	४०८८		

उत्सापणा वाप्यवसापणा	२७०२७	उपेन्द्रसेनस्य वरायुधानि	१८०५९
उत्साहमन्त्रप्रभु	१६०६०	उपेन्द्रसेनं प्रति	१८०२३
उत्सूत्रं ये च	४०४५	उपेन्द्रसेनं युव	१८०९३
उदन्मुखस्यक्त	३१०६४	उपेन्द्रसेनाभिहत	१८०२५
उदारवृत्तैरुह	३०३	उपेन्द्रसेनाहत	१८०४८
उदारा रुक्षक्षांसि	५०९३	उपेन्द्रसेन विमुक्त	१८०५३
उदितकाञ्जन	२००८८	उपेन्द्रसेनो बलवानिति	१६०७२
उदितबालदिवाकर	२००८	उपेष्ठ पञ्चनि	३१०१२
उदितबालरवि	२००८२	उभयोरन्तरालः	२६०२९
उद्धामकामातिबल	३१०२५	उरसु केचित्	१७०६१
उद्धारपल्यात्प्रतिगृह्य	२७०२३	ऊरु परशुभिः	५०५७
उद्धार्य खड्डं	१४०२९	ऊर्ध्वप्रहरे	१४०४०
उद्दिद्य भूमि	२२०७६	ऊर्ध्वा दिवार्के	३००३६
उद्यानपर्वत	१०३५	ऊर्ध्वाधो दिग्	१५०११७
उद्यानपालः प्रविलोक्य	३०९		
उद्यानपालस्य वचो	३११२	ऋजवो वाङ्मनः	४०९८
उद्यानमुक्तृष्ट	३१०३८	ऋजुमितश्च विजेया	४०१९
उद्यानयोने	१२०२६	ऋजुसूतश्च शब्दश्च	२६०५१
उद्यानयानैश्च	१९०३६	ऋतुषु क्रमसंभवेषु	२४०४
उपगतं ललिताह	२००६४	ऋतुसु मासद्रव्य	२७०६
उपगम्यावनीशस्य	१५०४९	ऋते द्रव्यान्	२६०५५
उपद्रवासद्य	२१०४५		
उपयोगलक्षणा	२६०६	एकक्षेत्रात्तथैकत्वात्	२६०३४
उपर्युपर्युच्छ्रुत	२३०१६	एकस्तु मे शाश्वतिकः	३१०१०१
उपवासेन	१५०१४२	एकस्य विप्रस्य	२५०२५
उपाश्रितांस्तान्	३००३	एकस्य हेतोः	१६०२८
उपेन्द्रमुक्तानि	१८०४६	एकस्य हेतो	१८०१२२
उपेन्द्रसेनस्तु	१८०१९	एकं भयं समासृत्य	४०८६
उपेन्द्रसेनस्य युवा	१८०३२	एकः समुद्रो	९०५६

एकाकिनारण्य	१४०१	एवं जनानां	१९०३७
एका गतिनिवृत्तिः	२८०९७	एवं जने	२६०१०५
एकाधिकास्तु	१००२९	एवं तपःशील	३००४०
एकान्ततः	१४०९६	एवं तयोस्तु	१९०३८
एकान्ततो निम्बरसः	३०५३	एवं दुःखार्णवे	१९०२२
एकान्तभिक्षां	३००५४	एवं निगद्य स्थिर	२८०७९
एकान्तशीला	३००४३	एवं नृपस्यान्य	१६०३८
एकापि शक्ता	२२०३८	एवं पापविपाकेन	५०९५
एकाहिकं सप्तदिनानि	२७०१७	एवं पुत्रवियोगेन	१५०३३
एकेन मुच्यते	४०१०६	एवं पुनर्धर्मपथाद्	२८०२८
एकेन्द्रियत्वं प्रतिपद्य	६०८	एवं प्रकारेण	२३०१४
एकेन्द्रियाः स्थूल	६०३	एवं प्रकारे तुमुले	१७०७६
एकैकवृद्धिनवसु	९०५८	एवं प्रदिष्टा मनसो	१९०५८
एकैकशः केचन	३०७	एवं प्रभूत्या	२३०९७
एको धर्मस्य	१५०१०९	एवं प्रवृत्तं समरं	१८०६
एको हि पुण्यार्जित	८०५५	एवं प्रवृत्ते समरे	१७०६७
एको मुहूर्तः	२७०५	एवं प्रवृत्ते	१४०२०
एतद्वचस्ते	१९०६१	एवं बहुप्रकारैस्तु	५०१००
एतन्मृत्युजराजाति	२६०९३	एवं बहुविधैः	५०५८
एतस्य पूर्वार्जित	११०७१	एवं ब्रुवाणानपेरे	१७०३३
एतानि चान्यानपि	२२०२५	एवं ब्रुवाणास्तु	१६०४६
एतान्येव नरके	४०१०९	एवं भटाश्चित्रम्	१७०२५
एतावता काल	२७०६५	एवं महात्मा	१४०१४
एते त्वथैकेन्द्रिय	६०१४	एवं ये धृतिबल	१२०८७
एतैरुण्णन्यूनतमस्तु	१६०३९	एवं वदन्ती	१९०७६
एभिक्षिभर्मन्त्रि	१६०६७	एवं विचिन्योत्तम	२८०१०५
एवमाकल्दमानाः	१५०४८	एवंविधानां	१२०८३
एवं च पूर्वार्जित	२९०७०	एवंविधा सर्व	१६०७८
एवं जनानां बहुभिः	१७०३६	एवं विनिर्वित्य	१४०२८

एवं स पृष्ठा	३०४२	कदाचिदाशान	२८०१८
एवं स पृष्ठे	११०३	कदाचिदुच्छङ्ग	३१०४५
एवं सुमानुषं	२८०४४	कदाचिदुत्कृष्ट	३१०४४
एवं हि धर्माश्र	३०५१	कदाचिदुव्यान	१९०४३
एवं हि पैरैः	२९०७२	कदाचिदुव्यानवनेषु	२२०१६
एषा हि नूनं	१६०९०	कदाचिदुन्मार्ग	३१०४१
एषोऽपि शत्रुः	१६०५०	कन्यापि तेनैव	२०४९
ऐकानितकं	११०४	कन्याप्रदानादिह	७०३५
ऐकानितकात्यनितक	१००१	कन्यासुभूहम्	७०३४
ऐश्वर्यवीर्यद्युति	३१०६	कन्याः स्मरास्त्रागत	२३०४३
औत्सुक्यप्रतिहतमानसाः	१५०१४६	कपिञ्जला लावक	६०१८
कङ्कः काकैश्च	५०९४	करोषि यदि मद्	१५०६९
कचग्रहण प्रदने	१७०४८	कर्तृं कर्तृत्वसंयुक्त	२६०४४
कटकं कटिसूत्रं	१५०१५	कर्मस्तनुत्वं	३००६६
कटकान्यूरु	१५०५८	कर्माणि यान्यत्र	२५०३७
कण्ठिकावत्स	१५०५९	कर्माणि वा कानि	३०४२
कति गजाः समदाः	२००६६	कलत्रपुत्रप्रिय	८०५१
कथं सुखं केन	२२०२७	कल्पोपरिष्टाद्	२०१०
कथाकाव्यपुराणेषु	१५०१८	कल्प्याणभाजां स	३१०४२
कदाचित् संयतेभ्यः	१५०१४४	कश्चिद्भृत्यस्य	१४०८५
कदाचिदत्यर्थ	३१०४९	कश्चिद्भृटं पश्यत	१८०१२१
कदाचिदन्तर्गत	३१०४३	कश्चिद्भृटं योद्धुम्	१७०२६
कदाचिदन्यैः	३१०४०	कश्चिद्भृटः कान्त	१६०७९
कदाचिदभ्यस्य	२०७	कश्चिद्भृटः शूर	१९०४
कदाचिदाधूर्णित	३१०४७	कश्चिद्भृटः स्वैः	१७०२
कदाचिदाधूर्णित	३१०४६	कश्चिद्भृटः	१४०८९
कदाचिदाधूर्णितः	२२०१७	कश्चिद्भृटो मे	१६०१०६

कथायवृक्ष	३६०३३	किराटपद्मज्ज्वल	१८०७२
कथायशार्व	१००२१	किरीटहाराङ्गद	७०१७
कस्तव दोष	२६०७८	किं किन्नरीणां	१९०२८
कस्य माता पिता	१५०७८	किंचिदुनिमित्तो	४०५४
कः कस्य बन्धुः	२८०५२	किं तेन राजा	१६०६१
काङ्क्षान्ति शक	१००११	किं देवविद्याधर	२८०१०
कांश्चिन्नालमलि	५०९२	किं न श्रुतं वाक्यं	२०७८
कान्तिद्युतिज्ञान	२९०६८	किं बान्धवैवर्ण्य	२८०५०
का मे प्रिया का	१९०५५	किं वा गृहादैः	१००५२
कामोत्तरङ्ग	३१०३०	किं वा त्वयाहं	१८०५४
कामित्यजातो	२७०८४	किं वानयोः पूर्व	१९०३१
कार्यकारणसंयुक्तं	२६०४३	किं वा स्ववंशानु	१८०२८
कालस्य कालप्रतिमः	१४०३४	किं वाहनादै	१००५०
कालस्य हानिमय	२६०१०७	किं श्रेष्ठिपुत्रस्य	१७०२२
कालं पुनर्योग	२७०३	कुकुटान्मेशमार्जरान्	५०६६
कालायुधी क्षेत्रमतो	२३०२	कुण्डलाङ्कित	१५०२७
काले प्रधानैः	३१०६६	कुतश्चिदागत्य	१७०२९
कालो व्यतीतो	१६०७०	कुतस्तवायातिः	१३०८३
काश्चित्कारुण्य	१५०४५	कुतस्तु कश्चिद्	१८०१२५
काश्चिद्देवम	१५०४१	कुतीर्थप्रणीतान्	२३०१०५
काश्चिन्नरेन्द्रार्जित	१८०१२४	कुतो गतो	१४०८८
काश्चिन्मृदुपद	१५०४३	कुदृष्टिदृष्टान्त	११०११
का स्थानु	१६०८५	कुदृष्टिदृष्टान्तवचो	२५०६३
किमत्र चिन्त्यं	१३०७०	कुदृष्टिपक्षं	२३०१२
किमत्र चित्रैर्बहुमिः	२०८४	कुन्युस्त्वरो मल्लिः	२७०३१
किमत्र चित्रैः	१४०३७	कुमुतिदुरुपदेशाद्	३०६२
किमत्र पुत्रैर्द्रविण	२८०४९	कुमन्त्रिणा	१३०५२
किमम्बरै	१००४९	कुम्भीपाकेषु	५०६९
किमास्महे स्वामिनि	२९०७२	कुरु त्वमेकं प्रथमं	१८०७६

कुरुमहर्षिः कुरुवंश	२५.५६	केचित्पुनर्वानर	६.३९
कुर्वद्दिरन्यैश्च	२३.११	केचित्पुनर्लब्ध	१७.४९
कुर्वन्ति ये	७.४५	केचित्पुनस्ते नरकं	३.५२
कुलेन श्लेष	२.१०	केचित्पुनः पाशा	६०.१७
कुलेन्नितं राज्यम्	२१.७०	केचित्पुनः शान्त	८०.५८
कुहेतुदृष्टान्तविनष्ट	२५.९४	केचित्पुनः शुष्क	६०.२२
कूटाक्षवृत्ते कुटिल	६.३७	केचित्पुराणि	१७.०५३
कूपात्प्रसन्नैकरसं	७.३९	केचित्प्रभिन्ना	१७.०५५
कूर्मो यथाङ्गानि	३१.२८	केचित् समुद्घातं	१००.२८
कृतं मदीयं	२२.२४	केचिद्दश्वानु	१५.१३
कृतान्तं निर्भय	१५.४६	केचिदुण्णप्रतीकारं	५०.७९
कृतापाधात्	२१.६३	केचिद्भूवृद्धि	३००.७२
कृतापाधेषु हि	२१.१६	केचिदिसृष्टिनि	१७.०७८
कृतार्थकार्यं	१४.६५	केचिन्नृसिंहा	१७.०५८
कृतिस्तु तस्यैव	२७.९	केचिलोहेषु	५०.४०
कृते युगे नास्ति	२५.९	केनापि हयरूपेण	१९०.७
कृतोपधानाः	१८.४	केनाभिषिक्तः	११०.७९
कृत्वा कणायोपशामं	३१०.१०५.	केवलिश्रुत	४०६.१
कृत्वा स कल्याण	२.५२	केवलेन समाख्यातो	४०२.५
कृष्णाः श्वानो	५.८५	केषान्विदक्षीण	३००.६.९
केचिच्छशसुर्यवरं	८.७५	केषान्विदज्ञानि	१८०.१०४
केचिच्छूलेषु	९.४४	केषान्विदामर्शन	३००.७०
केचिजले पुष्पदले	३०.७१	केषान्विदास्यानि	१८०.७१
केचित्परेषां	८.२२	केषान्विदुक्षिस	१८०.१०५
केचित्पुनर्ज्ञान	७.४४	कैलासशैले वृषभो	२७०.९१
केचित्पुनर्भूति	१७.१९	कोशावकश्चैव	२७०.८२
केचित्पुनर्मान	८.२८	क्रकचैस्तुल्य	५०.७०
केचित्पुनर्लोभकषाय	८.३१	क्रमात्पुरं तल्लिता	१६०.१२
केचित्पुनर्लोह	१७.५४	क्रमेण यान्तः कुला	६०.५२

क्रत्यादगताध्वनिः	६०११	शितिपशासन	२०२७
क्रत्यादवर्णेन्	६०२४	क्षितीन्द्रपल्यः	२९९२
क्रियाहीनं च	२६९९	क्षीराणि वर्णेन	३५०
क्रियाविशेषात्	२५११	क्षुद्रमस्त्यः किल	५०१०३
क्रीडां यथा मत्त	१५०२	क्षुद्राधिदारिद्य	८०३०
क्रोधस्य लोभस्य	३०७७	क्षुधापमानाङ्ग	१३५७
क्रोधं ज्वलन्ते	३१०३६	क्षुधाभिमूतास्तु	६०२०
क्रोधादयो	१००१९	क्षुधाभिमूतः	१२७१
क्रोधोत्थानस्तुतीयस्तु	४०६८	क्षुधितः परिदाप्य	२४०२६
क्रोधोदयश्रुत्यौ	४०६९	क्षुधार्णवाहुर्गति	२२०१८
क्रोधोदयो द्रितीयस्तु	४०६७	क्षेत्रस्वभावप्रतिबद्ध	७०३
क्रोधोदृता	१४०१४	क्षेत्रे पथि कुले	१५०११४
क्रोधो मानश्च माया	४०३१	खड्डैः प्रहन्तून्	१७६३
क्रोधो मानश्च	४०३०	खरान् प्रदेशान्	१३७५
क्रोधो मानश्च माया	४०३२	खरोष्ट्रहस्त्यश्च	६१५
क्वचिच्च नार्यः	२१०४३	खरो मृदूनां	२२८
क्वचिच्च बन्धुक	७६	खर्जरमट्टीकमरीच	२२७२
क्वचिच्च मुक्ता	१२०१६	ख्यातार्ककीर्तिः	२२०३४
क्वचिच्चक्वचिलम्बित	२०६७	गञ्जं तमायानं	१२६५
क्वचित्तरुणां	१२०४६	गञ्जं परेषां पर	१८०३४
क्वचित्प्रवालोत्तम	२२०६०	गजा जगर्जुः	१७०३९
क्वचित्सगोधूमय	२१०४१	गजाधिरूढैस्तु	१८०१०
क्वचिद्जानां	१७०८३	गजावपातध्वनि	१८०८६
क्वचिद्विचित्रं	१९०१७	गजाश्वशालायुध	२१०३७
क यसि कि	१३०७७	गजास्तुरङ्गाश्च	१७०८०
क्षणिका यदि यस्य	२४०४६	गजेश्वरस्त्वं	१२०६८
क्षमाविभूषा-	१००१२	गर्जैर्गजाः प्रफुरद्	१७०७९
क्षयोपशम एवास्मिन्	४०१८	गणाग्रभूषाः	३१०११
क्षान्त्या च दान्त्या	३१०५४		

गण्डदेशे करं	१५०.४२	गुणैरुपेता गुरवो	२९.४२
गण्डस्थलं करे	१५०.१७	गुणैरुपेतो विजयो	२७.४३
गतयोऽभिहिता	२४.५४	गुरुं मदीयं	२६.५९
गतवति त्वयि	२००.३८	गुर्वीभिर्वर्वीभिः	१७.४७
गतसुतस्य कथा	२००.७१	गृहमध्युदितं भगवद्	२४.२४
गतासुमुद्रीक्षय	१३.६१	गृहस्थधर्मे प्रति	३.२५
गतिं तृतीयां	७.१	गृहद्विहियतुम्	२०.१५
गते नरेन्द्रे	११.१	गृहश्रेमे संवसते	२२.३९
गते नरेन्द्रे	१८.१०२	गृहीतयोग्याभ्यवकाश	३१.४८
गते वराङ्गः	२१.८	गृहीतसम्यक्त्वमति०	११.१८
गतेषु तेषु	१३.०६९	गृहीतसम्यक्त्व	११.०४४
गतेषु तेषु	२१.१८	ग्रे ह ग्रे हे	१८.११७
गतेषु तेषु	३०.१	गोत्राणि नानाविध	२५.६
गदाश्रु गुर्व्यः	१८.१३	गोत्रायुषी नाम	१०.२३
गन्धताम्बूल	१५०.११८	गोत्रे तु द्विविधं	४०.७
गन्धवर्गीतश्रुति	२९.३४	गोदानतस्ते	२५.६६
गन्धवर्गीतश्रुति	२३.१०	गोशीर्पसंजं	२३.२९
गन्धवर्गीताभिरतिः	२२.१८	ग्रन्थार्थौ च न	४.१४
गन्धवर्विद्याधर	२८०.१३	ग्रहतो जगतः	२४.३१
गन्धार्चनैश्चम्पक	२३.७८	ग्रहयोगबलाच्छुभं	२४.३२
गर्भेऽथ जातावथ	८०.६६	ग्रहाश्रु तारा	११.७३
गवामस्तकृक्षीर	८५.०६०	ग्रहेषु चन्द्रो	८०.११
गायन्ति गीतानि	१४.४	ग्रामाकरांश्चापि	१२.४४
गिरां पति	१३.०१०	ग्रामान्तरोद्यान	३०.५५
गिरिगुहामुख	२००.६१	ग्रामेषु राष्ट्रेषु	१४.०६४
गुणदेवी स्तुषा	१५०.५६	ग्रामैकरात्रं नगरे	३०.४५
गुणप्रधानभावेन	२६.०६७	ग्रीवोऽश्वपूर्वस्त्वथ	२७.४४
गुणाधिकेन	१४.०१२	ग्रैवेयकाद्याः	१०.४८
गुणांश्च शीलानि	२९.०१४	ग्रैवेयकेम्यस्तु	९.११

ग्लानातिबाल	११०५२	चत्वार एकस्य	२५०३
घटपिण्डवदेव	२४०५१	चत्वारिंशचरित्रस्य	४०४०
घण्टाप्रदानात्	२३०८२	चन्द्रांशवः सूर्य	२८०१०२
घण्टारवेनिमश्रित	१८०२६	चन्द्रांकेनक्षत्र	११०१०
घनोदधिर्घनवातः	५०५	चमूपमन्तीश्वर	१७०१४
घनोदधेस्तु	५०७	चरित्रजात्यश्वम्	३१०२१
घर्माभितसां	१००६१	चरित्रमोहं	४०६५
घर्मा वंशा शिलाख्या	१००१२	चरुभिः पञ्चवर्णैः	१००१४१
चक्रप्रदानात्	२३०८१	चलच्चामर	१५०२९
चक्रायुधस्याप्रति	७०६५	चलज्ज्वलत्कुण्डल	१८०६४
चक्रासिनाराच	२३०३९	चलत्पताका	२३०५३
चक्षुर्दर्शनावरणं	४०५५	चलत्पताका	११०६६
चक्षुर्वंशयमागम्य	२६०१८	चारुर्यहावगति	१०६०
चतुर्गतीनाम्	१९०८०	चारित्रमोहनीयेन	४०८२
चतुर्गतीनां च निगोद	६०४९	चिकित्सवः केचन	३०२३
चतुर्थभागोऽथ	२७०६४	चिरकालं तु	५०१०७
चतुर्थप्रष्ठाष्टम	३००६४	चिरं हि तीर्त्वा	१३०३
चतुर्विधस्वभावो	२६०८८	त्रौर्णेश्च पुष्पेरिपि	२३०१५
चतुर्विधं मतिज्ञानं	४०१०	चेतांसि बद्धदृढ़	१०५४
चतुर्विधामेत्य	१३०१४	चेष्टप्रधाना जगतः	२३०८४
चतुर्विधन्यासपद	३००८	छत्रं प्रभग्नं	१८०८१
चतुर्विधेनापि	२८०२७	छित्वा ये पर	५०४२
चतुर्विधो वराहारः	१५०१२४	छिन्दन्त्यसिमि	५०४७
चतुर्विधानामथ	६०४३	छिन्नाग्रहस्ता	१८०१०७
चतुर्विधानां दश	६०४८	छेदं भेदवधौ	१००१२०
चतुर्विधाकारमायुक्तं	४०३३	जगज्जना	११०६९
चतुःप्रकारा	२३०२७	जगज्जनानां	१८०१२३
चतुःशतसहस्राणि	५०१६	जगत्प्रधानाः पुरुषाः	२८०३५

जगदीश्वरशासनात्	२४०३७	जिनेन्द्रोहो वरधर्मे	२२०६६
जनयतिरतिकार्यो	२१०८०	जिनेन्द्रचक्रायुध	२३०९
जनस्य सर्वस्य	२०२२	जिनेन्द्रपादाभ्युरुह	२३०१०२
जन्मस्वतीतेषु जिनेन्द्र	२२०४३	जिनेन्द्रपूजारातयः	३१०११२
जन्माटवीषु कुटिलासु	१०२०	जिनेन्द्रप्रणीतं शुभं	२३०१०७
जन्मानुबन्धीनि	२२०४१	जिनेन्द्रसच्छासन	२१०४
जन्मान्तरे तस्तपः	२०८३	जिनेन्द्रसिद्धान्त	२३०७४
जन्मार्णवं कथमयं	१०१२	जिनेन्द्रसूत्रोक्त	३१०५०
जन्मार्णवे मोह	२८०९४	जिनेश्वराचार्य	३१०४९
जन्मूद्गीपं निमेषेण	५०२४	जिह्वान्त्राणि च	५०४१
जयश्रिया संजनितानु	१८०२२	जिह्वाश्रोत्पाटयन्ति	५०५४
जयरिसेनां	१७०३४	जीवद्रव्यं हि	२६०३६
जरया मृत्युना	१५०१०२	जीवपुद्लकालाश्च	२६०५
जलप्रभामिः कृत	२५३	जीवस्य मिथ्यात्व	११०२
जलप्रवेशादनल	१०२९	जीवः स स्यात्	२६०८०
जलेन हीना इव	२८०८८	जीवदयो मोक्षपद	३१०६८
जवेन नृणां	२८०९६	जीवादितत्वं	११०५
जाज्वल्यमानोत्तम	७०४	जीवाश्च केचित्	३०४०
जाते च गर्भे जगतः	२१०३	जीवाश्च पुद्लाश्चैव	२६०३५
जातेर्दुःखं परं	१५०१०४	जीवाश्च पुद्लाश्चैव	२६०४०
जातौ तिरश्चामथ	३१०२२	जीविष्यन्ति च	२६०७
जानामि ते शौर्यम्	६६०९३	ज्ञानधर्मार्हतां	४०१००
जानामि तेऽहं	१२०५	ज्ञानिवेद्विषिणो	४०४३
जानामि विद्यां	१९०५३	ज्ञानहीना क्रिया	२६०१००
जितेन्द्रिया जीवदया	१०३५	ज्ञानं तु येषां	७०५१
जितेन्द्रियाश्च	३००४४	ज्ञानं त्रतं तपः	४०८६
जित्वा रिपूनप्रतिम	१७०३५	ज्ञानावरणमाद्यं	४०३
जिनवरमतमग्न्यं	१९०८०	ज्ञानाश्रितां दर्शन	३१०६५
जिनदेवमहीन्द	२४०९	ज्ञानेन येन	१४

ज्योतिर्गणा	१०.४७	ततः प्रपूर्णे नवमे	२८.४
ज्योतिर्गणैरन्दुरिव	३०.३४	ततः प्रभाते च	१३.५८
ज्योतिष्मती ज्योतिष	९.६०	ततः प्रवक्ष्ये	९.१
ज्योत्स्नातपौ	१०.४०	ततः प्रशस्ते	१४.६१
ज्वलत्किरीटं	१९.२०	ततः प्रस्थाद्दि	२१.५४
ज्वलत्किरीटः प्रविलम्बि	३.३५	ततः प्रहृष्टे	२३.१०१
ज्वलत्किरीटाङ्गद	१७.३७	ततः शिरीषं	२७.१३
ज्वलद्वृहद्रत्न	९.१६	ततः स जित्वाम्बुधि	२१.४९
ज्वलन्महादीप	६.१०	ततः सशान्तं	३०.११
तक्रं दधि क्षीर	६.३५	ततः सुषेणाय	२१.५८
तच्छौर्यवीर्य	१८.२४	ततः स्वभर्तारं	१४.६८
ततश्च कश्चिद्दृट	१८.१०३	ततो गुरुस्त्वं	२८.६०
ततश्च तस्मात्	२७.२०	ततो नतं	२७.११
ततस्तु तेषा खलु	२७.२६	ततो नरन्द्रेः	१९.१२
ततस्तु राजा	१६.१३	ततो नृपेण	२३.३१
ततस्तु राजाधिकतः	२३.८४	ततो नृपेणाप्रति	२०.३८
ततः कञ्चुकिनो	१५.५४	ततो नृपर्मन्त्रिवर	२९.४३
ततः कदाचित्	२१.५	ततो नृपो निर्वृति	२९.४८
ततः कदाचित्	१२.२९	ततो नृपो	१३.६३
ततः कदाचिन्नृप	१९.३९	ततोऽन्तरं तत्	२७.५८
ततः करीन्द्राः	१८.६९	ततो वृहद्रत्न	१७.०९
ततः कुसुमप्रसुखाः	१३.६५	ततो महत्वं तु	१८.२
ततः परं तत्कुमुदं	२७.१२	ततो मुनिपतिः	१५.७४
ततः परं तस्य	२७.१०	ततो मुनीन्द्रः	२९.८२
ततः परिजनैः	१५.२४	ततो मुहूर्तात्	१४.५५
ततः परेषाम्	२१.७५	ततो यशस्वान्	२७.३५
ततः पुलिन्दाधिपतेः	१३.६८	ततो राजा	१५.१३३
ततः प्रजास्ताः	१६.४७	ततोऽरिच्चकं	१८.१११

ततो वचःकाय	२३०७२	तथापि भूपाः	६६०७३
ततोऽवतीर्ण	५०७५	तथापि मैत्री	६७०७
ततो वराङ्गः	२१०२५	तथाभिच्चारातपनीय	३१०८२
ततोऽवरुद्धाशु	१८०१०१	तथेन्द्रसेनोऽति	१८०७९
ततो वसन्ते	२२०१२	तथैव च नयाः	२६०६३
ततो वामनिकाः	१५०३६	तथैव पौरान्	२९०३०
ततो विज्ञापितो राजा	१५०१३७	तथैव मिथ्या	११०२३
ततो विमुक्तो	१३०४२	तथैव मृत्युमातङ्ग	१५०१९
ततो विसृष्टे	१६०२२	तथैव लोकद्वय	२८०४१
ततोऽस्तु सम्यक्	१८०९१	तथैव शीत	५०९७
ततो हि गत्वा	२९०९३	तथैव शोशाश्र	२८०११
ततो हि दूतः	१६०११	तथैव शीर्य	२१०६०
तत्तीक्षणशक्ति	१८०५२	तदनु सागरवृद्धि	२००६०
तत्तीरकुलद्रुम	१२०७३	तदाप्रभृत्येव	२३०३
तत्रोक्तां हितमहितां	२२०७९	तदेकं कर्म	४०२
तत्रापि भोज्यं	८०७	तदेव कैश्चित्	१२०१२
तत्रावनीन्द्रं	१४०४८	तदेव कौसुमिम	१३०५९
तत्राहंतामप्रति	२९०४९	तदेव त्रिविधं	२६०३
तत्रैव पापाधिकतो	३०५४	तदैव दिग्प्रक्षण	१४०६
तत्रोपविश्य	१२०५०	तदेवसेनस्य तु	१८०९२
तत्रोपविश्य	१२०५	तद्भक्त्या चरितं	३१०११५
तत्रोपविष्टे	११०४९	तद्युक्तिमस्यात्	१६०५८
तथा कर्मपथारुदाः	१५०९१	तद्राक्षयतः	१४०५९
तथा कुलतर्षं	१५०८९	तद्राक्यलब्धावसरः	१२०३१
तथा जीवाः	१५०९३	तद्राक्यवाताहत	२८०८२
तथा तपस्को	११०४७	तद्राक्यसंत्रस्त	१६०९२
तथा नरेन्द्रो	२९०५८	तद्दिप्रकारं	३१०७२
तथापि कर्माणि	२०८१	तद्विनाशोऽवधि	४०१६
तथापि तेषु सम्यक्त्वं	२६०९५	तनुत्वद्रव्यभावाच	२६०१७

तन्मूले ज्ञानचारित्रे	२६.९२	तस्मिन्पुरं सर्वं	३.५
तपश्च सज्जानं	१३.२३	तस्मिन्पृथुश्रीमति	२३.१७
तपोऽग्निर्दध्य	३१.१३	तस्मिन् रणे	१८.८४
तपोधनानां	३१.६	तस्मिन्स्वकाले	२.९
तपोधनानां निलया	२१.४०	तस्याग्रपत्नी	२२.२१
तपोभिरत्युग्र	३०.६५	तस्याग्रपुत्रो भरतो	२७.३६
तपोभिरापीडित	३०.४२	तस्याग्रशिष्यो	३.२
तमवगम्य चैरः	२०.७९	तस्यात्मजः कान्त	२.४७
तमाण्णुवन्तं	१८.५६	तस्यानेकान्तवादस्य	२६.८३
तमिन्द्रसेनो वर	१६.१०	तस्यास्तदाङ्गममलेन्दु	१.६६
तमुजयन्तं धरणी	२५.५९	तस्यास्तदानीम्	२२.२२
तमूचिवान्	१३.६९	तस्यां तु पुर्यो	१६.४
तमौग्रहे	१३.५६	तस्येश्वरस्याप्रति	१७.२१
तया पुनः	११.३१	तस्येश्वरः प्रथित	१०.४६
तयोदितं वाक्यं	१३.३६	तस्यैकदेशो रमणीय	३.६
तयोर्भेदा नया	२६.४९	तं पर्वतं ज्ञानतपः	२९.७५
तव गुणेन च	२०.५९	तं स्नापयित्वा	१४.६०
तव नरेश्वर	२०.२२	तादग्निधं कश्मल	८.६३
तवागतात्र	१५.२६	तादग्निधानां	२८.३७
तस्माच्च मायामद	२५.२२	तादग्निधैर्भोजन	२८.७५
तस्मात्तत्त्वपरीक्षायाम्	२६.८९	तादङ्गमहासार	८.१७
तस्मात्सर्वपञ्चः	२६.६६	तानर्हतस्वास	२५.९२
तस्मात्सुखं साध्व	१९.७४	तानन्तरिक्षे स्वधनुर्	१८.९७
तस्मादुक्ता नयाः	२६.६०	तान्साधुवर्गान्	३.११
तस्मादेवार्हतं	२६.७४	तान्येव कर्मभाण्डानि	४.११२
तस्माद्भैर्मि मति	१५.१०८	तान्येव प्रिय	४.११०
तस्माद्भि धर्मश्रवण	३.४७	ताभिराश्लिष्य	५.६३
तस्मान्मतंगजविषाण	१.३१	ताभ्यां धनुर्वेद	१८.४३
तस्मिन् देशे तथा	५.६४	ताभ्यां यथेष्टमभि	१.६८

तामापतन्ती प्रभया	२८०२५	तिर्यग्मनुष्य	२८०५४
तामुस्थितो मातरं	२१०१४	तिर्यग्योनिषु	१५०१००
ताम्बूलधूपाञ्जन	१२०२७	तिर्यग्लोकप्रमाणेन	५०३
ताम्बूलवस्त्रोत्तम	१९०२६	तिस्त्रस्तु वेद्याः	६०४६
ताराधिषः कुमुद	१०५५	तीर्थानि लोके	२५०५१
ताराभिराभिः	२८०२६	तीर्थाम्बुपूर्णाः	२३०५१
तालद्रुमश्च	१००२६	तीव्रकोधाहि	४०६४
तालवृन्तानिलैः	१५०३८	तीव्रमध्यम	१५०८४
तावत्प्रमाणोऽयःपिण्डः	५०२३	तुम्बीफलं	१००२४
ताश्च प्रकृत्यैव	३१०७	तुरङ्गमं गाङ्ग	६२०३९
ताश्चापिभास्वद्रमणीय	२०९२	तुरङ्गमानां तु	२१०७४
तासामथाग्रे तडिद्	२३०४०	तुरुष्ककालाग्रह	७०९
तासामन्तरवर्तिन्यो	२६०२१	तुलां विना	१००५७
तासां गतीनां	५०१०	तृणं जलं गुल्म	७०१२
तासां चतस्रो	१००६	तृणनि यस्यां	७०७
तासां वधूनां रमण	२०९१	तृतीयायां तु	५०१०५
तासां समाजे	१२०४	तृतीये द्विप्रकारं	४०६
तासु क्षितीन्द्रहृदय	१०६३	तृणैरावेष्ट्य	५०४८
तां चित्रसेनाभिहितां	२०२६	ते कल्पवृक्षाश्च	७०२५
तां नदीं क्लेशतः	५०८१	ते कुञ्जाः काञ्चन	१७०१३
तां प्राप्तुमिच्छा यदि	२८०९८	ते चापि योधाः	१७०६८
तां मत्तमातङ्गशिरो	१६०८७	ते चापि राशां	२०३५
तां श्रेष्ठपत्नीं	१४०६७	ते तोमाराधात	१८०१२
तांस्तांश्च देशानथ	३००४९	ते दिव्यमाल्याम्बर	९०४१
तिरश्चां मानुषाणां	४०१७	तेनान्नरक्षार्थमदुष्ट	२५०२४
तिर्यक्त्वसामान्यतया	६०२	तेनाश्वशाल्ल	६२०३३
तिर्यग्मतेर्दुःखं	६०३२	ते पञ्चभिः	८०२
तिर्यग्मराणाम्	१००५९	ते पारणां कर्तुं	३००५३
तिर्यग्म्य उत्कृष्ट	१०४६	ते पृच्छमाना	१६०८८

ते भव्यसत्त्वा	३०१२	तैरीयमाणा	१७०४२
तेऽभ्युत्थाय	५०७६	तैस्तैः पुनलैंकिक	२५०९३
तेभ्यो नमः प्रयत	१०२२	तैः संयतैः सागर	३१०५६
ते मडभ्यपुर	१५०१२	तैः संब्रजद्विर्बहु	२०४१
ते मन्त्रिणस्तान्	११०८५	तौ यथा संप्रयुक्तौ	२६०१०१
ते मन्त्रिमुख्या	२०१४	तौ वारणद्वौ	१८०४९
ते योधमुख्याः	१७०७७	त्रयाणां समवायेन	२६०९४
ते शैलाच्छीर्य	५०७४	त्रासयन्तोऽथ	५०३४
तेषामत्यलपनरका	५०१७	त्रिकालविद्विः	११०२०
तेषामथ दुरन्तानां	४०४२	त्रिकांश्चतुष्कानथ	१९०१४
तेषामथैको गुणवान्	२०३६	त्रिकेन्द्रियाणां	६०४२
तेषामधिगमोपायः	२६०४५	त्रिगुसिगुसेन	३१०१०६
तेषामृत्रीणां	३००६३	त्रिगुसिधारेण	३१०३१
तेषां तद्वचनं	१५०८	त्रिलोकगुरुवो	१५०६८
तेषां तु मध्ये	२९०४६	त्रिलोकनाथप्रतिमा	२२०५२
तेषां तु संनाहवतां	१८०११	त्रिलोकबन्धुः	१३०१६
तेषां दशमा	२७०२५	त्रिलोकमूल्यं	८०१८
तेषां द्विजानां	२५०२०	त्रिलोकसंस्थां	३००९
तेषां पुर्नमान	११०७६	त्रिशून्यपूर्वास्तु	९०५९
तेषां पुनः प्रद्रवतां	१८०१८	त्रिशूलवज्रायुध	२५०८०
तेषां पुनः स्यादथ	२७०१९	त्रिशत्पञ्चकवर्गश्च	५०१५
तेषां पुरस्तात्	२०१९	त्रिशत्सहस्रं मुनिसुव्रतस्य	२७०५६
तेषां बलीनां ज्वलनान्	२३०२३	त्रिशद्वातो नवतिः	२७०५७
तेषां मदोद्विज्ञ	१७०५६	त्रिशद्वैकं च	२७०५४
तेषां यतीनां हि	३०८	त्रैलोक्यमप्येक	३००१५
तेषां वचो वाक्यविदां	२०४८	त्यजन्ति येऽर्थान्	२९०७१
तेषां ब्रतानां	११०४१	त्वग्नाणं जिहाश्रुतिः	८०५४
तेषां स्त्रीबाल	१५०५५	त्वयेन्द्रसेनः	१९०८
तेषां हितप्रीति	११०५६	त्वं केवलज्ञान	३०३९

त्व दावे राजः:	२३०८७	दायादकाना	११०७२
त्वं नन्द वर्धस्व	२३०८५	दारेषु मातर्यथ	२०२८
दण्डपाशाबिडालाः	१५०११९	दिग्नन्तविख्यात	२१०७८
दण्डाभिघातैः	१४०१५	दिग्रक्षकाणां	१४०८
दण्डास्त्रिगुर्सीश्च	३००५	दिवा इषन्तं	१८०६१
दण्डयन्ते दण्डका दण्डैः	१५०८७	दीक्षाधिराज्यश्रियं	३१०२
दत्तं पुरा क्रूरन्पेण	२५०२३	दीपं विना नयन	१०९
ददत्पात्रदानं	२३०१०६	दीपावलीभिर्ज्ञलित	२३०८
दन्तानुत्पात्य	५०५३	दीपाश्च दीपाश्च	१००३८
दयातपोदान	९०४२	दीर्घायुरामोति च	२३०२०
दयापरा ये	९०२६	दुकूलकौशेयक	७०२१
दयालीबाल	१५०५२	दुरन्तता राज्य	२९०२४
दयासंप्रयुक्तो	१३०८८	दुरात्मभिः	१३०५१
दरिद्रिं नीचकुले	८०२३	दुरितान्मनुजा	२४०६७
दर्शनाद्दृष्ट एवानु	२६०९६	दुर्गन्धनासामुख	८०३७
दलितभागतया	२००१६	दुर्वाङ्कुरश्यामल	९०१३
दशप्रकारा	९०२	दुष्टनिवाधान्	३००२३
दशवर्षसहस्राणि	५०१०६	दुःखबीजानि	४०१११
दशाहतां त्रुद्धिमतः	२७०७	दुःखशोकवध	४०५७
दशाहतं तं त्वयुतं	२७०८	दुःखप्रणाशात्	११०१६
दातव्यमित्येव	२९०३७	दुःखाय शस्त्रामि	७०३६
दानधर्मे दया	४०५८	दुःशिक्षया	१२०४१
दानलाभौ च भोगश्च	४०३७	दूताः परे तेऽपि	२०३९
दानविश्वकरा	४०१०१	दृढवत्त्वे	१३०३९
दानं च दाता	७०२७	दृष्टं मया पौरुष	१८०११३
दानं तपःसंयम	२०८२	दृष्टिमोहवृता	४०६३
दानं पुनस्तद्विविध	७०२८	दृष्टा तमाराद्	१८०९५
दानेन भोगाः	७०२६	दृष्टा पलायमानान्	५०३६
		देयं तथैकं	७०४२

देवतातिथि	१५०.११२	द्वावेव सोत्कर्षं	१००.३.१
देवानां सुकृतं	९०६२	द्रिजातयो मुख्यतमा	२५०.२८
देवी नृदेवपिय	२३.६	द्रिजातिवक्त्रोद्भवित	२०५५
देवेन्द्रो गगनं	२०९४	द्रिजैश्च काकैर्यदि	२५०.६.४
देवेषु पूजां	२.५	द्रिभेदमविज्ञानं	४०१५
देशं च कालं च	१६.९७	द्विविधं नाम	४०३५
देशाकरग्राम	१८.७५	द्विविधं मेहनीयं	४०२७
देशान्विहाय हि	१.२८	द्विषट् सहस्रं	१४०.६.३
देशार्थसंग्राम	१७.२०	द्विषष्मूहूर्ता	४०४१
देशो च काले	७.३८	द्विषत्स्वसूर्यां	२३.५.५
देशो भवत्वाधिक	२३.९८	द्विसप्तरत्नाधिपतिं	२८.३.४
देहत्यागश्च	१५.६.६	द्विसप्तष्टूताज्य	२७.५.३
देहात्मनो भेद	३१.९०	द्वीपः समुद्रो भवनं	७.५७
द्युसुन्दरीणाम्	९.५४	द्वेषश्च रागश्च	२५०.८८
द्रव्यं फलं प्रकृतमेव	१०६		
द्रव्याणि पद् च	२६०.१०६	धनधान्यानि न	२४.४०
द्रव्याणि पद्	१०७	धनवीर्यपराक्रमाति	२४.३४
द्रव्याण्यशक्त	४०४८	धनं शरन्मेष	२८.७.१
द्रव्यार्थिकनयस्यात्मा	२६०.६.४	धनं शरीरं	१६.७.१
द्रव्यार्थिकवस्थायाम्	२६०८६	धनेन देशेन	१६.५.७
द्रव्यार्थिकस्य	२६०६५	धरणीसुत उग्रवीर्यं	२४.३.५
द्रव्ये सति क्षेत्रयुते	२५०.७.३	धर्मक्रियाया हि	२५.२.६
द्रव्यैस्तु पञ्चभिर्व्याप्य	२६०.३.२	धर्मद्रव्यं त्रिधा	२६.२.५
द्रन्दत्रयव्याप्तिषु	३१०८९	धर्मप्रियस्य रति	१.६.२
द्वात्रिशदायोजित	१२०.२.२	धर्मश्रुतेः पापमुपैति	३.४.६
द्वाभ्यां भुजाभ्याम्	१२०.४.३	धर्मात्सुखं पाप	२.७.९
द्वारैश्च जाम्बूनद	१०.२.१	धर्मात्सुखैक्षर्य	२९.६.५
द्वारोपविष्टा कमलालया	२२०.६.१	धर्माधर्मवियत्	२६.३.७
द्वाविशतिर्वर्षे	६०४०	धर्मधर्मै यथासंख्यं	२६.२.३

धर्माधर्मैकजीवाश्र	२६०३९	नन्दी तथैवर्षभदत्त	२७०८०
धर्मानुबन्धा दुरित	३०४८	नन्दीश्वरेऽर्हत्प्रतिमा	२२०३७
धर्मानुबन्धासुख	३०४९	न ब्रह्मजातिस्त्विवह	२५०४१
धर्मान्विताः सर्व	८०२०	न ब्राह्मणाश्रन्द्र	२५०७
धर्मार्थकामागम	२९०१२	नभश्चरः सर्व	२५०१९
धर्मार्थकामोन्नति	२८०२	न मज्जयन्त्यम्बु	१९०६७
धर्माविरोधेन	२९०३६	न मन्त्रिणां वा	१६०४२
धर्मेण संप्राप्त	२०१	नयनवारि	२००३४
धर्मेण देवासुर	८०५९	नयादपेतं	१९०६०
धर्मे मतिं यन्न	८०२९	नयानामपि सामग्री	२६०८४
धर्मैककार्यान्	२२०६	नरकादुष्णबाहुल्यात्	५०९६
धर्मो दयामयः	१५०१०७	नरकाः पुरसंस्थाना	५०१८
धर्मोऽर्हतां सर्व	२३०७१	नरकेष्वितीत्रि	२४०६५
धातुः स काङ्क्षन	१०८	नराश्र सर्वे	७०५९
धाराभिधौताङ्गमलाः	३००३१	नरेन्द्रकन्या धृति	२०६३
धिक्शूरसेनाधि	१८०८९	नरेन्द्रगेहाज्जिन	२३०५४
ध्रुवता जगतो	२४०४७	नरेन्द्रगेहोत्तर	२१०३८
ध्रुवो विनाशः	२२०३९	नरेन्द्रदत्तो	२२०८९
न केवलं वाक्	१८०३८	नरेन्द्रपत्न्यः	३१०१
नक्तं दिवं क्लेश	८०३५	नरेन्द्रपुत्रः	१३०८२
न चामिषा सा	१२०६२	नरेन्द्रपुत्रीम्	१९०३३
न चारिकोऽहं	१३०७९	नरेन्द्रपुत्रो	१४०८२
न चोभयं मे	१३०७४	नरेन्द्रपुत्रो	११०४६
न जीवितुमितः	१५०६२	नरेन्द्रसद्वाक्य	२००९६
नंदा विद्या:	१४०६२	नरेन्द्रसेवार्थ	१९०५६
नटाश्र भण्डाः	२३०४७	नरेश्वरा ये	१८०१
नदीजलं प्रश्ययोदकं	२३०२४	नरेश्वरो भास्वर	१७०११
नदीरगाधा	१३०४५	नव प्रकृतयः	४०४९
		नव प्रदिष्टश्चतुर	६०४७

नवभिनोकषायैः	४०९२	नामं च स्थापना	२६०५२
नवशरदि भृशं	२१०९८	नामेन्द्रकूटे	२२०७९
नवा न काम्यस्मि	१३०३८	नाराका भीमरूपा	५०३२
नवान्नवानहर्ष	२१०७६	नारकाणां च दुःखस्य	५०२१
नवान्नवान्	१९०२८	नारकी वाथ	५०९
नवैव तेषां	२७०२३	नालङ्कृता सा न	१९०४२
न शक्यते	१२०१८	नालिङ्गितो यो	२९०८१
न शक्यतेऽर्कः	११०८०	नायूषि तिष्ठन्ति	२८०४६
न श्रेष्ठिपुत्रस्तु	१६०१०८	नास्त्यकर्ता न	२६०७१
नष्टश्रुतिर्लुमशरीर	२२०१४	निगूह्य भावं	१३०२९
नष्टन्धनकारा	७०१८	निजांशुभिर्व्याप्त	२८०२३
न संभवति संसोरे	२६०५७	नित्यप्रवृत्तातिशय	९०४९
न सा सुनन्दा	२५०६	नित्यप्रवृद्धाः	१९०१३
न स्यात् सुतः	१२०६	नित्यं परप्रेषण	१२०८४
न हि द्रव्यार्थिको	२६०५३	नित्याविरोध्युत्तम	३१०७१
नाचारवन्तो विकृता	९०३२	निदापतीक्ष्णार्कं	३००३७
नाज्ञानतोऽन्यद्	३०५६	निदाधमासेव्यजनं	२८०६
नात्मप्रशंसा न	५०६४	निदाधमासेत्थ	२८०३८
नाथोऽयमस्माकं	८०५०	निद्रा निद्रा च	४०२४
नानाप्रकारोज्ज्वल	२०५६	निद्राश्रमक्षेत्र	२५०८७
नानाविधक्षत्रिय	८०५७	निपत्य तस्मिन्	१२०४९
नानाविधैस्तैः पठहैः	३०२९	निपातदेशोष्वभिलीन	६०२३
नापत्सु मूढो	२२०४	निबद्धवैराग्	२९०३८
नापुत्रका लोकमिमं	२५०६९	नियतिर्नियता	२४०४१
नासो हि रुद्रलिपुर	२५०७४	नियमैश्च यमैः	२४०१२
नासो हि विष्णुर्वैलि	२५०७७	निरङ्कुशो	३०५७
नाभेय आद्यो	२७०३७	निरन्तरं तस्य	२८०७६
नाभेयतीर्थं भरतो	२७०४५	निरर्था इव	१५०४०
नाभेयशान्ती	२७०६६	निरस्तदुर्नीति	१३०१८

निरस्तभूषा:	३०.२	निरोगशोक	१०.४५
निराशयास्ते	८.३४	नृकुञ्जराः केचित्	१७.५७
निराश्रये	१३.२८	नृणां च संपत्	२८.७०
निरीक्ष्य यातं	१३.२०	नृणां प्रियोऽसौ	१४.९३
निरुत्तरस्तैः	८९.२५	नृणां हयानां	१७.६९
निरुध्यमानः	१४.३१	नृत्यन्ति तत्राप्सरसो	९.४०
निर्गत्य गर्भादिवसास्तु	७.५५	नृपवर्चोर्थ	२०.६३
निर्जग्मुरेके नरदेव	३.१८	नृपतिकान्तसुतां	२०.२
निर्बन्धा निधप्रतीकारा:	२६.१३	नृपतिरनुनिशम्य	१६.१११
निर्मुच्य स्वजनगतं	१२.८८	नृपतिवाक्यम्	२०.४२
निर्विणो दीर्घनिश्चासः	४.८७	नृपती द्विरदेन्द्र	२४.६९
निर्वीर्यतां राज	१८.६०	नृपनृपवनिता	२९.९७
निर्वर्तमानान्स्वपुरान्	२.८९	नृपश्च निर्वर्तित	२१.५०
निवृत्तलोकव्यवहारिणः	३०.४१	नृपस्तु पुत्रस्य	११.५३
निवेद्य चात्मागमनं	२१.६९	नृपस्य पुण्योदयतो	२१.३९
निशम्य तद्वाक्यं	१३.८५	नृपं प्रयातं	२९.५६
निशम्य तत्सागर	२८.६३	नृपाङ्गनाभिः	१२.१
निशम्य तेषां	१६.८९	नृपाज्ञया राज	२.६४
निशम्य पुत्रस्य	२१.२२	नृपाज्ञयाहृत्प्रतिमा	२२.७७
निशम्य भव्यस्य	११.४०	नृपाज्ञया केचिद्	३.१७
निशम्य राज्ञो	२१.५१	नृपात्मजेन	१४.४४
निशम्य वाचं	२८.६३	नृपाभिषेको नृप	२१.५२
निशम्य वार्णी	२२.२८	नृपाश्च भृत्याः	७.११
निशम्याशु धर्मं	१०.६२	नृपेन्द्रसेनो बृहद्	१६.३८
निशम्य लेखं च	२.३७	नृपैर्नृपाणां समरे	१८.२९
निहवं ये च	४.४४	नृपोत्तमः शान्तरिपुः	२.४६
निःशीला निर्	१५.६७	नृपोपकारं मम	१६.८६
निःश्वस्य दीर्घं	२८.२९	नृपो विरेजे	२८.२१
नीचानुवृत्तेः	१२.९	नेच्छाफलासि:	८.३९

नेत्रैः पश्यन्ति	५०८७	पञ्चेन्द्रियाणां	१२०८९
नेदुः समन्ताद्	२९०४७	पञ्चेन्द्रियाणां	२९०६२
नेमिस्वथारस्य हि	२७०६७	पञ्चेन्द्रियैरप्रति	३१०२२
नैकप्रकारामहोत्सव	१०४१	पञ्चात्तरास्ते कुरवः	७०२
नैकप्रकाराकृति	३००४६	पतञ्जषट्पादाधु	६०७
नैगमः संग्रहश्चैव	२८०५०		१५०६०
नैरात्म्यशून्य	२५०८२	पत्राणि पुष्पाणि	२५०२९
नैवाब्रवीस्त्वं	१४०५३	पथिश्रमाः काञ्चन	२१०४४
नैवासि भद्रार्थ	१७०२७	पञ्चापिधानैः	१९०१९
नैवेह कार्यो	१६०५३	पञ्चालया मित्रसमाह्या	२७०७६
नैष प्रहारो	१४०३२	पयोदाधिक्षीरि	२३०२५
नैषुर्यपारुष्य	३००५१	पयो भवेद्देतु	७०४०
नैसर्गिकं तद्	११०२१	परनरेन्द्रबलेन	२००९
नैसर्ग्यमास्थाय	३००२०	परमहर्षविबुद्ध	२००६५
नोकषायः कषायश्च	४००२८	परस्पराकीडन	७०६१
नोदासीना न	५००९	परस्पराश्रात	१७०६२
नोदैध्यदको यदि	२२०४४	परस्परोद्भवन	१४०३८
नो वत्स कार्यं .	१२०८	परं न गृह्णाति	१८०९९
न्यायविदुष	१५०५०	पराङ्मुखानामथ	१८०१७
न्यायादपेतं	१२०१६	परार्थ्यनानामणि	२३०५०
न्यायार्जितद्रविण	१०४०	परिगम्य मुनिं	१५०१३५
न्यायोपदेशोन	१२०३४	परिशृण्य नरो	२४०५६
पञ्चवन्धमूकान्	२९०३५	परिणामाजीव	२६०३३
पञ्च चत्वारि च	५०८	परिभवं द्विषतः	२००३३
पञ्चानामिन्द्रियाणां	५०२८	परिभ्रमन्काल इव	१८०९४
पञ्चानां वैक्रियादीनां	२८०२०	परिभ्रमन्तं	१३०४७
पञ्चाशता द्वे च	२७०६३	परिभ्रमन्ती	१३०२०
पञ्चास्तिकायभेदेन	२८०४	परिवारधना	२४०६८
		परिवृत्तो नृपतिः	२००२०

परीत्य सर्वे	१३०४८	पितृपुत्रादिसंबन्ध	२६०८७
परीषहाणां क्षणम्	२०३४	पित्रैवमुक्तः सुत	१६०१००
परीषहारेश्चतुरः	२२०४५	पिधाय पापाक्षवं	१००१४
परीषहारीन्	३१०१०८	पिवन्ति रुधिरा	५०४६
परुषवाक्य	२००१७	पिष्ठिति गन्धवत्	५०४५
परे पराक्षीणि	१७०५१	पिष्ठपाकमुखेष्टिके	५०३०
परोक्षं तर्हि	२६०४७	पीड्यन्ते तिल	५०७१
परोपघातानृत	११०३९	पुण्यान्यकृत्वा	८०२८
पर्यन्तवैद्यर्थशिला	७०१३	पुण्याम्बुपूर्णान्	२३०४९
पर्याप्तपर्याप्तक	६०४	पुद्गला जीविकायाश्च	२६०४१
पर्यायाक्षरसंघातः	४०१२	पुनरथ सकलान्	१४०९८
पल्लोदनलाज	२४०२७	पुनरन्तर्मुहूर्तेन	५०८६
पत्योपमानां खलु	२७०२२	पुनरपि जिनशासनः	२५०९८
पवित्रचित्तो	३१०५८	पुनरपि यतिराङ्घः	४०११४
पशूनथाज्ञानगतीन्	२५०१६	पुनरितः क्रमतः	२००९
पश्यामि तावत्	१६०३७	पुनर्मानुर्षी तां	६०५५
पादप्रचारैस्तनु	२५०८	पुनर्वसुर्नन्द	२७०७९
पापक्रियाभियुक्तेषु	४०८४	पुनः पर्याप्त	५०७३
पार्थिवाः खेचराः	१५०९६	पुनः प्रभाते	१३०७६
पालयित्वा मही	५०१०१	पुनः सरोऽन्तर्गत	६०२२
पाषण्डिनः स्वाश्रम	२३०९९	पुपूषवः पापरजांसि	३०२२
पाषण्डिनो ये	९०२७	पुमानर्थानथाप्रेष्मुः	२६०१०२
पाषण्डिशिष्टिपद्मु	१०४४	पुरस्य बायं	२१०३२
पितरं तस्य	१५०५	पुरस्य मध्ये	२८०३४
पिता च माता	२८०७४	पुरं क्रमेणाप्रति	२९०७४
पिता ममासीत्	२८०५८	पुरं विशालं	११०४५
पिता वराङ्गस्य	२९०२	पुराकरग्राममडम्ब	३०४
पितुर्नियोगाद्वर	२१०२६	पुराकरग्राम	२१०४८
पितुश्च पुत्रस्य च	२५०६६	पुराङ्गना	११०६०

पुराङ्गनास्ता:	१८०२०	पुष्टाणि सत्केसर	२३०४६
पुराणि राष्ट्राणि	३१०५५	युवेदः स्त्यभिसंदर्शात्	४०९०
पुरा तु मस्त्वामिनि	२२०२३	पूजातपःशीलगुण	२३०१०३
पुरात्मचरितं	६५०३२	पूजा तपःशीलमपि	२९०६७
पुरा त्वनेन	१४०५१	पूजावसाने प्रतिमा	२९०५०
पुराद्वाहिर्मण्डल	१२०३५	पूज्यानि तान्यप्रति	२२०४२
पुरा निविष्टा	२५०४६	पूतं च पुष्यं	१००५
पुरापि जैनन्द्रमत	२८०१००	पूर्णे तथा वर्षशते च	२७०१८
पुरापि यत्कालपरंपरा	२१०३१	पूर्णे समासान्तशते	२७०२१
पुराप्यशृण्वन्	१६०१०७	पूर्वजन्मकृत	५०६२
पुरा मया किंतु	१३०५३	पूर्वं तु पुष्य	१४०८७
पुरा यदूनां	२२०२९	पूर्वमष्टाहिंकं	१५०१४०
पुरार्जितात्यन्ततपः	२२०७	पूर्वं तत्कृत्वा सुकृतं	२०८०
पुरार्जितश्रीः	२९०६९	पूर्वं त्वमेव	१४०३
पुरा वराकानटवी	१७०३०	पूर्वं महीपालसुतः	१२०६९
पुरा वराङ्गस्तु	२१०१	पूर्वार्पाधान्	५०३५
पुरा हि सच्चन्दन	१२०८०	पृथग्विघ्नैर्यै	९०१७
पुरुषैश्चिकालकर्म	२४०१७	पृथिवी कठिनात्मिका	२४०३५
पुरुषो यदि कारकः	२४०४२	पृथुश्रियं यौवन	१९०७७
पुरे वने ऽरातिजने	३१०१४	पौरप्रधाना नरदेव	२०७३
पुरे वने वापि	३०१०	पौराङ्गनाभिः	२३०५५
पुरे च राष्ट्रे च	१३०६	पौरर्जनैवर्षचैरः	२९०५४
पुलिन्दकाना	१४०२३	प्रकटमास्त्व	२००३१
पुलिन्दनाथस्य	१४०३९	प्रकृतिर्महदादि	२४०४३
पुलिन्दनाथौ	१४०१२	प्रकृतेः पुरुषात्	२६०७२
पुलिन्दनेनागम	१४०७०	प्रकृत्यनुशात्	११०५५
पुलीन्दनाथेन	१३०६२	प्रगृह्य मानाकृति	१४०२
पुलीन्दनपह्नी	१३०५०	प्रचण्डवातोद्धत	८०२३
पुष्टाणि ताम्बूल	११०७८	प्रचलोत्थितया	२४०५७

प्रजायमानान्	५०२९	प्रभाष्य हस्ताम्बु	२२०७८
प्रजाहितक्षेम	१६०१०२	प्रमुदिता च	२००८९
प्रजेष्ठकारी	११०५१	प्रलम्बहारोज्ज्वल	१३०२५
प्रणम्य पूर्व	२१०६३	प्रवरहर्म्यतलेषु	२००३
प्रणम्य पूर्व	२३०६१	प्रवरहर्म्यतल	२००८७
प्रणयवानपि	२००४३	प्रवर्धमानः किल	१४०८३
प्रतसलोहे पतितो	३००५९	प्रवालकैतन	२२०६४
प्रतिगमय्य निशाम्	२००७७	प्रवालमुक्तामणिभिः	२०६८
प्रतिमाः स्थपिताः	१५०१३९	प्रवालमुक्तामणि	६०३६
प्रत्यक्षभूतं फलं	१९०६३	प्रवालमुक्तामणि	२०१८
प्रत्यक्षं भिद्यते	२६०४६	प्रविराजितरत्न	२४०७०
प्रत्यागतांस्तान्	१४०१३	प्रविश्य तं भोगविरक्त	२८०३०
प्रत्यागतानां	२०४०	प्रविश्यात्मगोहं	२३०१०४
प्रत्यागतानुव्रत	१७०५२	प्रवृद्धकान्तिद्विति	१८०७८
प्रदानमानैकरसास	१६०३५	प्रवृद्धधूमाङ्कति	१७०७०
प्रदाप्य दीपांश्च	२३०६८	प्रवृद्धवैराग्य	२९०२६
प्रदाप्य पाद्यं	१३०८७	प्रवेष्टुकामाः क्षितिपस्य	२५०३०
प्रदित्सवः केचन	३०१९	प्रशस्तनक्षत्र	२०८६
प्रदीपचन्द्रग्रह	२३०१३	प्रशस्य तावद्	१८०३९
प्रदीपमालामणि	२३०३४	प्रशस्यतां दृष्टि	१३०१३
प्रधानमन्त्रीश्वर	२५०१५	प्रशान्तपङ्कोदक	११०२७
प्रपतन्त्यसिपत्राणि	५०८२	प्रशान्तरेणौ	१७०७१
प्रपिष्यमाणाश्च	६०९	प्रशास राजन्	२१०२०
प्रबलकेतुपतत्	२००५९	प्रसन्नतोयेषु	६०१२
प्रभञ्जनप्रेरित	१८०६६	प्रसन्नमिथ्यामल	११०२४
प्रभञ्जनाभ्याहत	१७०२८	प्रसन्नभावात्तपसः	३१०५१
प्रमत्तमातङ्गविलास	२८०८	प्रसादलभात्यरितुष्ट	२१०७२
प्रमाणभूतस्त्वमिह	२८०६८	प्रस्तारैः कुतपश्चा	५०१४
प्रमाणनयनिक्षेप	२६०८५	प्रहतदुन्दुभि	२००७३

प्रहसनसलाप	१४०५	फल कदल्या न ह	२५०२७
प्रहृष्ट भूयः	१३०६६	फलन्यथोदुम्बर	२५०८
प्रहृष्टरोमः परिषुष	३०१५	फुलारीविन्दवदना	१०५८
आकारमालाभिरथो	२००६८		
प्राशस्त्वं हेतुनय	१०१७	बका बलाका जल	६०१९
प्राणातिपातश्च महान्	२५०१३	बकुलराजबल	२००८०
प्राणान्तकृद्धस्वचो	२५०८४	बकुलोत्पलजाति	२४०८
प्रातः कुमारः	११०४८	बध्नात्यष्टविधं	४०१०५
प्राप्तव्यतायाः	१२०३८	बध्येत बन्धकास्तीवं	१५०८६
प्राप्येत येन	१०३	बन्धुभिर्भृत्य	१५०८१
प्राभृतं प्राभृतं	४०१३	बभूव यस्मिन्	२१०३३
प्रायेण प्राणिनो	१५०७५	बभूतेरेता जिनमातरं	२७०७७
प्रालम्बकाद्यानि	१२०५६	बलवांस्तु यदा	२४०६२
प्रासादकूटवलभी	१०३७	२४०६४
प्रसादगर्भाद्	१८०११८	बलाहकारखं	१८०७
प्रियदृग्वशोक	२२०६९	बलिनो बलवान्	२४०३३
प्रियवता चक	२०६१	बलेन वित्तेन	२१०६४
प्रियसुतं च	२००७५	बहिर्यासुर्पवना	२२०१७
प्रियाङ्गनाभिर्वर	२०९०	बहुदृष्टिनिविष्ट	२४०२१
प्रियाणि कुर्वन्	८०३८	बहुप्रकारं हि	३१०७३
प्रियाभिरामिः	१२०७०	बहुप्रकारान् पुर	३०१६
प्रीतिपूर्वे कृतं	१५०८०	बाधिर्यमान्धं	८०३६
प्रीति त्वयीषां	१४०८४	बालः कृशाङ्गः	१४०१०
प्रीतिः पराभावं	२८०७२	बालेऽसहायो	१४०५१
प्रीतिः सन्ध्याम्बुद	१५०७७	बाल्यात् प्रभृत्येव	११०७४
प्रेक्षासभावली	२२०६७	बाहुल्यमष्टौ	१००३
प्रोक्ता स्थित्यादयस्ते	२६०५६	बाह्यं पुनः	९०८
प्रोतैश्च सूत्रैः	२३०३६	बाह्याभ्यन्तरं	१५०१२५
ने-	—	—	११००१०१

बृहत्पृष्ठकैस्त्वथ	६.२५	भृजारिकादर्शन	२३०३८
ब्रवीति चक्षुः	१८.४२	भृत्यांश्च मित्राणि	२२०४०
ब्रह्मादयो यद्यनवास	१९.१०	भोगविघ्नकरा	४.१०२
ब्रह्मापि नासो	२५.८५	भोगाभिलाशात्त्व	१६०९६
भद्रान्वयो भद्रमना	२५.७६	भोगान्विता शास्त्र	८०४८
भद्राः प्रकृत्या	२६.१७	भो दूत आस्तां	
भवत्प्रसादोदय	१६.९		
भवत्प्रसादोदित	७.२५	मक्षिका मशकॉं	५०४९
भवन्ति रोषान्त्रपतेः	११.३७	मङ्गल्यगातरत्तुति	२३०७०
भागीरथिश्वकधरस्य	२८.८५	मणयः प्रद्वारागाद्याः	२६०८१
भारो यथादौ	२५.३२	मणिहारकिरटि	२४०१४
भार्यास्त्वनुपमा	२५.५५	मतिश्रुतावधि	४.९
भित्वार्गलं यान्ति	२९.६	मत्तद्विपस्यायत	३.३१
भिन्नात्मकेतुः	१५.३४	मत्तद्विपस्कन्ध	८०४९
भीष्मो हि गङ्गातनयो	२९.१६	मत्तद्विपानां चरणाभि	१७०६५
भुक्तान्नवीर्येण	१८.८२	मत्तद्विपानां तु	१९०२९
भुजङ्गमातङ्ग	२५.४८	मत्तोऽधिकाः शक्ति	१६०२४
भुवां तृणानां	७.४२	मत्पुण्यतो वा	१६०८
भूताः पिशाचा	१२.५७	मत्स्यामिषाभ्यां	२९०५७
भूतैः प्रभूतैः	७.२४	मदनतापन	२००४५
भूमिः पुनर्गर्भ	९.५	मदप्रभिन्नस्वरदार्द	१७.१३
भूम्यद्विवनजीमूत	३०.३४	मदप्रभिन्नार्दकट	३.२८
भूम्यम्बुवाख्यग्नि	७.३७	मदिरामल्लोल	२४०७
भूयश्च तस्या	२६.१६	मदोद्धतानामथ	१७०७५
भूयोऽप्युपेन्द्रस्य	६.५	मदोद्धौतैः	११०३८
भूयोऽर्हतां	१२.४८	मद्याङ्गतर्थाङ्ग	७.१४
भूशैलतोय	१८.५६	मद्राक्यनात	१६०२७
	२९.४१	मद्रिप्रलभार्थमयं	१९०७५
	१०.३९	मधुरवाक्यरसैः	२००५८

मध्ये भवन्तीन्द्रक	२०१२	महापदं प्राप्य	१३०७१
मध्ये ललाटस्य	३१०९९	महावलस्यास्य	१६०४३
मध्वाक्तीक्षणासि	५००४३	महावलानिन्द्रिय	३१०८
मनसैव विचिन्त्यात्र	५१०२	महावलौ	१४०७
मनुष्यजातिस्तु	८०६०	महामहत्पीति	२८०१७
मनुष्यजातौ भगवत्	८०५६	महामहं यः	२३०७६
मनुष्यभूमौ ब्रतशील	८०१९	महाव्रतान्यप्रतिमानि	३१०७५
मनुष्यजातिर्वत	८०१३	महाहवः शोणित	१४०२१
मनुष्यजातिर्वत	८०१२	महीमहेन्द्रोऽथ	२०३२
मनोवाक्या	४०९७	महेन्द्रसेनप्रवरा	१६०३१
मनोरथं प्राप्य	२३०७३	महेन्द्रनीलैर्मणिभिः	२०६५
मनोहरेष्वपि	३१०८०	महेन्द्रपल्यः	३१०११३
मन्त्रिप्रधानाः	२३०५	महेन्द्रसौवीरिक	१६०३३
मन्त्रीश्वरश्रेणि	१८०११४	माता च पल्यस्त्व	२९०४
मन्त्रीश्वरामात्य	२९०९५	मातामहोऽयं	२९०३२
मन्त्रे च युद्धे	२८०७८	मातुः पितुश्चैव	१९०५२
मन्दप्रवाताभिहतानि	७०८	मात्रैवमुक्तो	१२०११
मन्नाथवत्सप्रिय	८०४१	मानात्पुनः केचन	६०२९
ममत्वदेहप्रतिकार	३००१४	मानोत्थानस्तृतीय	४०७२
ममाशरण्यस्य	१२०६७	मानोदयश्चतुर्थो यो	४०७३
मयूरपारावत	९०१४	मानोदयश्चतुर्थो यो	४०७१
मयूरमातङ्ग	२२०१३	मानोदयो द्वितीयस्तु	१५०१३४
मया वियोजिताः	१५०३०	मानोऽन्तरं सर्व	१८०६५
महिंश्च पाश्ची	२७०८९	मानोन्नतं नावनं	३००१६
महता तपसा	२६०९७	मानो महाशैल	१५०१३४
महर्दिभिर्भिन्नकविधा	३००६७	मा भूं विक्लवाः	४०९४
महर्षिपादौ	११०४३	मायातिवञ्चन	४०७६
महाजिभूमौ	१७०८२	मायोत्थानस्तृतीयस्तु	४०७७
महानथास्माभिः	२१०१३	मायोदयश्चतुर्थो	

मायोदयो द्वितीयस्तु	४०७५	मृत्सारिणीमहिष	१०१५
मायादिभिर्ये	६०३०	मृदङ्गगम्मीर	२३०५९
मार्गसंदूषणं	५०६२	मृदङ्गभेरीरव	२३०४८
मात्यग्रदनैः	२३०७९	मृदङ्गबीणावर	७०१६
मात्याभरणवस्त्राणि	५०६०	मृदङ्गशब्दैः पठह	२३०५३
मासे चत्वारि	१५०१२३	मृत्वैव यत्नात्	२५०८३
मास्मत्वरिष्टः	२९०१०	मृष्टान्नपानं	२००१०१
मास्मत्स्मरं त्वं	२८०६२	मृष्टान्नपानानि	१४०२४
माहेन्द्ररत्नोज्ज्वल	१०१९	मेघचुम्बितकूटाग्रं	१५०१६८
मिथ्यातिमिर	५०२७	मेषप्रमाणोऽयः	५०२२
मिथ्यात्वतो	११०१४	मैव त्वनुपमे	१५०६४
मिथ्यादृशः सद्ब्रतः	७.५४	मोहक्षयात्	१००२२
मिथ्यानिवृत्तिः	११०२८	मोहातिरोगोद्भव	३१०२९
मिथ्यान्धकरोदय	११०२५	मोहावृतो विस्मृत	२८०४५
मिथ्यावादसमूहस्य	२६०९०		
मिथ्याविनाशात्	११०१५	य एव पर्याप्त	१२०८२
मित्रं बलीयः	२०२९	य एवमुक्तो	२१०२३
मित्रंसहः कोशल	२०६२	यतिपतिमभिवन्द्य	२२०९९
मुक्तावलीं रत्न	२९०४४	यतो यतस्त्वप्रति	१८०१०९
मुख्येषु भेदं	१६०६३	यतौ बुवाणे	१००६२
मुखण्डिभिः	१८०७०	यत्कारणः स्याद्	१६०६८
मुखं परावर्तित	१९०५१	यत्पूर्वमाख्याय	१९०९
मुनीन्द्रवाक्यात्	११०३५	यत्प्राणिनां जन्म	३१०१७
मुमुक्षवः केचन	३०२१	यत्प्रार्थितं राजसुते	१९०७३
मुहूर्तनक्षत्र	२१०२७	यत्र जीवस्य जातिः	१५०१०३
मूलग्रहकृतयः	४०५	यत्रार्हितां जन्मपुराणि	३००४८
मूले षोडश संख्याता	५०६	यत्सुखं त्रिषु	४०६०
मृगेन्द्रपद्मोक्ष	२३०४४	यथाजिभूमावरि	३००२१
मृगेन्द्रशावावित्र	१८०४१	यथा दवाभ्रपस्त्रय	३०६७

यथा दवाम्रेषपस्तु	३०९९	यथैव राज्यात्	१३७२
यथा नटो रङ्गमुपेत्य	२५०४०	यथैव लोके गुड	२५०५२
यथा नभसि	१५०९५	यथैव लोके	१००२७
यथा नभसि	४०४६	यथैव वीरः	३१०१०९
यथा नावं समारूह्य	१५०९०	यथैव शालीक्षुफल	२८०४२
यथा पतन्ति	१५०९२	यथोचितन्याय	२१०१९
यथा पितृभ्यां	१२०१४	यथोदकं तु मस्यानां	२६०२४
यथापि दुर्वहिशिखा	३१०९४	यथोदयात्	१००२०
यथा पुरात्यन्त	३००२५	यथोदितस्य	१५०९४
यथा पुराभ्यन्तर	३१०३४	यथोपनीतक्रमं	२९०११
यथा प्रसूता महतां	३१०१५	यदतुल्यपराक्रमाति	२४०७१
यथा मदान्धाः	३००२४	यदि कालबलात्	२४०२८
यथा मधूच्छिष्ट	१००३५	यदि तस्करको	२४०२३
यथा मयि	११०६८	यदि दैवनियोगतो	२४०२२
यथा यथा	१३०६४	यदि प्रयातं पुरो	१८०३१
यथा यथा तं	१९०५७	यदि मदात्स	२००१८
यथालकायां	२८०२२	यदि मम गृहधर्मे	१९०७९
यथा हृतमणि	१५०२१	यदि शून्यमिदं	२४०४४
यथैव कुशलैरेते	२६०६२	यदि श्रमादात्मनि	२९०२८
यथैव चक्षुः	११०२२	यदि सर्वमिदं	२४०४८
यथैव चन्द्रोदधि	१००५३	यदिहेषितमात्मनः	२४०४९
यथैव ताडी	१००३२	यदीश्वरं प्रीतिमुखं	२५०३१
यथैव तीक्ष्णाङ्कुश	३०५८	यदैहिकामुषिक	२३०८८
यथैव पूर्वं भरतेश्वरः	३०३२	यहुःखं त्रिषु	४०५९
यथैव बीजं	१००२५	यदूतस्प्रेषण	१६०६६
यथैव मत्तमातङ्ग	१५०९८	यदेयमस्मै	१६०५९
यथैव मां	२८०६१	यदञ्जनावद्वृदि	१२०५४
यथैव मेघाशनि	९०३७	यद्यच्च लोके	२३०९०
यथैव मेहः प्रवरो	८०१०	यद्यच्च लोके	२५०७०

यद्यत्र सत्त्वान्	२५०१७	या गतिर्दुःख	५०२५
यद्यद्विनिर्मितं	१५०८२	यज्ञे वधे नैव	२५०१४
यद्यत्र नाथ	२८०१०६	याते तथैवाबदशते	२७०२४
यद्यन्त्रलोके	२२०१९	यादिशि दानानि	२५०६७
यद्यस्ति पुण्यं	१२०२३	या धर्मसेननयना	१०६५
यद्यप्यनुज्ञां कुरुते	१६०७१	यानि लोकेषु	५०९९
यद्येवं शकटं	१२०८५	यान्ते संस्थापयति	४०५३
यद्योजनपृथक्त्वे	४०२०	यान्ति क्षयं ते	२७०७३
यद्यत् पूर्णशर्	१५०२०	यावद् यहुदारमिला	१९०१५
यमस्य नाथोऽपि	२८०९०	यावन्तो वचसां	२६०६९
यमानंतं तत्रवमं	९०९	युक्ताधिरोह	१०५७
यथा हि भूतिः	२१०७३	युक्तौ विचार्यमानायां	२६०१०४
यवैः शुभं वर्ण	२३०२१	युगवरपुरुष	२३०९४
यशोऽर्थकामाश्र	२२०५४	युद्धं त्वया यत्	१६०९८
यस्मिन्दिशश्च रहितालि	१०२५	युद्धाध्यभारक्षम	१७०१७
यस्मिन्प्रसूते	२०२	युद्धेषु भिन्नकट	१०५३
यस्मिन्वनानि फल	१०२६	युद्धापि केचित्	१६०९४
यस्मिन्सदा गरुड	१०३०	युवनृपतिमुदीक्ष्य	११०८६
यस्मिंस्तु देशोऽस्तम्	३००४७	युवनृपत्वमवाप्य	२००७
यस्याज्ञया स्वप्य	१०५१	युवनृपत्य	२००१५
यस्यात्मजा नागकुमार	२८०१४	युवनृपोऽभिहतो	२००११
यस्याहितं प्रकुरुते	१०५२	युवराजाधिरूढं	१५०३
यस्याः कुमार्याः	२५०५४	युवराजमपश्यन्तो	१५०१४
यस्योरुनीत्या रिपवो	२८०१५	युवराजवियोगेन	१५०७३
यः कामिनीजनमनो	१०४७	यूना वरिष्ठस्तु	८०४२
यः कार्तिकेयः	२५०५३	ये कल्पवासा गणना	९०३
यः शक्तिमांसं	१६०४५	ये कामतो ब्रह्म	९०२८
यः शङ्करस्योजित	२५०४५	ये कौशिकाः काश्यप	२५०५

ये जात्यादि	४०९९	रजतरुकमघटैः	२००८५
येऽर्थास्त्वया प्रश्न	३०४४	रणावनौ	१४०४६
ये दर्शनशानविशुद्ध	२५०८६	स्तनहारप्रवालंश्च	१५०५७
येनात्मनेनापार्जित	१८०१२७	स्तनाकरं द्वीपवरं	२८०४३
ये निग्रहानुग्रहयो	२५०३३	स्तनोपलाग्रोपरि	१०२९
ये निर्वृतानाम्	१००५५	स्तनोत्पलालिङ्गित	२८०१९
ये निष्कृष्टा न्याय	१७०२३	रथपदातितुरङ्गम्	२००१०
येनेह मोहतरु	१०२	रथाधिरुढाः	१७०७४
येनोत्तमर्द्दि	२२०५१	रथाश्च सद्रल्न	१७०१६
ये भूमिपालाः	२९०९०	रथैश्च काश्चिद्र	२२०५५
ये मार्दवाः क्षान्ति	९०३३	रविकोटिसहस्र	१०३३
ये वञ्चकाः कूट	६०३३	रविचन्द्रमसोः	२४०३६
ये शीलवन्तो	१९०६६	रसस्तु गौडो	२५०३५
ये शीलवेलामिह	१९०६९	रागात्मकानाम्	३१०७४
येषां च सज्जनं	९०३६	राजंस्त्रिपल्योपम	७०६२
येषां तु चारित्रं	७०५२	राजा तामिः	१५०७२
ये सिंहला वर्वरकाः	८०३	राजात्मजा किं	११०८२
ये स्वामिनं नः	१७०२४	राजा निशम्य	१५०६३
ये हत्वा प्राणिनः	५०५०	राजानो राज	१५०२
योऽकारयद्वेशम्	२२०५०	राजानुमत्या	१६०७६
योगतः कर्म	२६०५९	राजापि युद्धाभि	१६०७७
यो गर्दभाय	२५०७८	राज्यं त्वदायत्तं	२९०३
यो दर्शयेद्युक्तिमती	१७०६	राज्यं हि राजन्	१९०२३
योधान्गजस्योर्ध्वं	१८०१५	राज्यार्धराज्यपृथु	१०२१
यो भूपतेरप्रतिकूल	१७०५	राज्यैस्तु किं वा	२८०५१
यो वा स वाहं	१८०३३	राज्ञा सहायान्तम्	१८०१२६
योऽश्राति गङ्गोदकम्	२५०४७	राज्ञीभिर्मदन	१८०१३०
यौवनं बाधते	१५०७६	रात्रिंचरा भीमरवा	३००२७

रात्रस्तमामया	१५०४०६	लाभात्थानः	४०८०
रिपुनरेन्द्रबलाहत्	२००१२	लोभोदयो द्वितीयस्तु	४०७९
रिपुः कदाचित्	२५०२१	लोभोदयश्चतुर्थो	४०८१
हृदन्त्याकन्दताम्	५०५६	लोभोरैवरात्सह	३१०२७
रूपलावण्य	१५०१०	लोष्टेष्टका	१००१७
रूपं वपुः	१४०९०	लोहाय नावं जलघौ	२८०३९
रूपेण काममथ	१०५०		
रूपेण वर्णेन गति	२८०७	वक्षस्सु तेषां	१४०१८
रुस्तवः केचन	३०२०	वक्षांसि तेषां स	२०३४
		वचोऽजितेनाभिहितं	२०२३
लक्षाहताः प्रणवकाः	२९०६२	वचो निशम्य	१२०१३
लतां गले	१३०४९	वज्ञाभिधातादिव	१८०८५
लताः स्वपुष्पस्तबक	२८०१०३	वज्ञायुधश्चकभृता	२०३३
लप्स्येऽहमुर्बीश	१८०३०	वज्ञायुधो गौतम	२९०७९
लब्धप्रहारः	१४०४२	वणिकप्रभुत्वेन	१४०८६
लब्धत्रणाः श्रान्त	१७०६४	वणिग्नजनानां	१४०५४
लब्धत्रणानां	१७०८१	वत्स हित्वा	१५०२८
लब्धास्पदः सर्ज	३००१७	वधबन्धपरिश्रमादि	२४०६६
लब्धवापि सद्धर्म	१००८	वनगतोऽहम्	२०३६
लभेत जलधीन्	५०९८	वनस्पतीनां दश	६०५०
ललितपुरनिवासिभिः	१४०९७	वने पुनर्भीमतमे	३००३०
ललितपुरपतेः	१७०८६	वन्याः करीन्द्रा	६०१३
ललितसाहूपुर	२००२५	वपुष्मती विन्ध्य	२०५९
लुब्धस्य शीलमधनस्य	१०१८	वयं च सद्धर्मे	२९०९
लोकायात्राप्रसिद्धयर्थ	२६०७९	वयं न विद्वा	१३०८०
लोकस्य सारमखिलं	१०२४	वयं प्रकृत्या	२९०९१
लोके द्विधाकारण	३१०९५	वयं विशुद्धा	१२०१५
लोभमोहभय	१५०११३	वरतनोस्तुरगेण	२००३०
लोभाद्वागात्	५०५१	वरमन्त्रपदैः सुसंस्कृतं	२४०२५

वरधूस्तन	२०.७४	विधाइता	१४०४७
वरवराङ्ग पुरा	२००३५	विचारयत केन	१५०९
वरवंशमृदङ्ग	२४.५	विचित्रवर्णान्	२३.३०
वराङ्गनामा तव	१६.८२	विचित्रसंकल्पित	६०१६
वराङ्गनामानमनङ्ग	२.७६	विचित्र्य माता	१२०५२
वराङ्गराजः	२९.७८	विचित्र्य लोकानुगति	२१०६
वराङ्गराजेन सह	३०.१३	विच्छिन्नक्रमाष्टक	१००४५
वराङ्गराजो मृगराज	२१०३०	विज्ञानकान्तिनुति	१५०२
वराङ्गवाक्	२१०१७	विज्ञानरूपनुति	८०६४
वर्णेश्व वर्णस्य	१००५४	विज्ञाय चात्यन्त	२८०४८
वर्णोन्तरे पुण्य	८०४०	विज्ञाय भङ्गं	१४०२५
वर्तनालक्षणः कालः	२६.२७	विदार्थ वक्ताणि	१४०१६
वर्तमानमुपस्थृत्य	२६०२८	विद्याक्रियाचारुगुणैः	२५०४२
वर्षासु भीमाशनि	२२.१४	विद्रावयन्ती	१४०२६
वर्षासु शीतानिल	३०.२८	विधिना परिपालकः	२४.११
वसुधोदद्विशौल	२४०१०	विधिवान्नकृतान्त	२४०६
वसुंघेरन्द्रस्य तदा	२२०१	विधूय संकल्परति	३१०१९
वाक्यायचिते प्रणिधेः	३१०१०	विनय एव हि	२००४८
वाजिनावार्य	६५०६	विनयशीलविचित्र	२००१३
वाऽछन्ति ये	१२०१७	विनष्टकर्माष्टक	१३.११
वातायनेभ्यः खलु	१८०११९	विनष्टमार्गः	१२०७९
वाताहतद्वमपत्	१०३२	विना शशाङ्केन	२९०५
वायुनाति	१५०३५	विनिश्चितार्थी	१८०१६
वाय्वाश्रितानां त्रिसहस्रं	६.४१	विनिपातसहस्राणि	५०९०
वाराणशौ तौ च	२७.८३	विपत्तयश्च व्यसनानि	२१०३
वास्तुक्षेत्रधनं	१५.११६	विपत्तिमृच्छन्ति	२५.३९
विक्रीतवान्यो	१८०३५	विपुलद्वियशः	२४.१५
विगतगाधम्	२०.२४	विवान्धवास्यक्त	८०३२
विगृह्य येऽत्र	२१.१५	विवृध्य नक्षत्रसं	१३०४

विबोधुमिच्छामि	१३०२६	विहाय राज्याश्रेयम्	३१०१७
विभक्तसंसार	११०३०	वीणामृदङ्गप्रति	८०४६
विभाति सूर्यस्तु	१००३७	वीथिप्रवेशोद्धृत	११०५८
विभूषणान्छादन	२५०८६	वीरासनस्वस्तिक	३००३९
विभूषणानामति	२०१२	वीर्यविघ्नकरा	४०१०३
विमुच्य हस्तागतम्	२९०६०	वृक्षोग्र वाथ	४०५०
वियोगचिन्ता	१२०६१	वृत्ति विचित्रां	१६०९५
वियोगचिन्ता	१३०५४	वृद्धाः समेषु	१०४३
वियोगताप	१५०४४	वृद्धान्गुरुन्	२२०३३
विरक्तभृत्यान्यति	२०३०	वृद्धोपेसवन	१०४९
विरक्तः काम	१५०१३०	वेत्रासनाकृतिः	५०२
विलपन्तो रुपन्तश्च	१०३८	वेदाः प्रमाणं	२५०१२
विलोक्य पादावनतं	१८०११२	वैद्यर्थनालैस्तपनीय	२२०६५
विविधवन्दि	२००५४	वैवस्ते भे	१४०३६
विशालबुद्धिः	२९०८५	वैवाहिकी नः कुल	२०२०
विशिष्ट एवाप्रतिमल	१६०२६	व्यतीत्य देशान्	२०४२
विशिष्टानानर्दि	३००७३	व्यपेतदुर्दर्शन	११०२६
विशिष्टवातात्प	३००३८	व्यपेतमात्सर्य	७०५०
विशीर्णचित्तन्न	५०८३	व्यपेतशार्दूल	१३०५
विशीर्णदन्तः	२९०१३	व्यपेतसर्वेषण	१३०१२
विशीर्णवस्त्राः	१३०४६	व्यवस्थितानेव	१०४१
विशुद्धजात्यादि	२५०८३	व्यवहारपत्यं	२७०१५
विशुद्धवाक्याय	१३०९	व्याघ्रानिविन्धन्ति	६०२६
विसर्जनीयान्यथ	३१०८९	व्यादारिताल्ये सति	३१०८७
विषैर्निर्दशमान	५०८४	व्याध्यमानानि	२३०३५
विषैश्च विषम	१५०१०१	व्यायामु तिष्ठेयुः	९०४९
विष्कम्भमानं खलु योजनं	२७०१६	व्यायामविद्यासु	२०१६
विहाय चाभ्यर्णतया	१७०५०	व्यालोलमालाकुलित	२२०५८
विहाय मानं	२१०११	व्यासो वसिष्ठः	२५०४४

प्रतशीलतपो	१५०.११०	शरत्प्रदेषे विगता	२८०२४
व्रजस्तुते ग्राम	२१०.४७	शरद्यथाकीशु	२२०९
ब्रतातिपातप्रति	३.२६	शारसिपातवण	१४०४९
ब्रतशीलगुणैः	४.९३	शरीरिकायस्थिति	१३.१५
ब्रते दिवं यान्ति	१९.६४	शैरैः परास्त्राणि	१७.४६
ब्रणाः प्रशल्या	३०.१८	शशिनः किरणाः	२४०२
ब्रतानि शीलानि	३१.४	शखरज्ज्वादि	१५०.६५
शक्तिप्रहरेण	१८.६३	शश्वाणि वज्राग्नि	१८०.७७
शक्ति सुतीश्णा	१८.६२	शास्त्रोपशास्त्रासु	७०२०
शङ्काक्षकुशि	६.६	शान्तिश्च कुन्युस्त्वपर	२७.४७
शङ्का च काङ्क्षा	३१.७०	शान्तिश्च कुन्युस्त्वथ	२७.४१
शङ्काश्च भेष्यैः	१७.४०	शान्तेऽन्तरं प्रोक्तम्	२७.६१
शङ्काभिवर्तकम्	१८.१०६	शार्दूलनिर्भर्त्सन	१२०६०
शाचीपतिर्दक्षिण	२२.३६	शारीरदुःखं त्वपरैः	८०५३
शतधा खण्ड	५.७२	शार्दूललाला	१२०७७
शताहतं तच्च	२७.५१	शालीक्षुगोधूम	२९०६६
शनैरात्म्यायिता	१५.२५	शास्ता भव	२३०८६
शनैः समुत्थाय	१३.४३	शास्त्राणि निःश्रेयस	७०३२
शब्दस्पर्शरसो गन्धः	२६.१९	शास्त्रेण सर्वशसुपैति	७०३३
शब्दः स एके	२७.४	शिक्षाब्लेन	१४०३३
शब्दादयो ये	१०.३४	शिक्षाब्लेनात्म	१८०५७
शब्दार्थगन्धर्व	२.६	शिरांसि	१४०१७
शब्दार्थहेतुगणितादि	१०४२	शिलपैरनल्यैः	८०२६
शयने विमले	२४.६	शीतार्दितासेवित	२२.११
शश्यान्नपानाशन	८०५२	शीतोष्णवातोरु	७.१०
शश्यासनस्थान	३००५०	शीलसंयमहीना	४०९५
शश्यासु मृद्दीषु	८.४४	शीलानि दानानि	२२०३२
शरणोत्तम	१५०.१२१	शुक्रे पुनः	९.५७
		शुक्रार्त्तोदभूत	८.६२

शुद्धान्वया शचिर	१०६४	श्रीमलितीर्थे च	२७०४८
शुद्धि लभन्ते	२३०८०	श्रीमान्प्रभिनकट	१०४८
शुभकियाणां च	२९०२०	श्रीशीतलाख्यो	२७०३६
शुभान्वयौ	१२०३०	श्रुतं तदर्थं	११०९
शुभे मुहूर्ते	११०६१	श्रुत्वा ततोऽनन्त	२०२१
शुश्रूषताश्रवण	१०१४	श्रुत्वा तेषां वचो	१५०१६
शुष्कताल्वोष्ट	५०७८	श्रुत्वा पुत्रविवागं	१५०२३
शून्याल्ये देवगृहे	३००२६	श्रुत्वा मुनिःश्रावक	२३०८९
शूलस्तीक्ष्णतरैः	१०५५	श्रुत्वा मुनीन्द्रोदित	३००१०
शेषकालं जिनेन्द्राणां	१५०१४३	श्रुत्वा वचस्तस्य	२०१८
शेषा जिनेन्द्रास्तपसः	२७०१२	श्रुत्वा वचस्तस्य	२०१३
शेषाश्रु सर्वे	३१०११०	श्रुत्वा वचो धर्मं	२०८५
शेषाणि सप्रदेशानि	२६०३८	श्रुत्वा वराङ्गस्य	१२०३
शेषांश्च सर्वान्	३०३७	श्रेयांस्तथानन्तजित्	२७०६८
शेषांश्च दस्यून्	१४०४३	श्रेयांस्तु दानाधिपतिः	२७०७८
शैलाग्रदुर्गान्तर	३१०३७	श्रेयोर्थिना हि	१०१३
शोको भवेत्	१२०५३	श्रेयो यदज्ञानमिति	११०७
शौर्योद्धतावप्रति	१६०७	अेष्ट्री ततः स्वं	१४०७२
श्रद्धान्वितो भक्तिः	७०३०	अेष्ट्री पुनः	१४०७८
श्रद्धां कुर्वन्ति ये	२६०९१	अेष्ट्री सुतस्य	१६०१०३
श्रीदेवसेनेन पुनर्	१८०८०	ओता न चैहिक	१०१६
श्रीदेवसेनो रिपु	१८०८७	क्षेष्णाणि वासांसि	८०४३
श्रीधर्मसेनप्रमुखा	२९०१	श्वभिः शृगालैरपि	२५०६८
श्रीधर्मसेनप्रहितैः	२०५७	श्वाभीणां तिमिर	५०११०
श्रीधर्मसेनः सकलत्र	२०८७	श्वेतातपत्रं शरत्	२००४५
श्रीधर्मसेनेन	२४४५		
श्रीपर्वते श्रीः	२५०६८	षट्कर्मधर्ममिरता	८०१
श्रीमण्डपान्मणिःत	७०१९	षट्मा नवत्रिशादथो	२७०६०
श्रीमण्डपे लम्बित	१९०१८	षट्प्रकारविभक्तं	२६०१४

प्रदृष्टिसंख्या	२७.५९	सत्त्वाधिकः	११.७७
पष्टसमयोः शीतं	५०२०	सदयमनुपमादि	२००९१
षाण्मासिकं तेन	२५०५०	सदसन्नियतिस्वभाव	२४०१९
		सदा जिनेन्द्रोदित	२२०५५
स एव पूर्वजित	२१.२	स देवेसनो	२१०७
स एवमुक्तः	१३.८४	सद्घटिसज्जान	७०५३
स कदाचिदतुल्य	२४०१३	सद्घटिसज्जान	८०१५
सकला नयभङ्ग	२४०६१	सद्ग्रावविज्ञप्ति	११०२९
स किं विसोऽुं	११०८२	सद्यानचरित्र	३००३९
स केवलज्ञान	२५.७६	सद्रत्नसंस्कारित	१९०२४
सक्रियाः पुद्रला	१२८.४२	सनत्कुमारस्य मनोज्ञ	२०६
सखिजनाः स्वसुताः	२००२३	सनादकाकाञ्छनका	२३०२३
सखी तिरोऽन्येत्य	१९.४५	स नीतिचक्षुर्मति	२८०९
सख्याः कराग्र	१९०४६	सन्तीह पुर्या	१६०६२
सगोपुराद्वालक	२२.५७	सन्तो नरा युवतयश्च	१०२७
स च गुरुप्रतिकूल	२०.८४	सन्ध्याभ्राराग	८०६५
सजातयो	१३.१७	सन्मानमायावनि	२८०७७
सज्जानचारित्र	३०.६	सञ्चल्यतस्तान्	१४०९
सज्जानमन्त्तद्विरद	३१.२०	सप्तम्यां तु	५०१०८
स तस्य चित्तानुगतं	१४०८०	सप्तैव माहेन्द्र	९०५६
स तस्य संप्रेक्ष्य	१२.६६	सबन्धनं	१३०८१
सतः पदार्थान्	११.१२	सबालवृद्धं	११०६७
स ताम्रनेत्रः	१६.१४	सभागतास्तद्रचनं	१५.७
स तां निरीक्ष्य	१३.२७	सभागृहे वासगृहे	२१०३६
स तेन दष्टः	१३.०६०	सभाप्रपादेव	२१.३४
स तैः फैः:	१३.४४	सभावनात्युग्र	३१.८४
सत्कारमैत्र्यवन	१०.११	सभूविभङ्गाभिनय	८०४६
सत्कृत्य तान्स्मेर	२०.१५	समता सर्वभूतेषु	१५०१२२
मत्यार्जीवक्षान्ति	२०.९३	समदवारणमूर्ति	२००८६

समन्दरं विश्व	२३.१५	सरः प्रविश्योत्पल	१३.१
समभिवीक्षय	२०.२८	सरः प्रसन्नोदकं	१२.७.२
समयावलिनाङ्गश्च	२६.३०	सरागसंयमो	४.९.६
समवतीर्थं मृगेन्द्र	२०.२९	सरांसि शालीं	२१.४.२
समस्तसामन्त	१६.०६	सर्पेण पीतं	७.४.१
समस्तमामन्त	१६.१६	सर्वकर्मविनिर्मुक्ताः	२६.१.२
समस्तसामन्त	२१.७७	सर्वाक्षितीशोष्वहत	१६.२.९
समानशीलाः	२८.१३	सर्वज्ञ सर्वाच्चित	२३.३.९
स मानसानिन्द्रिय	३१.२६	सर्वज्ञभाषितमहानद	१०.१०
समाप्तयोगैः	३१.०३	सर्वत्र भेरीं	२३.४
समीक्षमाणा	१२.१०	सर्वद्रव्यस्वभावाना	४.२.३
समीक्ष्य तौ पुत्र	२.८	सर्वप्रजाभ्यो ह्यभय	३.३.८
समीक्ष्य रूपं च	१९.०४०	सर्वप्रपञ्चसंसिद्धिः	२६.७.३
समीक्ष्य सेनां	१६.४९	सर्वान्नरेन्द्रान्	११.०.७०
समुत्थितोऽस्तं	२८.४७	सर्वायसैःप्राप्त	१८.४.५
समुद्रकोटीस्वजितेन	२७.५६	सर्वार्थसिद्धेस्तु	१०.०.२
समुद्रवृद्ध्यग्रसुताय	२१.५५	सर्वान्तरायान्	१९.२.७
समुल्लसत्कुञ्जित	९.४६	सर्वांसां राज	१७.६.१
समेत्य तैर्मन्त्रित	२०.६	सर्वाः क्लियः प्रथम	१०.६.९
समेत्य सम्यग्बहु	२.७४	सर्वेषां भोगिनां	१०.६.७
समेत्य सर्वे	१८.३४	सर्वेषु तेष्वप्रतिमेषु	२२.३.३
सम्यक्त्वन्नारित्र	३१.३५	सर्वेषु भूतेषु मनः	३१.१०.३
सम्यक्लवतुङ्गवत	३१.२३	सर्वांषधित्वं च	३१.५.२
सम्यक्त्वमेकं	९.०३.१	सवारणं सर्वजगत्	२२.२
सन्यक्त्वरत्नान्न	११.१९	स वारणेन्द्रः	१६.८
सम्यक्त्वसज्जान	१०.४२	स व्याधिते च	१६.८.०
सम्यग्दृष्टेस्तु संसारो	२६.९८	स सप्तहस्तो	२७.४.९
सम्यग्विधाय	२३.०६.३	स संप्रहारो	१४.१.९
सरस्वती नाम	२१.८	संसिहविक्रान्तित	३०.५.२

स ख्लापकः ख्लात	२३०४५	संभाव्यरूपः स्वगुणैः	२०१७
सहस्रपूर्वादिमलः	२७०६९	संभाव्य सम्यद्	३४९
सहायतां युध्यगमः	२८०५९	संयोगतो दोषमवाप	३१०१०२
संक्षेपतो नयौ द्वौ	२६०४८	संश्रुत्य सा तद्रचनं	१९०५४
संक्षेपात्पृथुयशसां	३००७५	संसर्गतो ये च	८०२७
संख्यानतः	१००४	संसारघोरार्णव	१०५८
संख्येयमादौ	२७०१४	संसारनिस्सारम्	३१०१००
संगीतगीतकरताल	१००३८	संसारवासे वसतां	२८०५५
संचिन्त्य मंत्री	१२०२२	संसारतागर	१०१९
संज्ञानभिजेन	१२०४२	संसारे प्राणिनः	४०१
संज्ञाश्रतस्त्रः	३००७	संसेव्य तादृविवं	११०७५
संतानमुक्तैर्विशिखैः	१८०९८	संस्तम्भ्य चेतोविवरं	३१०९३
संतेजनोपाय	१८०३	संस्थाप्य यन्तात्	२३०७७
संत्यज्य मृष्टाशन	३००५६	सस्थाप्यमानोऽपि	१६०१८
संदेशमीशस्य	२२०५६	संहृत्य सर्वाण्यपि	३१०८५
संधर्तुकामश्च	१२०२५	संहेपयन्ती स्वस्त्रा	२३०२
संधौतहस्तः	२३०६४	साकेतपुर्यो सुलभा	२०२१
संध्यातिद्विहिं	३१०२६	सा चापि तन्वी	१९०६५
संध्यामहीकर्त्प	३१०६७	सा चापि तस्य वदनं	१०६७
संनन्द्य सर्वायुध	१५०१२	सा चापि सेना	१६०४८
संनाहिनः स्वान्	१८०२०	सा चैवमुक्ता	१९०४९
संपन्नौ दैवसंपत्या	२६०१०३	सा तिष्ठु श्वा	१९०६६
संपूज्य तं सागर	१८०११५	साधूक्तमेभिर्नृप	१६०६५
संपूज्य तामन्त्रि	१६०७५	साप्यात्मनीयैः	१९०३५
संप्राप्तकल्याणमहा	२०८८	सामन्तभूमीश्वर	११०६४
संप्राप्त भववित्रस्तान्	५०३७	सामान्यमूते च	८०६
संप्राप्य युद्धे	१८०६७	सामान्यस्त्काङ्गन	३००६९
संप्राप्य राजालयम्	२०४३	सामायिकं प्रोषध	२२०३०
संप्राप्य सार्वज्ञं	११०३३	सामुद्रहोराफल	२८०५

साम्ना प्रदानेन	१६०५४	सुनीतिमार्गेण	१६०४४
सायं पादपम्	१००८८	सुर्पणनागोदधि	९०४
सार्थाधिषो	१४०५७	सुपात्रदानात्	७०४९
सार्थेन सर्वद्वि	१४०३	सुपार्श्वनामा किल	२७०७०
सा लक्षणासीत्रवमी	२५०७५	सुभाषितं खलु	१३०३३
सिता बलाकाश्रय	२३०४९	सुमतयोऽजित	२००२१
सिंहव्याघ्रमृग	५०३९	सुमन्त्रपूताम्बु	२५०२८
सीमंकरः पञ्चमको	२७०३८	सुराङ्गना वैकिय	९०५२
सुखदुःखफलात्	२४०५३	सुराधिवासस्य चतुर्	३०४१
सुखदुःखविभित्ति	८०६९	सुरेन्द्रलोकस्य	९०१५
सुखदुःखोपभोगस्तु	२६०५८	सुरेश्वराणाम्	१००४४
सुखं निमेष	५०१०८	सुवर्णकक्षोपहितान्	२०५८
सुखं हि सामैव	२१०६६	सुवर्णपात्रे परम	२५०१९
सुखोपभोगात्	२१०४६	ध	२३०६७
सुगन्धं सुमाल्यं	१३०८९	सुवर्णरूप्य	१२०७६
सुगन्धिगन्धोदक	२३०५८	सुवर्णवर्णः खलु	२७०८७
सुगन्धिनाना	९०२३	सुवर्णवासन्तिक	२२०७९
सुगन्धिसचन्दन	११०५९	सुशब्दपूर्वास्तु भवन्ति	२००२८
सुगन्धिसचन्दन	२८०२०	सुशिलिपनिर्मापित	२२०५९
सुगन्धिसचन्दन	२३०६६	सुशीलमाहात्म्य	१९०७०
सुगन्धिसचम्पक	७०२२	सुश्रावकः सर्व	२३०९६
सुग्रीवनामा सुट्ठो	२७०७२	सुसंयता वाग्मिः	६०३८
सुतदुःखहिम	१५०१९	सुसंयतेभ्यो वसति	७०४७
सुतसकृष्ण	५०७७	सुसिद्धमन्त्र	२९०६१
सुदर्शनश्चैव हि	२७०७३	सूर्यप्रभैः सूर्य	९०२२
सुदर्शनीयाः फल	२३०२८	सूर्योश्च चन्द्राः	९०६
सुदर्शनेन	१३०४०	सूर्ये तदास्तंगीरि	१२०५८
सुटृष्ट्यस्तस	७०३१	सैकावधि नारक	८०१६
सुनन्दया किं तव	१७०३१	सैवेह दानेन	८०१४

सोत्साहधैर्यव्युति	२२०३	स्थिरमतिरकृतार्था	१९०८७
सोद्यानवापी	१०२४	स्थूलस्थूलं तथा	२६०१५
सोपचारैरूपासत्य	१०६१	स्थूलामहिसामीप	२२०२९
सोऽपीन्द्रसेनः	१८०८८	स्नानादिभिः	१००५१
सौधर्मकल्पप्रभृतिषु	१०५१	स्नानानुलिपाः	२३०३२
सौधर्मकल्पः	१०७	स्पृष्टं यदा	११०१७
सौधर्मादिपु	१५०१२७	स्मरानलार्चिः	२९०८
सौभाग्ययुक्ता	८०५३	स्मितपूर्वमनोज्ञ	२४०७४
सौवर्णरौप्यामल	२३०२२	स्मित्वा ततः सो	११०३
स्तम्भास्तु सर्वे	२०६६	स्यन्दते मुखतो	४०५१
स्तम्भैर्ज्वलद्विः	२२०६३	स्यात्याश्रिका	२७०५२
स्तोत्रावसाने	२९०५१	स्यात्सागरानां	२७०३०
स्त्री चेव पुस्त्व	४०८९	स्याद्वादस्तु विशेषण	२६०७७
स्त्रीणा पुरुष	५०६५	स्याद्वादः खलु	२६०७६
स्त्रीपुंसस्युग्म	७०५६	स्याद्वादः खलु	२६०८१
स्त्रीबालवृद्धान्	१६०१०१	स्यान्मानमेतत्किल	२७०३१
स्त्रीबालवृद्धाश्रम	२२०५	स्यान्मानहानिः	१६०५६
स्त्रीभिः समं	१४०६६	स्वच्छाम्बुपूर्णैः	२३०६५
स्त्रीभूषणै रागिण	२५०८१	स्वजीवितं बन्धु	१००२२
स्त्रीरूपसंदर्शन	३१०७९	स्वजीविताशां	३१०६२
स्थलेषुनिर्जन्तुषु	३००२९	स्वजीवितेनात्र	१८०३६
स्थानानि जीवस्य	३००४	स्वतनयाभिनिरीक्षण	२००७२
स्थानानि संपाद्य	१७०४१	स्वतनुदुर्बलतां	२००१४
स्थानेन बीजेन	३१०९१	स्वनाथकायानु	५०५३
स्थानासने	११०५०	स्वनाथवाक्यं	२१०६५
स्थितं पुरस्ताद्	१७०४	स्वनामगोत्राणि	१८०७४
स्थितः क्वचिच्च	१७०८४	स्वपित्युथापितो	४०५२
स्थितिगतिव्युति	२००६९	स्वपुत्रसत्कृति	११०५४
स्थित्वापि सद्यानपये	३१०१०७	स्वपुरशक्तकर्मपाश	२४०६२

स्वप्रश्न भृत्यो	८०९	स्वामिन्प्रभो	८०२१
स्वबन्धुमित्राणि	१४०६९	रवायंभुवैर्यज्ञ	२५०१८
स्वबन्धुमित्रान्	२५०१९	स्वैमन्त्रिभिः	१९०११
स्ववाहुवीर्यार्जित	१९०२७		
स्वभगिनीसुत	२००४१	हता किलैकेन	१६०१०९
स्वभावतः प्रोन्नत	१६०२३	हतेश्वरे सापि	१४०४५
स्वभावतः शूरतमाः	१८०५	हत्वा प्रदस्यून्	१४०२७
स्वभावतो वाल	९०४३	हत्वा सुतं मे	१४०३५
स्वभावनिर्वर्तित	२३०५२	हयद्विप्रस्थन्दन	२२०६२
स्वभावमद्राः श्रुति	२८०८१	हयरथद्विप	२००५६
स्वभावशुभ्राणि	९०२०	हयांस्तु जाति	१६०७२
स्वमन्त्रिसंदर्शित	२१०६८	हये रथे वा	१६०१०४
स्वयमेव न भाति	२४०३९	हरिभोजोग्रवंशे	१५०१२९
स्वयं नरेन्द्रो	११०६५	हर्षे रोषे त्ववशायां	४०८३
स्वयं प्रबुद्धः	१३०३४	हलीशवागीश	२८०३६
स्वर्गोऽस्ति नास्तीति	२९०५९	हसन्ति ये स्वाकृति	२३०४२
स्वविषयात्	२००६२	हस्तपादमथ चिछत्वा	५०४३
स्वसा तवाहं	१३०४१	हस्तविक्षोभ	४०४७
स्वसुमात्रस्वसा	१५०११५	हस्तागतं प्राणबल	२८०४०
स्वस्मास्तुताद्यः	२५०६५	हस्तार्पितं ये परकीयं	६०३४
स्वस्वामिसंबन्ध	१७०४४	हस्यश्वयानानि	१२०७८
स्वं जीवितं न	२८०५३	हंसाङ्गना	१२०७४
स्वान्नाणि केचित्	१७०५९	हंसांसकुन्दच्छद	२३०३७
स्वाभाविकक्षाप्रति	२०६९	हा वत्स कि	१४०५०
स्वामिन्किमेवं	२८०७४	हसेन वा मधु	१०६१

हास्यरत्यरति	५०२९	हेमन्तकाले धृति	३१०३२
हिमाहतानामिव	२८८३	हेमन्तकाले रति	२२०१०
हिंसानुधर्मस्वथ	११०६	हेमोत्तमस्तमभृतां	२०५४
हिंसायां निरता	५०२६	हैमैर्घटैर्गन्धविमिश्र	२०७१
हिंस्यन्ते हिंसकाः	१५०८९	हैरण्यका हैमवता	७०६३
हृदयहारिवन्चः	२००६८	ह्योविद्धि निर्गतं	१५०१०५



NOTES

NOTES

CANTO I

4 तत् serves no special purpose here. 8-9 The author is as it were illustrating the use of विना with Abl., Acc. and Inst.
11 By sandhi श्रोत्रात्मनोरुप०. 14 Better शुश्रुता०. 16 न प्रतिलिप्स-
मानो in the sense of अप्रति०. 17 Note the position of च.
22 नमः and कृत्वा are separably used, cf. शिशुपालवध I. 46.
23 In b better च for स; the reading मोगश्रिया is equally good
rather better; पृथिव्याः would be better. 24 Possibly ^०नियमोच्च
निधि०. 25 गेह is usually neuter but here mas., see also xxi. 38,
xxii. 66, 73. 27 अतिशाययन्ति is causal for primitive. 34 Better
read अभ्यन्तरश्च. 38 Should we read in c & d ^०भूमिदेशैर्विन्यस्त० ?
43 Better शमेषु for समेषु. 44 Perhaps रत्नापगाजलधिभिः. 46 In
a we have a सापेक्षसमाप्त for which the author has too much
inclination; note the use of the form आम independently.
51 Better न कुरुते for प्रकुरुते. 52 Are we to read क्षुत्क्षीणमय-
नयनोदरवक्त्रगण्डः ? 54 बद्धदृढवैरवनां is not a happy compound with
the suffix वत्. 59 To be correct, we want ^०गर्वेत्यः and ^०विशुद्धिवत्यः
in a and b; by violating Pāṇini's rule आन् ऋत्विक्तो द्वन्द्वे, स्वमानृषिण् etc.
is used irregularly for मातापितृगोत्रविशुद्धिवत्यः; is परीप्सयिन्यः irregularly
is used for परीस्मिन्यः ? 60 What is the object of अनुभूय ? 61 ^०कथ-
भिरक्ताः would be a better reading. 64 The line b may be read
कामैकामावरतिकर्क्षजानरागा, कर्क्षजान = कर्क्षीभूत irregularly. 68 Better
^०परितोषण० in c. 70 The gap may be filled by ^०भूप० or ^०राज०.

CANTO II

2 च misplaced. 3 कलप्रलाप॑ would be nearer the actual
reading, but to qualify the moon as well as the prince कलाकलाप॑
is better; are we to read भूप॑ ? 6 Better ^०गान्धवकला०. 11 अतुल्य-
नामा = अतुल्यानामा; her name is अतुल्या and the shortening of आ to अ
is irregular. The shortening seen in रेवतिपुत्रः, अजक्षीरं etc. is not
quite similar. In Prākrit, however, we have shortening of the

vowel under similar circumstances : खंडविमाहनामाओ विजाहरकुमारीओ, their names being खंडा and विमाहा; परितोसनामाए वेडियाए, her name being परितोसा. It is a statement put in the mouth of श्रेष्ठिन्, so note that the Perfect form बभूव is not justified. 13 Note तम is suffixed to a substantive. 14 उपोपविष्टः is apparently an instance of double preposition, and the need of an additional preposition may be thus explained. निश् with उप, when it means 'to sit down,' develops slightly independent meaning, and hence the need of another उप to express the meaning 'to sit near'. We find this form in रामायण, अयोध्याकाण्ड i. 51, and अश्वोष too has one instance in बुद्धचरित. IX.8 (JOHNSTON'S Ed., COWELL'S Ed. reads नृपोपविष्ट for उपोपविष्ट). 27 Better read दोषा य एतेन. 35 Better read विवाहत-न्नाथिकृतान्; ससर्ज is in the singular for the subject in plural; perhaps the author might have used ससर्जुः irregularly for ससर्जुः. 37 निशाम् 10 U. to see, निशम् 4 P. to hear ; corresponding to this in 40 below निशम्य वार्णी च समीक्ष्य लेखम्. 39 Better read पर्ति स्वमारोपित⁰ or पत्या समारोपित⁰ as suggested in the footnote. 43 Better read राजल्यमुत्तमद्दि, so that उत्तमद्दि qualifies राजल्यं. 47 शुचिनान् = शुचित्ववान्, or from शुचिः 'purity', 'honesty'. 48 Both एवम् and इत्यम् are used: one is redundant. 50 Read *d* thus : आहाययां कार्यविदो बभूव; our author is in the regular habit of separating the main verb of the perephrastic perfect from its auxiliary by an intervening word. We will note many such cases throughout this book. 53 Rather संब्यानवर्ती, संब्यानम् = a covering. 57 स्वामिः + अमा (= सह); the use of अमा is archaic. 71 In *b* °संवेष्टिदामलीलैः would be better. 73 फुल = a flower; अक्ष perhaps means 'rice' here, cf. Kannada अक्कಿ. 76 स्तितीन्द्रपुत्रीश would give a better sense; कथयांबभूवः has no subject, are we to read °पौराः समेताः ? 80 Rather श्रमः, केवल being an indeclinable. 85 We should read सर्वजनावगम्यम् and तच्छ्राप्तुः. 87 Almost uniformly the MSS. read सन्मान० for संमान. 88 चाहितराजलक्ष्म्या or चागत० as suggested in the footnote.

CANTO III

4 The spelling of मङ्ग्न and खेण is like that in Prākrit;

व्युपदेष्टुकामः gives better sense. 15 We want the form प्रहृष्टोमा.
 18 Sandhi is not observed between *c* and *d*. 21 चिकित्सवः stands either for चिकित्सवः or irregularly for चिचेनिषवः from चित् 1 p.
 23 सिंशंसवः perhaps irregularly for शिशमिशवः from शम् 4 p.
 30 समाहार would have been better for हस्त्यश्यानानि. 31 मत्तदिपस्य connected with स्वन्धाधिरूढः, again a सापेक्ष compound. 39 Note the hiatus between *c* and *d*. 43 Rather व्युपदेष्टुकामः as suggested above in 4. 47 च misplaced, also in 36 above. 54 अधिक is used in the sense of अधिकत्व. 55 येऽधर्माश्रयात् would give better sense. 58 तीक्षणाङ्कशब्दान् is कर्मधारय with बत्. 63 जिनानां for जनानां would give better sense.

CANTO IV

6 *d* is metrically defective. 7 Note *c* has nine syllables. 14 Note *c* has nine syllables. 22 Better दिनान्वाथ; *c* is metrically defective. 24 Note the hiatus between *c* and *d*. 29 *a* is metrically defective. 30 विवातयन्ति causal with primitive sense. 31 The position of लोमः occasions यतिमङ्गलोष. 34 Better तत् for तं. 37 Hiatus between *c* and *d*. 39 Hiatus between *a* and *b*, 41 Read आन्तर्मुहूर्तिकी. 44 Hiatus between *a* and *b*, also in 45. 52 स्वपन्कर्म would be a better reading. 61 Rather चातुर्वर्ण्येत्यस्य; hiatus between *c* and *d*, and also between *a* and *b* in 62. 68 Note उथान is Mas. 72 Hiatus between *a* and *b*. 77 Better प्रकृतिं तेन. 83 लप्ते Ātm. only in epics. 84 Hiatus between *a* and *b*. 85 Are we to read the first line thus : शानव्रततपःशीलदैन्यान्यसुखकारणम्? ; hiatus between *c* and *d*. 98 Rather °विपाकान् हि व॒नन्ति शुभनामकाः. 102 Hiatus between *c* and *d*. 105 Hiatus between *a* and *b*. 106 Better read घटवद्वेषेऽस्मिन्. 109 Nine syllables in *a*, so read एतानि नरके धोरे. 114 समश् is 5 Ā, so the form समश्वतां (also in v. 95) is perhaps irregularly used for समश्ववानानां or समश्ववतां when it is Parasmaipada (vi. 16). ; note तरतम is used like an adjective.

CANTO V

5 विष्ठिताः = अधिष्ठिताः, an epic usage. 8 Rather गव्यूतिर्गच्छूत्यर्थं. 12 Hiatus between *a* and *b*, also in 16. 21 Hiatus between *c*

and *d*. **30** Read ^०मुखेष्वेके ; hiatus between *a* and *b*. **32** Rather पूतिगन्धयः **33** Hiatus between *c* and *d*, also in 36. **37** Should we read शूलैस्ताइयत्यथ ? **42** प्रादुः पिशितकं would give some sense. **48** शङ् is mas., so शङ् + मूर्खसु ; उत्तवन् used in the sense of निखन्. **49** In the light of 57 below, the first line may be thus emended मध्यिका मशकांश्वैव वृश्चिकांश्च पिपीलकाः The rule that the causals of the roots अद् and खाद् govern the Instr. case is violated. Better read सवद्विरपूयिनः. **53** Better विच्छिन्न. **56** Hiatus between *a* and *b*. **59** Rather संस्म्रमम्. **60** Taking परस्तीणां etc. a सापेक्ष compound, we want ^०कर्कशैः or कर्कशान्. **61** Rather सोपन्नारम्भमुपासृत्य and ब्रुवत्यः. **64** Better युवयो रतिविभ्रमम्. **68** शात्री *f.* hell, see 27 above. **71** Hiatus between *a* and *b*. **74** Read शैलात् + शीर्थमाणाङ्गान् + चूर्णयन्ति etc. **83** What is the object for अविरुद्ध ? **85** चूषयन्ति causal for primitive. **93** Rather उदाराण्युरुवक्षांसि. **94** भर्त् is rarely Parasmaipada. **96** Better read प्रावेक्ष्यद्वाराममव्याहै वर्हं दुःखमलप्यत । **97** ^०प्रावेक्ष्यच्चेदिनिर्गतः...परं दुःखमलप्यत would be better. **101** Rather उपभुज्यात्मनः. **106** Are we to read जघन्यका for जघन्यकः ?

CANTO VI

4 Rather कायांश्च. **15** गोण 'Ox' is a Prākrit word. **21** Better read न्यद्केडकाद्याः परिपुष्टायास्त्वद्वांस०. **23** निपानदेशेष्वमिलोन० would be better. **24** अनुवाच्यमानाः does not give the necessary sense, unless it is a Sanskritisation from the Prākrit root वच्च to go ; so अनुवाच्यमानाः or अनुवाच्यमानाः would give the necessary sense. **26** Usually वराकी is the *f.* from वराक. **36** वसन्ति = विशन्ति ? **38** Rather सुमंयतान् ; ददते has no object ; and also note the position of हि at the beginning of a pāda. **40** Are we to take जलाश्रितां as the Gen. pl. of जलाश्रित, जलमाश्रयतीति जलाश्रित ? **42** Read पञ्चाशदुर्क्त. **45** Rather शूलयुक्ता कोष्ठः and प्रभञ्जनावात्मकयोश्च. **46** Hiatus between *c* and *d*. **52** जाल 'a net' is neuter, but mas here. **53** The rule of समानकर्तुकत्व in the use of Gerund is violated here ; or are we to read त्वपरैरवासं ?

CANTO VII

16. दुन्दुभी *f.* is used in epics. **21** Note कर्मधारय with suffi वत्. **23** Rather कामलतावि०. **36** हेयस्मदाहरन्ति would give better sens

40 Rather ते गुडशर्कराद्याः **48** We want °धीयशांसि, also in 49.

54 Hiatus between *a* and *b*. **66** Rather °पूण्य-प्रभवसुखं.

CANTO VIII

1 साह like उपाह 'by name'. **4** Hiatus between *c* and *d*, also in 7 and 14. **8** Better सद्धर्ममतीति कृच्छ्रात्. **16** Hiatus between *a* and *b*; the verse is obscure. **17** Better अत्पार्थमन्यासु मर्ति or as suggested there. **18** अनभिशतत्वाः = तत्वानभिशः; better परप्रैषकराः, प्रेष्यकर is known to epics, see also 27 below. **22** परेस्तु may be substituted by परेणां or हृत्वा is used with causal sense. **26** Better धनाशया हेश°. **28** Either कर्पटिनः or कार्पटिकाः; भिक्षयान्ति causal for primitive. **29** Are we to read स कर्मणां? **33** Rather अकल्याः 'Sickness'. **34** संक्षाघयन्तः Causal for primitive. **36** तदवाप्नुविन्ति, तद् is unnecessary. **38** Rather ददत्तथार्थानपि. **39** च इष्ट° a hiatus. **40** Rather लक्ष्मीवति; व्याप्तयशोदिगन्ते irregularly for यशोव्याप्तिदिगन्ते; better सन्तस्तमाहुः. **41** Vocatives collectively put: मन्त्राथ, वत्स, प्रिय, पुत्रकेति. **42** Should we read यो ना for यूना? **43** Better संवसानः and गन्धान् सुगन्धीन्. **44** अमा = सह. **45** Better रात्रिदिवं. **46** वादि-त्रकालाप° may be equally good. **50** Are we to read ग्रामसहस्रमेकः? **53** Better °संपद्रूपित्वमारोग्य°; आरोग्यता, a contaminated compromise between आरोग्य and अरोगता. **57** Note आईन्य for आईत्य, also in xxvii 47. **62** Better तथा or सदा for तदा; शुचि = शुचित्व. **69** *d* is wanting in two syllables, so read गदितुं स्पष्टतराक्षरां प्रवृत्तः.

CANTO IX

15 Possessive suffix to कर्मधारय in *a*, also in *c* 45 below. **24** पर्यन्त° etc. irregularly for पर्यन्तस्थितकान्तकल्पवक्षाः. **28** Are we to read ये कामतो? **38** Hiatus between *a* and *b*; rather व्याभास्यन्तश्च. **49** Hiatus between *a* and *b*. **51** त्रयस्तिशक? **60** Hiatus between *c* and *d*. **62** Rather यत्सौर्यं.....तत्प्रारेषे.

CANTO X

7 Rather रागविरागवर्जम्. **19** Rather यैनिजितमोहसेनैस्तोषां. **20** दिनेन, I think now, is a better reading. **28** समीप्रकृत्य may stand for समं प्रकृत्य or irregularly for समीकृत्य. **31** *c* is obscure; **45** विष्ठि = अधिष्ठित. **52** Better परिकर्ममुक्तव्यपेत°. **63** Better गृहीत्वार्य°; is संनिदध्युः used irregularly for संनिदधुः? **64** Better नृपच्छत्रमध्ये.

CANTO XI

6 Are we to read हिंसानुधर्मे तथ? 9 Rather श्रुतं यदर्थं. 12 Better °विपर्यये. 23 Usually समक्त, but here समजित. 25 सवेदकः, 'a man of knowledge', क being a स्वार्थे suffix. 30 विभग्संसार etc. would be better. 32 यत्ते, यत् 'to be prepared for or to strive after' governs Acc., or better तपते which is sometimes Ātm. 33 Rather नैःश्रेयसीं. 34 धर्माभिरागस्त्वियोग्यताय. 36 Better तपश्चरन्ति, as that root is rarely Ātm. 44 Hiatus between *a* and *b*; better वृत्तसाक्षकस्तु. 45 Note the rhyme. 46 वयोपचारं stands either for नयोपचारं or ययोपचारं. 47 तपस्कः is used in the sense of 'a saint', if it is a correct reading. 48 Better स्म कार्यम्. 51 Note अपेत with Instr., not unusual in the Epics. 56 Rather वाक्यान्यनुभव्य. 57 Hiatus between *a* and *b*, also between *c* and *d* in 59. 58 Better सुतोरणा०. 61 Auxiliary separated in *d* also in 62 and 85. 64 आमात्य for अमात्य is known to Lexicographers; ते serves no special purpose. 65 Are we to read पुरस्कृतः श्रीयशसे? तानि appears to be used like a definite article, also in 72 below. 66 Better केशमाला for केतु०; and प्राकारकाञ्जिः. 70 राज, the use of Perf. is not satisfactory. 75 Are we to read संजीवनान्नो or संजीवतां नो? 77 Better रूपान्वितो वा वृत्तिनां. 83 युवराज्य = युवराजत्व? Note एकादशम for एकादश in the colophon, which reminds one of the Prākrit usage.

CANTO XII

2 Hiatus between *c* and *d*, also in 4. 5 In both the MSS., almost uniformly, विसर्ग is retained before क and प and not changed to श् as expected. 6 Better °धुरासमये. 11 In *b* rather न वा न शक्तिः. 12 Hiatus between *c* and *d*, also between *a* and *b* in 13 and in 15. 18 Better पूर्वमुपाधिता श्री०. 19 Are we to read ये नात्मबुद्ध्या? 21 प्रयात्माना + आस सुतेन. 24 Rather पैरविशात०. 28 Rather अभ्यर्थ्यमाना०. 29 Better read जात्यौ. 31 स and सो serve no special purpose; hiatus between *a* and *b*. 37 धारित्वामशीलं would be a better emendation for वारित० etc. 39 Rather °वेषक्रिययाधिरूप्य. 40 Are we to read तथाऽविनीतः? 41 Rather अश्वता. 42 Should we read सुकृतानि? 44 Read वातो यथैत्पनिक०. 49 The subject for आरुरोह

is omitted. **51** Rather शीतवनानिलेन. **55** Should we read विधाय for निधाय? **61** Rather च दुर्भितस्य or सुदुर्भितस्य. **62** Better शार्दूल्यानं प्रति०. **65** Read दर्दश कुम्हे. **69** Better तवोपकार०. **72** c stands irregularly for फुलोत्पल...संछङ्गं. **74** If we accept the emendation ददृशुस्तिरस्तात्, it means ताः तिरोददृशः = ताः तिरोदधुः, a rare usage indeed. **75** Rather क्षामतयाम्बु. **78** Are we to read रोरुष्यमाणो for आरुष्य? **79** Note सपाषाणमयं, or सपाषाण + अयं. **83** Rather °मूर्जित or °मुच्चित. **85** Read यद्विण्डप्रचय, मिण्ड० = मेंड in Marathi. **87** Are we to read समानपुंसः? **88** Rather वृत्ति०...लम्ब्य. Note द्रादशम for द्रादश in the colophon.

CANTO XIII.

1 The compound in *a* stands irregularly for फुलोत्पल०. **10** Are we to read °शर्णनं जिनं? **13** Rather प्रपश्यतां for प्रश्नस्यतां. **15** शरण्यतां stands irregularly for शरणं. **17** Better read निस्तुषा for निस्तुषाः to agree with येन. **20** ब्रतधारि० or वशधारितात्मकम्; auxiliary separated in *d*. **25** कर्मधारय with the suffix इन् in *b*. **31** In *b* the compound stands irregularly for दुर्लभप्रतिकारा. **34** Rather read *d* thus: परान्वस्थापनवोधन०. **38** Read नापि for वापि. **39** As suggested there or परीक्षणायाकृषि मृष्टयाम्. **43** Better वरे वने...°शोभिते. **45** Or we may improve on the reading of *c* thus: °वालुकाकुला. **51** Rather स्मरन्नशेत. **56** Rather बहुप्रकारकिमि०; *c* is an इन्द्रवंशापाठ in a वंशस्य verse; should we read प्रमार्जनादिं०? **60** Rather °निन्युरादृताः. **62** Rather तुष्टः; and some verb like इत्युवाच is omitted. **63** तमिन्, Loc. for the usual Acc. **66** भूषण is usually Neu., but also Mas. in the Epics; ते in *b* serves no special purpose. **69** Are we to read °मिष्यतेऽक्षमैः? **70** Read यत्तदस्तु युक्ता०. **71** The reading of *c* is equally good; rather स्वबन्धुसंगं. **74** Better °प्रतिमात्मपौरुष०. **75** कायोपस्थिति suggested there disturbs metre, so better कायोपचित्ति or कायोपहति. **78** Rather परीत्य चारकः (also in 79). **87** संवाहनतां = संवाहननं. **88** Rather चतुर्भ्यस्त्वहोम्य० which gives the necessary sense; I think, even this usage may be correct. Note त्रयोदशम for त्रयोदशः in the colophon.

CANTO XIV

2 Are we to read गोष्ठीमिष्टः समव्याप्ति स सं०? **4** Note the transi-

tive use of नृत्. **6** Hiatus between *c* and *d*. **9** Better श्रुत्वा पि
तर्यैः **12** प्रतिवर्धयन्ते causal for primitive. **13** There is only one
army of Pulindas, so we might better read thus: प्रत्यागतां तां
वणिजः...^०सेनां ज्वलदग्धिकल्पाम्. **16** Auxiliary separated. **24** The
form प्रदुदुः makes the last pāda one of वंशस्थ in an उपजाति verse,
so better read इति दुदुवुस्ते. **29** Usually प्रपातः, so better ^०प्रपातानपि.
31 प्रजहार with Acc., cf. प्रहर्तुमभ्युद्धतमाभ्योनिम्, कुमारसं., iii 70
37 Read ^०निरर्थैयोत्स्ये as required by the metre; are we to read
मा चल त्वम्? **45** नरेश्वरो द्रावितशत्रुपक्षः or as suggested there. **51** Is
जप्तिथ irregularly used for जधनिय? *d* is obscure. **52** Better प्रसुय
for प्रसव्य. **57** न misplaced. **70** धर्मकालं = कालधर्मम्; rather
कश्चिद्दृटस्याप्रतिं^०. **73** Hiatus between *a* and *b*. **78** Better ददस्व
for दधस्व; note the hiatus in *d*. **79** Either विमुच्च यामि or
विवच्छयामि. **84** Hiatus between *a* and *b*. **86** Hiatus between
c and *d*. **87** Rather वियोगमी^० and मर्त्यानकृतश्रमांस्तु. **89** Better
^०पुण्यपात्रं. **90** Rather ^०प्रियतां पटुत्वं. **95** अद्धा means 'time', it is
quite usual in Prākrit. **98** Rather पुरुषीवणिग.

CANTO XV

1 वृत्तान्तं, rarely neuter. **3** Rather अनुगम्याप्यपश्यन्तो or as
suggested there. **8** Read ^०राजापवाहने. **9** Are we to read
कुमारोऽभ्यन्तरात् स्वेन उत बाष्णेन? **10** Rather ^०इलयुजा qualifying लिया.
15 Note the alliteration. **18** Hiatus between *a* and *b*. **24**
पस्तृश्च allowed by the Epic usage. **25** Hiatus between *a* and *b*
34 Rather श्रुतवत्यस्तु. **36** Rather रुदस्य^०, also in 39; such forms are
allowed in the epics, and अश्वघोष also uses this form, सौन्दरनन्द,
vi. 6,35. **37** Rather ^०श्रेतनावत्यः. **47** How to explain the form
कृतान्तः, which is apparently Voc. Sg.? **51** Rather त्वाथ = त्वा + अथ.
64 कल्पते or कल्पस्यते. **65** Is मण्डल = मण्डलात्र? **69** Rather स
नौरिव ... तारयत्यापदर्णवम्। **73** Rather ^०स्थितां. **74** प्रारब्धो in the
sense of प्रारब्धवान्. **87** Rather शोककारिणः **104** Nine syllables in
b; rather नृत्रयं सेव्यते. **108** धव्यं or धत्त for धत्व, as we want
plural. **111** Rather त्रिप्रकारं; hiatus between *c* and *d*, also in
112. **114** Rather कुले or खले for कले. **115** Rather ^०मातृस्तुषाप्रस्या.
126 Either ये is redundant or पालयन्ति for परिपात्य. **128** Usually

रत्वा, but रन्त्वा also is met with. **129** Hiatus between *a* and *b*. **133** सः serves no special purpose. **134** Rather मा भूव् (subj. भवत्यः); मृगयामि, but usually 10 अ. **142** Rather °मनसक्रियाः. **145** Are we to read पतीष्टाः? **146** Rather मुहुः श्वसत्यः संदःयुर्युक्तृपतेः समागमाशाम्.

CANTO XVI

2 Better क्रीडन्यथा, and रत्ति for गर्ति. **10** तेन serves no special purpose. **18** Better तद्ग्राहयिष्यामि [पैरैः]. **21** Rather ललिनाहृष्याः: **24** Apparently अहं is the subject, so the use of the Perfect form विमम्पर्ज is objectionable. **27** Rather निकृष्ट तं. **30** Note °ति (followed by व्यक्तिम्) becomes prosodically long against the metre. **31** पदाति etc., समाहार would have been better; नरेन्द्रयातानुपयं = नरेन्द्रयातपयमनु irregularly. **37** Either सद्मूकेतौ or स्यात् = कर्यचित्. **38** नपेन्द्रमेनो = इन्द्रसेननृपः. **40** Better read नारीक्षते for नोऽपीक्षते. **45** Rather तं for तौ. **50** Rather प्रधुषः; अपेत with Inst., see above viii. 34 & xi. 51. **52** Read विद्धुर्वचस्तत्. **56** Are we to read मनिभङ्गैः. **57** जागौ = 'spoke'. **59** Rather नदेव for तदेव. **60** क्षिरांशाम्, Gen. is used for Abl. **62** Better परैरवार्यस्त्वं. **63** Rather विगृह्य तत्राशनमेव. **63** Should we read मेघकालः for मेघ्यकालः? **68** Note both यदि and चेत्. **70** Better शान्तेदानाश्रयस्थानविधे°. **72** Is it that मन्थाः is irregularly used for मन्यस्. **73** Rather नृप ते सहायाः. **76** स्वघोषणां or even स घोषणां. **77** Rather °स्वरयाभ्युपैत्. **78** Are we to read स्म for सा? **79** Rather स्वपुरान्तिकस्थं. **81** Hiatus च अत्रैव. **83** Rather ज्ञुवे. **85** Or even °त्युदिनेन दोषः. **89** Rather °प्यनिवार्यवीर्यः. **90** Rather पूर्वकृतेविषाकः. **91** Something like इत्युवाच is necessary in this verse. **95** Better प्रेत्येह. **97** Better निवर्त्यताः. **107** Hiatus between *c* & *d*. **109** Rather विजेतेति. **110** Rather °पुरोधःशिष्टमित्रेष्टवर्गाः or °वर्याः. **111** Either रिपुबलमथनार्थं or रिपुबलमथ तर्तु, the form तर्तु being already used below xvii. 32, and sanctioned by the Epics.

CANTO XVII

10 निश्चितमर्थवादी, perhaps irregularly for निश्चिनार्थवादी. **15** Is the form °विसर्पिंगिरयो regular? **23** Better व्यलुम्पन् for विलम्प्य. **28** युद्धे or युद्धं or युद्धात् is not quite satisfactory; can it be

युधा विजेतुं ? **31** Read लभ्यते for लभ्यते as required by the metre. **32** *a* is not syntactically well expressed; we want नृपात्मजा in the Inst. sg.. **34** As it stands मंशु (quickly) + आमुहि. **35** Either ससुनां or सुसुतां. **36** Rather प्रशस्यमानः. **39** हिहेषुः is possibly a copyist's mistake for जिहेषुः; the root हेष् is also Parasmaipada in the Epics, though usually I A. **41** Better आकर्णपूर्णन्यवकृष्य. **44** Rather समराभिलाषाः; प्रजहुः with Acc., see xiv. 31 above. **45** More correctly पदातयः, though पादातयः also is used; rather °भिहत्य. **47** What is the object for उद्दाम्य ? **48** Rather प्रथने or प्रथमे for प्रदने. **49** Either निरीक्षयमाणा or नैवेक्ष्यमाणा. **50** Either as suggested there or चाभ्यर्णतयास्तमन्ये. **51** Rather ताश्चिकियान्; वाकडु⁰ = कठुरुक्षवागबणैः irregularly. **54** Should we read उपलवत् for उत्पलवत् ? **56** Rather °व्रणालंकृतिः ; तुमल = तुमुल, usual in the Epics. **59** Rather वामाय०. **61** प्रजहुः with Loc. would have been better here. **65** In the first part धातैः and पातैः rhyme with each other; for similar alliteration are we to read पदतिपादै रथनेमिनादैः ? **66** Rather रजोवितानात्; better प्रसमुद्यतास्ता. **68** Rather °वर्गानालिख्य ते. **70** Either प्रततानि यान्ति or नमोभुवं स्म प्रति यानि यान्ति. **73** Rather परिभूयमानान् and प्रधाव्याशसहस्रवृत्तैः. **76** Better °योगभूते; and fill the gap etc. thus : संनिरस्तप्रभविभूतिः स बभूव सूर्यः **77** Both the MSS. regularly read कण्य for कण्प. **79** Read तदात्ययुग्यन्त. **81** Either ध्रुवं or द्रुतं for युतं. **82** Better महाजिभूमी; *c* possibly stands in the sense of विलम्बमालाभवहिर्गतान्त्रा. **85** *d* is short by one syllable, better read प्रबभूत. **86** Is not अनयोः redundant ? Note सप्तदशमः for सप्तदशः in the colophon.

CANTO XVIII

2 Is अविगण्य irregularly used for अविगण्य ? **4** Rather युष्टा for पृष्टा. **11** Are we to read सांयात्रिकचोदितानाम् ? **12** Rather प्रचक्षरुलोहित०. **13** Rather परास्तान्करिणः संयन्तृन्. **15** अपेत्य or उपेत्य ? **18** सवैजयत्त्वः is irregularly used for सवैजयन्तीकाः. **20** Rather तद्विजयस्य. **23** Better read उपेन्द्रसेनप्रतिचोषमाना०. **26** Rather °केतुप्रति०. **41** भर्त्सु is rarely Parasmaipada but quite usual with our author, see v. 34 and also 44, 76 below. **47** For मुक्ता the subject शक्तिः

is omitted. 49 Note the सापेक्ष compound in *b*, also in *a* of 52. 52 Better विमुक्तशक्ति. 54 Are we to read प्रतिभस्त्यं नीति? 55 चक्र is usually neuter but mas. here; or we might read आयातदालोक्य in view of its use in the next line.; better द्रुतं for धृतं. 56 Auxiliary separated. 60 Rather गजं गजेनाप्रति०. 65 Rather °मानन्मरावलीकम्, सनादं or सपातं for सपादं, and विनिपत्य for विनिपात्य०; with these minor emendations it is a beautiful verse. 68 Rather समानविश्रभ०. 70 Better read मुखण्डभिः for मुखण्डभिः; again प्रजहुः governs Acc. 73 Note the position of च. 75 Are we to read *b* thus: बलद्वये नैकविधं धनं च? 79 Or शक्ति + अरं. 81 Better छन्ने प्रमग्ने and कण्यान् (both MSS. uniformly read कण्य = कणप). 83 °नेत्रोः, °गोत्रो० etc. irregularly for °नेतृक्योः...गोप्तृक्योः. 88 Rather प्रवृद्धेद्विगुणाति०. 89 Better ममाद्य for मयाद्य. 90 Rather सुकलितं for सुकमितं. 106 वर्मप्रतियातनानि is obscure, rather वत्र० for वर्म०. 110 Better स्वपक्षधृत्यै, and दध्मौ, for दधौ. 116 Note the use जयं नरेन्द्रस्य निवेदनार्थम्. 126 काश्चिद्भ्रात्याप, dative used perhaps to imply 'instead of'. 129 As required by metre, better तौ परिकथितौ. 130 The last two lines are metrically defective: better युद्धश्रीश्विसुखसंकथारतामिर्हष्टः सन्नपतिरथविश्वगोहम्।

CANTO XIX

3 Better सोऽथ परोङ्गितज्ञः. 4 तम suffixed to a substantive, also xx. 37. 7 Auxiliary separated. 13 Better निष्ठोल्सवाणी॑; are we to read तदेव for तानेव? 14 Rather सुमहापथांश्च; either रत्नान्यकिरन्, as suggested there or तत्र व्यक्तिरन्. 17 Better भण्डाः. 19 Auxiliary separated; better प्रीतमुखाः. 21 Are we to read प्रहतं सहस्रं? 24 Better प्राविक्षतां for प्राचक्षितां. 27 *a* has कर्मधारय with वत्. 28 अमंत्र is really unnecessary in view of अभाषतेऽथम् in 27. 30 Better कीदृशि वा तत्र. 35 Either साप्यात्मकीयै० or साप्यात्मनीनै० 38 Rather परत्परोद्धर्थित०; note the rhyme in this verse. 41 Rather °रन्तर्वह्नि०. 42 आसे perhaps irregularly for आसांचके; read सस्नौ for सास्मो. 43 Read सा ख्यतिनिश्चलाक्षी irregularly for निश्चलस्थिताक्षी. 44 रुदन्त्या see above xv. 36 52 Rather सख्यः; are we to read न यन्त्रणां त्वं मयि etc.? 54 संमानपूर्वी or °पूर्वै०. 55 Rather ऋते भवत्याः. 63 मृगये is perhaps a slip for मृगसे irregularly equal to मृगयसे, or मृगये stands for Potential 2nd p. sg. form taking

that root to be परस्मैपद as used above xv. 134. **64** Rather त्रौडिवं. **66** Better मनुजाः प्रतीताः. **67** Should we read द्रिशामयत्नात्? **73** आचक्षितं for आख्यातं?; better °मतकिर्यार्थः. **74** Better read द्वित्रेष्वहस्यु. **77** वश्यमनं perhaps irregularly for वश्यमनसम्; सलज्जवत्या irregularly for सलज्जायाः or लज्जावत्याः. **78** Rather °शिखार्तप्रान्तपत्रा and अहरहरभितापक्षीय०. **79** Rather कमलसङ्गम्तेन. **80** Both यदि and चेत् are used. **80** Should we read तत्प्रहोष्ये?

CANTO XX

5 पितृपुत्र० irregularly of पिता पुत्र०; धर्मसपूर्व appears to have been used for धर्मपूर्वसेन = धर्मसेन, just as दशपूर्वरथ = दशरथ; so omit the suggestion [धर्मजपूष्य॑]. **6.** *d* युवराज्ये is to be understood. **7** Better गतघनश्च, see 85 below. **19** Note वचः प्रविलोक्य. **20** Are we to read गतेऽवनि योजनम्? **21** Note both इत्थं and पञ्चं are used. **23** Rather मदप्रतिं. **24** गाथ in the sense of गाथत्व. **25** Both यादे and चेत् are used, or म भूव०. **27** °साह is used like उपाह. **31** आस्त्व, used irregularly for आस्तां; better °व्यसनादहम्. **42** The poet often uses गै in the sense of गद् 'to speak', see 80, 83 below. **44** Better स्वपुरात्परमद्वितिः; either सहभोजनम् or स ह मोजनम्. **55** *b* कर्मधारय with इन्. **56** Better °क्षणमम्बरे. **58.** Better read *b* thus: पुरजनान्नपूर्णिस्त्ववशेष्य तान्, and *d* thus: परबलोऽन्मथनार्थमतोऽस्युद्देत्. **60** Rather °भट्टानुसतः. **65** We may suggest an emendation °संपदम् and restore the correct form which also is used by the author in 79 below; but it appears that the poet uses a word संपदा, corresponding to Prākrit संपद्या see xxv. 44 where we get a form संपदामिः. **68** Better इत्यमिहितो. **75** मैथुनः, 'brother-in-law' cf. मैदुन in Kannada and मेहुणा in Marathi. **76** उत्सुक in the sense of उत्सुकत्व; we have however उत्सुकम् 'sorrow'. **79** Rather तदवगम्य. **81** Better read °दुन्दुभयोऽध्वनन् (ध्वनञ्च + जल०): **84** Rather °नृपतिताम्. **87** Better °योषितां in *a*. **90** स्वसारः irregularly for स्वसृः. **91** Better read *a*, thus: सदयमनुपमादाः सनतास्ताश्च दृष्ट्वा.

CANTO XXI

7 Rather विमुच्य. **8** °पितृमातृ० irregularly for पिता०. **9** च misplaced in *c*; better read *d* thus: कृतापराधा इति नैव शिस्यिरे.

13 Either जिर्जिविषायाः or जिजीविषाशाः. **14** Better read समुत्थितो as required by metre ; is मा मैः irregularly used for मा मैर्षिः ? **15** सादन = सदन for the sake of metre. **20** Should we read अशाश्व for प्रशास ? **21** With the form आश्राय, α becomes इन्द्रवंशा in a वंशस्थ verse. **25** Either कृतानुयात्रो मुद्रितैः० or कृतानुयात्रैर्मूँ०. **28** What is the speciality of यद् in c? **29** Better read °ननर्त चार्नर्तपुरं ततोऽभवत्. **32** Rather चेद्यानवैः. **33** आस is independently used. **39** Better °संकटः. **41** Are we to read मृद्दीकवनं, मृद्दीक = मृद्दीका metris causa, see xxii. 72. **44** Are we to read पथि श्रामाल्काङ्गनविदुमा० ? **50** Rather विचित्त्य यत्सागर०...तदाशिषन्मुदा or तदादिशन्मुदा. **52** Better कुलसंततिष्वयम्. **58** संविभाजितुम् irregularly either for संविभाजियतुं or संविभक्तुं. **61** Is it °समासमक्षतो ? ; लेखक = लेख with स्वार्थं क. **62** Note रहित governs Abl. **63** The name of that king is indiscriminately spelt as बकुलाधिप and कुलाधिप, see xx. 79. 80 α , xxi. 58, 71. and also note the variants. **65** Better °दक्षिणाः. **69** If we take the form अधिष्ठितं, then it is a case of double preposition like उपोपविष्ट ; if not सिंहासनमःय+धिष्ठितं. **76** Better हेतुकाम्, हेतून् suggested there is metrically defective. **80** Better जनयतिरतिकर्त्ता ; note the alliteration in the first two lines ; and °रहरुपयातः in d.

CANTO XXII

1 Either रत्नकोशै० or °वेशै०. **3** Auxiliary separated. **7** Note the alliteration. **8** Should we read खरोऽमृदूनां क्रमयायिनां च ? ; better इवोऽुराजः. **12** Rather तरुणानिकान्ते ; and फुलदुमत्त० (फुल-दु-मत्त०). **14** Rather खद्योत्तमाला०. **17** Rather शौरैः for सुरैः. **20** रत्ना see xv. 128. **21** Note the alliteration. **26** अजलि is Mas., so कुट्टलामं ; auxiliary separated. **31** अनन्यकीर्ति in the sense of अनन्यकीर्तित्वं. **34** Rather भवतान्नरेन्द्रः. **37** Rather समुद्रतन्ते. **42** Either समुपाश्रयन्तः or causal for primitive. **50** तु in d becomes long against the metre. **51** If गेह is neuter here, then we will have to read येनोत्तमद्धि at the cost of metre ; but our poet often uses गेह Mas. (see 66.73 below), sq. better °मर्दिर्जिनदेवगेहो संस्थापितो. **55** Rather प्रियया for क्रियया. **57-58** Note the alliteration. **65** Better °नीलभ्रमरावलीकैः. **68** Better °रिवाद्विराजः in d. **69** Rather °कर्णिकारपुञ्चाग० ; सविहार०,

स is redundant. 70 Rather आव्रातका. 76 Better तदित्यास नकों भुवि.

CANTO XXIII

3 Auxiliary separated, also in 8. 6 अमा 'with'. 10 °मिश्रैः, what does this qualify?; or is it that some lines have interchanged their places? 14 Better °कुम्भं भक्त्या. 17 Note that the auxiliary is separated, and the preposition प्र also is noteworthy. 19 Hiatus between *a* and *b*. 20 आरोग्यता see viii. 53. 26 पश्चोत्प० etc. irregularly for उत्कुलापश्च०. 30 चूर्णी is usually Neuter but also Mas. in the Epics; संधातिम + क (स्वार्थे) is a variety of garlands. 31 वेत for वेत्र is allowed. 32 Better स्नातानुलिसो०. 34 विमास् is आत्मनेपद, so should we read विमावतां?; better फेतुः (i.e. opened) for पेतुः. 37 Better सदामकानि च्छत्राणि, see 50 below 41 Rather °पिहितान्पयोजै०, and विलासवत्तो. 42 Either स or सु० is redundant. 43 Better स्मरात्स्वायतलक्ष्यभूतप्रेद्विद्यमानस्तनकुटमलिन्धः० 47 First च in *a* misplaced. 48 Rather हि पर्वसन्धौ. 49 Better बलाकश्रियः० 53 Better चामरहंसमाला. 55 Rather ददत्कटान्त०. 58 तुरुष्क० etc irregularly for तुरुष्कधूपसंधूपितपाणिः. 62 Hiatus between *a* and *b*. 63 Rather °युपजप्य. 64 कुसुमाक्षतानि, but अक्षत is Mas. pl. when rice grains are meant. 66 If not धूम्राः, better read °ताम्राः. 68 Read either प्रदाय or प्रदीप्य for प्रदाप्य; °देवतानां as suggested there or °देवताया. 71 Auxiliary separated. 73 उपोपविष्ट, double preposition. 77 Rather नरोऽमराणां. 79 Better °विरतेश्वरेभ्यो. 82 Better °मधुरस्वरः; अनिवारिताशः or अभिधारिताशः as suggested there. 84 Better °राजेऽविकतः, and गुणशीलपालः. 91 Rather सान्ततिकप्रमोरं. 94 Are we to read जिनेन्द्रपूजाप्रयतो? 98 भवतु + आ + अधिक०? 100 Rather °जनस्तत्सकलं; are we to read प्रीतः प्रसादोदयवान्? 101 °रेणुमिः Instru. for Acc.

CANTO XXIV

1 In *d* both इव and वत् are used; so are we to read कानिभि-वेन्दुरुद्धभार? 2 *b* is short by one syllable. 3 For वथः, वेथः would be better than वन्धः suggested there. 4 One लेषु appears to be redundant. 8 Read जहे for जहौ. 10 च misplaced, also in 12 *a*. 19 Better read *d* thus as required by metre: वद तत्स्वमसंशयं

प्रभो नः. 20 Rather प्रदिष्टमर्थ or प्रदृष्टमर्थ. 22 Both यदि and चेत् are used, also in 28. 24 Rather भवद्धनेन as required by metre too. 24 Are we to read वरकैरवगन्ध०? 25 Rather यद्धविरादाय. 26 Better प्रतिधात्वं for परिदाप्य. 27 Rather परानगतीन्कथं 28 Note यदि कृती, the short vowel followed by कृ is taken as metrically long. 29 प्रस्तवन्ति, प्रस् is rarely परस्मै. 30 आत्मकम् in *d* is redundant. 33 बलिनो irregularly for बले: 34 Rather °मित्र-सुमन्त्रि०. 35 Are we to read बृहतां पति० (*i.e.* बृहस्पति)? 36 *a* is defective; are we to read रविचन्द्रमसोर्गेहप्रपीडां and परपोष्यत्व०?; compare भर्गैहरि॑'s line शशिदिवाकरयोर्गेहपीडनम्. 37 *b* is defective, rather परपक्षप्रविलुप्ता etc. 40 The first two पादः should interchange their places; and read rather दोवैर्बुधिः in *d*. 41 Rather read *b* thus: प्रतिभानस्थिति०...[प्रसज्येत]; *c* thus: प्रतिकर्म विना स ना (= पुरुषः) सुखी स्यात्; and the last word of *d* आसवाद्यम्. 42 Rather वतदानतपासि नि०. 45 Rather सुपरीश्यः.....°भावात्. 46 यदि in *a* does not serve any special purpose; rather हि गुणैर्न च प्रयोगो; and दुर्मतिः सः as required by metre. 47 Two syllables redundant in *b*, rather omit स्वयं; both यदि and चेत् are used. 49 *c* is metrically defective, so we may read असतीह ततश्च कर्मनाशे तव etc.; भावाफल्ना stands irregularly for फलभावता. 50 यदि in *a* appears to be redundant; प्रतिभासते or as suggested there. 51 चेत् in *b* is redundant; rather अनवेक्षित०. 54 गतीषु, इ lengthened metris causa. 57 Read rather परवानं; *c* is short by one syllable, so read न च विश्वरते, but the root is irregularly आत्मनेपद here. 58 आददाति, Paras. only in the Epics. 59 Better यथासुखं क्रि०. 62 Rather °बद्धो नरकाशीश्व. 65 Rather तमोवृत्तेषु. 66 तिरश्चजीवाः irregularly for तिर्यग्जीवाः. 68 Omit हि as required by the metre. 69 चामर० etc. irregularly for चामरलीलावीज्यमानान्. 74 Can it be श्रिया + आभिः?

CANTO XXV

6 मैथुन see above xx. 75; rather चैकानि. 12 यदि is redundant. 15 Better सबन्धुमित्रान्; is जुहुः irregularly used for जुहुवुः? 16 Rather °धानवाञ्छतः. 17 Better शत्रमुखं. 24 Are we to read °दिजोऽन्धः? 31 Rather मन्त्रते for मन्त्रते. 36 Rather प्रघोषन्ति, and गान्ति क्षयं तेऽव्यनवाप्त०. 38. Rather °साक्षाः; कन्याः श्रित०; and वैधव्यमृच्छ-

नयथवाच्चिरेण. **41** Better क्षत्रिया. **44** In *d* note that the word appears to be taken as संपरा and not संपद, see above xx. 65. **45** निर्मलानि appears to be used in the sense of निर्माल्यानि; rather संस्कृशेद्धि for संप्रवृद्धिः. **46** Rather सोऽनुमेयः, and तस्या दशमात् कुलं, to be construed thus: तत् (= उदकं) तस्य कुलं आ दशमात् (पुरुषात्) पुनाति. **49** I have suggested ग्रात्^o there, but श्रात् would be better. **53** Better कौमारकाले. **54** Rather °मवच्च तीर्थम्. **57** Better °धोरमातापनं तेन पवित्रो^o. **59** भगवान्वभूव appears to be some corruption of a form of the periphrastic perfect. **61** Rather सफला for सकला. **62** The verse appears to be corrupt; are we to read thus: आरोहवाहाश्च धनप्रतोदैः प्रशोहवाहा दमनक्रियाभिः। प्र०...०न्ते देवधिंसंधास्तु सुखानि तेषाम्॥? **70** Rather यस्य नुः (= नरस्य) स्यात्. **74** Rather °जटाक्षसूत्रः. **75** Rather वञ्चयेद्यः for वर्षयेद्यः. **78** Better मुचुकुन्ततान्तः. **81** Either शापशुद्धै॒ य or शापसिद्धः. **85** Better आशुः समाप्तुं. **88** Rather °तमान्वदन्ति. **93** Rather विवक्तुभिः. **95** Better समासदश्च.

CANTO XXVI

6 Nine syllables in *a*. **19** Rather °स्पर्शरसा. **26** Note थिष्ठित, also in 12 above. **28** Better वर्तमानं तु संयृष्ट०. **53** Are we to read न पर्यायिको वापि? **54** Nine syllables in *b*; should we read नित्यं पर्याय०? **68** Rather महान्पन्थाः. **73** Rather °सिद्धिभेतेभ्यः संप्रचक्षन्ते. **102** Better °नय प्रेषुः. **103** Rather नार्थे प्रगच्छति. **105** Either एवं जनाः or as it is.

CANTO XXVII

1 Irregularly शुश्रूप्यां० for शुश्रूपांभूव and आवहिता for अवहिता. **3** Rather कालः. **7** Rather यथाभिधानम्. **8** Better तत्त्वयुतं, शाश्वतिस्वधिका. **9** Read चपि धनाङ्गमाहुः. **10** Rather विद्याद्वृण० or विन्देद्वृण०. **15** One syllable more in *a*. **16** Rather °परिक्षिप्तत्. **17** Note the words बर्कर 'goat' and तिन्दु. **19** Rather दशाहता सा. **21** समासान्तश्चन्ते is obscure. **22** Rather °कोटीं दशाहतां and द्वित्यार्थ०. **24** Rather यते तथैवाद०. **38** Rather श्रेयजिनेन्द्रो. **48** Rather जाताः, and जयधर्मकृष्णाः. **49** Should we read ख्ववर्षणा? **52** Rather पुष्पदन्ते. **53** Better श्रैयसमाशु०. **54** Rather मलेखिशून्योत्तर०. **56** च is ill placed in *d*. **61** Rather अन्यर्थपल्यं. **66** If we separate

कुन्थुधर्मौ + अमी + इह, the Sandhi rule will be violated; so better read कुन्थुधर्मावर्मा ह. 68 Rather पुष्पोत्तरादाययुरप्रमेयाः.

CANTO XXVIII

5 Rather जातकैश्च. 12 Better पुरप्रधानर्दत्तमात्मजाश्र...सह संप्रधानाः (as in म). 15 Rather वर्णश्रमास्तस्थुर्य स्वमार्गे. 17 Is it महामहाप्रीतिं? 18 Better महेन्द्र or खगेन्द्र for मृगेन्द्र०. 24 Why not ^०वृन्दा विचित्र...रामा qualifying उच्चका? 30 तं गेहं, so गेह Mas. as usual with this poet. 35 Better वीरतरोऽस्ति. 39 Better नौषति for चौषधि, च + ओषति from उच् I P. to burn. 42 सुक्षेत्रै + अशः = सुक्षेत्रयज्ञः is not sanctioned, so are we to read सुक्षेत्रेऽशो? 44. Better नाशशीय. 53 प्रविगाय used irregularly for प्रविगणय; what is the position of सम् here? 56 Rather ^०वियोगयोगमानापमान०. 57 Rather ^०संवेगयुतः सदर्थान्. 58 Rather प्रायूयुजः. 59 Rather सदानुभूतं, and प्रतिष्ठिपः श्रीमति. 60 पितृमातृ० irregularly for पितामातृ० or better still मातापितृ०; च misplaced in b; better अशङ्कया for निःशङ्कया. 62 Or can it be मा स्म स्मरस्त्वं सुनरां कुमारं, राज्यं प्रकृत्या सह etc. 66 Either नुपतेविशालं, or नुपते विशालं or even नृप ते विशालं. 72 Note एकैकरूपैः. 75 Rather ^०मात्रसख्यैः 79 Auxiliary separated. 85 If we do not separate as in the text, then करवामहे appears to be used irregularly for कुर्महे or करवामहै. 86 Rather आ दानतः.....नाथे न.....कृतापराधाश्च न वापि भर्तुः, कथं.....भक्ताः. 87 Rather मास्मान्नगतीर्वाकीः 89 Rather ^०कन्धयन्तीः. 96 What is the object for नेष्वति? 98 Rather समेत for समेताः; both यदि and चेत् are used. 105 Rather ऐरेवतः.

CANTO XXIX

3 Note प्राण is used in the singular. 8 शमितुं irregularly for शमयितुं. 9 Rather तं कर्तुम०. 10 Or more conveniently मा स्म त्वरिष्टाः. 11 स्थितधर्मचित्तः irregularly for धर्मस्थितचित्तः. 12 Are we to read पुंसां for पूतां? 13 Rather कम्पच्छिराश्चब्ल०, कम्प् is परस्मैपद here as in the epics. 14 Rather स्वलत्पदो व्याकुल०, and क्षितीशः 15 Better पुनश्चैव. 16 Are we to read मा वीवर एष याचे (मा वीवरः from वृ) ? 19 Or better बुमुक्षमाणस्य. 23 Better चिन्ताकुलं व्यापृतिं०. 24 Are we to read धर्मेऽस्थितानां सुखमागिनां च? 25 Rather ^०भूमिभुजां; auxi-

liary separated. 28 Either यदि or यद् is redundant. 29 उच्चतस्तिक्यपत्य irregularly for स्तिक्योदयतत्प. 31 Both इदम् and इति are used, one is redundant. 33 Rather °कुलांश्. 35 Rather विभूष्म for विधूत्. 37 अविगाय irregularly for अविगणव्य ; rather सर्वानहमीशितेति. 41 Rather चादरेण for सादरेण. 42 Rather स सर्वतत्त्वं. 44 Are we to read सर्वप्रभाहेपक० ? 46 Better स्ववाहुवीर्यांजित०. 49 Rather °मष्टाङ्गिकी०. 62 अर्थतम्, superlative from a substantive; rather किमन्यदर्थान्तर०. 64 Either फलानभद्रान् or फलाननार्थान्. 65 Are we to read लोका for लोके ? 74 Rather रक्तोपलैर्व्यकुलित०. 82 Better विषयेषु राजन् मा स्म प्रसांक्षीरिति. 83 Better °मार्गप्रतिबोधनं च. 86 Note the spelling of मडम् and खेड ; rather बाह्यानभ्यन०. 88 Does नरेन्द्र etc. stand for भक्त्या नरेन्द्रापित०. 98 मलीमस is used in the sense of मलीमसत्व ; we may better read c thus : ग्रहगणपिहितामलेव च धौः. 99 Rather साध्वीः समुपयुः. Note in the colophon एकोनत्रिंशतितमः.

CANTO XXX

2 लोच = plucking of the hair. 3 कृतमूर्जिहस्तान् irregularly for मूर्जिं कृतहस्तान्. 4 चतुर्दशानि irregularly for चतुर्दश ; rather आस्तुचरिष्णुतां. 14 Are we to read स्वजने for प्रजने ? 17 Rather श्रुतविद्विरापैः or even कृतिवि०. 21 मर्दुः: irregularly used for मसृदुः. 23 Rather स्ववशे or स्ववशान्. 24 Rather मदान्धान्करिणः. 25 Should we read स्वसुखं for समुखं ? rather निषष्णा. 27 आस separately used also in 48 below. 29 One ते redundant. 34 Should we read सपिशाचसंपैः? ; if not निश्चलं, then निश्चलास्तस्थ०. 35 Rather स्वेदाक्षमसंक्त०, and मुनयोऽभितष्टुः. 38 Better °रजक्षयाय ; and शव्यापल्यक्ष-बज्रोऽकुटासना. 41 In α कर्मधारय with इन्. 45 Note the strange Sandhi ग्रामे + एकरात्रं. 52 Better सर्सिहविकीडित०. 54 Rather सप्तस्तवगृष्ण. 55 Rather शैलान्तरे. 56 Are we to read प्रामुञ्जातादश च रात्रिभागे ? 57 क्रीडकृतं is a strange Sanskritisation of the Prākrit कीयगडं = क्रीतकृतं usually ; it is a technical term indicating a fault of food. 64 Rather पक्षमासचान्द्राय०. 67 Rather °नैकविधा-भिरीशा ; auxiliary separated, 69 Rather सुगुणैरुपेता. 70 Are we to read स्वेदामलाश्वैव ? 72 Rather केचिद्भूतुहि० महा०. 74 Better स्थिरमत्यः. Note the form विशतितमः in the colophon.

CANTO XXXI

2 Rather दोरद्रयाषा. **3** Rather अर्थाननर्थप्रतिमान्. **4** मातुपितृ^० etc. irregularly for मातपितृतुल्यौ. **6** Rather गणाग्रणीः. **7** Better ^०प्रभक्षानधीयने. **8** Rather प्रणिन्युवुद्धय०. **10** Rather वाक्यायच्चैः, and तं त्रिविधं. **13** ^०यष्ट्यस्ताः appears to stand irregularly for ^०यष्ट्यकास्ताः, **18** Are we to read यथानुपूर्वमञ्जै०? **29** Rather यमौवैस्तैः. **32** तुम्हं appears to be a Prâkrit word; rather प्रातबद्धनेमि; better कृष्णायसर्तीक्षण०; and स मुनिर्जिगाय. **34** Rather समूलकार्ष विधिना चकाष, and समूलोद्धरणांश्चकार. **36** Better मानं जिगाय प्रति मार्दवेन. **38** Rather कदाचिदेकोऽध्यवस० to justify the use of Acc. **41** निरजितानां irregularly for निरक्तानां. **48** एकमनःप्रविष्टः irregularly for एकप्रविष्टमनाः. **53** Better परिपक्वविष्टैः. **64** आराधितुं irregularly for आराधयितुं. **66** Better कालप्रधानै० **69** विचिकित्सां irregularly for विचिकित्सां. **71** Rather खेदो महान् वाक्तु. **73** दोषान्यतम irregularly for अन्यतमदोष; rather ^०विधानमिष्टम्. **74** Rather नपस्तत. **82** सुसाधयित्वा irregularly for सुसाध्य. **86** Should we read ^०शिखाम्बुदोमीस्तुणाय? **90** Better देहात्मनोभेद०, ^०भेदस्फुट०, and विद्वानयैतत् कथमत्र. **92** Rather यथाम्बु. **94** Are we to read यथापि तुर्वह्नि० and च भस्मना? **99** Should we read ^०चित्तः प्रणिधान-संस्थः? **102** Rather ^०विधानुबन्धी. **107** Better प्रापदतो. **113** श्रवणत्वम् + आ + आप्. **114** Second line is metrically short, so better यत्वात् किल सुखदुःखमप्रचिन्त्यम्. Note the form एकत्रिशतितमः in the colophon.

INDEX

(OF PROPER NAMES IN THE TEXT)

This Index includes the proper names from the Text of *Varāngacarita*. Only one occurrence, preferably the first, is noted in the case of persons etc. from the story proper. Jaina technical terms such as the names of fabulous regions, hells and heavens are omitted. Some obscure names could not be included. In some cases the following abbreviations have been used : *c* = clan or country, *g* = gotra, *k* = king, *m* = minister, *p* = prince or princess, *q* = queen, *s* = Salākāpuruṣa or Kāraṇamānuṣa, *t* = town.

- Abhicandra, xxvii. 35.
Abhinanda, *s*, xxvii. 37.
Ābhīraka, *c*, xvi. 32.
Ācala, *s*, xxvii. 43.
Ādirāja, xxii. 35.
Ajita, *m*, ii. 14 etc.
Ajita, *s*, xxvii. 37.
Amalavāhana, xxvii. 34.
Amātiṛaśṭra, *c*, xxi. 57.
Anāṅgasenā, *p*, ii. 60.
Ananta, *m*, ii. 14 etc.
Ananta, *s*, xxvii. 38.
Ānartapura, *t*, xxi. 28.
Āṅga, *c*, ii. 62 ; xvi. 32.
Āṅgirasa, *g*, xxv. 5.
Ano, xxv. 77.
Anupamā, *p*, ii. 11 ; xv. 34 ; etc.
Aparājita, xxvii. 79.
Apratimalla, xvii. 26.
Ara, *s*, xxvii. 39, 41.
Ariṣṭanemi, *s*, iii. 1, xxv. 59 ;
xxvii. 39.
Arkaśūrti, xxii. 34.
Asita, *c*, xvi. 33.
Āśmaka, *c*, xvi. 32.
Āṣṭapada, xxii. 35.
Āsvagrīva, *s*, xxvii. 44.
Āśvasena, xxvii. 73.
Ātreyā, *g*, xxv. 5.
Atulyā, *q*, ii. 11.
Audra, *c*, xvi. 33.
Audraka, *c*, viii. 3.
Avācā (?), xxvii. 75.
Āvantikā, *c*, xvi. 32.
Bāhlika, *c*, viii. 3.
Bakula, xxvii. 80.
Bakuleśvara, *k*, xx. 80.
Balāhaka, xviii. 7.
Bali, xxv. 77.
Bali, *s*, xxvii. 44.
Balin, xxiv, 33.
Barbaraka, *c*, viii. 3, 6.
Bhadrapuri, *t*, xxvii. 83.
Bhāgirathī, xxv. 55.
Bhānurāja, xxvii. 72.
Bharata, xxvii. 36.
Bharata, *s*, xxvii. 40.
Bharateśvara, *iii*. 32, see
Bharata.
Bhārgava, *g*, xxv. 5.
Bhiṣma, xxv. 48.
Bhojakula, *c*, i. 46.
Bṛhgaliśvara, xii, 29.
Brahmā, xxv. 76, xxvii. 78,
xxviii. 35.
Brahmadattī, xxvii. 76.
Brahmadeva, *s*, xxvii. 41.
Buddha, xxv. 82, 84.
Cakradhara, xxv. 55.
Cakrapura, *t*, ii. 61.
Cakṣuśmat, xxvii. 34.
Campāpura, *t*, xxvii. 83, 91.
Candrābha, xxvii. 35.
Candraddatta, xxvii. 78.
Candraprabha, *s*, xxvii. 37.
Candrapura, *t*, xxvii, 82.
Cāñūra, xxv. 77.

- Caraka, *c.* xvi. 33.
 Citrasena, *m.* ii. 14 etc.
- Datta, *s.* xxvii. 42.
 Devasena, *k.* ii. 23 etc.
 Devasenya, *p.* ii. 19.
 Dhana, xxi. 55.
 Dhanadatta, *p.* ii. 70.
 Dharaṇisuta (?), xxiv. 35.
 Dharma, *s.* xxvii. 38, 43, 80.
 Dharmamitra, xxvii. 79.
 Dharmasena, *k.* i. 46, ii. 1.
 Dharmasimha, xxvii. 79.
 Dhīvara, *m.* ii. 14 ; xxi. 9.
 Dhṛtiṣeṇa, *k.* ii. 10 etc.
 Droṇa, xxv. 44.
 Dvāpara (yuga), xxv. 9.
 Dvipiṭha, *s.* xxvii. 42.
 Dviśamṛtapa, *k.* ii. 32.
- Gāndhāra, *c.* viii. 3.
 Gaṅgā, xxv. 46-48.
 Gardabha (?), xxv. 78.
 Gārgya, *g.* xxv. 5.
 Gautama, xxiv. 34 ; xxv. 79.
 Gautama, *g.* xxv. 5.
 Girivraja, *t.* ii. 61.
 Guṇavatī, *q.* i. 63 ; xii. 10.
- Hara, xxviii. 35.
 Hari, *c.* viii. 4 etc.
 Hari, *s.* xxvii. 41.
 Hari-sārathi, xxv. 76.
 Hiranya-garbhā (Viṣabha) iii.
 32.
- Ikṣvāku, *c.* viii. 4 ; xxii. 86.
 Indrasena, *k.* xvi. 5.
 Iṣṭapura, *p.* ii. 60.
 Iṣvara, xxv. 46.
- Jaladhi-vṛddhi = Sāgara-, *xx.* 62
 etc.
 Janārdana, xxi. 29 ; xxv. 59.
 Jarāsandha, xxi. 29.
 Jaya, xxvii. 79.
 Jayā, xxvii. 75.
 Jayadharma, xxvii. 73.
 Jayasena, *s.* xxvii. 41.
 Jitarāṭ, xxvii. 71.
- Jitaśatru, xxvii. 71.
 Kailāsa, *m.* xxv. 58 ; xxvii. 91.
 Kākandi, *t.* xxvii. 83.
 Kāla, xiv. 7.
 Kaliṅga, *c.* xvii. 32 ; xxi. 55.
 Kāliya-nāga, xxi. 29.
 Kaliyuga, xxv. 10.
 Kāmadeva, xxiv. 33.
 Kamaṭha, xxv. 44,
 Kāmboja, *c.* viii. 3, 6.
 Kāmpilya, *t.* xxvii. 84.
 Kaṁsa, xxv. 77.
 Kañṭha, xxv. 44.
 Kārtikeya, xxv. 53.
 Kāśi, *c.* xxi. 56.
 Kāśmīra, *c.* viii. 3, 6 ; xvi. 33.
 Kaścidbhaṭa = Varāṅga, xiv. 66.
 Kāśyapa *g.* xxv. 5 ; xxvii. 88.
 Kātyayana, *g.* xxv. 5.
 Kaundinya, *g.* xxv. 5.
 Kauśāmbī (?) *t.* xxvii. 82.
 Kauśika, *g.* xxv. 5.
 Kausumbhi, xiii. 59.
 Kautsa, *g.* xxv. 5.
 Khasa, *c.* viii. 3.
 Kirāta, *c.* viii. 3.
 Kosala, *c.* ii. 62 ; xvi. 32 ; etc.
 Krṣṇa, *s.* xxvii. 42.
 Krṣṇaśatru, *s.* xxvii. 44.
 Kr̥tavarma, xxvii. 72.
 Kr̥tayuga, xxv. 9.
 Krūra, xxv. 23, 25.
 Kṣemandhara, xxvii. 33.
 Kṣemankara, xxvii. 33.
 Kṣudramatsya (fish), *v.* 103.
 Kulādhipa = Bakulādhipa xxi.
 58, 63.
 Kumāra, xxv. 53, 79.
 Kumāri, xxv. 54.
 Kumbharāja, xxvii. 73.
 Kunḍapura, *t.* xxvii. 85.
 Kunta, *c.* xvi. 33.
 Kunthu, *s.* xxvii. 39, 41.
 Kuru, *c.* viii. 4 ; xxv. 56 etc.
 Kurukṣetra, xxv. 48, 56.
 Kuśumbha, xiii. 58.
- Laksmaṇa, xxvii. 75.
 Lakṣmīpura, *t.* i. 34.
 Lalitapura, *t.* xiv. 85.

- Madhukaiṭabha, ś, xxvii. 44.
 Madhupīṅgala, xxv. 21.
 Madhuprabha, xvi. 9.
 Madhurā, t, xvi. 5.
 Magadha, c, xvi. 32.
 Maghavān, xxiv. 34.
 Maghavān, ś, xxvii. 40.
 Mahābalā, xxvii. 71.
 Mahākāla, xiv. 7.
 Mahāpadma, ś, xxvii. 41.
 Mahendra, xvi. 33; xxvii. 78.
 Mahendradatta, k, ii. 32.
 Mahendrasena, k, xvi. 31.
 Makaradvaja, k, ii. 32.
 Mālava, c, xxi. 57.
 Malli, ś, xxvii. 39.
 Māṇḍavya, g, xxv. 5.
 Maṅgala, xxvii. 74.
 Maṇimat, xxi. 27.
 Manohara (park), iii. 5.
 Manoharā, p, xxi. 72.
 Manoramā, p, xix. 39.
 Marudeva, xxvii. 36.
 Marudevi, xxvii. 74.
 • Mātāpanita (?), xxv. 57.
 Matsya, c, xvi. 32.
 Maudgalya, g, xxv. 5.
 Megharāja, xxvii. 71.
 Meraka, ś, xxvii. 44.
 Mithilā, t, xxvii. 84.
 Mitra, xxvii. 76.
 Mitraṛṣaḥa, k, ii. 33.
 Mrgasenā, q, xii. 4.
 Mucukunda, xxv. 78.
 Murārin, xxiv. 33.

 Nābhēya, ś, xxvii. 37.
 Nābhi, xxvii, 35, 71.
 Nāgapura, t, xxvii. 85.
 Nami, ś, xxvii. 39.
 Nanda, xxvii. 79.
 Nandā, xxvii. 75.
 Nandi, ś, xxvii. 43.
 Nandi, xxvii. 80.
 Nandimitra, ś, xxvii. 43.
 Nārāyana, ś, xxvii. 42.
 Narta-pura = Ānarta-, xxi. 29.
 Niśumbha, xxv. 76; xxvii. 44.
 Niśīmha, ś, xxvii. 42.

 Padma, ś, xxvii. 43.

 Padmābha, ś, xxvii. 37.
 Padmajit, xxvii. 78.
 Padmālayā, xxvii. 76.
 Pallava, c, xxi. 56.
 Pañcālaka, c, xvi. 33.
 Pāṇdu, xxv. 57.
 Parāśara, xxv. 44.
 Pārśva, ś, xxvii. 39.
 Pārvatiya, k, xvi. 64.
 Pāvāpura, t, xxvii. 91.
 Piṇakin, xxiv. 33.
 Prahlāda, ś, xxvii. 44.
 Prasenajit, xxvii. 35.
 Fratiśruti, xxvii. 33.
 Priyakāriṇi, xxvii. 76.
 Priyakāriṇi, p, ii. 62.
 Priyavrata, p, ii. 61.
 Pṛthvī, xxvii. 74.
 Pulindaka c, viii. 3.
 Punarvasu, xxvii. 79.
 Puṇḍarīka, ś, xxvii. 42.
 Puṇḍra, c, xvi. 32.
 Puruṣottama, ś, xxvii. 42.
 Puṣkara, xxv. 58.
 Puṣpadanta, ś, xxvii. 37.
 Puṣpadeva, xxvii. 78.

 Rājagṛha, t, xxvii. 84.
 Rakṣitā, xxvii. 74.
 Rāma, xxiv. 32; xxvii. 43.
 Ramyā, i. 31.
 Ramyāṭaṭa, t, i. 32.
 Ratnapura, t, xxvii. 84.
 Rāvapa, ś, xxiv. 32, 35; xxvii. 44.
 Ṛṣabhadatta, xxvii. 80.
 Rudra, xxv. 74, 84.

 Sagara, ś, xxvii. 40.
 Sāgarvṛddhi, xiv. 6 etc.
 Saīdhava, c, xvi. 33.
 Sāketa, xxv, 21; xxvii. 81.
 Sakti, xxv. 44.
 Sambhava, ś, xxvii. 37.
 Sammati, xxvii. 33.
 Sammedasāīla, xxvii. 92.
 Samṛddhapuri, t, ii. 10. etc.
 Samudragupta or-datta, k, ii, 32. etc.
 Samudravijaya, xxvii. 73.

- Sanatkumāra, *k.* ii. 32.
 Sanatkumāra, *s.* xxvii. 46.
 Sankara, xxv. 45.
 Sāntanava, xxv. 48.
 Śānti, *s.* xxvii. 38, 41.
 Sarasvati, xxi. 28.
 Sarvaśrī, xxvii. 75.
 Saumyā, xxvii. 74.
 Saurāṣṭra, xvi. 32.
 Šauryadharma, xxvii. 72.
 Šauryapuri, *t.* xxvii. 85.
 Sauviraka, *c.* xvi. 33.
 Senā (?), xxvii. 74.
 Siddhārtha, xxvii. 73.
 Siddhārthā, xxvii. 74.
 Simandhara, xxvii. 34.
 Simāṅkara, xxvii. 34.
 Simhala, *c.* viii. 3.
 Simhapura, *t.* ii. 56.
 Simhapuri, *t.* xxvii. 82.
 Simhasena, xxvii. 72.
 Sītala, *s.* xxvii. 38.
 Sīvadevi, xxvii. 76.
 Soma, xxvii. 78.
 Somadeva, xxvii. 78.
 Somadevī, xxvii. 76.
 Śrāvasti, *t.* xxvii. 82.
 Śreyān, *s.* xxvii. 38.
 Śreyān, xxvii. 78.
 Śri, xxv. 58.
 Śrimalaya, ii. 60.
 Śriparvata, xxv. 58.
 Śripuṣkara, xxv. 58.
 Subhauma, *s.* xxvii. 41.
 Subuddhi, xii. 16.
 Suchukrunda (?), xxv. 78.
 Sudarśana, xxvii. 73.
 Sudatta, xxvii. 80.
 Sudṛḍha, xxvii. 72.
 Sudṛṣṭa, *s.* xxvii. 43.
 Sugātra, xxviii. 5.
 Sugrīva, xxvii. 72.
 Suhma, *c.* xvi. 32.
 Sukeśī, *p.* ii. 61.
 Sulabhā, xxv. 21.
 Sumati, *s.* xxvii. 37.
 Sumbha, xxv. 76.
 Sumitra, xxvii. 73, 79.
 Sunandā, *p.* ii. 20. etc.
 Sunandana, xxvii. 79.
 Supārśva, *s.* xxvii. 37.
 Suprabha, *s.* xxvii. 43.
 Supratīṣṭha, xxvii. 71.
 Surasena=Devasena, xxi. 5.
 Surendra, xxvii. 78.
 Suṣeṇa, *p.* xi. 84.
 Sutanu=Varāṅga, ii. 73.
 Suvrata, *s.* xxvii. 39.
 Suvratā (?), xxvii. 75.
 Svayambhū, *s.* xxvii. 42.
 Svayamvara, xxvii. 71.
 Syāminikā, xxvii. 75.
 Tāraka, *s.* xxvii. 44.
 Tilottamā, xxv. 76.
 Tretāyuga, xxv. 9.
 Tripiṭṭa, *s.* xxvii. 42.
 Tripura, xxv. 74.
 Udadhi-Vṛddhi=Sāgara-, xx. 36.
 Udgama, xxv. 44.
 Ugra, *c.* viii. 4 ; xv. 129 ; etc.
 Ujjayanta, xxv. 59.
 Umā, xxv. 74, 79.
 Upendrasena, xvi. 5.
 Urjayanta, xxvii. 91.
 Uttamapura, *t.* i. 33.
 Vaidarbha, *c.* xvi. 33.
 Vaidiśa, *c.* xvi. 33, etc.
 Vaiṣṇavi, xxvii. 75.
 Vajrāyudha, *k.* ii. 32 ; etc.
 Vaṅga, *c.* xvi. 32.
 Vapiṇī, xxvii. 76.
 Vapuṣmati, *p.* ii. 59.
 Varadatta, iii. 2 ; etc.
 Varāṅga, ii. 1 etc.
 Vāraṇasi, *t.* xxvii. 83.
 Varatanu= Varāṅga, xx. 30.
 Vardhamāna, *s.* xxvii. 39.
 Vāsava, xxiv. 35.
 Vasiṣṭha, *g.* xxv. 5.
 Vasiṣṭha, xxv. 44.
 Vasu, xxi. 55 ; xxvii. 74 etc.
 Vasumīdhara, *p.* ii. 60.
 Vāsupūjya, *s.* xxvii. 38.
 Vibudha, xxi. 56.
 Vijaya, *m.* xvi. 67.
 Vijaya, *s.* xxvii. 43.
 Vijayasenā, xxvii. 74.
 Vimala, *s.* xxvii. 38.
 Vinayamīdhara, *k.* ii. 32.

- | | |
|---------------------------------|-----------------------------------|
| Vindhyapāla, <i>c.</i> xvi. 32. | Viśvasena, xxvii. 72. |
| Vindhyapura, <i>t.</i> ii. 56. | Vṛśabha, xxv. 58. etc. |
| Vinīta, i. 23. | Vyāsa, xxv. 44. |
| Vīrasena, <i>k.</i> xvi. 60. | |
| Viśruta, xxvii. 76. | Yadu, <i>c.</i> xxi. 29 ; xxv. 59 |
| Viṣṇu, xxv. 77, 78, 84 etc. | Yadu-pravira (?), xxv. 23 |
| Viṣṇu, xxvii. 72. | Yaśasvān, xxvii. 35. |
| Viśvasenā, <i>p.</i> ii. 62. | Yaśovatī, ii. 59. |

ADDENDA ET CORRIGENDA

For	Read	For	Read
Canto I			
18b क्षमा	क्षमां.	54b [---]	[---]॑.
40d नक्तं दिवं	नक्तंदिवं.	55b °निर्वेदसुक्ता	°निर्वेदयुक्ता.
57c °वू०	°वपुर्विनय०.		
64b F.note 1 १	[कामैकमावरति].	Canto VII	
		6b °हैमवर्णा	°हेमवर्णा.
		8c °क्षमानि	°क्षमाणि.
		16b F.note 2 २	[संशान्नजदुर्गु- भीश्च].
Canto II		35c ताभ्या	ताभ्यां.
3c F.note 1 १	[कलाकलापं].	54a दर्शनेभ्यः	°दर्शनेभ्यो.
38c साधु कृतात्म०	साधुकृतात्म.	54c दल्वेह	दत्त्वेह.
50d F.note 1 १	[आहाययां कार्य- विदो].	57d शशिस्त्व०	शशिस्त्व०.
93b पैशूत्य०	पैशुन्त्र०.	Canto VIII	
Canto III		18a नरदेववृत्त०	नरदेव वृत्त०.
1b प्रणष्ट०	प्रनष्ट०.	30b °भीर्भस्तन०	°भीर्भस्तन०.
Canto V		36c आजन्मनः	आ जन्मनः.
31c पतन्त्युत्पत्त्य०	°न्त्युत्पत्त्य.	43d स पुण्यः	स पुण्यः.
41b केचिदुत्कृत्य०	°कृत्य.	45c श्रुवन्न०	शृणवन्न०.
45a पिष्ठिति	पिष्ठिति.	46b F.note 4	[वादित्रिका०].
45b °काश्चिन्मृ०	°काश्चिन्मृदन्मृ०.	Canto IX	
46b °विद्धा	°विद्ध्वा.	21d °भिन्नान्धा०	भिन्नान्ध.
57c वद्धवान्ये	वदूध्वान्ये.	24a °वापी हद०	°वापीहद०.
83a °छिन्न	°च्छिन्न.	37a मेघा शनि	मेघाशनि०.
96a मध्यान्हे	मध्याह्ने.	43a वभावतो	स्वभावतो.
96b वर्ण्ह	वर्ण्हि.	49c इयु०	इयु०.
98c गृहीया	गृहीया०.	Canto X	
Canto VI		27a लोके नल	लोकेनल०.
25c सवेदनानि०	सवेदना नि०.	28c °प्रकृत्य	प्रकृत्य०.
52b जरा	जरां.		

For	Read
59c पृष्ठा	पृष्ठारूप्या.
60b सुधाभिः	सुधीभिः.
63c विजहः	विजहुः.

Canto XI

1c कृताज्जिलि०	कृताज्जिलि०.
9c सशकरं	सशकरं
11d प्रणष्टः	प्रणष्टः.
38d २८	३८
39c °मौख्यमाजीवि०	°सौख्यमाजीवि०.
70c प्रणष्ट०	प्रणष्ट०

Canto XII

21b वक्तम०	वक्तुम०.
21d माना ससु०	°मानास सु०.
39a °मङ्गाङ्ग०	°मं गाङ्ग०.
55b स्थितेनैव	स्थिते नैव.
64b F.note 6	६..... [मंप्रस्तुत].
80c °विद्यधो	°विद्यधो.

Canto XIII

3c °र्यासोः	°र्यियासोः.
29a निगृह्ण	निगृह्ण.
56b °दर्शके०	°दर्शके०.
67a °वान्नोद०	°वान्नोद०.
88b °भृत्यं	°भृत्यं.

Canto XIV

51b °कर्पटोज०	कर्पटो ज०.
59d °दधुरा	°दुरुरा०.
62c समान्त०	समान्त०.
66a °वृद्ध०	वृद्धि०.
98a °कलान्गु०	°कलान्गु०.

For	Read
4a °निवृत्या०	°निवृत्या०.
7b दव०	देव०.

28a वत्स	वत्सं.
41a कश्चिद्देह०	कश्चिद्दिह०.
94b भ्रवं	ध्रुवं.
103b लुभ०	मूल्युभ०.
106b °पैच्यति०	°पैच्यति०.
136c °लाषिण्य०	°लाषिण्य०.

Canto XVI

8b °स्त्रति०	°स्त्रुति०.
30d °देवाशु	दैवाशु.
72b त्वमवैहि	त्वमवैहि.
74c °कर्णी	°कर्णि.
98d °मास्त्र	°मास्त्र.
100b विषयेन	विषयेण.
101d मयायं	ममायं

Canto XVII

22b ये प्रति	येऽप्रति०.
40b °लक्षा हला०	°लक्षा हला०.
41c °पूर्णानव०	°पूर्णीन्य०.
43b सेनाऽप्र०	सेना प्र०.
44b प्रतिशा नि०	प्रतिशानि०.
48d F. note 6	[इवासुरन्ये].
71a चरण०	च रण०.

Canto XVIII

11c आदन्त०	आ दन्त०.
11d ममज्जु०	ममज्जु०.
23a °चोद्ययाता०	°चोद्य याता०.
32c °मनोरुज०	मनो रुज०.
74d °नया तौ०	°नयातौ०.

For	Read
78c लघ्वीन्द्र०	लघ्विन्द्र०.
83a °योच्छिन्न०	°योच्छिन्न०.
90d °कम्पितं	°कलितं.
93c साधुयशो०	साधु यशो०.
95b °किरच्छ०	°किरच्छ०.
103c सशरी०	स शरी०.
117a °धाम०	°दाम०.
128c °दुर्भृत	°दुर्भृत०.

For	Read
24a प्रश्रयणो०	प्रश्रवणो०.
32a खाना०	खाता०.
40b द्वाषरसा	द्वाप्सरसा.
53a °पताका नि०	°पताकानि०.
63c पठंस्तो०	पठन्तो०.
73c प्रभुनैव	प्रभुणैव.
76c तं नृसु०	तन्त्रसु०.
92d दत्ता	दत्ता.

Canto XIX

11c कन्या०	कन्या०.
14b महान्प०	महाप०.
48c °मासे	°मास्से.
50a ब्रुवाणा	ब्रुवाणां.
51b °रङ्गतन्वी	°रङ्ग तन्वी.

Canto XX

44d वान्सह.	वान्स ह.
83a °धुरं भजता०	°धुरां भज ता०.
84d °नृपतिता	नृपतितां.

Canto XXI

26c दुर्धरा:	°धूर्धरा:
42d चकासिरे	चकाशिरे.
60d °भ्युपेतु	°भ्युपेतु.
67a °ष्टा तनया	°ष्टां तनयां.

Canto XXII

6c °च्छिनात्मा०	°च्छिनान्मा०.
39b °भ्रवा	°ध्रुवा .
54d F. note	५ [...प्रणयस्त्वु०].

Canto XXIII

2a °रुचा चि०	रुचाचि०.
4b दत्ता	दत्ता.
23d प्रापूय	प्रापूर्य.

Canto XXIV

23c गृहीता	ग्रहीता.
27a °लौदन	°लौदन...४
38b कर्मकर्तुः	कर्म कर्तुः.
45c °त्सुशून्यं	°त्सु शून्यं.
50a °घट्रिको०	°घट्रिको०.

Canto XXV

3d पित्रेक०	पित्रेक०.
55c °गतानु०	°गतानू०.
66d °तश्चः	°तश्च.
75a वेदसुरे०	वेद सुरे०.

Canto XXVI

18c च्छाया	छाया.
50d प्रोक्ताः	प्रोक्ताः.
61d महर्घिणः	महर्घिणः.
73b °चक्ष्यते	चक्षते.

Canto XXVII

4b सप्तभिं०	सप्तभिः.
25d °भवाभुवां	°भवा भुवां.
28b °सर्गं प्र०	°सर्गंप्र०.
32b °विशति	विशति०.
52b दशोदिता	दशोदिताः.
89a पाश्चै	पाश्चै.

For	Read	For	Read
Canto XXVIII		Canto XXX	
34c सुरक्षा०	सुरक्ष्य०.	86c आर्जीवि०	आ जीवि०.
60b आपृच्छा०	आप्रच्छा०.	98b तारा०	ताराः .
86b नाथेन	नाथे न.		
Canto XXIX		Canto XXXI	
16a भित्वा०	भित्वा०.	18d °स्तैकृषि०	°स्तैकृषि०.
29a आवालय०	आ वालय.	51b °पैशून्य०	°पैशून्य०.
68c समीक्ष्य०	समीक्षा०.	60d निश्रेयस०	निःश्रेयस०.
82c यथा सुखं	यथासुखं.	60a आजीवि०	आ जीवि.
		64a उदन्मु०	उद्दन्मु०.

PARAMĀTMA-PRAKĀŚA & YOGASĀRA

Parmātma-prakāśa of Yogīndudeva, An Apabhramśa Work on Jaina Mysticism :

The Apabhramśa Text edited with Brahmadeva's Sanskrit Commentary and Daulatarāma's Hindī Translation, with a Critical Introduction, Various Readings etc., etc. ; and also *Yogasāra* critically edited with the Sanskrit Chāyā and with the Hindī translation of Pt. Jagadishchandra Shastri, by A. N. UPADHYE, M.A., Professor of Ardharāī gadhī, Rajaram College, Kolhapur ; Published by the Secy., Rāyachandra Jaina Śāstramālā. Royal 8vo pp. 12-124-396, Bombay 1937.

Select Opinions and Reviews :

Dr. LUDWIG ALSDORF, Berlin University, Germany :

'I have read the latter [i.e. Intro.] with great interest, and I feel bound to say that you have done very valuable research work and given an extremely useful contribution towards the knowledge of Apabhramśa and Jaina mysticism.'

Dr. L. SUALI, Pavia University, Italy :

'...you have given us a first-rate piece of work. The amount of information you have spread through the Introductions is wonderful and the method of your editing is really sound.'

Dr. N. P. CHAKRAVARTI, Government Epigraphist, Ootacamund :

'I am glad that you have not only spared no pains regarding the text but have also added an exhaustive Introduction which is always very useful in a publication of this kind.'

Dr. S. K. DE, University of Dacca, Dacca :

‘ You have omitted no relevant points from your discussion and your edition of this difficult text is all that one can desire... Your discussion of the general philosophical implication of the doctrines is interesting and scholarly, while your study of the Apabhrāṁśa of the text is highly informative and lucid... I have nothing but great admiration for the patience, industry and learning displayed by this work.’

Dr. A BERRIEDALE KEITH, Edinburgh University :

‘ You have again made an important and valuable contribution alike to the study of Apabhrāṁśa and of Jaina mysticism.’

Dr. B. R. SAKSENA, Allahabad University :

‘ श्री० आदिनाथ उपाध्याय जैन प्राकृत तथा इतर जैन-साहित्यके प्रगाढ़ पंडित हैं। प्रसिद्ध ग्रंथ ‘प्रवचनसार’ का सुंदर और सर्वांगपूर्ण संस्करण निकालकर उन्होंने पहले ही विद्वन्मंडली में आदर और सत्कार पाया है। प्रस्तुत ग्रंथके द्वारा उन्होंने अपनी कीर्ति को और उज्ज्वल किया है।.....इतने सुसंपादित ग्रंथ बिरले ही देखनेको मिलते हैं।’

PROF. L. V. RAMASWAMI AIYER, Ernakulam, Cochin :

‘ The chapter on the language of Paramātmā-prakāśa and particularly the comparisons with Hemacandra are exceedingly useful and suggestive to the student of Indo-Aryan Linguistics.’

Dr. LAKSHMAN SARUP, University of Punjab :

‘ ...your excellent essay on Joindu and his Apabhrāṁśa works. You have taken great pains. Some such Introduction was a long-felt desideratum.’

M. GOVIND PAI Esq., Manjeshvar :

‘ There is hardly any doubt that your essay is very scholarly and no less exhaustive.’

Pt. D. L. NARASIMHACHAR, Mysore :

'It is so erudite and thorough that it is difficult to add anything more to it. You have made use of all the available material and presented it tellingly and briefly.'

Prof. P. V. RAMANUJASWAMI, Vizianagaram :

'Let me congratulate you on the production of a learned and critical essay on the most important of Apabhrañśa writers. I was wondering till now what the source of Hemachandra's verses could be. I am very grateful to you and every lover of Prakrit must similarly be.'

For copies write to : Manilal Revashankar Jagjivan Jhaveri, Rayachandra ~~Kina~~ Sastramala, Jhaveri Bazar, Bombay 2, India.

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration, Library

मसुरी MUSSOORIE.

101548

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।

This book is to be returned on the date last stamped.

GL 294.4
JAT



101548

294.4
Jat

101548
अवाप्ति संख्या

Acc No. J-1049

वर्ग संख्या

पुस्तक संख्या

Class No. _____

Book No. _____

लेखक

Author Jata-Simhanandi. _____

शीर्पक

Title Varangacarita. _____

294.4

Jat

~~J-1049~~

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 101548

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving